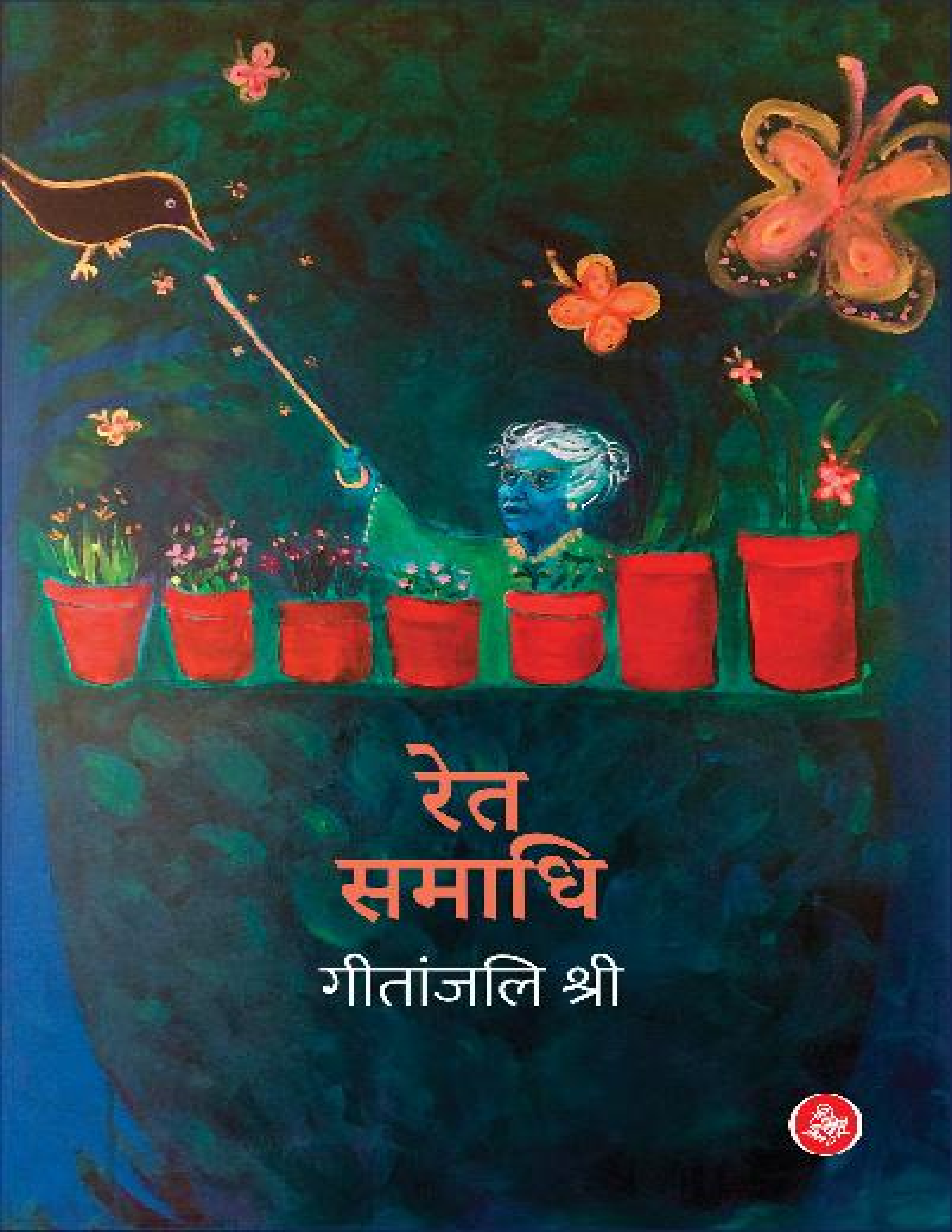

रेत समाधि

गीतांजलि श्री

रेत-समाधि

गीतांजलि श्री

राजकमल प्रकाशन

OceanofPDF.com

ISBN : 978-93-87462-24-3

© गीतांजलि श्री

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002

शाखाएँ : अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800 006
पहली मंज़िल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211 001
36 ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700 017

वेबसाइट : www.rajkamalprakashan.com
ई-मेल : info@rajkamalprakashan.com

RET-SMADHI
Novel by Geetanjali Shree

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश की, फोटोकॉपी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुन:प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

OceanofPDF.com

हमारी गुरु, प्रेरणा और बेहद अज़ीज़
कृष्णा सोबती जी के लिए

OceanofPDF.com

पीठ

OceanofPDF.com

एक कहानी अपने आप को कहेगी। मुकम्मल कहानी होगी और अधूरी भी, जैसा कहानियों का चलन है। दिलचस्प कहानी है। उसमें सरहद है और औरतें, जो आती हैं, जाती हैं, आरम्पार। औरत और सरहद का साथ हो तो खुदबखुद कहानी बन जाती है। बल्कि औरत भर भी। कहानी है। सुगबुगी से भरी। फिर जो हवा चलती है उसमें कहानी उड़ती है। जो घास उगती है, हवा की दिशा में देह को उकसाती, उसमें भी, और डूबता सूरज भी कहानी के ढेरों कंदील जलाकर बादलों पर टाँग देता है और ये सब गाथा में जुड़ते जाते हैं। राह आगे यों बढ़ती है, दायें बायें होती, घुमावती बनी, जैसे होश नहीं कि कहाँ रुके, और सब कुछ और कुछ भी किस्से सुनाने लग पड़ते हैं। ज्वालामुखी के अन्तर्घट से निकलता, चुप चुप भरता, भाप और अंगारों और धुएँ से फूटता अतीत।

इस किस्से में दो औरतें थीं। उन औरों के अलावा जो आयीं और चली गयीं, या वे जो बराबर आती जाती रहीं, और वे भी जो लगभग लगातार रहीं पर बहुत अहम नहीं थीं और उनका तो अभी ज़िक्र ही क्या जो औरतें नहीं थीं। अभी ऐसा कि दो औरतें अहम थीं और उनमें से एक छोटी होती गयी और एक बड़ी।

दो औरतें थीं और एक मौत।

दो औरतें, एक मौत, क्या खूब जमेगी मिल बैठेंगे जब साथ हम और वे!

दो औरतें, एक माँ, एक बेटी, एक छोटी होती, एक बड़ी होती, एक हँस कर कहती कि मैं दिन प्रतिदिन छोटिया रही हूँ, दूसरी दुखी होती पर न कहती कि वो देख रही है वो रोज़ बुढ़ा रही है। माँ ने साड़ी पहननी छोड़ दी कि आधी से अधिक कमर में खोंसनी पड़ती है और पेटीकोट रोज़ ऊँचे कराने पड़ते हैं। पर क्या छोटे होने में बिल्लियों वाली सिफ़त आ जाती है कि आप ज़रा से सुराख़ में खुद को घुसा लें और निकल जाएँ? सरहद छेद दें और फिसल लें बीच से? अदृश्य हो पाने के करीब तक की क्षमता दिखा डालें?

ये ही कारण रहा होगा कि माँ उस सरहद के पार निकलने की भी ठान सकी जब कि बेटी बस बुढ़ाऊ चिन्ता में ग्रसित हुई कि बुरे फँसे। मगर हो सकता है छोटी औरत निर्दोष थी जब वो अपना कोई जुर्म मानने से इंकार करती रही, चाहे क़ानूनी इजाज़त की गल पे, या नाम-वाम की बहस में, या चोरी के आरोप पे।

उसकी दलीलें समझ न पाने वाले उसे पागल मान बैठे या शायद शातिर। कि जानसमझ के बरगला रही है।

बोली कि खाते थे कि नहीं आदमी अरहर और औरतें कंसारी, तो? तो? बेखतर बोली। सही हो गया?

पर निडर घूर दो तो क्या सीमा के पहरेदारों को बात समझ आ जानी है? ये सीमापार है, वे घुड़के।

उसने ठहाका लगाया कि जो करो वही सीमापार, तो कुछ करें ही नहीं?

नहीं, उन्होंने सख्ती से कहा, और इतना जाहिल जपट कोई नहीं कि जाने ना ये बात। बकरियाँ गायें तक जान जाती हैं किधर न भटको। न आपके चश्मे का नम्बर ऐसा गड़बड़ कि देख न सकी हों, तो माफ़ी कैसी?

माफ़ी माँग कौन रहा है, उनकी हँसी गरजी। बड़ी होती बेटी रो पड़ी। और देखने को बस ये ही है? कि हमने भी कुछ देखा है? हमारा चश्मा कभी लगाओगे?

उसने एक ख्वाहिश की थी कि गिरे तो मुँह के बल नहीं। गोली जिधर से भी आये और जहाँ भी लगे, वो सीधी सतर पीछे को जाएगी और आँखों में आसमान घेरती हुई ज़मीन पर लेट जाएगी।

करने दो प्रैक्टिस मुझे, वो बेटी से बोलीं।

उन्हें हिचकियाँ आनी शुरू हुई थीं। आती चली गयीं और बेटी दुखी मिटी न होती तो शक़ करती कि असली हैं कि नकली। पानी से नहीं थमने की, पीठ पर घूंसा लगाओ, उन्होंने आदेश दिया। घूंसा ज़ोर से नहीं लगता तो दौड़ती आओ और दन से लात मारो, कभी पीठ पे, कभी पेट पे, कभी अगल बगल, और मैं गिरूँ, पर पीठ पर, आँखें खोले, माथा ऊपर, तब हिचकी रुक जाएगी। अजीब नुस्खा था पर माँ की बात मानती रही थी बेटी, सो दिये दनादन दनदन, किक पर किक, और इस नए खेल में धड़ाम धड़ाम माँ गिरा कियें। थोड़ी सी हाहंत के बाद देखने वाले भी हँस पड़े कि इस बूढ़ी बुढ़रिया के क्या कहने। बेटी को माँ ने बता दिया तैयारी रखनी चाहिए।

बहरतौर कहानी का अंग ये बना कि गोली आई थी पर तब तक माँ मनमाफ़िक गिरने की माहिर हो चुकी थी। गोली आई और छेद करती निकल गयी। कोई भी दूसरा मिट्टी में मुँह साने लोट जाता पर माँ पीछे को उछली ज्यों कलाबाज़ी लगाती, आसमान ऊपर लिए और फ़तेह के अन्दाज़ में धरती पर लेट गयी, शान से, आन से, मानो आरामदेह बिछौने पर।

मौत को अन्त मानने वालों ने इसे अन्त जाना पर जो जानते थे जानते थे कि अन्त-वंत नहीं है ये, एक और सरहद लाँघ गयी है वो।

इसलिए किस्से को यहाँ शुरू करने में कोई हर्ज नहीं, या जिस तरह से कर रहे हैं, वो वाजिब है।

इस सबके पहले एक मौत हो चुकी थी। एक आदमी की जिसकी औरत ने उसकी छड़ी से इंकार कर दिया। वो आदमी इसी माँ के पति थे और पिता इसी बेटी के। यों लगा कि

मरणोपरांत भी पालक चालक वही हैं और ये कि वे मरे हों या नहीं, उनकी पत्नी हर सूरत में मर गयी हैं। इस तरह वो अपने कमरे में पड़ी रहतीं।

उनका कमरा। घर के एक कोने में। मियाँ बीवी का बिस्तर। जाड़ों के दिन। मोटी रज़ाई गिलाफ़ वाली। हॉट वॉटर बोतल। ऊनी कनटोप। खूंटी पर टँगी छड़ी। प्याली अभी भी, बिस्तर किनारे तिपाई पर, बिन पानी के, जिसमें वे जब थे, अपने दांत रात में डाल देते। सुबह उठाते। फिर छड़ी।

बाहर दांत किटकिटाती ठंड, भीतर दांत किटकिटाती माँ।

सिकुड़ी गठरी सी, पल दर पल और सिकुड़ती हुई, विशाल लिहाफ में कहीं अपने होने का भ्रम सा संकेत देती हुई। गठरी पहले पलंग के इस तरफ़ थी, फिर सरक गयी, कभी ज़रा ऊपर, कभी नीचे, कभी उधर। क्या किसी अंकाव में कि अन्दाज़ना शुरू तो करूँ कहाँ कहाँ फैल सकती हूँ? या बस उनसे मुँह फेर रही थी, पीठ उनकी ओर करती, अपने बच्चों कच्चों की ओर से, और इस उपक्रम में दीवार की तरफ़ खिसकती गयी कि अपनी अस्सी से कुछ कम की सारी ताक़त इसी में लगा दे कि कैसे दीवार में घुस सके।

दीवार, जिसकी भूमिका ख़ासी है इस कथा में। (जैसे दरवाज़े की भी जिस के पार जाना होता है, इस पार से उस पार और उधर से इधर, बारम्बार और सदियों से, इसलिए चिरकाल से चिरकाल तक)।

कोई असाधारण दीवार नहीं। किस्म किस्म की कलाकारी दर्शाती भी नहीं। जैसी थर के रेगिस्तान में काँच जड़ी या ऊपर पहाड़ों पर चट्टानों की कोलाज डिजाइन में जुड़ी, या कहीं और अलग आकार और रंग को घोलमेल कर, न शादी ब्याह के लिए गोटे ठप्पे से जगमग की हुई, न आधुनिकी की चपेट में दोमुँही चाह से ग्रसित, नयी बनी, पुरानी दीखने में लगी, प्लास्टिक की खड़ी पर गोबर से लिपी का झांसा देने को लालायित, नकली भूसे तिनकों से भरी, या फिर लकदक संगेमरमर में पच्चीकारियों की बनी, और न ही मल्टीनेशनल्स की रंगीन धमाकेदार ऊँची चमकीली नारंगी नीली हरी दीवार जो बदरंग नहीं होगी, खुरचेगी नहीं, चटकेगी नहीं, अजर अमर डटी रहेगी।

बस सीधी सी, सादी भी, ईंट सीमेंट की, पिलियाहट लिए, सफ़ेद पुती मध्यवर्गीय दीवार थी। छत, फ़र्श, खिड़की, दरवाज़े को सँभाले, पानी के पाइप, बिजली के तार, केबल-शेबल का जाल भीतर बिछाये, पूरे घर को दीवारी लिफ़ाफ़े में तहा के सहेजने वाली।

ऐसी दीवार, जिसकी तरफ़, अभी अस्सी के इस तरफ़ की माँ, सूत दर सूत बढ़ती जा रही थी। ठंडी दीवार, जाड़ों के उन दिनों में, और ज़रूर छेद ग्रस्त, जैसी साधारण दीवारें हो पड़ती हैं।

जो कभी पक्के तौर पे नहीं कहा जा सकता वह ये कि दीवार का उसे अपनी तरफ़ ऐंचना ज़्यादा दम रखता था, या परिवार को पीठ दिखाने की उसकी चाह? बस माँ दीवार की ओर होती गयी और उसकी पीठ अंधी बहरी होती गयी और खुद एक दीवार बन गयी, उन्हें अलगाती जो उस कमरे में आते उसे उकसाने फुसलाने कि उठो अम्मा।

नहीं, मैं नहीं उठूँगी। गठरी लिहाफ में ढुकी बुदबुदा देती।
नहीं अब तो मैं नहीं उठूँगी।
इस वाक्य ने उन्हें हिला दिया और बच्चे और ज़िद करने लगे। वे डर जो गए। हाय उनकी अम्मा। पापा गए और उसे भी ले गए।
सोती मत रहिये, उठिए।
सोती रहती हैं। पड़ी रहती हैं। आँखें मूँदे। पीठ कर के। कानागोसी चलती।
पापा थे तो हरदम उनकी देखरेख में, फ़ुर्तीली, मुस्तैद, लाख थकन हो तो भी। चूर चूर होते जाने के चूरे में व्यस्त, जीवन्त। खीजती, खफ़ाती, सँभालती, फफांती, साँस पर साँस पर साँस चलाती।
क्योंकि सभी की साँस उसी में चलती, सभी की साँस वो चलाती।
और अब, कि नहीं उठना मुझे। जैसे पापा ही जीने का मक़सद थे। गए तो गया।
नहीं अम्मा नहीं, बच्चे हठ करने लगे, बाहर देखो धूप खिली है, उठो, उठाओ, छड़ी टंगी है, चूड़ा खाओ, मटर पड़ी है, पेट बहा है, राई फंकाओ।
नहीं मैं नहीं, नइ नइ, माँ कुनमुना जाती।
थकी बेचारी, अकेली हारी। उसे उठाओ, उलझाओ, उसका मन लगाओ, अकूत दया उन में गंगा जी की तरह बहती, और माँ की पीठ पर लहर जाती।
अब्ब नइ, माँ चीखना चाहती। उसका मरा मरा स्वर निकलता।
क्या माँ ने सोचा होगा कि उसे जिलाने की बच्चों की कोशिश उसे दीवार में घुसा रही है? क्या ऐसा था? कमरे की तरफ़ पदचाप आती और वो पीठ कर लेती, दीवार में सटने लगती। मरती जाती, आँख नाक बंद, कान ठप्प, मुँह सिला, मन सुन्न, अरमान नदारद, पखेरू उड़ उड़।
पर बच्चे भी ढीठ। जुटे रहते, पीठ पर आँख नाक कान उगा दें कैसे। बाटी बघार दस्त की कह कर।
वही किचकिच कचायन। वही चूल्हा लकड़ी आटा। वही पोतड़े साफ़ करो। नइ नइ, वह दोहराती जाती।
किसी षड्यंत्र के तहत नहीं, बल्कि यंत्र की तरह। ऊबा हुआ यंत्र। अफरा हुआ तंत्र। किसी चीज़ में अपने को सर्फ़ न करने की काहिली में वह फिर फिर बेऊर्जा बुदबुदाती — नहीं न ननइ...
अब्ब नइई उठूँगी...
चंद शब्द जिनमें बच्चे घबरा रहे थे, माँ मर रही थी।
शब्द। शब्द होते क्या हैं जी? ध्वनि जिसमें वे अपने मतलब झुला देते हैं। जिनका कोई प्रमाण नहीं होता। अपनी राह निकल लेते हैं। मरते तन और मन के अवसाद से उपजे,

अपने मतलब का उलट मतलब पकड़ लेते हैं। बोया बीज खजूर का, खिला वहाँ गुड़हल। अपने ही संग दंगल! अपने ही खेल में रत!

अभी नहीं उठूँगी, के डर और मर से कौन खेल रहा था? यांत्रिक ये शब्द तांत्रिक हो चले और माँ कह वह रही थी, पर वह था कुछ और, या हो गया।

इच्छा या बेमक़सद लीला?

नहीं नहीं मैं नहीं उठूँगी। अब तो मैं नहीं उठूँगी। अब्ब तो मैं नइ उठूँगी। अब्ब तो मैं नइई उठूँगी। अब मैं नयी उठूँगी। अब तो मैं नयी ही उठूँगी।

शब्द *की एक पौध। अपनी उसकी लहराहट। उसमें लुकी मुरादें। मरतों के 'नहीं' के अपने राज़। 'नहीं' के अपने ख्वाब।*

इस तरह। कि एक पेड़ खड़ा जड़ा। पर थक तो रहा है उन्हीं उन्हीं चेहरों के साये में घिरने से, उन्हीं खुशबुओं के पत्तों से लिपटने पे, उन्हीं ध्वनियों की डालियों पे चहचह से। होते होते हो गया कि पेड़ की साँस उखड़ती सी और उसकी बुदबुद में 'नहीं नहीं'।

मगर हवा है और बारिश और 'नहीं' की फूँक उन में उड़ जो पड़ी है और एक कतरन का आकार भी पा गयी है। जो फरफर फहरती है, फिर फड़ फड़ फडफ़ड़ाती है और डाली पर मन्नत का फीता बना के उसे, हवा और बरसात मिलकर बाँध देते हैं। हर बार एक गाँठ और लगा देते हैं। एक और गाँठ। एक नई गाँठ। एक नयी गाँठ। एक नई चाह। नई। नयी। हो जाना। 'नहीं' की नयी झंकार। फरफर फडफ़ड़ फड़क फड़क।

तो पेड़ वही। सामने जो नज़र में है। उसके तने पर और नीची झुकी डालियों पर धुएँ सी घूँघर 'नहीं नहीं नहीं', ऊपर लहराती उलझती 'नहीं नहीं नई' और फिर डालियाँ और फुनगियाँ जो हाथ हैं और उँगलियाँ, आसमान में चाँद को लपकती, 'नई नयी'।

या छत से। लपकती खिसकती। या दीवार से।

जिसमें एक छिद्र मिल गया है, या बन गया है, जहाँ से नन्हा सा जीव, एक कतरा साँस की तरह, बाहर को सरकता। फूँक दर फूँक दीवार गिराता।

अपनों से नफ़रत कौन करे पर अनख तो हो जाती है। उड्डो।

नहीं।
धूप।
नहीं।
सूप।
नहीं।
पीठ। चुप। दीवार।
सिड के आते ही उसे दौड़ाया जाता। सिड, उनका दिलपसन्द पोता। सिद्धार्थ, आज का सिड। वाहिद शख़्स जिससे वो पूरी तरह पीठ नहीं कर सकती थीं।
सुबह से पड़ी हैं।
बाथरूम भी देर से गयीं और आकर पड़ रहीं।
खाना नहीं पीना नहीं चाय मुँह तक ले जाना नहीं।
फूल खिले हैं परवाह नहीं।
गुलदाउदी, पर देखना नहीं।
सिड अपने ढंग का। कब आया कब गया पता नहीं। कभी जॉगिंग, कभी जिम, क्रिकेट मैच, टैनिस टूर्नामेंट, मस्त चाल, कभी गिटार, छेड़छाड़, माँ बाप की फटकार, मगर हाज़िर जवाब और हर किसी का मज़ाक। घुसा अन्दर, बल्ला, रैकेट, कुछ फेंका, हाथ मुँह पर छींटे मारे, टी शर्ट फेंक बगलों में टैलकम पाउडर छिड़का, बीच राह फ़्रिज से सैंडविच, सेब निकाल के मुँह में उछाला, और सीधे दादी के कमरे में।
ग्रैनी, नॉटी गर्ल, गेट अप, अप एॅन्ड अबाउट।
दादी की नहनाह नहीं चलेगी। पीठ क्या करे? हवा के इस झोंके की फहर का? कुनमुन, मगर दुलार की। ‘बौत ठंड है’। फुसफुसबुदबुद, थोड़ी प्यारी हारी।
बहाना। पर सच था और कहते ही और सत्य हो गया। अच्छी भली कंपकंपी रज़ाई के भीतर यों छूटी जैसे अँधेरे में चुहिया दौड़ गयी और माँ कस के अपने को दुबकाती है, पर सिद्धार्थ तो सिड, तो ज़रामुरा कोशिश तो करनी है। तो अपनी अम्मा की कही कह देती है, चिल्ला जाड़ा दिन चालीस, पूस के पन्द्रह, माघ पचीस।
चुपकी के बाद बोलो और लयदार मुहावरा बोलो तो आवाज़ गा जाती है। कुछ पीं पीं पींपींयाती। कुछ लहरिल लहराती। कि च्च चिलल्ला ज्जाड़ा दिन चचालीस, पूस के पपन्द्रह म्माघ पपचीस।
‘ऑसम ग्रैनी, ग्रैमी अवार्ड में हम दोनों की एंट्री, विक्ट्री, पक्की’!
इतना कह पोता सिड भागा गया गिटार लेने और गले में लटका के दादी के बिस्तर पर कूद चढ़ा। अपने वक्त और उम्र के हिसाब से तार टुनटुन करते गला फाड़ गाने लगा — जस्ट चिल्ल चिल्ल जस्ट चिल्ला जाड़ा द जाड़ा, डेज़ चालीस चालीस, फ़िफ़्टीन द पूस, ओ पूस, ओ पूस, एॅन्ड माघ पचीस पचीस, यो यो यो...
सबको हँसी आनी थी, माँ का दिल भी होंठ पे हल्का सा। इस बच्चे के
आगे उसकी पीठ की नहीं चल पाती। उसके धमधम धमक्कों पे मरी नहीं रह पाती।

मगर बाकी कोई हो कि बस पीठ फेर, आँखें मूँद, मरी मरी गठरी। हर रिश्ते से बेज़ार, अम्मा ढंग, पत्नी ढंग, बेवा ढंग, या एक में अटा दें तो परिवार ढंग, सब से जी उकताया हुआ।

इसलिए बाहर के दरवाज़े पर आहट हुई नहीं कि वो मर जातीं, दीवार में घुसी सी, पीठ बेजान, जग की तरफ़ मुड़ी।

वह दरवाज़ा खुला रहता, रूपक में बोलें तो। कोई बीच से गुज़रता

तो स्वर करता, जिसे माँ के अभ्यस्त कान जो सदियों से दूसरों की आहटें पहचान लेते थे, झट जान जाते कि कोई अभी अभी उस दरवाज़े से दाखिल हुआ है।

वह दरवाज़ा...

वह दरवाज़ा। बहुतों को इल्म नहीं कि ये कोई मामूली दरवाज़ा नहीं है। कि इसने मज़बूती से जिन दीवारों को थाम रखा है उन पर पीढ़ियाँ टिकी हैं।

बड़े बेटे के घर का दरवाज़ा। वह वाला घर जिसकी दीवारें ऊपरी धज में बदलते समय का स्वरूप ले लेती हैं पर असल में होती भीतर हैं, खुले दरवाज़े के आसरे में, और तभी पीढ़ी दर पीढ़ी वही घर खड़ा रहता है।

ये बड़े बेटों के घर का नसीब है।

ये वाला बड़ा बेटा तबादले वाली सरकारी मुलाज़मत करता रहा है तो उसके घर और दीवारें शहर बदलते रहे हैं और नए नए जिलों में खुला दरवाज़ा खुला रहा है।

सरकती दीवारें। क्या बड़े बेटे के घर की दीवारें सरकती हैं? नाचती हैं? दरवाज़ा बैल है जो घर की दीवारों को गाड़ी की तरह खींचता है? ये तो वही घर है जिस में परिवार के बाप दादे अपने चाकरों और वीर्य-उपजों को सदियों से घुड़कते फिरते थे। कभी ये घर गंगा किनारे, गुलाब के खेतों के पास था, उत्तर प्रदेश की पूर्वी मिट्टी में। फिर कुछ बाशिंदों को फूलों की महक में छोड़, बाकियों को पास के शहर में इत्र के कारखानों के करीब ले आया। कुछ, सुनने में आया है, गुलाब और इत्र से इतर, अफ़ीम के खेतों में फैल लिए। उनमें से कुछ अफ़ीमची बन गए और कहते अपने को ज़मींदार, जो थे भी, पर ज़मींदार के कपूत ज़्यादा। आखिरकार वो दिन आन पड़ा जब घर के बड़े बेटे, जो इस मौजूदा घर के बड़े बेटे के बाप थे और मौजूदा ज़िंदा-मैय्यत माँ के शौहर थे, उन बिगड़े, मद्झूमते रिश्तेदारों से भिड़ गए। अपने हिस्से की दीवारों का नौ हज़ार रुपया दाम लेकर सरकारी नौकर बन गए और देश-भ्रमण पर निकल पड़े, बंगले दर बंगले उपज बढ़ाते, इस बात से अनजान कि रुपये ले लिए पर गुलाब की महक वाले घर को भी ले आए, दूसरे गारे चूने में ढालने।

मगर जान समझकर उन्होंने कोई बेईमानी नहीं की थी इसलिए उसे सिरे से ही बेईमानी न कहा जाए। दीवारों की इस प्रथा और दरवाज़े की इस फिज़ा से वे अनभिज्ञ थे कि साथ आ जाते हैं और जब अगला बेटा बागडोर सँभालता है तो उसके संग चल पड़ते हैं। वाहक, वाहन! बावर्ची बदल जाते हैं, उम्र, शहर, क़द, चौड़ाई, सब इधर के उधर, बेवफ़ा के सदर, पर आदिकाल से अनंत तक रहते हैं वही घर दीवार और दरवाज़ा।

बाप को काहे कोसें, यहाँ तो समाजशास्त्री जैसी महान नस्ल गच्चा खाए बैठी है। लिख गयी कि संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, पुश्तैनी घर ढह गए हैं, भारतीय शैली भी स्वार्थी शैली हो चुकी है। कि संयुक्त परिवार अदृश्य घर है, उन्होंने नहीं सोचा, और घर सरकती दीवारें हैं, ये उनके वहमोगुमान में नहीं। नाचती सरकती इतराती महकती दीवारें और उनकी डोर थामे एक चुपका खड़ा दरवाज़ा। खुला। खड़ा। जिस से कोई भी उसके बीच से आये और जाए। जाए और आये। आता रहे, जाता रहे।

किसी के बीच से निकलना एक तरह से उसे चीरने की बात हुई। भले ही वह दरवाज़ा क्यों न हो। उसके जिगर और दिल को चीर कर निकलते हो तुम सब।

जो चीरा जाए उस में भांपने सहारने की क़ूवत बढ़ जाती है। वह महसूस कर लेने की जो औरों की नज़र से बच लेता है। ऐसा होता है, जानो, बड़े बेटे के घर का दरवाज़ा, जिस में सदियों का रिसाव है।

बड़े बेटे के घर का दरवाज़ा जानता है कि उसे बहरसूरत खुले रहना है और उस के बीच से निकलने वाले पर वक्त की, पूर्वसूचना देने की, खटखटा कर घुसने जैसी पाबंदियाँ नहीं हैं। यहाँ सब मुक्त और मुफ़्त मामला। आप तौलिया लपेटे गुसल से निकलें और गाँव से कोई रिश्तेदार बीवी बच्चों को लेकर घुसे आ गए हैं सामने तो आप मुस्की मारेंगे और चाय नाश्ता के लिए चिल्ला देंगे और नंगे बदन पर कपड़े चढ़ायेंगे और ये नहीं विचारेंगे कि कितने दिनों तक पाहुने आपके यहाँ आवास धारण करने आये हैं। बेटे की नौकरी, बेटी की मंगनी, किसी का कहीं दाखिला, क्या क्या दु:ख सुख लोभ बेचारों को खींच लाया है। ऐसे ही आप चेहरे पर उबटन पोते हैं, सर पर मेंहदी थोपे हैं, कि ननद जी पधारेंगी, किसी दोस्त को अम्मा से मिलाने कि मन उनका बहलेगा, और खाने का वक्त हो गया है तो खाना तो खाना ही है और सबके आगे आपको भूत लग ही जाना है। या पोते जी गर्लफ्रेंड बॉयफ्रेंड से रस भरी बातें करेंगे और फ़क यू स्क्रू यू करेंगे तो भी दरवाज़े के आरपार से कोई आकर खड़ा हो जाएगा। देखे सुने मुस्काए, बीच में टीका टिप्पड़ी ठोंके, कुछ अपनी धुन की पूछे कहे। प्राइवेसी यहाँ शब्दकोष नहीं जानता और ऐसे अधिकार का कोई दावा करे तो निगाहें शक्की उस पर पड़ेंगी कि आख़िर क्या छिपाने की मंशा है, कुछ काला दिख रहा है दाल में।

सीसीटीवी भी क्या जाने दरवाज़े का स्वाद! वो अपने तकनीकी नयेपन का अंधभक्त है, तो कैसे पता उसे कि एक दरवाज़ा है जो सब देखता सुनता रिकॉर्ड करता रहा है? सब जा रहे हैं जिसके आरम्पार, कब से और कब से।

फिर भी गाहे बगाहे कोई आ जाते हैं, एक या दो या तीन भी, जो उस के बीच से निकलने को होते हैं कि रुक जाते हैं, हैं, किस ने झपक मारी? एक पाँव, घर के अन्दर खुद को धर देने को उठा, हवा में ठिठक जाता है। रंगमंच घट जाता है उस पल। हवा में रुका

हुआ, नाटकीय सन्तुलन बनाये, उठा हुआ पाँव। मानो चौंक गया और अब तय नहीं कर पा रहा कि आगे हो ले घर के भीतर, या पीछे जिधर से आया है वहाँ लौट ले? मानो यह भी असमंजस है कि दुनिया उसकी पीछे है या आगे? तो कौन सी असल है, कौन सी अभिनय?

हवा में उठा पाँव हवा में रुका सवाल बन गया है — मैं इस तरफ़ हूँ कि उस तरफ़?

बड़े बेटे के घर के दरवाज़े पर इस मुद्रा में ठिठकी उसकी बहन के मन में हर बार एक पल को कौंध जाता — मैं अब तक नाटक कर रही थी कि अब करने जा रही हूँ?

बहन को हवाई अड्डे बुरे लगते थे इसलिए बार बार वो खुद को हवाई अड्डों में ही पाती। वहाँ उसे लगता वो कीड़े के बराबर का कीड़ा है, किसी ज़बरदस्त प्रयोगशाला में बंद। नकली बत्तियाँ, नकली गर्मियाँ, नकली धींगाधांगी जहाँ है। उसी की तरह के कीड़े हर दिशा में भरे हुए हैं, सब बेहद व्यस्त और बदहवास, निकास का रास्ता ढूँढने को चारों ओर भागते हुए। सब को चकाचक पहनावा पहनाया है और सब को एक जैसी पहियों वाली अटैचियों से अटका दिया है, जो उन्हें खींचती ले चल रही हैं। और इस जगर-मगर रौशनी में उनकी हर ज़रा सी हरकत पे नज़र है, कैमरे में क़ैद हो रहे सबके ब्योरे हैं। उस कीड़े ने अभी लुइ व्युत्तों कमीज़ के कॉलर पर पंजा फेरा, इस ने नाक में उँगली घुसेड़ी!

ये प्रजनन का कैसा खेल इस विराट स्थल में चल रहा है? क्या वैज्ञानिक बटोर लाये हमें जब हम अंडों में थे और रख दिया इस नियन्त्रित तापमान और प्रकाश में — इनक्यूबेटर उनका — कि देखें हमें फूटते, हाथ पाँव खिसियाई गति में हवा में मारते, उलट पुलट सीधे होते और फिर बुड़भस भागते? सिटपिटाए से सिटपिट सिटपिट? कीड़ों की कतारें खड़ी हैं, कीड़े कतारें तोड़ रहे हैं, कीड़े बिखर रहे हैं। चौकस नज़र उन पर। संदेह की, जाँच की।

अंडा फूटा हिलहिल हिला एक्सरे किया।

कीड़ों का कीड़ा होना ठीक है, मगर इंसानों का कीड़ा होना, हाय, दिल कलौंस जाता है।

कड़ी नज़र उन पर। देखो। परखो।

वैसे इस देखते रहो परखते रहो का बहनों बेटियों से जन्मजन्मान्तर का रिश्ता है। तभी वे परिवारों से भागना चाहती हैं और दरवाज़े पर एक पैर उठाये सोच में पड़ जाती हैं कि उन्हें भीतर जाना है या बाहर? इसी हेरफेर में एअरपोर्ट पहुँच जाती हैं। एक चौकसी से भाग दूसरी में आ गिरती हैं। जानी पहचानी सी चिढ़ उठती है और ज़ाहिर सी बात है कि हवाईअड्डे बुरे लगने लगते हैं।

बहन के बारे में कुछ कहना होगा। आखिर वह इस गाथा की दो मुख्य औरतों में से एक है और बार बार अपनी उपस्थिति दर्ज कराएगी। दोनों औरतें इस परिवार का अन्तरंग हिस्सा हैं और इसलिए उनका रिश्ता प्यार का है जिसमें एक दूसरे को मुटाया खाया भी जाता है। जो हुआ नहीं तो होगा।

निरे बीते लमहे और किस्से यहाँ नहीं लाने चूँकि उनकी अब क्या दरकार? हो चुके वे और सब कुछ सारे समय याद नहीं किया जाता। जैसे जब बहन की जवानी शुरू शुरू की थी और माँ की अभी ख़त्म नहीं हुई थी और घर के अन्दर मर्यादा, परम्परा, संस्कृति, सुरक्षा की मार चौचंद मची रहती और माँ सब की साँसें सँभालने में खुद निसंसने लगतीं।

मज़ा ये कि इसी सँभाल निकाल में वो अनहोनी को राह बनातीं।

जैसे अमरूद के बाग की तरफ़ खुलती खिड़की को। उसे माँ ने बेटी के आने जाने का छुपा रास्ता बना लिया। अन्दर 'नहीं बिलकुल नहीं जाएगी' का हल्ला, इधर खिड़की लाँघ कर बेटी चिड़िया की तरह फुर्र। बस माँ को पता। बाकियों को जब तक भान पड़ी कि वो कमरे में नहीं है, तब तक वो रेलगाड़ी में छुकछुक छुकछुक सैर मंडली के संग गलाफाड़ अन्ताक्षरी में मग्न। पहाड़ चढ़ेगी, सागर में गोते मारेगी, कि सितारे तोड़ लायेगी या तिनकों पर लटक जाएगी, टूटेगी फूटेगी, माँ फिर भी आश्वस्त, और जब ये तारे तिनके सखा-सखी-प्रेमी-आकार-विकार में ढलेंगे तब भी खिड़की खुल के कूद लगवायेगी।

खिड़की इतनी कारगर हुई कि माँ को भी आ गया पैर उठाकर, तन घुमाकर, उस से पार हो जाना। खामोश अँधेरे में वो निकलतीं, शकरपारे, मठरी, बाटी चोखा, पोटलियों में बाँध, और बाउंड्री पर घनी करोंदे की झाड़ियों में छिपी छिपी, घर से टुरियायी बेटी से मिलतीं। बच्चियों सी खिलखिल करती।

तो उस दिन का ज़िक्र भी कर दें जब किसी सहेली की शादी के लिए घर निकाली या घर-भागी बेटी के लिए माँ ने अपनी धानी हरी बनारसी साड़ी झाड़ पार पकड़ाई और लगभग काँटों में छिद कर बेटी का नाप लिया कि साड़ी के साथ के ब्लाउज़ को अन्दर दबाव देकर उसके पहनने के लिए सही कर दें। इन मौकों का वो छिपना, डरना, और दोनों औरतों का बतियाना और इधर उधर चौंक कर देख के हँस देना और इस सदी का निषिद्ध रोमांस उन्हीं का हो जाना, ऐसा कि आँखें भी भीग आतीं।

पर उन वक्तों की बातें इस गाथा को न भटकायें।

इस वक्त का मंज़र ये कि इन दिनों अकेली रहती बेटी आती है, अकेली पड़ी माँ को उठाने और अभी कोई खिड़की नहीं खुली है। सर्दियाँ हैं।

बेटी।

बेटियाँ हवा से बनती हैं। निस्पंद पलों में वे दिखाई नहीं पड़तीं और बेहद बारीक़ एहसास कर पाने वाले ही उनकी भनक पाते हैं। पर थमा समां न हो और वे हिल रही हों... हाय कैसे तो वे हिलती हैं... तो आकाश नीचे को झुकने लगता है, इतना कि हाथ उठा के छू लो। खखानी धरती फटती है और बुलबुले उठते हैं और फिर कलकलाते हुए झरने निकल आते हैं। पहाड़ियाँ उझकती हैं। चारों ओर प्रकृति का अनोखा विस्तार खुलता है और अचानक आप समझ लेते हैं कि दूरी और गहराई, दोनों की आपकी समझ गड़बड़ा गयी है। जिसकी साँस बालों पे आ गिरी नर्म पंखुड़ी थी, समुन्दर में दहाड़ती चट्टान सी मारती है। जिसे दूर आप हिम पर्वत समझ रहे हैं, वो तो एकदम पास उसकी उँगली है जो नहीं पिघलेगी। आपकी अक़्ल का चिराग गुल हो जाता है और अन्धाकुप्प जो छाता है छाया ही रहता है। जैसे रात हो जाए तो रात ही चलती जाए। या दिन है तो दिन ही दिन अविरत। और हवा चलती है, जैसे रूह आह भरती, सारे में लहराती, करवट बदलती तो चुड़ैल हो जाती, इस पर, उस पर टूटती गिरती।

बेटी। प्यार कर सकते हो। डर सकते हो। साफ़ दिखी अभी। एकदम गायब अब।

सब औरतें, मत भूलना, बेटियाँ हैं।

एक बार एक बचपन था। हर दिशा में सफ़ेद और पारदर्शी उजाला था और आसमान से ज़मीन अलग नज़र नहीं आती थी। तुम अपनी नन्ही बाँहें उठाये उसी आकाश में लहरा रही थीं और अपने पहले कदम भी रख रही थीं।

अंडा फूटा... हिल... भाग...

फिर हवा चलने लगी और बादल डोलने लगे। माहौल में चांदी का चूरा बरसने लगा। दूर खड़े एक पहाड़ को बादल ने ढक लिया कि लगा कोई विशाल हाथी सुस्ताने बैठ गया है। खिड़की पे झाँकता पेड़ हवा से चकपकाया और उसके सारे के सारे पत्ते बारिश की तरह गिरने लगे।

बेटी का निचला होंठ रुलाई से काँपा और माँ ने उसे गोद में उठा लिया। फिर जो हुआ वो ये कि माँ वो होंठ बन गयी जो काँप रहा था। बेटी का सिर काँधे पर रख उसे बहलाने गुनगुनाने लगी कि वो जो बड़ा सा हाथी है, बैठा है इंतज़ार में कि बेटी आये, उसकी सवारी करे, और दोनों झूम झूम करें, और पत्ते गपशप कर रहे हैं और सुनो सुनो कहानियाँ सुना रहे हैं।

बेटी मुस्करा पड़ी। ये हुआ तो माँ वो मुस्कान बन गयी।

बेटी की रुलाई धीरे धीरे स्थिर साँसों में बदल गयी और माँ सिसकी से साँस हो गयी।

बेटी सो गयी और माँ सलोने सपनों से उसे ओढ़ाती रही।

उस पल एक मोहब्बत देहाकार हुई। माँ की साँस खोती चली, बेटी की साँस किलकारने लगी और हाथी की पीठ उल्लास से पुकारने लगी।

क्योंकि...

पत्तों ने कहा मोहब्बत सेहत के लिए माफ़िक नहीं। या तो वो नि:स्वार्थ है और तुम अपनी साँस दूसरे को दे दोगी या वो खुद्पसन्द है और तुम दूसरे की साँस हड़प लोगी।

इक बार मुक़ाबला प्यार हुआ
एक सुक्खड़ एक व्यभिचार हुआ
एक ओट हुआ एक डटा हुआ
ये भेड़ बना वो चरवाहा
ये पाँव रहा वो सर-निकला
एक नदीदा एक मरभुक्खा
एक हवामार एक पामाल
इक खिला खिला इक मिटा मिटा

ये ही रिवायत थी इस गाथा के वक्त में और वो कमरा था जहाँ उस दरवाज़े को पार करके पहुँचा जाता और वहाँ वो माँ जो मरी सी थी जग की ओर पीठ किये।

वो थक गयी थी, उन के लिए उनकी साँसें सहेजते, उन के एहसासों को महसूसते, उनकी चाहतें, उनकी नफ़रतें समेटते। वो उन सब से थक चुकी थी और कंपकंपा के दीवार में घुसना चाहती मानो किसी झिरी में कीड़ी सी घुस जाए तो क्या उसकी खुद की साँस चल पड़ेगी?

प्यार की बात कभी भी की जा सकती है क्योंकि प्यार प्यारा होता है। प्राकृतिक होता है। झंझावात होता है। जब प्यार अपार होता है तो क़ायनात में मच जाती है। उसका सत् चरम पर आ जाता है और उनकी आपस में एक दूसरे को पछाड़ने की होड़ छिड़ जाती है। फड़क और भड़क का फ़र्क़ मिट जाता है और न कोई किसी के रोके रुकता है, न किसी सीमा पर अचकचाता है। इतनी चमक हर तरफ़ चमकती है कि दुनिया जादू लगती है। इतनी चमक कि हवा में हवा के अक्स नाचते हैं। शीशमहल। मृगजल।

अब कौन है, कौन प्रतिबिम्ब है?

इतना खुबसूरत।

इतना शक्तिशाली।

कि भगवान वहाँ से हट जाता है।

माँ बाप और बच्चे का प्यार ऐसा हो सकता है कि भगवान ओट हो ले और प्यार धूमधड़ाके से साँसों की इधर से उधर दौड़ लगवाए, एक बिन साँस पिचक पिचक जाए, दूजा दोनों की साँसों से फैल फूल जाए। एक गायब गायब, दूसरा ऐसा भरा फूला कि लगे कि फूटा तो कुचैला और बदबूदार गूदा न बह पड़े।

जैसे, एक थी माँ। माँओं जैसी। जिसने बेटे से कहा मेरे तुम भगवान और बेटे ने उससे कहा तुम सबका दु:ख हरने वाली महासतायी देवी। दोनों खुद को दूसरे पर लपेटने लगे और एक बना अजगर, एक महबूब। एक की साँसें फूलीं, एक की घुटी। एक मुटाया, एक छोटाया। इतना प्यार कि दोनों का जीवन एक हो चला।

आम राय बनी कि माँ के लिए सो ठीक था क्योंकि उसके बचे हुए जीवन में रंद रोशनदान खुल गए। जो मिला, बोनस बरस। बेटे ने उसे पुनर्जन्म दे दिया। पर आगे राय यह थी कि बेटे की तो नहीं बनी न। उसके जीवन का ये अलग चरण था, शुरू का अभी, तो उसका वक्त और युवक तो माँ को लग गया न। उसी की पीठ दोहरी हो गयी माँ को कन्धों पर उठा उठा उड़ान कराने में, और ये अफ़सोस की बात हुई।

बेटी भी थी एक। और बेटियों जैसी। बाप की मोहब्बत में यों पगलायी कि कोई मर्द उनका पासंग न उतरता और बाप भी न तैयार कि उनकी शहज़ादी को किसी कमतर से बाँध दें। तो बाप ही बन गया हर मर्ज़ का इलाज और अँगूठी का पुखराज और पूरी नहीं तो आधी से कुछ ज़्यादा ही उस बच्ची की जवानी और ज़िन्दगी हवा में चकचूर हुए।

बस। लौटें।

हालाँकि गाथा की कोई मुख्यधारा ज़रूरी नहीं। उसे छूट है कि भागे, बहे, नदी, झील, नए नए सोते में। पर फ़िलहाल की अड़ है कि भटकेंगे नहीं, तो नहीं तो भटकें फ़िलहाल। लौटें उन्हीं दो औरतों के देश में जहाँ ये किस्सा आरम्भ किया है।

ज़िन्दगी का क्या? छोटे से दायरे में चलना जानती है, जैसे एक पगडण्डी पे जो शुरू हुई नहीं कि ख़तम। पर विशाल विकराल भी जानती है, जैसे पगडण्डी से खुली सड़क पे निकल आये और बड़ी सड़क से जा मिले जो महामार्ग हो, ग्रैंड ट्रंक रोड जैसा ऐतिहासिक हाईवे हो। इनका पगडण्डी से दूर सुदूर जुड़ जाना कहानी में नए मोड़ लाता है, ट्रक ट्रैक्टरों की दहाड़ से पगडण्डी थर्रा जाती है, या सिल्क रूट से चिरकाल से उतारे रेशमी एहसास उसको नरमी से लपेट लेते हैं। पगडण्डी चमत्कृत होती है कि कहाँ से आ रही होंगी ये सड़कें, किन

वक्तों से, काफ़िलों से, सरहदों से। और कहाँ से कहाँ आ गयी मैं, कितने अलग अलग जीवन पार करके। क्या अभी भी वही पगडण्डी हूँ, या उसके भी पहले की ज़रा सी रविश?

पर ये सवाल कौन पूछेगा, कब, अभी किसे ख़बर?

अभी कमरा है, मौन है और बेटी माँ के पास आ रही है।

वो बड़े की बहन है और उसे देख वे चिल्ला पड़े हैं।

चिल्लाना परम्परा है। बड़े बेटों का चिल्लाने का पुराना रिवाज़ है। मालिकाना ढंग से। रिवाज़ मुलम्मा है। कोई दिल में खूंखार हो न हो, लिबास उसी का ओढ़ना पड़ता है। कहा जाता है कि बड़े के पिता दिल से चिल्लाते थे जबकि बड़े का दिल ज़्यादा खौलन नहीं मारता। पर ज़बान दोनों की एक सी है। रिटायरमेंट तक पिता चिल्लाते थे, फिर चिल्लाना बेटे को सौंप कुछ शान्त हो चले। बड़े ने और ज़ोरों से चिल्लाने की शान ओढ़ी और चमकने दमकने लगे। अब कुछेक महीनों में अवकाशप्राप्ति होगी, तब चिल्लाना सिड की झोली में गिरेगा, पर अभी तो बड़े में जोश मारता है।

लेकिन बड़े बहन पर नहीं चिल्लाये थे। उससे तो वे बोलते ही नहीं थे। वे अपना पजामा गीला होने पर चिल्लाये थे। उन्होंने गीला नहीं किया था, गुलदाउदी उछल पड़े थे। कामवाली के हाथों में मटर पनीर का डोंगा देखकर। बड़े ने देखा, गुलदाउदी ने नहीं। नहीं वो नहीं, उन्होंने सर झटका ही था, कि पाइप हिला जिससे वो पानी दे रहे थे, गुलदाउदी उछला और पानी की धार पजामे पर आ गयी। इस पर वे कूदे और डबल डपट के चिल्लाये नहीं वो नहीं। और पाइप से पानी बहता छोड़ चिल्लाते हुए अन्दर आ गए।

मारना है, कब की बनी सब्ज़ी खिलाकर?

मेमसाहब ने कहा, कामवाली अन्यमनस्क बोली। मियाँ बीवी की इन असल या नूराकुश्तियों से ऊब कर। दीदी आई हैं।

ताज़ी सब्ज़ी बनाओ। सड़ा बासी खिलाओगी? इसे तो भिखमंगे को भी मत देना, मर जाएगा और तुम पर केस हो जाएगा।

आप भी। मेमसाहब उर्फ़ पत्नी उर्फ़ भाभी उर्फ़ बहू उर्फ़ मॉम तमक के सामने आयीं। शाम भैया आ रहा है, उसके लिए तो कल रात कह रहे थे इतनी बची है, डिनर पे सर्व कर देना। अब डिनर से घंटों पहले ही ज़हर हो गयी? ए ॅन्ड, वो अंग्रेज़ी में टिन्नाईं, नौकरों के सामने मेरी बात काटना बंद करें, वो इसीलिए मेरी अनसुनी करते हैं और आपकी भी क्या इज़्ज़त रह जाएगी।

फेंको इसे। बड़े ने आँखें दिखायीं, कामवाली को, जो फ़्रिज के पास डोंगा लिए बुत बनी खड़ी थी।

मैंने चख ली है। फर्स्ट क्लास है। कोई दोस्त भी लायी हैं, दो जन हैं। बाकी खाने के साथ रख रही हूँ कि कम न पड़े। सबके आगे शान्त बनाने या ननद को सुनाने पत्नी ने पति को तरेरा।

चाहे कम चाहे ज़्यादा, जो ताज़ा बना है दो, अगर और कुछ नहीं बना सकती, बड़े ने कामवाली को झिड़का। हटाओ इसे।

रख दो वापस, बहू तड़तड़ायी, मैं खाऊँगी।

रख दो इनके लिए। और कोई नहीं खायेगा।

मर गयी तो कहना साहब ने मार दिया।

कब ये चिल्लाना टिन्नाना चुहल है, कब बचकाना दंगल, कब हँसी, कब चिढ़ और एक दूसरे को मात करने का शगल, कामवाली को अटकल लगानी पड़ती।

बेटी ने तो सुना ही, पीठ के कान भी कौन बंद रहे होंगे? बेटी की दोस्त अलबत्ता घर के रंग से वाक़िफ़ हो न हो। और गुलदाउदी का सुनना न सुनना बराबर। उनका मौसम था, उन्हें बात बात पर उछलने में मज़ा आ रहा था, उछलते रहे। इसकी भी फ़िक्र नहीं कि बड़े रिटायर होंगे, ये बगिया छोड़ जाएँगे, अगले का रवैय्या क्या होगा? आज वालों की तरह कहीं लॉन क्यारियों को सीमेंट से पाट दें कि धूल और उसके जीवों से बचें? या फूलों की एवज में गेंहू भुट्टा कुछ बो दें कि महँगाई में बचत करें? पर गुलदाउदी आगे की नहीं सोच रहे थे, उछलने से बाज़ नहीं आना उन्हें, भीतर स्प्रिंग लगा हो ऐसे मटक जाते।

छोटे शहरों में अफ़सरों की बड़ी बड़ी कोठियों से कई गुना बड़े उनके लॉन, फल फूल के बाग, खेत होते हैं। कभी उन में स्विमिंग पूल और ताल तलैया और फ़ौवारे ओसारे भी होते हैं। एक बार तो विक्टोरिया के ज़माने की विक्टोरिया का संगमरमरी — काली पीली तो न हो सकती थी — ऊँचा पुतला भी बाग में स्वागत करता। बात बात पे देशद्रोही करार किये जाने के डर के न होते भूला खड़ा, पर अमान्य नहीं।

बड़े शहरों में घर छोटे होने लगे। लेकिन वहाँ भी, जहाँ इमारत अब पेड़ थे और सूखे ढेले फूल, अफ़सरों के घर मरुभूमि में नखलिस्तान थे।

गुलदाउदी ही गुलदाउदी।

बड़े के घर में घुसते ही लम्बे गलियारे के शीशे पार लॉन की किनारियाँ बनाते हर रंग हर नाप में गुलदाउदी।

बहन ने देखा भाई पाइप थामे फूलों में पानी दे रहे हैं। सूरज चमक रहा था और पीछे के पेड़ के पार एक सुनहरी धार चमक रही थी, जैसे परमात्मा ने धूप से हाथ मले हों और उनमें से सूरज कुछ टपक टपक पड़ा हो।

बहन की पीठ ने पनीर कांड सुना देखा। माँ की पीठ की माँ जाने।

कामवाली से भाई ने कहा, बहन की माँ के कमरे में जाती पीठ को देखते हुए, कि अम्मा से कहो सूरज चमक रहा है और गुलदाउदी फूले हैं, लॉन में कुर्सी लगा दो, यहीं आकर बैठें सब।

कह कर भाई गुलदाउदी के भविष्य की सोचने लगे, यानी बाकियों की तरह इस बड़े शहर में, रिटायर होकर फ़्लैट में जाने की बात। कितनों को गमलों में करके ले जाएँ? उन ज़रा सी बैल्कनियों में गमले भर दें तो कपड़े और खुद और बाकी अनाप-शनाप के लिए जगह?

कुर्सियाँ तो लग गयीं पर बड़े अकेले वहाँ बैठे। अपने मरहूम पिताजी की तरह जो जाड़ों में यहाँ धूप सेंकते थे, आधा रुख गुलदाउदी की तरफ़, बाकी शीशे के दरवाज़े से नज़र आते घर के कमरों और गलियारे के अन्त पे खुले बड़े दरवाज़े की तरफ़। बाप बेटे दोनों को

अभ्यास था कि बायीं आँख की पुतली बायें कोने में सरकाएँ और दाहिनी की दायें दायें दायें, ताकि दुनिया के दोनों अद्धे ज़द में आ जाएँ और घटता सब पता चल जाए। शायद अलग धातु के स्नायु होंगे जो आँख ऐसे देख पाती, दोनों ओर के दृश्य साधे। या नहीं साध पाती होगी और दृश्य लुढ़क पुढ़क होते हों?

बहन की आवाज़ आ रही थी।

गुलदाउदी ही गुलदाउदी।

माँ की आयी 'नहीं'

हर रंग के हर नाप के। फुटबॉल, मकड़ा, चपटे, कंचे, फुदकते, अम्मा।

मानती कहाँ है?

बैंगनी, सफ़ेद, पीले, गुलाबी, हरे भी।

लॉन के ऊपर आसमान को लहलह करते।

मैं ले चलूँगी ना, छड़ी ले लो ना।

नहीं। अरे। चक्कर। छड़ी। नइ। धूप। नइ। फूल। न न नयी...

बड़े उठ आये। माँ के कमरे में, बहन की बगल में।

दोनों ने आँख न-मिली सी मिलाई और कुछ न-मुस्कराए से मुस्कराए। बातचीत अरसे से बंद है। हूंस गयी पर आदत रह गयी। अब आता नहीं सामने सामने भाई बहन जैसी अर्रबर्र करना।

उठीं? उन्होंने माँ की पीठ को ललकारा। कब से आई है, कुछ खिलवाइये, बनवाइए, नहीं तो सड़ा गला कुछ पहुँच जाएगा किचन से।

अन्दर पैर रखो तो दो पल कमरे में अँधेरा छा जाता। पीछे की धूप याद बनकर गुम हो जाती। फिर हल्का सा ताप का रंग बंद पलकों पर हिलकोरता। फिर धीरे धीरे आँखों को सूझने लगता।

जो न चाहती पीठ पर भी उग आतीं। देखतीं अपनी तरफ़ बढ़ती बेटी की उँगलियाँ। ज़िद भरी कि उठाएंगे, अहंकार में कि हमें खूब आता है। पीठ को छूतीं, मलतीं, ऐसे मल्हारतीं जैसे अपनी ज़िद पीठ से रगों में उतार देने और आखिर पीठ झुक ही जाएगी, कैसे तो नहीं।

बेटी को अपने हाथों की महारथ पे भरोसा है। कि वो छूते हैं तो सारे हठ चूर जाते हैं।

मगर पीठ झर्राटा मारकर सिकुड़ जाती है। नहीं नहीं कुनमुनाती है।

ये तो बेटी का शब्द है। पैदाइशी उसी का हक। बात बात पर 'नहीं' करना और सबका उसे चुमकारना बहलाना। मान जाओ बेटी, ये लेलो लल्ली, बिटिया रानी बड़ी सयानी, चंदा

मामा दूर के पुए पकावें पूर के, आप खाएँ थाली में, नन्ही को दें प्याली में, मेरी गुड़िया मेरी पुड़िया।

बड़े, जो उससे दस साल आगे थे, कभी खूब शै देते उसे। नहीं, कह दो नहीं, सर हिला दो नहीं, बस, कह रही है न नहीं!

बच्ची का 'नहीं' सबको बड़ा सुहाता। बचपन में वो 'नहीं' की बनी थी। यहाँ तक कि उससे जो कराना हो उसका उलट कह दो तो झट 'नहीं' कहके वो कर देगी। चावल खा लो पराठा नहीं। नहीं, पराठा खाऊँगी। चाय ले लो, दूध नहीं। नहीं दूध दूध। नीला फेंको लाल नहीं। लाल लाल नीला नहीं नहीं। जगी हो न, सोना मतहि, आँखें खोलो। नहींऽऽऽऽऽऽ, आँखें बंद करूँगी।

नहीं नहीं, हटा दो यहाँ से, कभी अम्मा ने कहा जब बावर्ची हरी मिर्च धनिया पुदीने की चटनी लेकर आया, मुँह चरपरायेगा। मगर बेटी ने लाडला शब्द 'नहीं' सुन लिया और क्या चीखमदहाड़ मचायी — नहीं, दो। नहीं, चाहिए।

सबका उसके संग उसके 'नहीं' पर खुश खुश हँसना तो कहीं बिला गया जब बचपन गया, पर उसका 'नहीं' उसके संग बालिग हुआ। नहीं मैं सिलाई नहीं, नहीं मैं दुपट्टा नहीं, नहीं मैं नज़रबंद नहीं, नहीं मैं आप नहीं। इतना नहीं नहीं चला कि हाँ कहना हो तो भी होंठ पहले कहते 'नहीं'। चाय पी लो। नहीं, चाय पीऊँगी। बहुत ठंड है। नहीं, बहुत ठंड है।

'नहीं' से राह खुलती है। 'नहीं' से आज़ादी बनती है। 'नहीं' से मज़ा आता है। 'नहीं' अहमकाना है। अहमकाना सूफ़ियाना है।

लेकिन बड़े को उसके बालिग होने पे दूसरी प्रथा निभानी थी। छोटी तो ठीक है, मत सुनो किसी की, पर बड़ी को बताना पड़ता है क्या करो, क्या न करो। सवाल ही नहीं पैदा होता, बहन से ऐतराज़ जताना पड़ता, माता पिता के स्वर को अपने स्वर में ढाल कर। जब ऐतराजों की भीड़ में बहन के प्रेमियों की भीड़ आ गयी तो बड़े आजिज़ आ गए। आज एक गंजू पटेल, कल एक चश्मुद्दीन, परसों एक दढ़ियल, और जब तीनों खूबियाँ एक में आ समायीं और घर की बेटी, यानी बड़े की बहन शहर के चबाव-चर्चों की नायिका हुई तब तो बड़े के कन्धों पर सारे पूर्वजों का बोझ आ गया और दायित्व इस क़दर बढ़ गया कि संगीनतम उपायों की बारी आई। उससे पूरा घर बात करना बंद कर दे, उसके लिए नारियल बर्फी बनाना बंद कर दो, उसके संग कोई टीवी नहीं देखेगा, उससे कोई आँख न मिलाये और भूल से न मुस्कराए। तभी उसे अपनी गलतियों का एहसास होगा और ये आफ़तनसीबी बदलेगी।

पर ये चलन नहीं था कि कहें निकल जाए, घर का दरवाज़ा उसके लिए बंद हो जाए। तो बहन का खुद निकल जाना और कहीं और ठौर जमाना उन्हें एक आँख न भाया। जब आप यहाँ हैं, माँ पे बरसे, तो और कहीं क्यों ठहरती है?

मगर 'नहीं' कहने वाली बेटियों का अलग पैर, जो बाद में दरवाज़े पे आकर ठिठकने लग गया, और पहले खुद बाहर हो लिया।

दरवाज़े और गलियारे को फिनायल से धुलवाना पड़ा, वो दूसरा मसला था। वहाँ दढ़ियल-गंजू-चश्मुद्दीन, बहन का न-जाने-क्या, भारी असबाब पहुँचाने या लेने वहाँ गन्दगी

की तरह फिरा जो। वो सफ़ाई का मामला, झाड़ू से भूत-प्रेत को पीटने का।

झाड़ू फिरी तो क्या हुआ, वो भी किस्सा हो सकता है, पर अभी बात दूसरी परतों की तह में खोयी जानो। अभी बड़े माँ के कमरे में, बहन के ज़रा पीछे, ज़रा बगल, खड़े हैं। दोनों अलग हैं पर साथ पीठ को देखते हुए। गंजू उर्फ़ दाढ़ी उर्फ़ चश्मा कहानी के बाहर है और है भाई में बहन के अकेले जीवन को लेकर उसके लिए दया। घर, पैसा, काम से दुरुस्त होगी पर है तो अकेली पड़ी।

'नहीं नहीं' इधर नहीं, उधर से कैसे आने लगा, कुछ असमंजस तो हुआ होगा? बड़े को नहीं, बहन को। माँ से, न कि मुझसे? कुछ पुरानी राख हिली होगी कि ये शब्द जो कभी बहुत कारगर था मेरे जीवन में, अब तो खास बचा नहीं क्योंकि कहते भी तो किसी से, किसी पे हैं, और जब अपनी सरदार मैं खुद अब, पर है तो मेरा ही, तो अम्मा कहाँ से इसे पा गयीं?

पर कौन ज़रूरी है कि बहन ने ये सोचा? बस ये हुआ कि पीठ से 'नहीं' आ रहा था।

लचक मचक के पीठ दीवार सी सपाट हो जाती है, जैसे अब दीवार हो गयी। पर ज़िन्दा पीठ दीवार हो सकती है, नहीं न? चाह जो कर ले।

चाह ये कि न सुनूँ, न देखूँ, मरती बुढ़िया को जिलाने के उनके स्वर।

पुरानी आदत मगर दारू बीड़ी की लत। पीठ छलनी हो चुकी है, सबकी रुसवाई, गुस्सवाई, सुनवाई उसमें सरन्ध्र गोद चुके है, कहाँ कहाँ ठेपी लगाये? अब तो सुनने देखने से पहले ही सूँघ लेती है। उस पर पड़ती जानी पहचानी खटखट पटपट।

फुटबॉल के साइज़ का, बैंगनी तो रंग, बेटी उत्साह घोलने में लगी है। उसे गुमान है कि अनजानी मुश्किल राहें वो खोल सकती है। तभी घर बाहर घर कर पाई।

माली, माता जी से पूछो गुलदस्ता कहाँ कहाँ लगायें? बहूरानी पीछे क्यों रहें?

बेसन का नहीं। पेट में चिपकता है। मूंग दाल का, पूछो अम्मा से, कैसे बनायें? बेटे जी की चाल।

सबके सब दंदफंद में लगे, कौन बड़ा हमदर्द।

तूतड़ाक, ताने तिशने भी छेदों से घुस जाते हैं। आउट...मुझे देर हो रही है...। देखिये फ़ोन फिर ठीक से नहीं रखा, सरकारी मुफ़्तखोरी की आदत अब तो बंद करो...शाम फत्तू आएँगे, ताज़ी खीर बनाना, महीने भर पुरानी काजू बर्फी पेश मत कर देना...धोबी ने इतनी कीमती कमीज़ जला दी, अब तुम्हारी ससुराल से नयी आएगी, अमेरिकन कमीज़...ड्राइवर को बोलो इस बीच पेट्रोल भरा ले और पर्ची तुम्हें नहीं मुझे दे...पानी गिरा दिया, चाहती हो अम्मा फिसल जाएँ...उठें तब तो फिसलेंगी...इसीलिए उठाना चाहती हो...अच्छा ये कहा मैंने...मज़ाक़ करो तो मज़ाक़ जैसा...मज़ाक़ कहाँ, कोई उठना चाहे भी तो न उठेगा कि कोई

गिराने की तैयारी में, कोई ज़हर खिलाने की तैयारी में...क्या साहब आप भी...ओके एनफ, कुछ भी मुँह से निकालते हो...अभी अम्मा से कहती हूँ...ब्रिलियंट, तब तो उछल के उठ जाएँगी...वो उठना चाहती ही नहीं, जानती हैं सब परेशान हैं पर...

हुंह हैं चौप कांय कांय काट कपट फिस्स्स।

पीठ पीठ करे है। अब और पीठ कैसे करे? दीवार में घुसती है। अब और उसमें खुद को कैसे चुनवा दे?

दीवार पर धब्बा है। हवा हिलाती है या खुद। कीड़ा शायद। हवा है या साँस।

काश कि मैं कीड़ा होती।

दीवार की छुअन ठंडी है। नन्हा सा जीव उस पर सरकता है। एक छोटी सी साँस। कहीं दरार बना ले, दीवार में घुस ले। नामालूम सी हरकत से नरम मिट्टी दरकती है। नामालूम से मेरे पैरों ने सेंध लगा दी है।

घड़े सुराही की सोंधी महक लहरती है, शीतल मिट्टी में शीतल दफ़न।

ऐसी पड़ी रहे। नि:शब्द, निस्संग, साँस सी, रुकी हुई, इतनी सी बस, एक कतरा हवा पर फेन सा लटका। कीड़ा फूँक मारे तो वो उड़ जाए और फिर मिट्टी का आगोश।

कब्रगाह हो ये मेरी।

हल्की सी ठंडक कलेजे में उतरती है, जो पुरसुकून है, न कि बाहर की ठंडक सी ठिठुराने वाली। दीवार का सुकून, न कि पीठ पीछे की माथापच्ची, पीठ पीछे की धौंकनी, जिसमें दुनिया भर की साँसें मेरी साँस को कैसे तो पिचका देती हैं।

माँ आँख बंद कर लेती है, चुप साध लेती है, साँस रोक लेती है, किसी को पता न लगे, एक साँस बाकी रह गयी है, नन्हे से जीव बराबर, घुस ले दीवार में, धीरे धीरे आगे फिसल ले, कुछ नहीं राह का अटकाव बने कि लय बिगड़े, चाल टिढ़भिंगी हो जाए, दब जाए, वो किनारे गिर जाए।

दीवार की मिट्टी पोली हो तो?

दीवार की मिट्टी पोली है। दिल से निकला जीव जो खुद अपने को रचता चले, मिट्टी में राह बनाते। अपनी श्वास रचे। अपने रचाव से बने रस्तों में बहे। अपनी रगों में उतरे, अपनी फूँक, अपने बुलबुलों में।

दीवार में सरकती माँ क्या अपने भीतर सेंध लगा रही है? अपना खाका पलट कर उघड़ी धमनियों में फिसल रही है?

अँधेरे में नन्हा सा जीव, एक श्वास का छोर। उसके सरकने से उड़ता मिट्टी का कण। उसकी बंद आँखों पर हल्की सी लौ पड़ती है। हवा से हवा में।

रेत में समाधि हिली है।

गाथा में बेवजह का आना लाज़मी है पर बेवजूद वो भी नहीं। धब्बा आ गया, जो कीड़ा हो सकता है, रोंओं के साये जैसे उसके पैर भी, जिनसे दीवार में सुरंग खुदती है। सुरंग से उसकी आँख की तपिश पतली सी चमक बनी बहती है और बहने का मतलब है भाप का हल्के से उठना, जिस पर लटक सकती है खोयी साँस, लेशमात्र।

इस कीड़े से धब्बे को देख लेने के लिए बड़ी देर चुपचाप पड़े रहना पड़ता है, दीवार से सटकर, लिहाफ़ में गठरी बनकर, दुनिया की तरफ़ पीठ फेरकर।

पीठ पीछे सबकी साँसें हैं। फ़िक्र और हमदर्दी का अंबोह है।

खिड़की खोल दो, अम्मा को घुटन लगती होगी।

पर्दा खींचो, अँधेरा उसे बुरा लगता होगा।

दीवार की तरफ़ ये क्या पोज़ बना लिया है?

आँखें बंद लेटे रहना ये कौन सा जागना है?

बाहर बच्चे खेल रहे हैं।

टीवी पर महाभारत आ रहा है।

पत्रिका लाओ, संगीत बजाओ, पालक और प्याज़ की पकौड़ी बनाओ, पूछो क्या पूछो कौन पूछो कैसे। याद में, संवाद में, वो जो जीवन जी चुकी है, वही फिर उसके आगे परोसा जाता है। फिर दम निकले। फिर जी कचके।

जो याद दिलाया जा रहा है कि करती थी, उसकी सोच कर वो फिर उसी क्रिया में ढल जा रही है, मगर कुछ ऐसे कि जो कर रही है वो अपने पे ही कर

रही है। अपनी ही भजिया बना रही है। भीगी, पिसी, कद्दूकस में कसी, टुकड़ों में कटी, खौलते तेल में पड़ी, उई उई उलटी पलटी, पेटों में जाकर कचूमर बनी।

फेंको, फर्र फर्र स्वर। कीड़े का स्वर कोई स्वर है जो कान पर रेंग जाए? फर्रफर्र, भीतर कबाड़ है। खुली खिड़की से उछाल दो। चीला, फुटबॉल, पानी, बटन, चाट मसाला, पावदान, मंजन, जीरा, कलौंजी। चाभी, पोस्ता, सुई, खांसी, बलगम, नेटा, पित्त, साँसें, फँसावे। फेंक दो।

क्या ऐसा हो सकता है कि दीवार आगे बढ़ती आये और पीठ पीछे तक, बिस्तर पर पड़ी औरत को घेर ले, ताकि उस पर कोई दस्तक न पड़े?

सिवाय उस हल्की फर्र फर्र के।

OceanofPDF.com

ये वही बात हुई कि आप कीड़े को टापते रहे और हाथी चुग गया खेत। भले ही आप कहें कि ये भला क्या बात हुई और कौन सा हाथी कौन सा खेत चुग सकता है? नामावली में अटकना है तो सही, कि न कोई हाथी न कोई खेत। यहाँ बस घर परिवार और उसके सदस्य, खुले दरवाज़े से आते जाते। चुगते नहीं, झूराझूर हमदर्दी उगलते।

दया कर पाना घर में मक़सद, भाईचारे, प्रेम और सुख-शान्ति का ज़रिया है। किसी पे बेचारा-बेचारी नज़र फहरा सकें तो आप उसके दु:खहर्ता बन गए और भगवान सरीखे भी और अपना अक्स भला भला लगने लगा। तभी विपदा आपदा में खानदान साथ देता है, कुछ भगवन, बाकी निर्धन जो होते हैं।

जैसे बहन। बेचारी बेचारी। डाँटना फटकारना दुराना सब ज़रूरी था उसे वापस राह पर लाने को। पर थी वो बेचारी। कितनी कितनी। बेवकूफ लड़की, नाज़ों से पली, लाडली लल्ली की ज़िद। अपने ही नुकसान के प्रति नादान। अनजान। और फ़ायदा उठाने वाले, भुलताव में डालने वाले नालायक जन, जिन्हें वो प्रेमीगण समझती। रह जाती बार बार अकेली। उसके ऊँचे घराने, अफ़सर भाई बाप को पटा नहीं पाए तो बोरिया बिस्तर लेकर चल दिए। अकेली, गरीब, बेचारी उसे छोड़कर। कहीं टिक कर नौकरी भी नहीं मिली। आज यहाँ लिख दिया, कल वहाँ बोल आयी। सेक्रेटेरिएट लाइब्रेरी में कुछ खरीद उसकी किसी-के-पल्ले-न-पड़ने-वाली इक्का दुक्का किताबों की, भाई ने करा दी। बाकी, हारी मारी फिर रही है, कपड़े लत्ते भी गंवारों जमादारिनों से, कभी खुरदुरा, जैसे टाट का कुरता, अब फटा तब फटा पजामा, कभी राजस्थान गुजरात के गाँव से पचीस तीस रुपल्ले में मिले बकवास घाघरे। शक्ल सूरत से उसकी मुफ़लिसी टपके और देखकर परिवार के आँसू।

बल्कि ख्याल घुमड़ आता है कि क्या पता झाड़ी पर मेलमिलाप उतनी भी पोशीदा बात न रही हो। कि दया उमड़ी हो कि कुछ खाने पीने ओढ़ने का बंदोबस्त माँ करती है तो करने दो, जब तक बहन यों सड़क पर है। जब वापस आ जाएगी फिर तो ठीक होगा ही, घर है, परिवार है उसका। और है कौन उसका? पता नहीं कोई मिलते बुलाते भी हैं बेचारी को, उन आलतू फालतू लोगों के साथ होती रुसवाई के रहते। क्या गत बना ली अपनी, पड़ी है बहिष्कृत एक तरफ़।

हमदर्दी बाँध न तोड़ दे, बाढ़ न आ जाए।

हमदर्दी हवा नहीं हुई पर विस्मृत ज़रूर हुई जब पत्रिकायें, अख़बार इस बहन और बेटी के फ़ोटो छापने लगे, और टेलीविजन भी साक्षात्कार दिखाने लगे, उसके मशवरों के चर्चे छेड़ते हुए। कि नारी चेतना, लिंगभेद, फ़ीमेल ऑर्गैज़्म, ऊलजलूल, हाय हाय।

हमदर्दी के और गड़बड़ाने के दिन आये जब बेचारी ने अच्छे बड़ों के मोहल्ले में अच्छा बड़ा फ़्लैट खरीद लिया और टीवी, माइक्रोवेव, गाड़ी, भी। पता चला आये रोज़ हवाई अड्डे जा रही है या से आ रही है और देश विदेश घूमती है। कुछ घर में दबी ज़ुबान में छिड़ी कि आजकल के हथकंडे, सही ग़लत, पैसे और नाम कमाने के, नेटवर्किंग आनी चाहिए, और औरत हो, कम उम्र, तो...तो...और तो। छोड़ा जाता, क्योंकि बात पूरी नहीं की जाती कि कहा जा सके कहा ऐसे। अभी भी बड़े ने माँ को उससे ज़्यादा फ़ोन वोन करने को मना किया और आपको जाना तो एकदम नहीं है, रहने की ये शैली वैधता न पा जाए।

पर राष्ट्रपति भवन की दावतों में बहना मिलने लगी तब समझ ही नहीं आ रहा था कि आँखें किसको चुरानी चाहिए और चुरा कौन रहा है। बड़ा अजीब लगता कि जग भर बोले, मय राष्ट्रपति के, पर आप एकला न बोलें।

आया करे कह दीजिये, एक दिन बड़े ने माँ से कह दिया। उसका कोई नहीं है और यहाँ घर का कुछ खा पी पा लेगी। बहू ने अपने कुछ लेख भी दिए कि देखे, इन विषयों पर कम लोग लिखते हैं। और ये भी एंगल था कि उसे अपनापन लगेगा, नहीं तो तिरस्कृत महसूस करती रहेगी।

और अब, जिस पल में अभी हैं, भाई बहन लगभग अगल बगल खड़े होकर सोचने लगे थे, माँ की पीठ देखकर बेचारी, अम्मा। क्या न कर दूँ उसे जिलाने के लिए, उनकी दया ये ऊँची ऊँची उछालें मार रही थी।

ये सभी किरदार हैं। चींटी, हाथी, दया, दरवाज़ा, माँ, छड़ी, गठरी, बड़े, बेटी, रीबॉक जो बहू पहनती थी, और बाकी और, जिनका ज़िक्र तभी होगा जब होगा।

जूता? जूता माने क्या? जूता माने रीबॉक।

कहते हैं सबसे पहले रीबॉक एक ज़हरीला सांप था जो अमरीका नाम के महाद्वीप के दक्षिणी देशों में लहर-बहर फिरता था। फिर उसकी कायापलट हो गयी जब किसी ने उसे खेलकूद के लिए पाँव पर लपेट लिया और उसकी सारी शेखी उससे निकल उसको लपेटने वाले में जा गयी। अब वह अपने नए रंगरूप में ही जाना जाता है और पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी नयी किस्म आगे बढ़ाता है। जूता, न कि सांप। जूते का प्रकार। एक के तलवों में काँटे तो दूसरे के तन पर सरंध्र और तीसरे का सोल गद्देदार जो गेंद की तरह कूदे है। यानी उसकी जाति प्रजाति और ताकतवर होती चली हैं, पृथ्वी को शिकंजे में कस लेती हैं और जोशज़नी से साँसें लेती हैं और सांप कभी तुर्रेखान था किसे याद?

इतनी बढ़ी है रीबॉक बिरादरी कि सिखों, गुज्जुओं, चीनियों को पछाड़ दिया है, जिनमें बड़ी हांक थी कि वे विश्व के कोनों कोनों में जा पहुँचते हैं। एक खबरिया इसी पर अहंकारी

हुए गया था कि आइसलैंड में सरदार जा पहुँचा है, मय पगड़ी कड़ा किरपान के। मगर रीबॉकों ने इन सबको धता बतला डाला है और जूते तो जूते, मोज़े, दस्ताने, टोपी, बस्ते, ब्रैसीयर्स की शक्लो सूरत लेकर, कहाँ नहीं शान बघारते हैं।

इसलिए कि उन्हें महा महारथ हासिल है इन क्षेत्रों में — पैदल-सैर, दौड़, योग, और नृत्य।

कोई पूछ सकता है कि किस बिना पर ये दावा किया जा रहा है, तो उसका सीधा सा जवाब ही नहीं, चलता फिरता फड़कता नमूना है, जिस घर-परिवार में ये गाथा स्थित है, वहाँ की एकमात्र पुत्रवधु। सब जानते हैं कि जिस दिन उसने रीबॉक डाटे, वह खुदबखुद लम्बी लम्बी सैर करने लगी, दूसरे संगी-साथियों के साथ जॉगिंग में रम गयी, और मोहल्ले के बाग में योग-गुरु की शागिर्दी में योगासन भी चल निकला। चल निकला? ऐसा वैसा? कि दौड़ गया और छुट्टियों में जब बच्चों के स्कूलों की ज़रूरतों से आसपास की माँओं को फुर्सत थी, तो ये ही पुत्रवधू उनकी योग-गुरु हुईं और अच्छा खासा समर और विन्टर कोर्स कराने लगीं।

और नया ताज़ा ये सुनने में आ रहा है कि अब सालसा की क्लासेज़ में दाखिला ले लिया है और न जाने कितनी बार दरवाज़ा चौंक जाता है कि यह क्या, अपदस्थ बेटी घर में आती हुई, और पदासीन बहू घर से जाती हुई, ये कौन सी उलटी गंगा रीबॉक बहाता है?

ऐसा भी लग सकता था कि एक को अपराध बोध है कि मैंने नहीं निभाया और इसलिए अब पलट के आती है, और दूसरी को आश्वस्ति है कि मैंने खूब निभाया और इसलिए अब निकल जाती है।

पर दरवाज़े को या किसी और को ऐसा लगा, इसके कोई चिन्ह पहचान में नहीं आये हैं। अभी तक।

मानी बात है कि अपनी शादी पर दुल्हन रीबॉक पहन कर नहीं आती। दहेज़ में भी रीबॉक नहीं लाती। सरकारी अफ़सर मियाँ के घर जाना हो तो भी नहीं। इसमें इस गाथा की बहूरानी अकेली नहीं।

न इसमें कि उसका गोरा होना और कद-काठी से अच्छा, ससुराल को जँचा, न इसमें कि इन कारणों से आगे की नस्ल अच्छी होने के इमकानात सबको भले भले दिखे। न इसमें कि नाना प्रकार के निखार लाने के नुस्खे और बच्चे पालने के तरीके, अम्मा बताएगी और नए युग की ननद सिखाएगी। न इसमें अकेली कि सपनों को सच बनाने चली ससुराल, बेहद अकेले अकेले होने के एहसास के संग। घर बेगाना, लोग बेगाने, बैठने बोलने के ढंग अनजाने।

निरी नयी नवेलियों की भांति इस घर की बहू पहले ही दिन रोने लग पड़ी। टॉयलेट गयी थी और वो ब्लॉक हो गया। शादी के घर में हंगामा मच गया, मेहमानों की ऐसी भीड़ कि एक भी बाथरूम न चले तो क़यामत आ जाएगी। कहाँ है, कहीं से, हुंकार फटकार के बाद एक जमादार दौड़ा आया और फ़्लश से खून में सना, कपड़े में लिपटा, घर का बना रुई का पैड निकला। ननद ने सैनेटरी पैड लाकर दिया और सिखावन दी कि पुराने अख़बार में लपेट कर कूड़ेदान में फेंका करिये, भाभी।

इतना, जिसको अंग्रेज़ी में कहते हैं वैरीप्राइवेटखून, आम सभा में खुला, कि इस अपमान ने बहू को उसी दम बता दिया कि फेंकना सीख लो, फिर सीख लेना क्या फेंकना है। हनीमून पर गयी तो गंगा किनारे मेले ठेलों में मिलने वाली टिमकती टिकली माथे पर थी और लाल और सुनहले परांदे में लम्बी चोटी झूल रही थी। दोनों फेंक आई और माथे के बीचोंबीच कुमकुम का ललकारता चाँद उठ आया, जो आते बरसों में बड़ा हो गया और साड़ी सूट के मनमुताबिक रंग बदलने लगा। ऐसे ही कभी चोटी फेंक दी और सटक सटाक चाबुक से पड़ते खुले बाल उसके चलने पर सटक सटाक चलने लगे।

अब कौन रोक सकता था रीबॉक का दुनिया में उदय? हुआ। आये रीबॉक दुकानों में, विज्ञापनों में, और एक दिन बेटे ने कहा माँ रीबॉक ले लो और ले आया।

सिड नहीं, उसका छोटा भाई, जिसका ज़िक्र अभी होना था इसलिए अभी हुआ। और जो चूँकि सात समुन्दर पार जा गया था, कभी कभी ज़िक्र नहीं भी होता उसका, जिसलिए अभी तक नहीं हुआ। पर चूँकि रिवायतों को ज़िलाए रखने में वो कतई कम नहीं था, ज़िक्र हो भी जाता, जैसे कभी फिर हो जाएगा। हर माँ का एक ऐसा बेटा होता है जो उसे बताता है माँ तेरी बलि चढ़ी है, परिवार की वेदी पर। औरत, हर रंग और जाति की, इस कसौटी पे खरी उतरती है। जो उसके संग हुआ है, उसमें बेटा दु:ख दर्द से, जो उसके संग नहीं हुआ है, जोड़ता जाता है और फिर ललकारता है अब तू रीबॉक पहन ले और ला के दे भी देता है रीबॉक।

उसकी हँसी नहीं मिल रही थी और उसका जीना दूभर हो चला कि खो गयी है या थी ही नहीं उसके पास?

ए बताओ कि किरदार वही क्यों जो है? गरीब के घर में धन किरदार, बदसूरत के जीवन में सुन्दरता, भारत में पाक और अमरीका खलनायक और नायक, अंधे का मुख्य किरदार आँख और लंगड़े का टाँग, निघरी के जीवन में घर किरदार, बेरोजगार के जीवन में नौकरी, उड़ी नींद के जीवन में सोती और बस करना चाहे हो तो बस देख लो कि हर किसी के जीवन में जो नहीं है वो ही असल किरदार। इसलिए इस बेटे के जीवन में हँसी।

घर का ये छोटा बेटा था तो बहुत उस पर नहीं कहना, क्योंकि इस गाथा में बड़ों की चल रही है, चाहे नहीं भी चल रही। वो अब है भी नहीं यहाँ, पर इस बात को हम बहुत नहीं खींचें, चूँकि यहाँ भी लागू वो सत्य कि जो नहीं है, वो भी किरदार। पर पहले वो यहीं था, जैसे उसके दादा भी थे, यानी उसकी पलंग-लगी दादी के पतिवर। बाद में वो चले गए संसार-पार और ये चला गया सागर-पार और ऑस्ट्रेलियन कहलाने लगा। जिससे संयुक्त परिवार की अदृश्य डोर दुनिया के एक और छोर को छू गयी।

जितना सिड ऊधमी था उतना उसका भाई गम्भीर। जितना सिड खेलकूद गपाष्टक धूमधड़ाके में, उतना ही भाई काम में, सलीके में, शान्त में। बेटा होनहार था और उसे सिड मंडली की धमाचौकड़ी समय की बर्बादी और मध्यवर्ग की फूहड़ और उच्छृंखल संस्कृति लगती। कभी कभी तो सरबसर अश्लील। इसलिए वो अपने काम से काम रखता, जितना ज़रूरी हो उतना ही बोलता और मन न हो और बोलना पड़े तो फालतू बात नहीं करके, किसी सामयिक मुद्दे का ही ज़िक्र उठाता। सन्तुलित खाता, पीता, सोता, और खाली तो कभी बैठता नहीं। चाहे सुबह पॉट हो या कहीं क्यू हो, या ट्रेन, बस, गाड़ी सफ़र हो, किताब उसके हाथ में होती जिसे वो एकाग्रता से पढ़ने लगता। हमेशा ज्ञानविस्तार होता और इसीलिए उसे बहुत पता था कि इतिहास, भूगोल, धर्म, दर्शन, विज्ञान, मनोविज्ञान, भूगर्भशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, नागरिकशास्त्र, इसमें, उसमें, कितना गड़बड़ हुआ है और हो रहा है, जिससे उसका मूड बिगड़ा रहता। पर तबियत अभी नहीं बिगड़ी थी।

उसके साथ कोई किरदार है जो अपनी गैरहाज़िरी से पूरे में छाये गया है, ये पता भी न चलता अगर गम्भीर बेटा अपनी कम्पनी के काम से अलग शहर न गया होता। इसीलिए माना जाता है कि आकस्मिक घटनाओं की जीवन में अहम भूमिका है, चाहे वो दुर्घटना हो या सुघटना। ऐसे ही इश्क होते हैं, मौत होती है, हँसी आती है, हँसी जाती है।

गम्भीर बेटे के जीवन में हँसी आई या गयी, कब आई कब गयी का यहाँ चर्चा नहीं चलाना, पर बात ये है कि समुद्र तटीय अचानक मुठभेड़ ने हँसी किरदार के प्रति उसे सजग कर दिया। फिर वो बहुत ही उदास हो गया।

मीटिंग उपरांत उसके पास समय था, तो वो होटल से निकल कर ‘बीच’ पर आ बैठा और लगभग सन्तुष्ट था। लगभग इसलिए कि पूरा सन्तुष्ट होने को दुनिया ने कुछ छोड़ा नहीं था। जिधर देखो वही भदेसपन, वही लालची कंज़्यूमरिज़म, वही नकलची संस्कृति, और वही न इधर के न उधर के न किधर के फरफरे छिछले उथले सिलबिले लोग। जितना हो सके वो इन सबसे दूर होकर अपने काम में रत रहता। पर यहाँ उसे मिल गया गाता उछलता समुद्र जिसकी उछाल और गायकी सब मौलिक थे इसलिए प्रीतिकर सो उसने एक मंगाई बियर, दूजे खोली अपनी किताब और नारियल-फूस के बने कैफ़े-शैक की सबसे किनारे लगी कुर्सी और मेज़ पर जा सजा और चेहरा समुद्र की तरफ कर लिया। भड़कीले सैलानियों का भोंडा शोर पीछे से आ जाता तो अपनी मेज़ व कुर्सी विधिवत सागर के और पास सरकाता और लगभग सन्तुष्ट बैठा था। आँखें भी झपका लेता।

कोई दूर से देखता तो मनभावन पेंटिंग बनती — विशाल आकाश, विशाल समुद्र, और उनसे सटा हुआ छोटा सा दृश्य-टुकड़ा जिसमें एक कुर्सी पर युवक बैठा है और मेज़ पर

बियर है और गोद में किताब। लहर दृश्य के एकदम करीब तक बह आती फिर लौट जाती, फिर आती जैसे कभी भी दृश्य को सशरीर उठा ले जाएगी। दृश्य भी किसी सम्मोहन में उसी में बढ़ रहा है।

पर दूर से किसी ने नहीं देखा। देखा, तो पास से। एक गोलमटोल हँसते बच्चे ने।

बेटे गम्भीर को बच्चे सख्त नापसन्द थे। उनके प्यारे कारनामों की नुमाइश और विडियो जग पर थोपते उनके माता पिता भी। और बहुत छोटे, बेवकूफ़, डगडगाती आँखों और खोपड़े वाले दूध उलटते शिशु से ज्यादा अगर कोई उसे बुरे लगते, तो वो थे डगडग चलते, मोटे ताज़े, अनर्गल बोलते गाते, लार टपकाते, और ठिलठिल हँसते, खुशबाश बच्चे। ठीक जैसे ने उसे देख लिया।

बच्चा एक मेज़ से दूसरी पे छुट्टा बेबी-सांड गश्त लगा रहा था और किसी का गिलास लुढ़का आता, किसी की कुर्सी गिराना चाहता, और कोई उसे न देख रहा होता तो झट लपक के एक बेबी-सांड तमाचा लगा देता।

अब उधर एक शख्स बैठा है उसकी उपस्थिति से सरबसर बेखबर, ये बिगड़े शहज़ादे को कैसे होता गवारा? उसको चैलेंज मिल गया, मकसद बदल गया। गया डॉनल्ड-डक ठुमक में समुद्र के पास बैठे झपकियाते बेटे के पास। समुद्र कुर्सी और मेज़ के पायों तक लोटें ले रहा था और शोर में सब शान्त था कि गोलू मोलू ने उठाया एक हाथ और किया रसीद एक बेबी-लाफ़ा। गम्भीर बेटा सकपकाया। पर उसकी कोशिश चलती रही कि कोई दखल उसके अकेले पल को न बिगाड़े। मगर बच्चा फिर वहीं और लाफ़ा एक और और फ़रमाइश कि 'हँसो'। अबके गम्भीर ने आँखें खोल बुरा सा मुँह बनाया। तीसरा थप्पड़ पड़ा तो दुनिया की सारी बेकारी उस पर हो गयी तारी और उसने पलट कर जैसे पिल्ले को गर्दन से दबोच लिया और हवा में हिलाते बोला अब आया तो पानी में फेंक दूँगा। समुद्र से ऊँची दहाड़ बच्चे ने मारी और उसके नए नए माँ बाप दौड़े आये और गम्भीर से लड़ पड़े कि बच्चे के संग ये सलूक, बाकी सारे कैसे दुलरा रहे थे, तुम्हे बच्चे का खेल आगबबूला करता है? चाँटे लगाना बच्चे का खेल, गम्भीर चिढ़ा। आप ही लोग बिगाड़ देते हैं और ये बच्चे बड़े होकर भी बिगड़े बच्चे रहते हैं। ऐसा भी क्या माँ बाप बोले, ये ही तो कह रहा था कि हँसो? हँस नहीं सकते?

गम्भीर वहाँ से उठ लिया। उजाड़ते लोगों की उजड़ी दुनिया फिर से हर तरफ दिखने लगी। बियर कैन और प्लास्टिक थैलियों से पीड़ित रेत, गोरों द्वारा छेंकी हुई धरती, थुलथुले हिन्दुस्तानी नकलची बन्दर, प्रकृति को रुलाता अपने को संगीत समझता शोर, हँसते चीखते स्टुपिड लोग, हँसो, कह रहे हैं, है कुछ आपके चलाये इस देश में कि हँसें, भुन भुन भुन गम्भीर भुनभुनाता कमरे लौट गया।

और सो गया।

और सपना आया। कि वो सुकून से सागरतट पर बैठा है विशाल आसमान के नीचे और लहरें उसके पाँव को धीमे से भीज रही हैं, फिर धीमे धीमे अपना दुलार बढ़ाती हैं और अब उसकी कुर्सी हर प्यार-वार पे हल्के से उचक जाती है, और अब लबालब लाड़ है और वो लहर पर ऊँचा उठ जाता है और अब तो वो समुन्दर में सिंघासन पर बैठा तैर रहा है और तट पर सारे सैलानी मय मोटे ताज़े बच्चों के उसे देखने जुड़ गए हैं और वो उन्हें सुना रहा है

कि दुर, घामड़ों, ये कौन सी साँसें हैं तुम्हारी सोचो, जो तुम गैरों की नकल में लेते हो, तभी फेफड़ों में प्रदूषण न कि ऑक्सीजन भर गया है, तभी तुम्हारी साँस उखड़ी उखड़ी निकल रही है, भिडू साँस तो अपनी लो और बच्चों को सिखाओ अपनी साँस लेना। जिस पर छोटा फुटबॉल सा बच्चा मजमे से आगे लुढ़कता आया और चिल्लाया राजा नंगा है, हँसो, और तट की भीड़ का नाद उमड़ता है हँस नहीं सकते और एक भीमकाय लहर उसीपर टूट पड़ती है और उसकी ही साँस में हड़कंप मच जाती है और बुरी तरह हाँफता धड़धड़ाता उसका दिल है और अचानक उसकी आँख खुल जाती है।

दिल धड़ धड़ जैसे फटने को। और सपने से छिटकता फुटबॉल सा वाक्य लगातार छोटा होते हुए उसकी तरफ बाउंस करता है और कंचा बनकर नींद से जगार की सरहद पार करता है और अँधेरे में उसे घूरता है — हँस नहीं सकते?

जागने का पल बड़ा मासूम होता है। जागा बेकवच होता है। सपना क्या भूलूँ क्या याद करूँ शशोपंज में होता है। जागे का दिल धड़धड़ करता है और वाक्य मूक उसे ताकता है। हँस नहीं सकते?

सवाल उससे चिपक गया और उसके संग घर लौटा। और बेटे गम्भीर का शान्त अशान्त अब अशान्त अशान्त हो गया और ये नया किरदार उसके जीवन का मुश्किल जोड़ीदार बन गया जो एक अनुपस्थित हँसी थी उस पर हँसती कि बाबू, हँस नहीं सकते?

साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, सामंतवाद, बाज़ारवाद जैसे मर्ज़ों की व्याख्या करना गम्भीर को खूब आता था और वो जानता था कि उन्हीं ने ये दशा की है कि कुछ नहीं बचा जिसे देखकर मन खिले और हँसी आये पर हँसी इसलिए नहीं आती एक बात है, हँसना आता ही नहीं और बात है। ऐसा शक़ ज़ेहन में अटक जाए तो अच्छे अच्छों की हँसी मिट जाए। एक इंच मुस्कान आपके बस में नहीं, ये ख्याल बेबस कर दे।

ऐसा हो नहीं सकता, गम्भीर ने अतिविचलित हाल में सोचा। हुंह, हँस नहीं सकता, कैसी बकवाद सोचते हो और उसने अपनी समझ से हँसी मारी जो जूलियस सीज़र ने देखी।

जूलियस की आँख सुबह सवेरे खुल जाती और वो सैर टहल पे निकल लेता। चिढ़े मुँह वाले पड़ोसी का घर रस्ते में आता और उसकी आदत पड़ गयी थी कि उससे आँख मिलते ही बंधू का चिढ़ा मुँह और चिढ़ा हो जायेगा। अव्वल तो पड़ोसी उसके नाम से ही चिढ़ता कि जूलियस हाँ नहीं तो सीज़र और फिर जो किसी से टकराने पर जूलियस की विलायती पेशकश शुरू होती तो फिर तो उस की चिढ़ सातवें आसमान पर। हवा में सरसराती सुनाई पड़ती, जो जूलियस सीज़र सुन लेता, क्योंकि उसके कान ज़्यादा ही तेज़ थे। अगली बात कि चिढ़े को चिढ़ाने में उसे भी मज़ा आता जो औरों का भी गम्भीर से रवैया था। या तो उसे देखते ही राह बदल दो या फिर ढीठपन से लुत्फ़ उठाओ।

आज भी वो उसे देखकर अपनी कोई विलायती अदा दिखाने ही वाला था कि चिढ़े चेहरे की ही कोई अलग अदा ने उसे गड़बड़ा दिया। तो सिट डाउन शेक हैंड डांस की जगह वो भौं भौं करने लगा यानी भौंकने लगा। पड़ोसी का अजीब घुजा मुजा थोबड़ा। होंठ ऐसे जैसे कपड़े को किसी ने बेरहमी से चीर दिया कि फटा सा थिगला लटक गया। आँखें मांस में

धँसती जैसे दो कीड़े खोद रहे हैं। कन्धे भूकम्पी झटकों में ग्रसित और चटके टूटे चेहरे की दरारों से फूटती छोटी चीखें।

भौं भौं पर मालिक ने भी उधर देखा और सहमा ये कोई दौरा तो नहीं पड़ रहा है चिढ़े मुँह वाले को? पर जूलियस एकदम से समझ गया कि अरे ये तो हँसना चाह रहा है, हँसने की कोशिश कर रहा है, कितना चाह रहा है हँसना। वो और भौंका, अपनी नयी खोज पे आनन्दित, पर भौंकते भौंकते उसमें हमदर्दी भी आने लगी। मालिक अलबत्ता, बिना उससे वौल्ट्ज़ शेक हैण्ड वगैरह कराये उसे ज़ंजीर से खींचता वहाँ से फूट लिया।

इस वाकये ने बेटे के अशान्त को बढ़ा दिया। ऐसा क्या किया मैंने, हँस ही तो रहा था? कि नहीं?

दोबारा उसने होंठ फैलाये और जबड़ों से ठिलठिलाहट मारी और तीर की सी तेज़ी से बरामदे में लगे शीशे की तरफ मुड़ा कि हँसी मिटने के पहले देख लूँ। वहाँ फटा कटा चेहरा, फैले होंठ, फूटते दांत, मिचती आँखें। हैं! हँस नहीं सकते?

बस, स्थिति संगीन होती चली। हँस नहीं सकते हँसी नहीं आती क्योंकि हँसता नहीं कि हँसना आता ही नहीं ये भला कैसे हो सकता है सब हँसते हैं हँसना किसे नहीं आता तो क्या मैं भूल गया हूँ हँसना या पैदा ही हुआ था यों और दिल धड़ धड़ करने लगता और चेहरा नितांत चौपट हो जाता और माथा पसीना पसीना हो जाता।

बेटे का स्थायी साथी बन गया ये डर कि हँसना नहीं आता और उसकी बेतरह चाह बन गयी कि मैं हँसूँ। जब न तब उसी अभ्यास में लगा। कभी अकेले में। कभी किसी को सामने पाकर।

कभी जानबूझकर किसी के सामने पड़कर।

सुबह होती। छह के करीब। अख़बार डालने की बेला। उसका गिरना सुन के बेटा उठ जाता, दिल की धड़कन सुन शीशे के आगे उछलता और होंठों को मूँछों की तरह नुकीला, लम्बा करता, दांत निपोरता और मुखमुद्रा फ्रीज़ कर लेता और दरवाज़े पर न्यूज़ पेपर बॉय पहुँच भी न पाता कि उछल के बाहर। अख़बार उसके हाथ से लेता, चौखटा उसके सामने चमकाता और समझ नहीं पाता क्यों लड़का हवन्नक चेहरा बना सर पर पाँव रख के दौड़ जाता। गम्भीर उसी फ्रीज़ के संग अन्दर आता, शीशे में देखता, पर शीशे में हँसी जीवंत नहीं रह पाती। अभ्यास जारी रखता। पेपर पढ़ते हुए हँसी के बुलबुले निकालने में लग जाता। मुँह होहो हुहु हाहा उछलता, आँखें उदास लटकतीं।

यानी आरा हिले छपरा हिले देवरिया हिले पर हँसी न हिले।

केवल जूलियस सीज़र उसका बेहँस दर्द देख पा रहा था। मदद की कोशिश करता। उसे देखकर भौंकता और पूँछ हिलाता कि देखो मुझे, ऐसे हँसते हैं, पर उसकी हमदर्दी की वक़त किसे? उसने तो पार्क में जमा बुड्ढों के गगनभेदी ठठाने पे भौंक भौंक के आवाज़ भी लगायी कि यहाँ सीख लो, पर उसका ही गला बैठ गया, और कुछ नहीं हुआ।

यानी हँसी लापता रही।

और तो और जब छोटा भाई सिड की हल्लाबोल मण्डली में घुस के कुछ देर खड़ा रहा, पेप्सी बियर चिप्स और जंगली नाच गाने में मगन उन्हें देख, और खटाक से मुँह फेर निकल

नहीं गया, तो सिड ने उसके नए ढंग से टेढ़े मेढ़े बिचकते मुँह को उसकी चिड़चिड़ भंगिमाओं की फेहरिस्त में एक और प्रकार मान के डाल दिया।

कुछेकों का ध्यान गम्भीर बेटे के तुड़ते चेहरे पर गया ज़रूर कि इसके घुन्ने चेहरे की सीवन उधड़ जाती है और काठी पर खुजलियाँ मच जाती हैं, उचक बिचक करने लगता है और किसी तकलीफ में फुद फुद आवाज़ करने लगता है, पर इस बेटे से संपर्क न के बराबर था तो पल भर झटका खा वो अलग हो लेते। वैसे भी सबको अपने काम की जल्दी रहती।

काम तो गम्भीर बेटे का भी था। भीतर की हहागति अपनी जगह, काम अपनी। बस आजकल काम में भी गुमी हँसी की तलाश घुसी आती। जो बड़ी मुश्किल थी क्योंकि हँसी लायक तो कुछ मिले। कम्पनी की गाड़ी से ही उसने हँसी किल्लोल की कोशिश की पर ड्राइवर के जबड़े ऐसे झूल गए और आँखें चकरा गयीं कि बेटे की हँसी शुरू होते ही पुंछ गयी। ड्राइवर की माइकल जैक्सन वर्दी और वाऊ, ओ शिट, रास्ते की उपभोक्ता संस्कृति, प्रदूषण में सुबकता सूरज, उसके नीचे बदसलूक शहर, धूल ज़ंग बीट से बदरंग, अश्लील मॉल्स, हर चीज़ बेचो और खरीदो, पानी तक बिकता हुआ, उसकी खिड़की पर ठकठक करती बच्ची बेच रही है, पढ़ने के बजाय ये कर रही है, और गाड़ियों के बीच चिथड़ों में फ़िल्मी कैबरे कर रही है, पढ़ी लिखी लड़कियाँ सड़क क्रॉस कर रही हैं और उनके छोटे कपड़ों से छोटे उनके दिमाग हो गए हैं, और जिस भी रांडू पांडू से पूछो, जिस भी हिन्दुस्तानी ज़बान में, जवाब वो अंग्रेज़ी में देता है, वो भी गलत अंग्रेज़ी में, साइनबोर्ड पे हिन्दी की भी वर्तनी गलत है, अंग्रेज़ी की तो माशाअल्लाह, और ऑफिस पहुँचने तक बेटे का मन बुरा हो जाता पर मुँह हँसना चाहता।

हर मौके पे मुँह कोशिश करता, मन खीज दबाना चाहता। जो बातें वो पहले खुन्नस से कहता अब उन्हें मुस्करा के कहने में जी मतला रहा है। जैसे मुख्य अतिथि के भाषण पर सहकर्मियों का गायब रहना और कॉकटेल्स के वक्त सौ प्रतिशत उपस्थित होना, सेक्रेटरी का गुजराती पीत्ज़ा लाना यानी चीनी डला, मशहूर आइसक्रीम ब्रैंड का अपने नये फ़्लेवर का नामकरण गर्व से करना जैक द रिपर, और कैंटीन वाले का अपने बेटे का नामकरण गर्व से करना लालू हिटलर। ये ऐसे भी अनपढ़ नहीं, पर ये हैं हाल हवाल। पूछो गाँधी तो जवाब होगा संजय। कहो उस्ताद अमीर ख़ाँ तो सूझेगी आमिर खान क्यू एस क्यू टी। इन सब हँसी मिटाने वाली डेली घटनाओं पर गम्भीर बेटा गम्भीर मुख पोंछ उस पर हँसी चस्पां करता। पर क्यों नहीं उसके निपोरे दांत, फैले जबड़े, फस फस फूटते बुलबुलों को कोई पहचान के उसका दिल हल्का कर देता? कोई भाग जाता, कोई हकबक देखता, कोई नज़रअन्दाज़ कर देता। तो कोशिश होंठों पर चिपकी रह गयी और आँखों में मायूसी बढ़ने लगी।

मॉम, जिसे इस बेटे ने माँ कहना शुरू कर दिया था कि ये क्या सिद्धार्थ का सिड और पुष्पेश का पुश और शत्रुंजय का शैट और माँ का मॉम, को कुछ आभास हुआ कि उसका छोटा फ़िक्रों में घिरा है। मेरी चिन्ता करता है, उसे पता था। पुरुषप्रधान घरचर्या पे बचपन से कुढ़ता आया है। वो ऑफिस के लिए उसके निकलते निकलते दौड़ती हुई उसके मुँह में तिल, रामदाने, बेसन, बूँदी, कोई सा, ताज़ा लड्डू डालती कि बेटा खिल जाए और कहतीं थोड़ा आराम करो, मत, बेटा, दूसरों के गलत पे अपने को हलकान करो और मैं ठीक हूँ, तुम

जैसा मेरा लाल तो किसी की मुंझ पर ज़ोर-ज़बर नहीं। बेटा अलविदा में एक पल को माँ के कन्धे पर सर टिका देता पर आँखें मायूस रहतीं और हँसी नहीं आती।

हमेशा से गम्भीर की गम्भीरता बढ़ गयी है, माँ-सरीखी चिन्ता हुई, पर इससे अधिक अभी मॉम ने नहीं सोचा। रात में छोटे बेटे का खौफ़ में उठ जाना, सुबह वॉश बेसिन पे मंजन करते हुए शीशे में खुद को देखकर हुहु फुफु

फेन उड़ाते हँसना चाहना और न हँस पाना, किसी से रूबरू होने पर उसकी मांस पेशियों का हिचकी नाच और हड्डियों का कीर्तन, ये सब उन्होंने नहीं देखा था।

मगर कब तक न देखतीं? देखा कि कॉलोनी के बच्चों के होहल्ला क्रिकेट पर अपनी भृकुटी तान के करख्त आवाज़ में भाषणने के बजाय कि क्या अशिष्ट गालियाँ बोलते हो और अंग्रेज़ी के शब्द उठा लेने से अंग्रेज़ी नहीं आती और अपनी भाषा सीख लो, फिर चाहे मर्ज़ी जितनी और सीखो, क्योंकि साँस उसी से सधती है, नहीं तो उखड़ेगी और हंफहंफ करोगे जोकर लोग, जाओ कहीं और खेलो, शोर मत करो, उसने बाक़ायदा लुढ़क आई किरमिच की गेंद उठाई और वापिस फेंकी और कोई अजीब सा खक्खा मारा 'गुड शॉट' और अजीब तुड़ामुड़ा चेहरा किया। मॉम बगल में थीं, योगा में कुछ खिंच गया था, फिज़ियोथेरेपी को निकली थीं बेटे साथ। क्रिकेटर्स अपने में थे पर मॉम झटका गयीं और बच्चे पे नज़र रखने लगीं।

तो कहानी यहाँ से आगे बढ़ी। जननी ने देखा कि नींद उड़ी है, भूख उसी के संग चल दी है, और बच्चे का चेहरा मलिन है। हॉर्लिक्स, बॉर्नवीटा, च्यवनप्राश, रूह-अफज़ाह, फल, आगे पीछे उसके लेकर घूमने लगीं कि ये क्या दुबले होते जा रहे हो? पर बेटे की तो हँसी फँसी थी और उस फाँस को ढूँढने में ताकत लुट रही थी। रातों में धड़धड़ा के उठ बैठना, कलेजे का चुप न होना, मुँह से झागीले खक्खों का फूटना, पेट में घबराहट की टीसों का लोटना, और भीतर खाई का गहराना जिसमें खालीपन भायं भायं गूँजे, और हँसी के ह का भी न मिलना, उस पर बिंदु और आगे का आखर तो भूल ही जाइए।

तो कहानी वहीं की वहीं रही।

कहानी वहीं की वहीं हो अभी, तो ज़ाहिर हो जाता है कि उस कहानी को और कहना है अभी। झाड़ बुहार के किनारे नहीं लगा सकते अभी। रुकना पड़ता है, टिकना पड़ता है, उसकी रफ़्तार को अपनी रफ़्तार बनाना पड़ता है अभी।

कहानी को एक जीव जानो। जीव बेशुमार होते हैं और उनकी किस्में भी। कद काठी, रहन सहन, चीखें, बातचीतें, सांसें, कम्पनें, सींगें, बेज़ुबानियाँ, सब अलग, जीने मरने की मियाद अलग। तो कहानी को बीच में रूठ कर कचक देना माफ़िक नहीं। अपनी जान जिए, अपनी मौत जाए। तितली की कहानी चंद दिनों की लहरानी, मक्खी की चार हफ़्तों की भनभन, चूहे की साल भर माल पर राल, कुत्ता बीस बरस गर लम्बा जीवन सरस, हाँ तोता, कछुआ, हाथी तो शती तुम्हारी बाज़ी। और निकृष्ट कॉकरोच तो तोप चले तो भी सलामत, ये है मलामत। सर्प की कहने लगो तो कहानी सर्पीली कमाल, कि शिख जाए, नख जाए, पूँछ तब भी नचाय।

बात ऐसी ही। कि कहानी उड़े, रुके, चले, मुड़े, होए जब होए। तभी कह गया वो इंतज़ार कलंदर कि कहानी तो आवारा।

और अवाक हो लो। क्योंकि कहानी चाहे तो एक जगह खड़ी हो जाए और खड़ी रहे। पेड़ होके, जो एक और जीव। चिरंजीव। भगवानों से लेकर अब तक का साक्षी। कहानी के मोड़ तोड़ को डंठलों में उगाता, पत्तों में सुलाता, हवाओं को गमकीला बनाता।

चित्र-विचित्र जीव। मृतक में भी, शिला में भी। जन्मजन्मान्तरों की समाधि में भी। पथरा के द्रव और भाप सिहराये, मौन से बुतपरस्त बनाये। कहानी दुरुस्त उठाये।

होगी हँसी की बढ़त। रुकेगी जहाँ हो रुकना। अधूरे के या पूरे के समापन बिंदु पे। हँसते हुए या खोयी हँसी अनहँसी रखते। स्वायत्त।

माली की इजाज़त नहीं यहाँ। जो एक नाप, एक काट की, झाड़-सरहद बना दे, सैनिक टुकड़ी सी खड़ी, झूठे गरूर में कि इस बाग को हमने घेरेबंद कर डाला है। ये कथा बगिया है, यहाँ दूसरी ताब और आफ़ताब वर्षा प्रेमी ख़ूनी चरिंद परिन्द पिजन कबूतर उड़न फलाइ लुक देखो आस्मान इस्काई।

मर्ज़ जैसा मर्ज़। मुहाल होता जीवन। बात वहीं की वहीं पर वही होता गया बात का बढ़ना। नींद भूख चेहरा पल प्रतिपल हँसी-मुठभेड़ में तो क्यों न हों आँखें थकी और काले गड्ढों में घुसती? खाना पीना अपच हाल तो क्यों न लगे कब्ज़ और दस्त की गश्त? जोड़ों में क्यों न जुटे दर्द और माथे पे क्यों न चढ़े बुखार? माने एक के पीछे दूसरा आया और उसके पीछे तीसरा और हँसी क्रैम्प्स से रोग बढ़ता रहा। बेटा बीमार हो गया।

शहर में हर समय बीमारी का प्रकोप रहता, कोई मच्छर से, कोई पानी से, कोई हवा से, कोई खाने से, तो हँसी का कीटाणु भी होगा, क्यों कोई सोचता? न बेटे की मदर ने सोचा। पर परेशान तो हो ही गयीं। बच्चे ने लाख मना किया पर डॉक्टर आये। गीली पट्टी, दर्द की गोली, मल्टी-विटामिन से शुरू होकर टैस्टों पे सरक आई राय। बीमारियाँ अनाप शनाप और लक्षण सब के ऐसे। फ़्लू। टाइफॉयड। डेंगू। गैस्ट्रोएंटराइटिस। मलेरिया। चिकनगुनिया। इन्फ़्लुएंजा। निमोनिया। कहीं क्क-कु-कुछ और तो नहीं, ऊपर की साँस ऊपर, नीचे की नीचे होने लगी। पर सारी रिपोर्टें साफ़। ब्रॉड स्पेक्ट्रम एंटी-बायोटिक दिए। नहीं ठीक हुआ। कोर्टीज़ॉन का इंजेक्शन दिलाने पे राज़ी करा लिया। बेकार रहा। मॉम ने अपने हाथ से खाना पकाया, तो भी सेहत उतरती रही। जितनी छुट्टियाँ बची थीं वो छोटे बेटे को लेने को मनाया तो भी मरीज़ी न टली। मैं ठीक हूँ वो कहता रहा और कहीं कुछ पकड़ में आया भी नहीं था।

मॉम क्या करें, माथे पे मलहम लगा के उसे सुलाने लगीं और रतिलाल के भतीजे फितरू को स्कूल के बाद बुलवा भेजतीं कि उसके पाँव मलते रहो, सो रहा है तो भी, और छोटे बाबा को चंगा करना है। रातों में उठ उठ कर उस पर झांकना शुरू कर दिया और हर काम जो कोई और कर सकता था उन दिनों छोटे बेटे के लिए करने लगा।

एक छुट्टी के दिन देखा रतिलाल खुद पैर दबाने बैठा है। अच्छा आज तुम्हारी छुट्टी तो भतीजे ने यहाँ लगा दिया? मेमसाहब ने जो समझा सो कहा। अगले दिन देखा कि टिल्लन बेटे

के पायताने बैठ उसके पाँव सहला रहा है। किसी और दिन घंटी पैर पकड़े बैठा है। तो मेमसाहब ने हड़काया, ये क्या, कभी कोई कभी कोई घर में घुसा रहता है, फितरू कहाँ है?

तब बात खुली कि फितरू ने मना कर दिया। क्यों मना कर दिया? कहता है भैया ठीक नहीं हैं। इसीलिए तो कहा है आके पैर दाबो। नहीं जी, नहीं मेमसाहब, कहता है अपने से मुँह बनाते हैं और पेट से आवाज़ निकलती है।

एक बार उगल दिया तो आसान हो गया कहते जाना। चिम्पू, अख़बार वाला लौंडा भी डरता है। आप पूछ लीजिये।

सुना कि फितरू को जैसे ही भय्या देखते उनका चेहरा दरकने लगता और मुँह फसक फसक आवाज़ करता। फितरू जान नहीं पाता वो क्या कहना चाह रहे हैं। एक बार तो बोला वो रोते हैं इसलिए बोल नहीं पाते। फिर थक कर तकिये पे वापस गिर जाते हैं।

मैं भइया के पाँउ दबाइ रहौ हो लेकिन बिनने ध्यान नाएँ हो। बिनकी आँखें मुंदी हीं और म्हों में जैसें कछु फँसो भऔ है, निकारि रये हैं। तभइं चिम्पू अखबार लैकें दरबज़्ज़े पै। भय्या जी उछले और बाई म्हों से बाके सामने। बु तौ दैया रे, अखबार फैंकि कैं भागौ। बु कहतु है कि भइयाजी रोज जइ कर्त्तें। उनैं कछु है गऔ है।

इतनी कस के डांट पिलाई मेमसाहब ने पर अब मॉम का दिल धड़ धड़ करने लगा और पसीना छूटने लगा। और निगरानी जो बढ़ी तो एक रात उन्होंने भी देख लिया। नीम अँधेरे में बेटा बैठा हुआ और हाहा हुह हुह स्वर मुँह से फटते। ये हँसी तो नहीं? जैसे क़ागज़ पे हँसी बना के काट ली और होंठों पर चिपका ली। आँखें, गाल, नाक, माथा, सब न-हँस। मुँह फटा, बाकी फिट्टा।

वैसे भी, अकेले बिस्तर में बैठे कोई क्यों हँसे?

कैसे कहें कुछ बेटे से? दोनों बेटे छोटे थे तो कभी धमका देतीं मुँह टेढ़ा मत करो, हवा चलेगी, वैसे ही अटक जाएगा, पर अब जब वो उनसे ऊँचे हो चुके हैं?

लेकिन एक बार जो दिख गया तो हर समय दिखने लगा। जैसे बेटा हँसी की चिप्पी चिपकाता है, कभी वो ज़्यादा बड़ी कट जाती है, कभी एॅक्स्ट्रा छोटी और बाकी चेहरे से कोई मेल नहीं। स्वर भी जो फूटें उनका नाप आकार बेमेल। मुँह छोटा उ, आवाज़ फैला हा हा। मुँह बड़ा आ, आवाज़ हि हि हि।

कुछ तो गलत है। बहुत गलत है। मॉम का दिल बेटे के लिए बुरी तरह टूटने लगा। इतना ब्रिलियंट बेटा, इतना अच्छा उसका स्कूल रिकॉर्ड, इतनी छोटी उम्र पे बढ़िया नौकरी, ये कहाँ से हो हू हा उसे लग गया?

आखिरकार रामदेई ने बागडोर सँभाली। वो मेमसाहब को बहके फ़क़ीर की दरगाह ले गयी छोटे भय्या जी के साथ। वहाँ सौ साल से अधिक के पीर नबीना अपने सन्त की मज़ार को फूलों से नवाज़ रहे थे। उनका रंग श्याम नीला था और आँखें केसरी ज्वाला। लम्बा कद था जिस पर काला चोगा और बड़ी बड़ी गोल कत्थई पथरियों की माला थी। अंधे तो वे दूर दूर तक नहीं लगते थे पर ये आँखें, रामदेई ने बताया, दुनिया को नहीं, उसके परे सबकुछ देखती हैं।

पीर नबीना ने छोटे बेटे की नब्ज़ हाथ में ली। दबायी। अपने भीतर झाँका किये। जिससे आँखें बिलकुल पीछे को चढ़ गयीं।

इसके पैर पे नीले निशान हैं।

जी, रामदेई ने हाथ जोड़े।

रात बुखार चढ़ता है, सुबह उतर जाता है।

जी, पीर बाबा।

रंग पीला है, मुँह लटका।

जी जी।

चेहरे को फटक फटक फटकता है।

जी, मॉम ने कहा।

मुँह और आवाज़ एक दूसरे की हुक्मउदूली करते हैं।

हैं?

जबड़े लम्बे फटे होते हैं तो बारीक सी हिहि निकलती है और मुँह ज़रा सा खुलता है तो फैला हाहा निकलता है।

हाँ। हाँ।

हवा के गुब्बारे मुँह से फूटते हैं।

जी पीर हुज़ूर, उसके पेट से उठते हुए।

उसके दिल से।

द-द-दिल?

पीर नबीना ने नब्ज़ को रिहा किया। पुतलियाँ वापस कीं। चुप बैठ गए और अपने चिमटे को हवा में घुमाने लगे। आँखें सुलगने लगीं।

इसका मर्ज़? दोनों औरतों ने डर के पूछा। क्या है?

इसका मर्ज़ है कि ये हँसता नहीं है, अंधे पीर नबीना बोले।

हवा धाड़धाड़ चलती है। हवा दबे पाँव आती है। बातें आगे बढ़ते हुए बढ़ती हैं। बातें बदल जाती हैं इसलिए भी बढ़ जाती हैं।

इस हेराफेरी में हँसी गयी, रही, आई, पता नहीं, पर एक दिन छड़ी आई।

ये भी नहीं पता चलेगा जब तक गम्भीर बेटे या उसकी मॉम से बार बार पड़ताल न की जाए और उनके कहे के पीछे भी झाँका जाए, कि हकीम नबीना ने इसमें क्या किरदार निभाया? क्योंकि लक्षण से रोग के पहचाने जाने के फ़ौरन बाद, कम्पनी ने छोटे बेटे को प्रमोशन दिया और विदेश भेज दिया, ओवरसीज ऑफ़िस में सीईओ नियुक्त करके। विदेश

नेपाल बांग्लादेश नहीं होता, जर्मनी ऑस्ट्रेलिया अमरीका होता है और ये बेटा, सिड का छोटा, ऑस्ट्रेलिया पहुँच गया। वहाँ से कौन तस्वीरें भेजता कि हाहाहा बिना मुस्कान के बरक़रार है और जबड़े बिना हँसी के फैले हैं और पेट के बुलबुले अपने को कुछ और समझते हुए मुँह से अब भी फटते हैं या कि नहीं? या कि पर्यावरण अभी भी हिकारत के काबिल है या वहाँ मॉल माल मूल्य सब क़ाबिलेतारीफ़ हो गए?

तो ये कि हँसी गयी सागर-पार और वहाँ से आई छड़ी। विदेशी बेटे को साथ लायी जो ऊँची नौकरी का सुख माँ बाप देश से बाँटने कुछ दिन के लिए घर आया। उपहारों को संग लटकाए। कमीज़, रुई के बण्डल, कमोड का फूलदार प्लास्टिक कवर, टीशर्ट, नॉनस्टिक पैन, चूइंगगम, कंगारू कीचेन, कोआला पेपरवेट, मोज़े, डब्बियाँ, शीशियाँ, और माँ उर्फ़ मॉम, जब जी चाहे वहीं आ जाइये और ये अर्ली बर्ड सेल से ये क्लोजिंग डाउन सेल से और छड़ी आधे दाम पे मगर फिर भी रुपये हज़ार की और उसको कहना न पड़ा कि छड़ी ऐसी कि किसी ने पहले न देखी न सुनी, क्या कहने।

बड़े ने कहा हज़ार रुपये की है, बेटी बोली कौन सा रंग नहीं इस पर, देखने वालों ने कहा चाहो तो खोल के अकड़ के चलो, चाहो तो लपेट लो और पर्स में रख लो, और बेटे ने कहा दादी के लिए छड़ी, और मॉम ने कहा जाओ दादी को दे आओ।

छड़ी माँ के कमरे में आयी और उनके सिरहाने टेक लगा के खड़ी हो गयी। हल्की फुल्की थी, चिकनी, छरहरी, कि उड़ ले, नाच ले, धूमपटक मचा ले, बज ले, बजा ले, सहारे के लिए टिका ले, तितलियों को उड़ा ले। सुनहरी। उस पर तितलियाँ हर रंग की। रकत लाल, अम्बरीन, हल्दिया, सुरमई, धानी, फिरोज़ी, बैंगनी, काली, सुगापंखी, सफ़ेद, सभी, सभी। उनके पंखों में फुर्र। छींट। धारी। छड़ी की मूठ एक चोंच। उसमें मुस्कान, उड़ान, बतियान।

ऐसी छड़ी किसने देखी? सोने की छड़ी है क्या? उसकी गर्दन में उसके दाम की चिप्पी लगी थी जो सेल का ओरिजिनल दाम था। जो देखे उसकी आँखें फटें। और झटको तो तितलियाँ उड़ें। और छड़ी पटपट पटपटाती कलाबाज़ी मारती है और जी में आये तो छोटी हो जाती है, जैसे ऐलिस हो। बालिश्त भर एक डंडी जिसे बांह के नीचे दबा लो तो कोई देख न पाए। ये तितलियाँ हैं कि जादू की परियाँ, जिन्हें फिर झटको तो पटपट निकलने लगती हैं और छड़ी लम्बी होती जाती है। ऐलिस ऐज़ छड़ी।

छोटा बेटा ऑस्ट्रेलिया लौट गया, छड़ी माँ के सिरहाने यूँ टिक गयी जैसे घर का अन्तरंग सदस्य। जो वहाँ आए उससे मिले, उसे देखे, छुए, उसके गुणगान करे। बड़े से छोटा करे, छोटे से बड़ा। ये हवा में उछाला और वो तालियाँ बजाती हुई सीधी खड़ी। फिर उछाला तो मानो अपना पार्ट पूरा करके सर, धड़, अंग अंग झुका के सलाम बजाते, अपने को समेट लिया। सब देखते रह जाते।

सिवाय माँ के जो लबे-दीवार हो चुकी थी, कमरे में इतने रंगों के बावजूद।

रंगों की अपनी रंगशाला होती है। वहाँ रंग होते हैं पर वे होने से नहीं होते। पड़े रहते हैं, धूल में दबे। जब साँस हौले से उठती है, इधर उधर सरकती है, नीचे ही नीचे सरसराती है, तब ही रंग करवट लेते हैं। पलक झपकाते हैं, यहाँ वहाँ झलक फेंकते हैं, किलकते,

चिलकते, बिलखते हैं, बचपना करते हैं, इश्कियाते हैं। मरे पड़े जी उठते हैं। तब रंग होते हैं, वर्ना होकर भी नहीं थे।

माँ की खिड़की सब खोल देते हैं, वो नहीं देखती। एक पतंग बाहर डाली में अटक गयी है। उसकी डोर पे काँच का चूरा था क्या, जिसने रहबरों के गले रेते? पतंग रेशम की थी, या कागद, बाँस की डंडियों पे सिया? कट गयी क्या? धराशायी होने चली थी और पेड़ में फँस गयी। रंग तो उसके भी बहुतेरे हैं, नारंगी, बैंगनी, गुलाबी। बदरंग होके भी रंग। चिन्दियाँ फडफ़ड़ करती हैं या क्या फड़क फड़क?

सिड आये तो पता पड़े। छड़ी पंख नचाय तो कुछ होवे। तितलियाँ उड़ें तो नैन खुलें।

सिड आया। न आव देखा न ताव, उठाई छड़ी ज्यों उड़ाने और उड़ के खुद भी दादी के बिस्तर पर बैठ गया।

वाऊ ग्रैनी, ये देखो। फर्राटे सर्राटे झर्राटे से हवा में लगा उड़ाने, सटसटसट खोलता बंद करता, फिर खोल देता लम्बी, फिर बंद कर देता छोटी। छोटी है तो बाँसुरी है, लो बजाओ। पूरा खोल दो, चिरकुटों को एक दो टंगड़ी पे लगाओ, सटैक फटैक अटैक ग्रैनी मेरी। और ये लो, बिछा दो, मेरा तेरा वाहन ग्रैनी, छड़ी जो बादलों में उड़ती है, बाल खोलो ग्रैनी स्टुपिड, आगे तुम बैठो, पीछे मैं, और चलो दुनिया की सैर पे।

अरे अरे केयरफुल, बड़े चिल्लाये, हज़ार रुपये की है।

किसने कहा, बहू ने गरज लगायी, आधा दाम क्यों बता रहे हैं?

मैं लाया था दादी के लिए, विदेशी बेटे ने फ़ोन पर याद दिलाया। सुझाया मैंने था अम्मा के पास रख दो, घर की बहू ने सबको सुनाया। जौन सा रंग नहीं उसमें, मैं अम्मा से कहती, ढूँढ़ो, बेटी ने अपनी हांकी। उसके करतब मैंने बताये, बड़े ने बड़ों की आवाज़ में कहा। यानी परिवारों की रिवायत कायम कि असल सूझ मेरी।

पर रेनबो? असल सूझ तो तब आई।

रेनबो का नाम आते ही मुझे आना पड़ रहा है। क्योंकि उसे मैंने देखा। ये अगर किसी ने कहा तो मैंने। वैसे मैंने भी नहीं। पर मैं जानता हूँ। क्योंकि उन औरों से ज़्यादा मेरी नज़र को सूझती है और बुद्धि को भी। मैं देख लेता हूँ, चुपचाप, कौन आया, क्या बोला, किसके चेहरे पे क्या भाव खिला और रेनबो कहाँ उचका। बशर्ते कि मैं उस पल वहाँ मौजूद हूँ और घटता मेरे सामने है।

रेनबो पर मेरी एंट्री है। अभी मुझे मौका मिल गया है। रेनबो की मैं कहूँगा और उसी की तरह मैं उछल आता हूँ इन पन्नों पर, उसी की तरह पलक भर चमकने।

रेनबो चमका था। बियर में। जिसे मैंने थामा था अपने बडी के लिए, उस दावत दरमियान जहाँ मैं भी इनवाईटेड था और सिड के पीछे पीछे उसकी ग्रैनी से मिलने उनके कमरे में गया और सिड ने वो छड़ी उठाई और अपनी मटरगश्ती शुरू कर दी।

तड़ तड़क तड़, सिड, माइ बडी, ने उसे खोला बंद किया और सारी तितलियाँ एक साथ उड़ने लगीं। बटरफ़्लाईज़ ही बटरफ़्लाईज़, वाऊ! हर रंग हवा में उड़ने लगा। सिड की दादी बीमार रहती थीं, वही बीमारी, और क्या, ओल्ड एज। उसके दादाजी गुज़र गए थे। वही सिंड्रोम, ग्रैनी अब क्या करें? पड़ी रहतीं, जब देखा उन्हें बेडरेस्ट लेते देखा।

पर मनमौजी मेरे मित्र की हँसी बड़ी इफ़ैक्शस थी। चिता से आदमी झाँकने न लग जाए कि कौन हँसा, तो मैं जो हूँ वो नहीं! मैं...

लेकिन मैं अपनी कहने नहीं हूँ यहाँ। ये मेरा किस्सा नहीं है, इसमें मेरी ज़रूरत नहीं है, इसका कोई कैरैक्टर मैं नहीं हूँ। पर पन्ना मंच है — द पेज इज़ अ स्टेज। इसमें जो बीलौंग नहीं करता उसे भी किसी छोटी मोटी वजह से आने का मौका मिल जाए तो फिर देखिये अपने मोमेंट को किस ख़ुशी से एक्सटेंड कर लेगा। जैसे एक सीन में मंच पर कोई एॅक्टर कहता 'बारिश' और मेरे जैसा एक आता पिचकारी से पिच्च बारिश की धार दिखाने। उसको वो करके निकल जाना होता, पर स्टेज पर आ गया तो निकलने के लिए मन को बड़ा सख्त करना पड़ता है। वो पिच्च को ही जितना खींच सकता खींचता और लगे हाथ एक टांग भी उठा देता कि दर्शक अट्रैक्ट हो जाएँ और उसकी तरफ़ एक वंडरफुल पल को घूम जाएँ।

जैसे एक गरीब स्कूल-टीचर को, जात-पांत गाँठ में एक मुख्यमंत्री का प्राइवेट सेकेरेटरी बना दिया। तीन बरस को हर रोज़ पूनम का चाँद खिल उठा। डट के सूदखोरी, घूसखोरी, ऐयाशखोरी, मेरसीडीस, विदेश सवारी, सबखोरी, सबअन्दाज़ी, सब बाज़ी, सेक्रेट्री ने खेली। घर द्वार तरोताज़े बनाये, बेटी की शादी की, बेटे भांजे को नौकरी से लगाया, और टर्म पूरा हुआ और ईमानदारी, गरीबी, टीचरी की खूंटी से वापस गऊ माफ़िक बंध गया। मगर जब तक मौका था मंच पर अपना पार्ट भरपूर अदा किया, लौट लौट कर।

अपना वही हाल अहवाल। मौका क्यों छोडूं? फिर फिर आके अपना पार्ट करूँ। पहला शॉट तुमसे मिस हो गया, तो लो अबके देख लो।

पर ज़बरदस्ती घुस आने से मेरा ईगो अग्री नही करता। धक्के पड़ेंगे, ज़्यादा देर मुझे कोई यहाँ ठहरने नहीं देगा। बेहतरी इसी में कि निकाले जाने के पहले अपना डायलॉग कहूँ और रिट्रीट मोड में आ जाऊँ। पल दो पल की मेरी एंट्री। ये बताने कि रेनबो चमका था। सबसे पहले मैंने देखा। और किसी ने देखा भी कि नहीं मैं नहीं कह सकता। बट आइ सॉ।

हम कमरे में आये थे। बियर के अपने गिलास हाथ में लिए। सो स्टफ़ी, मैंने सोचा। छड़ी लेके सिड ने छलांग लगायी। मगर बियर नहीं छलकी। मैंने 'मे आइ' पूछा और खिड़की खोल दी। बाहर पेड़ पे एक पतंग टूटी लटक गयी थी। तितलियाँ उड़ीं। शायद पतंग हिल गयी। सिड की ग्रैनी ने करवट ली। उन्हें आँख खोलनी पड़ी।

अप ग्रैनी, लेज़ीबोन, जाड़ों भर सोना है क्या, चिल्ल जाड़ा चिल्ल...सिड ने उनका तकिया ऊँचा कर दिया और उनके आगे बैठ कर आसमान में छड़ी पे बैठ के सैर करने की गाने

लगा, इनफ़ घुर्र घुर्र, उनकी खर्राटों की नकल का कोरस बनाकर। लगा उन्हें गले, छड़ी पे मारे पोज़।

पोज़ तो फिर फ़ोटो। कौन खींचे? योर्स सिंसियरली! तो मोबाइल निकाला, बियर का गिलास किसे दूँ, सिड को दिया। तो सिड ने अपना गिलास ग्रैनी के हाथ में रख दिया। नॉटी गर्ल ड्रिंकिंग बियर। जल्दी फ़ोटो लो।

नइ नइ, सिड की दादी ने कुछ नू ना की और मुस्कुरा सी दी और वो उछला — रेनबो। मैंने खुद देखा। पतंग में से रंग लपके कि तितलियों से, रेनबो उछला, और ग्रैनी के गिलास में डाइव करके तैर गया। और वहाँ से दादी की आँख में भी झिलमिला गया। अ रेनबो चमकोड हियर, एॅन्ड अ रेनबो चम्कोइंग देयर। आँख वाला और भी मस्त। फ़ोटो में सब कैप्चर्ड है। कहीं रेनबो, कहीं उसका अक्स। यकीन न हो तो आके फ़ोटो देख लें, और इससे ज़्यादा क्या कहूँ?

इससे ज़्यादा कह भी नहीं सकता क्योंकि में इस किस्से में कैरैक्टर नहीं बन सकता। पर पार्टी में मैं भी था। पार्टी क्या, अ दावत टू रिमेम्बर। उसमें सब आये और मैं भी, और रेनबो का विटनैस मैं हूँ। इसलिए इतना कह गया। मगर अब मेरा टाइम अप। आइ टेक अ बाउ एॅन्ड लीव दीज़ पेजेज़। ये जो अगला कहा जा रहा है मैं नहीं कह रहा हूँ।

साँस कीड़ी की तरह होती है। जब गायब होने लगती है तो नन्ही सी हांफी, ठंड के थपेड़ों और बाकी खड़े बैठे लोगों के भरपूर दम और कश के बीच, कीड़ी की तरह बच निकलती है। बूढ़ी माँ जो निस्पंद पड़ी रहती हैं उनमें कीड़ी रेंग जाती है, सुराख़ में घुस जाने में लग जाती है, जो उसे पीछे से आती हाऊँ हाऊँ साँसों से दूर होने दे। सुराख़ का तरीका है कि जितना भीतर जाओ उतना वो खुलता जाए। कीड़ी सी साँस छेनी बनी, अपनी ही घुटन को फलांगने में सरंध्र बना रही है कि अँधेरा चिरे, रौशनी दिखे, झोंका मिले।

हवा और ज्योति। और कहीं इन्हें जल मिल जाए तो फिर तो मेघधनुष खिंच जाए।

मेघधनुष? वो क्या? वो रेनबो?

लास्ट सपर नहीं पर लास्ट लंच था। ऐसा कि सबको याद रहे। उस दिन सूरज को खास न्यौता भेजा गया था कि पूरी सजधज में आये। जाड़ों के जाते दिन और बड़े के रिटायरमेंट के आते दिन। इस घड़ी उसका पीताम्ब कितना सुहाएगा। आती घड़ियों में तो उसकी चिन्दियाँ ही नसीब होंगी। इस घर के छूटने के बाद। डूबे, धूलित आसमान से लटकीं पड़ीं। शहर के बिल्डिंग-जैम और ट्रैफ़िक-जैम में लोहे सी भारी और काली हवा, रटपटिया स्कूटर बनकर, चिन्दियों को यहाँ वहाँ उतार देगी। कि उन्हें देखकर उनके पूरे का अनुमान बचेखुचे दिलों को हो जाए और वो इसी में आनन्दित हो लें। मगर अभी तो कुछ दिन बाकी हैं इस लॉन पे, इन गुलदाऊदियों में, आयें कृपया सूर्य महाराज।

जाते अफ़सरों के निमंत्रण सूरज कम ठुकराता है। जानता होगा कि अफ़सर जीजान से लगेगा कि पार्टी ऐसी हो कि पहले किसी अफ़सर ने ख्वाब में न सोची हो। ऐसी खुशबुएँ उड़ेंगी, ऐसी खिलखिली खिलेगी, सजावट में तन होंगे, बाग बगीचे होंगे, मेज़ कुर्सियाँ होंगी, और मुग़लों के ज़माने के लिबास में नौकर होंगे। देखकर ही मेरी रौशनी और फूटेगी और, जो धरती वाले नहीं भान पाते, अपनी उँगलियों में उठा के, अपनी गर्मी से तपाकर, अपनी भापों में खींचकर, कुछ मनचाहे व्यंजनों का स्वाद हम भी लेंगे। अपने भास्कराने ढंग में। हमें क्या पड़ी कि कौर कूचें, दांत कटायें?

तो सारे काम छोड़ के, और कौन नापता कितनी दुनिया को अँधेरे में छोड़ के, सूरज अपना ऑर्केस्ट्रा लेकर पधारे। बैंड बाजा बरात। आतिशबाज़ियाँ। फिर क्या क्या खेल दिखाए — डालियों से झरने की तरह गिरता, दीवारों पे नदी की तरह कलकलाता, पत्तों के बीच मशाल सा जल जाता, डाल पर दीपक सा उजल लेता। जलता बुझता। और नीम के पत्तों को चर्खियों सा भंवराता। आसमान में भी शरारत — बादलों के घुंघराले गेसू सुनहले रंग देता, अब लहरायें उन्हें। कभी उन्हें पीले उजालों से सिये घाघरे पहना देता और फिर उनकी हथेलियाँ अपनी में डाल, तेज़ तेज़ घूमता और बादलों की कंचनी किलकारियाँ फूट पड़तीं। नीचे लोग सुन नहीं पाए तो सिर्फ़ इसलिए कि जिस हरी नरम घास पे वे फिर रहे थे, वो खुद पी-ली तरंग में उचक उचक रही थी, जिससे कि एक दो ऊँची हील वालियाँ और ब्रांडेड जूतों वाले उस पर लुढ़क पड़े और बाकी लोट न गए हों पर लोट से रहे थे, अलग पिनक में।

गुलदाउदी फुटबॉल बने उछलने लगे, इस बात से बेपरवाह कि उन्हें कहाँ जाना है, जीना है कि मरना, फ़्लैट में गमले में ठुंसना है कि किसी अगले अफ़सर के बाग में बांके शहज़ादे बने रहना है? आज के मौके पे कुर्बान, वो मटक लहक में पास से गुज़रती ट्रे पे झुक आते जैसे एक निवाला, एक घूंट उनका।

और अम्मा को उठाने लुभाने की कोशिश उस दिन भी — 'अम्मा से कहो धूप निकली है'।

दावत क्या थी, सरकारी फ़ाइलों में चिरकाल के लिए दर्ज हो गयी। बड़े ने क्या लास्ट लंच दिया। नामी गिरामी पहुँचे। सरकारी मुलाज़िम, नए पुराने तो थे ही, मगर खानदानी रियासतों के बड़े, जैसे ममदोत के नवाब बहादुर, जैसे ध्रांगध्रा के महाराज, और मिलों कम्पनियों के मालिक जैसे बघेलूराम और पेट्रोलपंपवाला और फ़िल्मी हस्तियाँ जैसे

नाडिया अशर्फी और पंचू कुमार, और लेखक पत्रकार जैसे टूटू गोल्डी और बारबरा छत्री, और बीसियों और दमक चमक वाले भी। कहते हैं हर साल कुछ नए बन्दे जुड़ जाते हैं कि उस पार्टी में तो हम भी थे, ऐसी यादगार पार्टी थी। कि एहसास-ए-कमतरी हो जाता जो न पहुँचा था उसे, और अपनी नज़र में बने रहने के लिए झूठ बोल देता है। हाँ कुछेक नहीं आ पाए और वो बात सरेआम थी, जैसे कस्टम विभाग की एक सीनियर रिटायर्ड अफ़सर जो उसी दौरान गयी थीं बाली वाले अपने मकान का पज़ेशन लेने। उनके घर दुनिया भर में हैं — एक गोवा में कालान्गूट में, एक गाज़ीपुर में गोड़उर में, एक मैसाचूसेट्स में पेरू में, जंगल के भीतर, जहाँ दरवाज़े पे दस्तक हो और खोलो तो भालू हाथ बाँधे, सर झुकाए खड़ा मिलता है कि उसे अन्दर बुलाओ और शहद खिलाओ, एक पेरिस के बाहर गोबियो में, एक डेनमार्क में कहीं समुद्र किनारे, एक हंगरी में भी, एक कनाडा के मिलवॉकी में, एक दक्षिण में किसी मन्दिर के पास, एक दक्षिण अमरीका में किसी गयी, मगर बीती नहीं, जाति के पड़ोस में, और शायद एक दो और किसी और जगह, मगर बाली का बुलौवा इसी वक्त आना था और अन्तर्राष्ट्रीय मामला, कस्टम के हो तो क्या, सो। पर बाकी तो सब हाज़िर थे और ख़ुशी चरम पे थी क्योंकि कुर्सी है तो पूछ है, पूछ है तो लम्बी पूँछ है, आगे तो दोनों ही नदारद हो जाते हैं।

उस दिन सब बड़े के लॉन में झूमा किये, ऐसा झुमावती माहौल। फूल मटकें बादल लहकें पत्ते थिरकें घास लचके लोग डोलें सूरज हवा को रंगे।

'अम्मा को बताओ फूल खिले हैं'।

हद तो तब हुई जब क्रॉकरी पॉटरी, माने बर्तन भांडे, मटकने लगे। गिरने भी। नौकरों चाकरों को डाँट पड़ने लगी कि बियर सर्व करते करते चुपक चुस्कियाँ मार रहे हो?

पर जहाँ पत्ते थिरकते हों, घास उमगती हो, धूप मटकती हो और हवा बड़े के घर के अन्दर बाहर बच्चियों सी भागती कूदती है, वहाँ डाँट भी इधर उधर लुढ़क जाती है, किसी पे टिकती नहीं।

आहा आहा क्या मस्तियाँ, क्या नाच गाना बतियाना।

'अम्मा की खिड़की खोल दो'।

और क्या खुशबुएँ। लॉन में ही एक तरफ़ स्टॉलों की कतार थी। चायनीज़, चाट, बर्गर, पास्ता। बारबेक्यू, मशरूम, आलू, कैप्सिकम, सीख कबाब, प्याज़, रेशमी कबाब, पाइनएपल। पूड़ी, कचौड़ी, टमाटर की, मटर की, दाल की। पुलाव, पनीर पालक, मटन, चिकन, फ़िश। कटहल, आलू दम, परवल, भरवां करेला। दोसा इडली उत्तपम। रवा, चावल, सूजी के। पीत्ज़ा कॉर्नर, पाव भाजी कॉर्नर। सलाद, फल, अलग, हर तरह के। जहाँ इतना सुरूर वहाँ बोतलों वाले सुरूर की क्या दरकार मगर ज़माना अति का है और आला अफ़सर का घर है सो उसकी भी भरमार — चिल्ड बियर, जिन, स्प्राइट, फल के रस, वोदका, श्वेत वाइन, गुलाबी, अनारी, शोख, सुर्ख, गोमेद लाल भी, कोला, पेप्सी, लस्सी, शिकंजी, जलजीरा, झिलमिल झिलमिल।

और कड़ाहे में नाचती जलेबियाँ, इमरती, बालूशाही। आइसक्रीम, क्रेमब्रूले, कुल्फी, तिरामीज़ू, गुलाबजामुन, सूफ़्ले, खीर, मखाने की, शकरकंद की, चावल की। हलुवा, मूंग

दाल का, गाजर का। शाही टुकड़े, केक, मालपुए, पेस्ट्री। पापड़, पकौड़े, चटनी, सॉस, डिप्स, अचार, क्या क्या गिनाएँ, कब तक गिनाएँ? खाने आए हैं कि गिनाने?

मगर जो बात उधर के भोजन की जिधर गुलाब की खेती होती थी, उसका तो इनमें से कोई पासंग नहीं। बड़े और पत्नी में इसको लेकर बड़ी मज़ाकिया जंग छिड़ती जिस पर सब हँसते, बस मियाँ बीवी का हँसना किसी भी पल गुस्सैल हो जाता। बड़े पूरब के, बीवी पश्चिम की, एक कहे भरभरा, मकुनी, टिक्कर, गुरम्मा, दूसरा करे झोर धोई, फजीता, मठा घुइंया, और एक दिन तो इस पर घमासान मचा कि पत्नी ने ससुराल की रेसिपी का आधुनिकीकरण कर डाला और सत्तू मिल्क-शेक पेश किया।

'अम्मा के पैर धूप की तरफ़ कर दो'।

ख़ैर, लास्ट लंच पे किसी का किसी पे आक्रमण नहीं हुआ और बड़े ने बहुत गर्व मिश्रित प्यार से अपने वतन का नाम बुलंद किया, बाटी चोखा का झंडा गड़वा के। सबसे घनी भीड़ वहीं घिरी है और कैसे न घिरती, इन जड़ों से कटे, वंचित शहरियों की? आम के देश में इनमें कितनों ने आम के पेड़ नहीं देखे हैं, उस पर लटके हरी अमियों के गुच्छे तो भूल जाइए। और बाटियाँ तो उनको बोलना नहीं आता।

पीछे की तरफ़, जहाँ लॉन समाप्त होकर सब्ज़ियों की क्यारियों की तरफ़ लचकता था, वहाँ, ज़रा सी ज़मीन साफ़ चपटा कर, गोबर के कंडे तसले में जलाये थे और उनमें बाटियाँ सिंक रही थीं। पास एक परात में सत्तू और बड़ी वाली लाल मिर्च का वाहिद पूर्वी यूपी बिहार का अचार मसल के मिलाया हुआ और पूरे में लहसुन नमक डाल, बाटी में भरने को माल तैयार है। लोग देख रहे हैं यादव जी लोइयाँ बनाते हैं, उनमें ये मसाला भरते हैं, और सिंकने को उपलों पर रख देते हैं। लोइयाँ बनाते हैं, बीच बीच में चिमटे से बाटियाँ घुमा पलट देते हैं। लोग देख रहे हैं, बाटियाँ सिंक रही हैं, यादव जी आंच को हवा दे रहे हैं, लोई पलट रहे हैं। लोग देख रहे हैं जादू हो रहा है। बाटियाँ पक रही हैं, यादव जी उन्हें चिमटे से उठा के उन पर लगी राख झाड़ते हैं। पास एक बर्तन में भरे गाय के सुगन्धित घी में डुबो देते हैं। सूरज देख रहा है घी में अपना रंग। बाटियाँ तरबतर एक थाल पे रख देते हैं यादव जी, लोग अश अश कर उठते हैं जैसे शेरोशायरी में दाद दे रहे हों, पत्तल के दोने में यादव जी बैंगन का भरता और घी-डूबी बाटी परोसते हैं, औरतें हाथ बढ़ाती हैं, मैं तो खाऊँगी चाहे फुटबॉल हो जाऊँ, और बड़ी हँसी फूटती है हर दिशा में। यादव जी मुस्कुरा के अगले को गरम बाटी का दोना देते हैं। यादव जी, दूर गाँव से सफ़र करके आये हैं, बड़े साहब के बड़े बेटे की दावत में बाटी-चाँद लगाने। बड़े साहब ने उनके बेटे को रेलवेज़ में लगवाया था, अब तो वो भी सरकारी क्वार्टर में बेटे के पास रह आते हैं।

सरकारी विभाग सबकी तड़प और तलब। चपरासी, कांस्टेबल, टाइप बाबू, ड्राइवर, माली, कुछ बना दो, पर सरकारी दफ़्तर में। फिर जीवन भर चैन की साँस लें। ट्रेनिंग, शिक्षा, कर्ज़ा लेंगे, अन्तत: वहीं पहुँचने के लिए।

तो यादव जी तो यादव जी, यहाँ वफ़ादारों का ताँता लगा था, जिनके माँ बाप, या उनके माँ बाप, या जिनके बच्चे या उनके बच्चों, या उन्हीं को, बड़े या उनके पुरखों ने सरकारी कवच दिलाये थे।

जैसे विलासराम और उसकी बीवी रूपा। दस साल का था जब पहाड़ों से भाग आया था, फिर बड़े साहब के यहाँ बार बार फेल होने के उपरांत आखिरकार दसवीं पास की, जो सरकारी नौकरी के लिए सरकारी ज़रूरी शर्त थी, और बरसों उन्हीं की छत्रछाया में नाक सुड़कते, टोपी पहन के घर में घुसते, बड़ा होता रहा, और कुछ साल टेम्परररी रहकर सीएजी ऑफ़िस में पक्का हो गया। एक बार गाँव जाके शादी रचा आया, अगली बार गाँव जाके रूपा को साथ ले आया, उसके बाद बिना गाँव जाए दो या तीन बेटे ले आया और सब वक्त ज़रूरत बड़े के यहाँ पहुँच लेते, यानी अपनी ज़रूरत और उनकी, दोनों पे, और लास्ट लंच पे तो उन्हें होना ही था। फिर पलटू भी था जो गेंदा का पति था और एटॉमिक एनर्जी गेस्टहाउस में आ गया था जहाँ बड़े ने उसे माली फ़िट करा दिया था। हफ़्ते में एक दफ़े गुलदस्ते बना लाता, ग्लैडयोलाइ, रजनीगंधा, गुलाब, स्वीटपीज़, कारनेशन, क्या क्या नाम गिनाएँ, के, जिसे मैडम के कहे अनुसार घर में फूलदानों में सजा देता। और कंठेराम, जो विलासराम का ताऊ था और भागे बच्चे को खोजने शहर आ गया था और फिर न लौटा कि यहाँ भविष्य दिखाई तो पड़ता है। बड़े, सरकारी ओहदेकार होने के नाते, गाँव गंगा गुलाब अफीम इत्र छूट जाने के बाद भी, सबके ज़िल्लेसुभानी थे। उनके दरबार में कतारबद्ध भीड़ आती, चेहरे पे अर्जियों की पर्चियाँ चस्पाये, कि इसको कहीं लगवा दें, इसको दाखिला दिलवा दें, इसकी डाक्टरी जाँच करा दें, इसकी प्रमोशन रुकी है, चलवा दें, और इसकी थाने में ग़लत रिपोर्ट हुई है, बचा दीजिये। एक बार आप, साहब जी, चीफ इंजिनियर से कहलवा दीजिये...। माईबाप नगरपालिका में पेंडसे सर जी हैं, उनको आपका फ़ोन चला जाएगा तो...। मेडिकल सुपेरिंटेंडेंट आपको जानते हैं, वहाँ गार्ड की ज़रूरत है...। रतिलाल तो दो बारी भाग आया, एक बार डीजी के यहाँ से, जहाँ बड़े की सिफ़ारिश पे ले लिया गया कि जब होगा पुलिस में भरती कर देंगे, पर पहले तो पुलिस लाइन्स में जमादार लगा दिया जो उसकी बर्दाश्त के बाहर था और दूसरी बार लौट आया कि उनके बेटे के निजी प्रकाशन में किताब कागज़ ढोने की ज़िम्मेदारी सौंप दी, कि फ़िलहाल ये करो। बड़े ने खूब समझाया कि पूरा सूबा उनके अंडर है, देर सबेर कहीं पुलिस में भरती कर देंगे, पर रतिलाल न माना। बाकी पुलिसिओं के संग आराम से बिस्तर लिहाफ बिछा ओढ़ के सोता था, चुपड़ी रोटी मटन चिकन तोड़ता था, पर ये तो प्राइवेट है, सरकारी करिए, तनख्वाह भले ही इससे कम हो। ये ही करना है तो बड़े का घर बेहतर — हमारे गाँव के हैं, हमारी जात के हैं। रतिलाल की बेटी त्योहारों पे माँ की उँगली पकड़े बंगले में चली आती तो बड़े सर को पापा कहती और मेमसाहिब को मम्मी और वो बुरा नहीं मानते। वही लगायेंगे कहीं। तब तक उनकी सेवाटहल ठीक। दादा दादी भी हैं, उनकी भी देखरेख। सब करेंगे, घर बाहर के काम, दौड़ दौड़ कर। बिजली घर में पूछ आओ, टेलीफोन ऑफ़िस में दिखा लाओ, दूध अंडे ले आना, बेल सुतली से बाँध देना, सेंवैयाँ पका देना, तालों में चाभी लगा देना, अख़बारों को रद्दी में बेच देना, भुट्टे सिंकवा के गरम गरम लपक के लाओ, बक्से उतार दो, हीटर चढ़ा दो, ज़रा पाँव की उँगलियाँ चटका दो, लो बाल में तेल लगा दो, दिये की बाती बना दो, पूजा के बर्तन राख से मांज लाओ, सब करेंगे, और जो रह गया वो भी करेंगे और एक दिन ज़रूर ही सरकारी खूंटी मिल जाएगी, तू सबका पालक। क्या क्या कहें कितनों की?

क्योंकि वो भी तो थे जो चाचा जी, भैया जी, भतीजे, बेटे जी, जीजा जी, बच्चे, हम तुम्हारे काका, बाबा, अनुज, साला हैं, ये तुम्हें, आपको, करना ही होगा करते बड़े के पास रिश्तेदारी फ़रमाइश में आते रहे। अब इनकी भी शुरू कर दें तो सिलसिला ख़त्म न होने का।

गरज़ ये कि सब थे वहाँ, जो जहाँ जहाँ लग चुके थे वहाँ से मोहब्बत में आये, मदद करने आये, फ़र्शी लगाने आये। एटॉमिक, जल बोर्ड, बीएसएफ, एजी ऑफ़िस, कलेक्ट्रेट, स्वास्थ्य, आबकारी, विकलांग विभाग, वित्त, वाणिज्य, लोक प्रशासन, और क्या क्या कौन कौन और उनके मालिक भी, जो अपने लगाये चाकरों को दूने हक से बालक ये हटाओ, गड़बड़सिंह बियर लाओ, कर रहे थे।

यों समझा जाए कि पार्टी में शरीक मेहमानों और सेवकों का कहीं न कहीं आपस में जुड़ता तार था और छेड़छाड़, फटकार, हिदायत, नसीहत, हर चीज़ की गमक थी। जितने मेहमान, उतने सेवक, बड़े का घर रौनकमहल। और दरवाज़ा तो खुला है ही कि जो चाहे अन्दर जाए आए, हवा, खुशबू, लोगाँ, डोंगा, जहाँ कालीचरण कश्मीरी मसाला भून रहे हैं, नंदन सिंह फ्रिज से बरफ़, दही बड़े, ठंडी वंडी चीज़ें निकाल रहा है, और सुशीला, जो कंठे राम की बहू है, नाज़ुक काँच के गिलास धो के पोंछ रही है, और लीलावती, उसकी सास, कंठेराम की पत्नी भी आज गोड़ों के मुसलसल दर्द के बावजूद पहुँची है पर जब देखो पैर पसारे, बॉसिंग करती नज़र आती है। कृपाशंकर खाने कमरे की कैबिनेट से क्रिस्टल मग्स ट्रे पे सजा रहा है और लाल्टू उनमें बियर ढालेगा। क्या क्या कहें, कहें तो कहाँ रुकें? क्योंकि जल्दी तो किसी को नहीं है पर देर दोपहर में, शाम की तरफ़ जाते हुए, जनता उठने की सोचने ही लगेगी और तब सामने के दरवाज़े से निकलते हुए पान की गुमटी पे रुकना होगा जहाँ बनारसी कि मघई कि मीठा पत्ता, मिनरल वॉटर की बाल्टी में धो के, फिर पोंछ के, फिर...। अब ये सब कहें तो किसकी छोड़ें — कत्था, चूना, गुलुकंद, सुपारी, इलाइची, लवंग, पेपरमिंट, मुलैठी, कीमा, ज़र्दा — कोई अन्त नहीं।

सब है पर आज की बाज़ी, दोहराना होगा, यादव जी की बाटियों ने जीती है। उनके आसपास ऐसे कहकहे छूट रहे हैं कि वो खवातीन जो अपने होंठों को समेट के रखती हैं कि उम्रयाफ्ता झाईयाँ न पड़ जाएँ — बांछे खिलाने में हँसी की लकीरें खिंच आती हैं, गहराती हैं और अटल हो जाती हैं — वे भी दिल खोल के हँस रही थीं। यानी जबड़े फाड़ के, झुर्रियाँ बिछा के।

'अम्मा का सर खिड़की की तरफ़ कर दो'।

विदेशी तक बाटियों के आगे अपना मुल्क, अपनी संस्कृति, सब हार गए।

विदेशियों को दरगुज़र जानबूझकर किया गया है। वे गोरे हैं। उनकी ले बैठो तो फिर वो ही वो, क्योंकि दुनिया उनकी हो चुकी है। उसे बना वे रहे हैं, बिगाड़ वे रहे हैं, और बनाने का पर्याय वे हैं, बिगाड़ने का बाकी, क्योंकि केन्द्र वो हैं और केन्द्र से मूलकथा तय होती है, बाकी बाकी हैं। पतंग, दशमलव, चाय, शून्य, टंकण, बारूद सब इधर से आये, पर जब 'केन्द्र' में पहुँचे तभी से दुनिया में आए माने गए। सारे रंग बाकियों से आये — काले, भूरे, पीले — मगर केन्द्र का अ-रंग न-रंग असल रंग मान लिया गया। केन्द्र और बाकी, वे

यथार्थ, ये बेमज़ा, बेरंग, बेकद्रा। स्मृति वहीं से, विस्मृति वहीं से। प्राचीन यूनान को जिन्होंने अपनी सोच की धरोहर मान रक्खा था, वे भूल गए उसे, सदियों सदियों, और अरब थे जिन्होंने अपने खज़ाने में उसकी याद संजोयी, वर्ना कौन सा पुनर्जागरण पश्चिम में कभी होता? पर हुआ और वो केन्द्र में था इसलिये अरब भी बाकी हुए।

मगर लास्ट लंच में वैर वैमनस्य क्यों लाया जाए, और विदेशियों की खुशकिस्मती कि उनकी ज़ुल्फ़ों में सूरज विराजमान हुए, तो जो आये, उनका खूब स्वागत रहा, और ऐसी पार्टियों में विदेशी होते ही हैं।

उन्हें देख रीझ लो पर उन्हें कम-इस-कम अभी केन्द्र न होने दो, तो उनकी फेहरिस्त क्या कहें क्यों कहें? भ्रमण करने दो उन्हें खिली धूप में जलपान मिष्ठान पकवान के खेमों में। बाटियों सी आँखें निकलने दो बाटियों को देखकर कि ये क्या अजूबा और मज़ेदार मिर्ची लगने दो।

बेटी के साथ एक ऐसा ही गोरा यानी अ-रंग न-रंग वाला आया था। ऐरिल्ड नाम। पर जब गायब रंग सबसे मुफ़ीद रंग बना बैठा है तो नम्बर पा ही लेता है। बड़े प्रेम से सब उससे मिल रहे थे। सर पर बाल थे जिनमें धूप उलझ गयी थी और आँखों पे चश्मा नहीं तो नीली आँखें लहकें मार रही थीं। वो वाह कितना सुन्दर, वाह कितना कमाल, वाह कितना स्वादिष्ट करता, तो कुछ लोग जो उससे हाथ मिला रहे थे हाथ पकड़े रहते और हँसते जाते।

'अम्मा से मिला दो'।

कहाँ के हो भाई, किसी ने शुरू में ही पूछ लिया था। ऐसे नहीं, ऐसे — वेयर डू यू हेल फ्रॉम ब्रदर? और फिर लोग पूछने लगे कि आइसलैंड है कहाँ जब वो बोला आपने आइसलैंड सुना होगा? वही एस्किमो लैंड? मगर कहाँ?

नो नो। एस्किमो लैंड नहीं। वैसे भी एस्किमो आर इनुइट। वो ग्रीनलैंड है।

तो आपके यहाँ कौन निवासी है?

प्रकृति।

और आप?

हम तो उसके बीच उग आई बेकार घास, वीड, हैं। नागरिक वो हैं। पानी, ज्वालामुखी, पत्थर। समझे न? पत्थर। वो हैं हमारे यहाँ।

हमारे यहाँ सब कुछ है। बड़े ने मेहमाननवाज़ी का बीड़ा उठाया। जो कहो, जो धर्म, जो जानवर, जो फल, सब्ज़ी, जो प्राकृतिक कृति, जो दु:ख दर्द, जो मैकडोनल्ड, जो बीमारी, जो बेईमानी। बहुआयामी, बहुल, बहुतायत। कमी की भी बहुतायत। अकाल, भुखमरी की, बाढ़ की, ख़ुशी की, मस्ती की।

बहन भी हँसी। खेल में हिस्सा लेने लगी। तुम दुनिया के किसी कोने की चीज़ का नाम लो, हमारे यहाँ है। बर्फ़, समुन्दर, कीवी, स्ट्रॉबेरी, नीली आँखें, आम...

आम? बड़े की पत्नी ने आम की उठाई। ये तो सब का बाप। दुनिया की सारी चीज़ें एक तरफ़, आम अकेला उन सब के मुकाबिल। लम्बी चौड़ी उसकी बटालियन। जितनी चीज़ें गिनाओ, हर के एवज में एक आम गिना सकते हैं।

आम हा! जितने विदेशी थे उनके शीष आदर से झुक गए।

फिर क्यों न जनता आमों की बखानती? पार्टी में आवाजें यों उठने लगीं जैसे सट्टा बाज़ार में बोलियाँ लगती हैं।

दशहरी।

चौसा।

'अम्मा से और नाम पूछो'।

तोतापरी।

लंगड़ा।

रटौल।

बादामी, रत्नागिरी, आम्रपाली, सिंदूरी, फ़ज़ली, नीलम, देशी, किशनभोग, सफ़ेदा...

मेरी तरह। हाहा हा। विदेशी को ज्ञान होगा कि हर मुल्क का अपना खुलापन है, कहीं कपड़ों का, कहीं कहकहों का। तो पहले कि कोई और करे मैं ही जो खुद पे फ़िकरा कस लूँ, उसने सोचा होगा।

हाँ तुम्हारी तरह, बहन ने चस्का लिया। यहाँ किसी से न आँख मिलानी थी, न बचानी। बल्कि आज तो उसके झल्ला झोला कपड़ों की भी इज़्ज़त थी। इन महफिलों में वो अजीब जानवर तो थी मगर देश विदेश घूमने वाली और हाई फ़ाई डिनरों में नज़र आने वाली। आज वो बाटिक की कत्थई और हल्दिया लुंगी पहने थी, उस पर राजस्थानी फूलदार नीला व काला कुर्ता, और किसी बेढंगी अदा में पूरे पर बैंगनी और लाल धारीदार दुपट्टा, एक तरफ़ कमर में खोंसा, एक तरफ़ कन्धे पे डाटा। न पुरबिया लिबास था, न पंजाबी, न साड़ी, न कुछ जाना पहचाना। न रंगों का कोई मेल, न रंगों का कोई दिलकश अनमेल। पर गोरा मित्र जो महँगे सूट बूट टाई में था, उसके संग साथियापन में था। उसका उसे कबूल करना उसे जग-स्वीकारी बना गया। दोनों भोगाँव से लौटे हैं जहाँ कुछ पुराने परिवारों में लड़कियों की शिक्षा को लेकर कुछ लिखेंगे। क्या, तो नहीं समझ आया, पर ये ज़रूर पता पड़ा कि आजकल लड़कियों की शिक्षा, परवरिश, हक-हुकूक, का बाज़ार गर्म है।

भोगाँव पर भी उसी तरह चल पड़ी जैसे आइसलैंड पर कि ये कहाँ, समुन्दर पार, और वहाँ भला जाया जाता है, और क्या और क्यों और खूब हँसी चली कि भोगाँव, भो...गाँव...हाहाहा।

अब बताइए, किसी ने एरिल्ड को बाटी का पत्तल थमाया, भोगाँव है आपके यहाँ? पर यहाँ है। और बाटी है? यहाँ है।

नहीं न, एरिल्ड ने हार मानी और अपनी सी पर उतर आया। मोड़ा अपनी पतलून को घुटनों तक और उकड़ूँ बैठ गया, जिस पर उसे दाद मिली कि हमारी तरह बैठ पाता है। बैठ गया यादव जी की बगल में, और अब वो भी बाटियाँ बना रहा है और परोस रहा है और हँसी बाहर सड़क तक गूंज रही है कि विलायती महाराज पधारे हैं।

मगर अम्मा लेटी रहीं, उनकी पीठ इस सारे जश्नो-कारोबार से अघियायी।

दरवाज़ा नहीं नाचता। उसके बीच से लोग हवा रंग हँसी धूप मक्खी महक भुनगे धूल के कतरे नशे के टुकड़े बातों के पुचके आलू कचालू सब गुज़रते हुए। दरवज़्ा पाटोंपाट खुला।

शान्त, स्थिर खड़ा। सदियों का सौम्य समोये। सब देखता, सुनता, बेसिरपैर की खुशहाल बातों के सिर पैर समझता। जो एक पल को सुनते हैं, उन्हें सन्दर्भ नहीं सूझते, और इस माहौल में उन्हें सूझ की पड़ी भी नहीं, और इस ज़माने में ज़हमत है सूझ की जूझ, पर दरवाज़ा चिरकालीन, संकुचित आँखों से नहीं देखता, अनुपस्थित पहचानता है। अनुभवी, बुज़ुर्ग, पुख्ता, आलिमाना।

अन्दर रविशंकर बज रहे हैं। किसी पत्नी को वे मनहूस लग गए हैं। तो अब शम्मी कपूर गा रहे हैं — अई यय्या करूँ मैं क्या सुक्कू सुक्कू। कब वो सूफ़ी कव्वाली में तब्दील हुए, पता नहीं चलता। पर जब सिड और उसकी मंडली उसे बदल कर जग को झकझोरने वाला डांस म्यूज़िक लगा देती है, तो सब नाचने लगे हैं। शुरुआत नैवर-रिपीट सलोनी सुन्दर ने की जो एक्स गवर्नर की यंग-एट-हार्ट एक्स बीवी हैं। वो साड़ियाँ पहनती हैं और ये ऊधमी चर्चा का विषय है कि क्या इस जग में किसी ने उन्हें अपनी कोई साड़ी रिपीट करते देखा है?

ऐसी चर्चाएँ कोड भाषा हैं जो सिर्फ़ उसी ज़बान में बोलने वाले समझते हैं। जब कि बाकी सोचते हैं किस बात पर यों घुरघुरा के हँसा जा रहा है? मसलन ब्रिगेडियर तोताराम झपोटा के सामने आते ही, या बस नाम उठने पे, वही संवाद दोहराए जाते हैं। कि वो सोते भी हैं एकदम कड़क प्रेस की हुई पतलून और कमीज़ में और एक पे बेल्ट बंधी होती है और एक पे टाई और रात के रात-तम पल पे अचानक पहुँच कर बहुतों ने इसकी पुष्टि की है। पर इसके बारे में मतभेद है कि पॉलिश किये, फीते बंधे जूते बिस्तर में उतरते हैं कि नहीं। फिर कोई कहता है कि अंडरवियर भी प्रेस कर के पहनते हैं और उसे भी नहीं उतारते। और हर बार की तरह कोई फेंकता है कि और नोट करा जाए कि उनके चार बच्चे हैं, जिस पर हँसी में डुबो कर ऐतराज़ निकलते हैं कि बच्चे हैं, चुप चुप, और आस पास फिरते बच्चे बेतरह नादान, मासूम, बहरे, इत्यादि लगने लगते हैं।

ऐसे चलती रही वो दोपहरी जैसे शाम और रात भी संग डोलेंगे और जैसे शम: हर रंग में जलनी है सहर होने तक। सबका आपस में बस प्रेम और लाग। सारी शिकायतें लानतें गायब, धूप-चश्मों में नहाते मेज़बान, मेहमान, कद्रदान, सद्रजान, एक के ऊपर एक, पर कोई गिला नहीं कि हटो हटो। उंच नीच, भेदभाव, ये तेरा ये मेरा नहीं, फटेहाल फ़ैशन भी फ़ैशन, न्यू यॉर्क पेरिस छठा भी लटालह, और सब वाह ये लंच पार्टी! और मस्त संवाद और अम्मा को बार बार उठाने का उल्लास।

'अम्मा को उठाओ'।

ऐई, सरसों का तेल तुम कहाँ से लेती हो?

'अम्मा के कमरे में है, उनसे पूछो'।

गन्ने का रस मेरी जिन में डाल दो।

'अम्मा को दे आओ'।

जिन पियेंगी?

हा हा हि हि। इतनी मिलावट कि आर्गेनिक लेती हूँ।

'अम्मा मानेंगी'।

गुलदाउदी हमें देते जाओ।

ऑस्ट्रेलियाई पासपोर्ट हो जाएगा। पर भूला थोड़े है हमें। रोज़ फ़ोन करता है।

वो अपनी माँ का खयाल करता है। ये अपनी माँ का। (यानी बड़े का विदेशी बेटा और बड़े।)

वो धीमे खर्राटे लेती है। असल कि नकल आजकल कोई नहीं समझता। कि उसे सोता पा, कमरे में जो आये, दबे पाँव लौट जाए।

सो रही हैं।

सोने दो।

अरे हरदम सोती हैं।

कुछ नहीं करना चाहतीं।

बड़े को चैकबुक चिन्ता है। अम्मा का साइन चाहिए, हर बार उठाना पड़ता है। सिड से कहके एक संग कई चैक पर हस्ताक्षर ले लेने चाहिए। सही जगहों में पैसा लगा दें, वर्ना क्या होगा, बैंक में सड़ेगा, अम्मा को इस सब की पड़ी नहीं। उसे किसी चीज़ की पड़ी नहीं। ये ही तो मुश्किल है।

बेचारी।

पापा के बाद से।

'नीली आँखों वाले से मिलाओ'।

नो नो लैट हर बी।

'मकसू का नाम लो, उठ जाएँगी'।

अरे खाक किसी के नाम पर उठेंगी। हम क्या जानें क्या नाम लें कि वो उठें।

गहरी नींद में हैं। खर्राटे सुनो।

जैसे सीटियाँ निकलती हों मुँह से।

ज़रूरी घोषणा। जाने के पहले सब अपना अपना एलो वेरा प्लांट ले जाएँ।

मुझे क्रिसैन्थमम दे दो, मेरी सेहत उससे ज़्यादा निखरेगी।

कान में व्हिस्की डालो, सारी मैल ऊपर तैर जाती है। नशे में।

'अम्मा की इअर ड्राप डाली?'

तुम निबाहती हो। आदमी समझते हैं वो कर रहे हैं। तुम न करने देती तो ये ऐसे कर सकते थे?

हम एक शर्त पर नाचेंगे कि सब लेडीज के संग बारी बारी से।

यहीं सवेरा करना है क्या?

'कह दो मधुसूदन मिलना चाहते हैं, तब उठ जाएँगी'।

नहीं उठेंगी, पड़ी रहती हैं।

भाई तुम्हारी जलेबियाँ लाजवाब मगर जूतियाँ उससे भी बढ़कर।

हर्बल है, नुकसान नहीं करेगा।

जूतियाँ? हर्बल?

वहाँ पेरेंट्स होम्स में रहते हैं। वही दिन यहाँ भी आ रहे हैं।

पानी की टंकी में बन्दर मरा पड़ा था। तब से बिसलेरी आता है।

वो पाकिस्तानी हैं। जो बहुत अ-हर्बल है।

आ जाएँ तो अच्छा, हमारे बच्चे तो इस तरह हमें रखने से रहे। एक रखना चाहेगा तो उसका पार्टनर लड़ पड़ेगा।

खूब सेवा करते हो भई माँ की।

फ़्लैट किस फ़्लोर पे है?

हँस रही हैं नाचती जोड़ियाँ।

सेकंड, गुलदाउदी कहाँ रखेंगे? बैल्कनी छोटी छोटी।

लिफ़्ट नहीं है।

तो आंटी कहाँ जाएगी? (यानी बड़े की माँ)

चढ़ेंगी धीरे धीरे, पर गुलदाउदी...

और कहाँ जाएँगी, हमीं हम हैं उनको देखने वाले। (यानी बड़े की माँ को)

नौकर सब तो जाएँगे नहीं।

हमीं नौकर बनेंगे, और क्या।

पर चलो तुम्हारे परिवार वाले आते हैं, हैल्प हो जाती है।

घर का खाना सूतने। दोस्तों को भी ले आते हैं। यहाँ आने के लिए परिवार वाले, अपनी लाइफ़ के लिए मॉडर्न अकेले।

बिस्तर से नहीं उतरती, सीढ़ी क्या उतरेगी। (बड़े की माँ)

बेटा ने इतनी सुन्दर छड़ी दी है पर मानती नहीं। (बड़े की माँ)

दरवाज़ा चुप है। तटस्थ, सब देखता सुनता। पीठ पीठ किये है।

छड़ी पड़ी है, सिड ने उसके करतब आज भी दिखाए हैं। उसने ये नहीं दिखाया है कि उसे उठा के सीधा हवा में ताना भी जा सकता है, पेड़ माफ़िक, पर क्या सूझ कब कहाँ से आ जाती है, इसकी किसे ख़बर?

OceanofPDF.com

एक वक़्त था, कहते हैं, जब सब निर्धारित था, और कोई हेर का फेर नहीं, ऐसा कहा जाता है, माना जाए या नहीं, ये आप हम तय करें। कि कभी ऐसा था कि एक एक इन्सान अपनी भूमिका में रचा बसा था और जानता था कि किसके संग क्या सलूक करें। मसलन जापानी जानता था या जानती थी कि सलामी में कमर किस कोण तक झुकाएँ और फ़लाना मोड़ पे अदृश्य हो गया है तो भी कितने पल, जस का तस झुके रहें। बड़ा जानता था कि कहने के पहले बस आँख उठाने भर पर छोटा तपाक उठेगा और आज्ञापालन कर देगा। पेड़ जानता था बूँद गिरी, अब फल पका के गिराओ। इत्यादि।

मगर अब तो सारी प्रकृति गफ़लत में है। बूँद कब आयेगी वो समय तय नहीं, आ के रुकना भूल जाएगी या कि झपक मार के आँख बंद कर लेगी और फिर पलकें झपकाना भूल जाएगी, ये नहीं पता। पेड़ ठगा खड़ा रहेगा कि फलों को किधर बढ़ाये, पक्षी ठगे हवा में थम जाएँगे कि इधर बर्फ़ पिघलेगी या उधर अभी सूखा होगा तो किधर उड़ें, और ढेरों इस उलझन के पल में जान से जाएँगे और न बर्फ़ न पानी गिरेगा, पक्षी ही टप टप गिर मर जाएँगे। बैंगन भूल जाएगा बैंगन है और सुई लगेगी तो चीख मारेगा और कद्दू हो जाएगा। बैंगन तो था ही बेगुण, यहाँ तो सारे फल सब्ज़ियाँ अपने स्वाद भूल जाएँगे और केला आटा लगेगा, पालक तेज़ाब। लौकी तक मुचक जाएगी और भूरे रंग का स्वाद देगी जो घूरे का है। यानी जिसे देखो वही अपनी पहचान से जाएगा और उसके गड़बड़ाने में साथ वाले और गड़बड़ायेंगे और फिर पता नहीं चलेगा कि मुर्गी पहले थी कि अंडा। बल्कि अंडे का मुर्गी से कोई वास्ता कभी था? बल्कि मुर्गी का मुर्गे से भी कभी? इतना भी ग़नीमत है, पर जब मशीन, जो मशीनी होने पे नाज़ रखती है कि हममें इंसानों वाली उच्छृंखलता कि कभी ये कभी वो नहीं है, जो हम जानते हैं वही जानते हैं और रचनात्मकता का मर्ज़ हमें नहीं कि आज ऐसे कहेंगे फिर वैसे, की समझ को भी प्रदूषण लग गया है, तो विधि की चाल क्या? सेल फ़ोन एक पल कहेगा ये नम्बर पहुँच के बाहर है, अगले पल ये नम्बर मौजूद नहीं, और ठीक एक पल बाद नम्बर मिला देगा! तो ऐसे में जो हुआ है वही हो सकता था — भूमिकाओं का हरण-अपहरण, और उनसे जुड़े रिश्तों का उलटन-पलटन। इन्सान कैसे हुआ जाता है, जानवर कैसे, और छाल, राल, कमाल कैसे, आज लोकतंत्र में लापता हैं।

बात ख़तम समझी? पर ख़तम हुई कहाँ? पात से पात — जैसे केले के झाड़ में — और बात से बात। ऊपर सी रेलमपेल में कोशिकाएँ गड़बड़ा गयीं। अरबों करोड़ों कोशिकाएँ जो कायनात को जोड़ें हैं, उनकी बाँट तय थी। इतनी जुड़ें तो ये आकार और ये इकाई और ये अस्तित्व। मगर कोशिकाएँ भी हिल गयीं और बैंगन कद्दू लौकी ज़हर का लेखाजोखा चकरा गया। क्या संग रहें तो क्या बनेंगे, भूल गयीं। कभी इस जोड़ में, कभी उस जमाव में। इनकी

कहो तो ये कहानी, इनमें से कुछ कोशिकाएँ उन कोशिकाओं से जोड़ दो तो अलग कहानी। पीठ को पेट से जोड़ दो तो एक कहानी, पेट को दीवार से तो और, और पीठ को बाकी से तोड़ दो तो और और।

लंच पार्टी पर पूरे समूह की कोशिकाएँ एक जगह बटुर गयीं थीं और जो इकाई बनी उसका काम था खुश और खुर्रम होना। बस पीठ अपने फिरे वजूद में थी। अकेली, अपने पास के हर अंग और संग से अलग और सारे कुटुंब से भी अलग जो फुलाने वाले इंजेक्शन से कुप्पा होये रहे हैं। पीठ को खाने पीने मेला मनाने में खुद को डालने का ख्याल उस जीवन में लौटाता है जो बस, अब और नहीं। कुड़मुड़ायी पीठ पर आक्रमण। पस्त त्रस्त पे हल्लाबोल।

ये हँसी नहीं, है हाहा-कार। पीठ को घिसता, रेत बनाता। वो उसमें धंसती, रेत और फैलती। उस पर चला जा सकता है। वो चल सकती है, चलती चले। नंगे पाँव। हवा चले। रेत फिसले। वो उसमें धंसे। उस पर लदा बरसों का कबाड़ रेत रेत गिरने लगे। सरक जाए, लुढ़क जाए, वो आज़ाद होती जाए, वो छोटी होती जाए, वो हल्की होती जाए। इतनी हल्की कि वो रेत के भीतर से उठने लगे। जैसे समाधि से। रेत के कण के संग उड़ने लगे। उसके मुँह से सीटी के स्वर निकलें, अनजान दुनिया में लहराते, हवा को हवा से जोड़ते।

उस आखिरी लंच पार्टी के चर्चे अरसों बरसों लोग करते न अघाते। सब कुछ हुआ और हर बयान में कुछ न कुछ रह गया तो बयान ख़तम होने को नहीं आये। सब पहुँचे थे, सबने रंगरलियाँ मनायीं। कूड़े में फिंके कुल्हड़ पत्तल ऐसे ऊँचे पहाड़ बन के खड़े हो गए कि हमसे बढ़कर कौन है और उनकी शान में नगरपालिका ने कई दिनों तक उन्हें हटाने की गुस्ताखी नहीं की। घास पत्ते तिनके अलग सुरसुराते रहे जैसे नाच गाने की किरचें उनमें फँसी अभी भी चमक रही हों।

पर पार्टी के बाद से एक नयी गहमागहमी शुरू हो गयी। पार्टी शादी सरीखी। वो भी अफ़सरी जाने की पार्टी, तो शादियों में शादी। कह सकते हैं कि ऐसा अफ़सरी जलसा पूरा होता है तो दूल्हा दुल्हन को लेके निकल गया वाला हाल हवाल हो जाता है। झाड़ूएँ फिरने लगें, कनातें शामियाने उखड़ने लगें, मंडप हटाया जाए, और कुर्सियाँ सजावटें दरियाँ ट्रकों में लादकर भाड़े भित्ते पे लौटने को लदें तो नयी हाकाहाकी मचती है। उसमें शादी उपरांत वाला विलाप बजता है। यानी रस्में हो चुकीं, शादी-घर, जहाँ शानदार पार्टी दी थी, छोड़ कर सादे मुकाम की ओर प्रस्थान होने का अब मंज़र शुरू।

मतलब लंच पार्टी के बाद से बड़े का घर खाली होने चला और मज़दूरों की उठापटक से भर गया। ढेरों धूल उड़ने लगी और बोरों दफ्तियों में सामान बाँधा भी, सिया भी जा रहा था।

पुरानी भरोसेमंद फ़ौज, विलासराम, कंठेराम, रूपा, सुशीला, उनके बच्चे आदि अब इसलिए थे कि बाहर से आये कामवालों पे नज़र रखें — खरोंच चटक न लगे और सरेराह कुछ उड़े न। सब धूल बुरादे के पाउडर में सने और साहब मेमसाहब से सँभलते।

पार्टी तो नहीं पर चाय नाश्ते के दौर, इंजन पहियों की गुर्राहट, गरम पारे और ठन्डे निहोरे, इन सब के होते हवा फिर सनसना उठी।

एक घर से दूसरे में समाना आसान नहीं होता। क्या जाए, क्या छोड़ा जाए। वही हुआ जो होना था क्योंकि हम लाख खुद को अनूठा मानें, हैं वही सब जैसे। मियाँ बीवी बज उठे। अर्थ बेअर्थ अनर्थ की लेकर और कोई गली नुक्कड़ नहीं छोड़ा जहाँ उनकी भनकार न गूँजी। एक पेंटिंग और फ्रेम वाले फ़ोटो और चमड़े के पूफ कहलाने वाले मूढ़े और नक्काशीदार गुलदान उठवाता तो दूसरा याद दिलाता कि सिड और उससे छोटा जब छोटे थे तो रात पानी माँगते रहते पर आपकी नींद नहीं खुलती। दूसरा कहता कूड़ेदान बाल्टियाँ पावदान जूते की अलमारी पैक हो, तो शादी के लेनदेन का पोथा खुलता कि बड़ा दिखा दिखा के हीरे का सेट दिया था जो पुराना धुराना निकला, उस दिन दिखवाया तो पता चला, इतनी शर्म आई।

फेंको सारी फ़ाइलें, किसी काम की नहीं।

मेरा लाया सामान चारों तरफ़ है, मेरा हक है तय करना।

वहाँ जगह नहीं, बस तुम्हारी तो आदत है सब भर देंगे।

जैसे यहाँ एक ज़रा से कोने में अपना सब समेट रखा है वहाँ भी होगा।

घर भर में तुम्हारा करकट है।

ये किसका है? और ये? सुशीला किसका बकवास हर बॉक्स, अलमारी में है? और ये? और ये अम्मा का जो वो देखतीं भी नहीं...

अम्मा की बात न करो। वो कोई जगह नहीं लेतीं, कुछ इस्तेमाल नहीं करतीं।

पर उनका सामान तो रखा है हर तरफ़। और चलेंगी तो वहाँ अटने, अपने सारे तामझाम के साथ।

और गमले सर पर उगायेंगे। मर जाएँ पर देना नहीं है...

सिड रैकेट झुलाता अन्दर पहुँचा तो गर्मी चरम पे थी। नाऊ व्हाट? क्या हुआ, सुशीला से पुछा। जिसने हँसी दबाते हुए कहा मेमसाहब कह रही हैं खिचड़ी डालो, साहब कह रहे हैं पराठे बना दो।

ऐई झूट न बोलो, मैंने कहा जो बनाना है बनाओ, मेरे लिए सिर्फ़ चाय। बहू ने फ़ोन एक पल अलग करके घुड़का और फिर वापस सात समुन्दर पार को सारा बिगड़ा हाल बताती गयी।

रबिश! बड़े दूसरे कमरे में लपके। मैंने कहा पराठे आर मोर सेंसिबल। खिचड़ी ठंडी हो जाएगी।

इतनी धूल उड़ रही है, पराठे खुले बनते हैं, बहू ने फ़ोन दोबारा मुँह से हटाया। अम्मा भी हल्का खाती हैं।

अम्मा पराठे की सुगंध पर ही उठ जाएँगी।

अरे वो नहीं उठेंगी।

व्हाट डू यू मीन, बड़े यों आगबबूला हुए कि जैसे न जाने क्या है इस कथन का सबब।

सुना सुना, बहू ने अपने छोटे बेटे को सात समुन्दर पार सुनाया। इस तरह ये मेरे पीछे पड़े रहते हैं।

मॉम क्यों उसकी पार्टी ख़राब करती हैं। वो वहाँ एन्जॉय करना चाहता है, आप यहाँ के प्रॉब्लम से उसे तंग करती हैं, सिड ने टोका। हँसने हँसाने की कोशिश की। सोचिये, बैठा होगा गोरी गर्लफ्रेंड के साथ, बियर पीता, और आप धूल खिचड़ी से टेस्ट किरकिरा कर रही हैं।

कोई माँ ऐसी होगी? इनकी वजह से उसकी गर्लफ्रेंड हो ही नहीं सकती। अपनी चिन्ता में घुलाये रखती हैं। जब देखो तब टेलीफोन पर शिकायतों का दफ़्तर खोल लेती हो।

पराठे, सुशीला ने धीमी आवाज़ में जोड़ा।

सी, ईवन दे आर ढीठ नाउ एॅन्ड डोंट रेस्पेक्ट मी। बहू का स्वर देश विदेश में गूँजा।

मेबी, सिड ने फिर ठिठोलिया रुख लिया, मेरे छोटे भाई ने काली गर्लफ्रेंड बनायी हो। या चिंकी आईड।

कभी नहीं। वो मुझे सब बताता।

या बॉय फ्रेंड। सिड ने और छेड़ा।

उसके छोटे भाई के दोनों पेरेंट्स भौंचक्क और अस्थिर लगे।

मूर्तियाँ साफ़ कर दीं, बड़े ने डपटा। विषयांतर।

माता जी के कमरे वाली बची है।

उनके कमरे में आखिर में पैकिंग होगी। तब उन्हें उठाएंगे। जाओ चाय बनाओ।

आदमी अपनी बनाई मूरत की पूजा करता है। भगवान ने जो मूरतें बनाई हैं उनकी नहीं। ये किसी के मन से उठा और धूल में उड़ा।

साब पत्ती ख़तम।

कंठे राम क्या बुदबुदा रहे हो? परदे उतर गए? छल्ले गिन के रखो।

तो लाओ दुकान से पत्ती, बड़े ने आँखें तरेरीं और बीवी की तरफ़ इशारा किया।

बीवी ने फ़ोन लिए लिए मुँह फेर लिया।

सिड ने बटुवा निकाला।

दैट इज़ व्हाई देयर इज़ नो रेस्पेक्ट। चाय नहीं मँगा सकती।

रोज़ मैं ही दे रही हूँ। लंच के बाद बख्शीश भी मैंने ही दी।

और जो चुपचाप अपनी गुल्लक में भर रही हो?

मेरा अपना अकाउंट है, तुमसे चुराने की ज़रूरत नहीं।

अपने अकाउंट से एक पैसा नहीं निकालती। अपने पर खर्च बस, नहीं तो दाबे हुए हैं।

बच्चों के सारे गिफ्ट्स मैं लाती हूँ, ये शर्ट जो सिड पहने है, अम्मा का वो सीट कवर...

वो ऑस्ट्रेलिया से आया है, क्यों झूठ पर झूठ उगल रही हो।

सी हाउ ही टॉक्स, मैं कमोड ऊँचा करने को जो अस्पताल से लायी हूँ, उसकी कह रही हूँ।

अस्पताल पद्दू भाई का है।
आप दोनों स्कूल के बच्चों की तरह हो जाते हैं।
तो क्या वो मुफ़्त देंगे चीज़ें?
नहीं जी, मुफ़्त तो मैं ही देता हूँ।
तुम आदमी लोग मोटे खर्चे करके समझते हो, सब तुम्हारा किया है। जितने अनशैडूल्ड खर्चे आते हैं, मेरे मत्थे पड़ते हैं।
जैसे?
जैसे खाने के वक्त पहुँचने वाले तुम्हारे रिश्तेदार।
अच्छा तुम्हारे नहीं आते?
और उनके रोज़ बदलते मित्र।
अपनी कंजूसी अपनी रेपुटेशन के लिए छिपाओ मैडम।
अम्मा के लिए शहद...
अम्मा का नाम मत लो।
क्यों, शहद मैं लाती हूँ।
क्योंकि तुम्हारे कज़िन का फार्म है।
जो भी हो, अम्मा...
और अम्मा जो सब यहाँ देती हैं? बड़े गरजे।
वो तुम जानो। तुम्ही उनसे साइन करा के उनकी पेंशन इधर उधर लगाते रहते हो।
ओहो आप दोनों।
मेमसाब आप चाय लीजिये।
डर्टी माइंड। अम्मा चाहेंगी उनका पैसा बर्बाद हो? वो ही साइन करती हैं। अच्छी जगहों में लगा है उनका पैसा — गाज़ियाबाद वाली ज़मीन, नॉएडा वाला फ़्लैट...
वाह वाह उन्हें पता है कहाँ जा रहा है उनका पैसा।
सब उन्हीं का है, उन्हीं के नाम।
वो इस्तेमाल करेंगी! चलो, साहूपुरी वाली उनकी मकनिया में रहें। कुल्हिया से जिस फ़्लैट में ले चल रहे हो उससे तो अच्छा है।
चाहेंगी तो वहीं चलेंगे। और वो नहीं जाएँगी तो पोतों को देंगीं। मैं कहीं नहीं इसमें। न अम्मा से, न अपने बेटों से साड़ी गहने खरीदवाता हूँ।
अरे अरे द टू ऑव यू, सिड ने डाँटा।
क्या इशारा है? से इट खुलकर।
आप कुछ मत कहिये। आप कुछ मत करिए। फ़ोन पर दूर बेटे ने बीच बचाव किया।
कह रहा है आप कुछ मत करिए, बीवी ने कहा। बताने को कि मैं अकेली नहीं।
वहाँ बैठकर निर्देशक बनना आसान है।
यहाँ आ जाइये। छोटा भाई विदेश से बोला।
कह रहा है, सब छोड़ कर मेरे पास आ जाइये। बहू ने फ़तेह नज़र उठाई।
जाओ, तब पता चलेगा।

ओके, बीहेव। सिड की आवाज़ पे सब चुप हो गए।

मजदूरों में से कोई अपना वार्तालाप कर रहा था। उसका जुमला अलग गूंजा — राम हममें रमा रहता है इसीलिए उसे राम कहते हैं।

फिर वो सकपका के चुप हो गया।

लिहाज़ा रिटायर्ड जीवन की ओर अग्रसर दम्पत्ति ने ऐसी तानें उठायीं कि बाकी शोर चुप का पर्याय लगने लगा।

***रिवायतें** कैसे आती हैं, किसी ने पूछा होगा। गौरय्या से, उसे टका सा जवाब मिला। फिर पूरा भाषण भाषण देने वाले ने दे दिया।*

भाषण का सारांश यहाँ पेश है।

एक देश था मध्यकालीन वक़्तों में और उसके जंगल भी मध्यकालीन थे। जंगल पहाड़ी ढलानों पर बिछे हुए थे और उनमें फलते फूलते वनस्पति के यों नाम थे — ओक बीच पोपलर पाइन चेस्टनट लाइम। पेड़ों पर पंछियों का बसेरा था और गौरय्यों के संग साथ का साँझ और सवेरा था। चिंहचुह से वन गुलज़ार था और सबका सबसे लाग भरा राम सलाम था।

उन्हीं में एक गौरय्या खास प्यारी और सब की दुलारी हो गयी। सूरज तो उस पर ऐसा रीझा कि कभी एक लड़ी गिरा के उस पर झुलाता, कभी सुनहली फुहार में भिगाता, और कभी बस चमक चमक के उससे चुहल करता। इतनी चुहल करता, इतना उस पर मेहरबान होता कि वो ललछौंह परों की परी हो गयी। क्योंकि जो प्रेम की गलबहियाँ लेगा उसका रंग प्यारी पे घुल जाएगा। ख़ैर, अब गौरय्या और इतराती फिरती और पेड़ तो बड़े थे, वात्सल्य से उस पर छांही फेरते और बेतरह निडर वो उनकी शाखों पर फुदकती जाती तो उनके पत्तों पर भी ललाई दौड़ जाती, किसी किसी मौसम में तो ऐसी घनी कि लगे पत्ते नहीं लाल फूलों का झूराझूर मौसम है।

दूर दूर तक वातावरण ललछौंआ हो गया।

फिर कहीं दूर छोर से एक घुड़सवार आया। उसने दिगंत पर लाली देखी। उसकी मांसपेशियाँ फड़क उठीं। जो घोड़े को भी उमंगित कर गयीं और वो दौड़ा कि लाल सूरज में छलांग मारेगा। लाल वन का नशा दोनों की साँसों को बहकाने लगा। घुड़सवार के हौसले किसी क्षितिज पे नहीं रुक रहे थे क्योंकि उसके पास पैसा था और बन्दूक। पहले तो उसने पहाड़ी पर अपना घर बनाया। आलू बोये और आग जलाई, जिसमें आलू अपने जैकेट्स में झुलसने लगे, और इन्सान घिर आये लपटों के चारों ओर नाचने गाने।

लाल वन की लाल परी बड़ी बड़ी आँखें करके देखा किये। भला ही भला और प्यार बेशुमार बस जिसने जाना हो, डर और रुकना क्या जाने? फुदक फुदक जश्न की तरफ़ बढ़ी आयी। आँखें तन से बड़ी हो गयीं। गौरय्या क्या थी, बस बड़ी बड़ी उत्सुक आँखें और पंख। क्या बजता है, क्या डुलता है? बुज़ुर्ग पेड़ों की, सोंधी मिट्टियों की हिदायतों को किलकारी दे उड़ा दे। सूरज ने चेताना चाहा तो इतराई कि मियाँ तुमसे जलन की लाली फटी पड़ रही है।

घुड़सवार ने देखा वो तितली सी उड़ती आई। देखा कि आग की लपटें उसके नन्हे परों की फर फर से लाल लाल हो गयीं। देखा कि वही लाली जो लाल वन में व्याप्त थी उसके आसपास भर गयी। बात बात पे लट्टुआना उसका स्वभाव था और ये तो बड़ी प्यारी थी। घुड़सवार लट्टुआ गया। इतनी हसीन गौरय्या परी, वो उठा और नाचने लगा। लालपरी इसे आह्वान मान उसके सिर पर खिलखिलाती हुई नाचने लगी। फिर कन्धे पर, फिर नाक पर, फिर सीने पर। आग भी लाल परी की लाली अपने पे छितराने को, उछल उछल उसे छू कर हुड़दंगी नाच करने लगी। जश्न चरम पर आ गया।

जल जाएगी, कोई हँसा। स्वाद आयेगा, कोई और हँसा। बन्दूक को भी महबूबी चढ़ी। घुड़सवार ने बन्दूक की तबियत पढ़ ली। मस्ती में उसे ऊपर उठा के गौरय्या के नज़दीक ले गया कि वो भी नाचे गाये संग संग। पिद्दी सी मगर नाज़ नखरे आसमान में। बन्दूक की फूँक से गौरय्या की कमर और लचकी। हमीं नचा रहे हैं उसे, महबूबी में मग़रूरी बढ़ती गयी। इतनी मस्तियाई नाचती टोली कि बन्दूक ने हवा में नाचती परी को छर्रे पर नचा दिया और पूरा जंगल स्तब्ध रह गया।

कौन नहीं जानता कि जग भर में गौरय्या निडर घूमती घुसती है। घरों में घरौंदा बनाती है, कन्धों पे और पैरों के पास रस्सी कूदती चली आती है। आईनों में अपने से गपशप करती है और कभी बात बढ़ जाती है तो अपना ही सर पीटती है कि अपने को पीटूंगी, तभी तू पिटेगी, जिसमें शीशा भी बीचबचाव करते करते लहूलुहान हो जाता है। मगर

और ये ही इस भाषण का सार

लालवन में दिन दहाड़े या रातों रात रिवायत बदल गयी — गौरय्या डर का पर्याय बन गयी। रिवायतों में स्मृति समा जाती है। ऐसे कि याद नहीं आती, पता नहीं रहता, पर दिल सदी दर सदी डरता है। जैसे फिराक गोरखपुरी का कहना कि एक मुद्दत से तेरी याद आई न हमें, और हम भूल गए हों तुझे ऐसा भी नहीं। ये रिवायतों की कैफ़ियत। लाल वन की गौरय्या हर आहट पर तब से समझने लगी कि शिकारी आ रहा है और हर बन्दूक मर्दानगी दिखाने को है। झट झाड़ी में मुखड़ा छुपा लेती। सदियाँ निकल गयीं, शिकारी मर मरा गए, शिकार अवैध घोषित हुआ, बंदूकें दूरबीन बना दी गयीं या कैमरा, घुड़सवार बर्ड वॉचर बन गए, मगर गौरय्या डर बन चुकी थी। रिवायत चलती है, उसकी वजह ख़तम हो जाए तब भी। सालिमअली हैरान कि ये गौरय्या नहीं हो सकतीं जो मुझे देखकर सफ़ेद हो गयीं और तिनके से लिपट गयीं। पर थीं और हैं जब कि ये गौरय्या का जन्म-जात स्वभाव नहीं। वो तो लाल परी पैदा हुई थी जिस पर सूरज फ़िदा था और जिसके कारण वन गुलज़ार था। सूरज तक उस वन में अब बहुत मान मनौअल मिन्नत आरज़ू के बाद आता है और ज़ाहिर है बूढ़ा सा, निर्बल बुझा बुझा रहता है।

तो रिवायत ऊपरवाले की ईजाद नहीं न? भाषण देने वाले ने संक्षेप में कहा। ऊपरवाले ने एक तरह बनाया, धूप ने दूसरी तरह सेंका, मर्दानगी ने रिवायत का मर्दन किया। मर्दानगी लगभग हर रिवायत की तह में छिपी है, इस छिपने से अपने को कम मर्द नहीं कहती, भाषण वाला बोला। मस्ती डर हुई, नाच ढेर हुआ, ख़ुशी डूब गयी, और इसके घोल से अगली नस्ल पैदा हुई, जो घोल का कारण नहीं जानती पर उसी स्वभाव को पा चुकी है।

तो स्वभाव आदत बना।

आदत ही रिवायत है। प्रवचन पूरा हुआ।

सिर्फ़ पहली बार ताज़ी प्रतिक्रिया होती है। उसके बाद आदत। आदत दोहराने का नाम है। दोहराना ही रिवायत है। दोहराना खाली और बेमाने हो जाता है, पर आदत बनके चलता है। खटका हो तो क्या करना है, दुबक जाना है, लालवन की गौरय्या आज भी ये रस्म निभाती है। ये ही उसकी तहज़ीब तमीज संस्कृति। ये ही उसके आचार की नियमावली।

सब गौरय्या ही तो हैं। सबका झुकना उठना लड़ना प्रेमियाना रस्मो रिवाज़ उर्फ़ आदत उर्फ़ दोहराना ही तो है। तो जो कुछ जैसे चल रहा है उसे आप रिवायती निभान कह सकते हैं — दोस्ती, मियाँ बीवी, नोकझोंक, आपकी चाल, आपके बोल, प्रेमप्रसंग, उठकबैठक, ननद बुआ, बहू अम्मा, बड़े बेटे, उनके बेटे...

आज का कार्यक्रम यहीं स्थगित। कल फिर अपनी जगह इसी समय ग्रहण कर लें, अगले भाषण से आपको नवाज़ा जाएगा।

ऐ भाषी, चुप! उसका माइक हटा।

बातों का सच ये है कि सारे पहलू एक संग नहीं खुलते। सब पता भी नहीं होते। घर को सरकार को वापस थमाना और जो अब तक वहाँ जमे थे उनका विस्थापन, दिनों दिन चलता है। नल टपटपाने लगता है जैसे ज़िद में कि अब तो प्लम्बर बुलाओगे नहीं, कुछ दिन काहिली कर लें। टीवी गीज़र जवाब देने लगते हैं जैसे भान के कि उठ लेना है तो कौन चलने की ज़हमत उठाये। मौसम दूसरा आ पड़ता है मगर होता वही है जो पिछले साल आया था और दरमियानी दिनों में हवाखोरी पे निकल गया था। मकड़ियाँ अलबत्ता झल्लाई घूमतीं हैं कि जिन वस्तुओं पर अनंतकाल से सूत कात के लपेट रही थीं वो वस्तुएँ उनके पाँव तले से ज़मीन की तरह खींच ली जा रही हैं और वे धराशायी होने के डर से अपने निरे पाँवों से पित पित पितर पितर इधर उधर दौड़ पड़ती हैं। इसी से साबित होता है, वे एक दूसरे से कुढ़ कर कहती हैं, कि गाँधी की इस वक्त में कोई वक़त नहीं, और इतनी महत्त्वपूर्ण बात भी पूरी नहीं कर पातीं कि उन्हें भी ट्रकों पर बेदर्दी से पटक के चढ़ा दिया जाता है।

मतलब मकड़ियों को भी सब कुछ समझ नहीं आ रहा था।

या फिर सिड जैसे हो, जिसे समझ की परखच्चों को बटोर के, उनका तमगा बना के पहनने का कोई शौक़ नहीं। जो करना है करो, न बड़ा बनकर, न छोटा। जो महसूस कर रहे हो उसे बरतो, न कि उसकी अदायगी करो। सबने देखे हैं वो दुखी जन जो किसी सन्ताप पर रोते हुए चुपके से शीशे में झाँक लेते हैं कि पुरसन्ताप दिख रहे हैं और अपने कानों को खोलते हैं कि रोदन के स्वर असरदार हैं या नहीं और मुंडी अपनी पेशकश पर मस्त-मंडित होने लगती है तो अदृश्य हाथ उठा के उसे कस के पकड़ लेना पड़ता है कि जो चाह रहे हैं उससे अलैदा भाव न प्रकट हो जाए।

क्या फिर खूबसूरती जिसे अपने खूबसूरत होने का इल्म नहीं, वही असल खूबसूरती है? अपने को देखने लगी तो घनी भवों का घनत्व घटा, उभरी हड्डियों की नज़ाकत बँटी। तभी कह गये कवि फकीर कि सुन्दरता नख-शिख के आकार नहीं, न भाव चाहकर चाहने में, न कला तकनीकी माहिरपन में। बस हो चिंगारी, औघड़पन भी हो, आत्म पे केन्द्र नहीं, सिड की तरह सिड, सिड से ही मस्त अनजान। तो सिड अपना आता, ग्रैनी चिल्ल चिल्ल गाता, बहुत से वर्षों को लौरी टेम्पो में बँधते देख, माँ बाप की झकझक पे अपना बटुआ निकाल, अप्रत्याशित खर्चों का निवारण कर देता, तपाक सपाट जो कहना हो कह देता और इनमें से किसी का अपने को दर्शाता असबाब नहीं बनाता।

घर खाली किया जाता है तो दिल जो झूमने लगता है वो है धूल का। जहाँ चाहो घुस लो, जहाँ चाहो मोटी तह जमा दो कि तख्ती बन जाए जिस पर लिखें। चेहरों मोहरों पे भी अपना निज़ाम बरसा लो। मगर माँ के कमरे से उसे झाड़ पोंछ के अभी भी निकाल दिया जाता और भगवानों से दूर कर दिया जाता।

इन दो को छोड़कर हर चीज़ डाँवाडोल थी आजकल। खाना पीना उठना बैठना। खिचड़ी पराठे की लड़ाई नियम से उठके आदत से रिवायत की तरफ़ तेज़ी से बढ़ रही थी। उस दिन अमेरिकन सेंटर के तत्वावधान में क्रिकेट मैच होना था। एक तो अमरीका को क्रिकेट खेलाना, दूसरा अमरीका तो अमरीका जहाँ लक्ष्मी इस देश की सारी पूजा प्रार्थना ठुकरा के चली गयी थीं, तो सिड और उसकी टीम ऊँचा उड़ रहे थे।

'जल्दी से मुझे कुछ नाश्ता दे दो', वो नहाकर आंधी की तरह रसोई में गया, 'और मैं भागूं'। तो वहाँ सुशीला शीश नवाए, गुड़हल का फूल चढ़ाये, माँ काली की आराधना कर रही थी। दो पल सिड रुका, फिर चरखी की तरह फेरा मारा और बाहर के — खुले — दरवाज़े से कंठे राम को आवाज़ देने को कदम बढ़ाया। मुँह खोला ही था कि सर्वेंट क्वार्टर से कंठे के स्वर लहराए — ज्वाला कराल मृत्यु ग्रमशेषासुर सूदनम, त्रिशूलम पातुनो धीते भद्रकाली नमोस्तुते। मारे गए, ये तो अभी एक पैर पे खड़े होंगे और पूजा पूरी करके सिर पे। लीलावती सूजे पैर दिखाने लगेगी कि भैय्या जी, देखिये कितना दर्द होता है और एक कदम नहीं चल पाती, बस यहीं बिस्तर से बँध गयी हूँ।

तो?

तो 'मॉम', सिड ने टंकार लगायी जिस पर तौलिया कमर पे लपेटे बड़े, ताज़े ताज़े गुसल से निकले, ताम्बे की बड़ी सी लुटिया में गंगाजल लिए, किचन के पीछे तुलसीचौरा की तरफ़ जाते मिले, तुलसी पे और सूर्य पे जल चढ़ाने निकले। उन्होंने अपने बड़े बेटे को इशारे से

दिखाया, वो। पत्नी लॉन के कोने में पीपल के पेड़ के नीचे, तने पर बंधे कलावों के आगे झुकी दिखीं। 'मॉम', सिड ने शुरू किया, पर स्वर खिलाड़ियों की फ़ुर्ती से वापस निगले जब देखा मॉम की आँखें बंद हैं और वो जाप कर रही हैं। पूजा-घर से सुबह की पूजा करके निकली थीं। सर पर गोटे की किनारी वाला वैष्णो देवी से आया रेशमी उपरना, हाथ में पूजा की पीतल थाली, जिस पर फूल पेड़े दिया जल अगरबत्ती हैं। सिड खड़ा हो गया। फिर मॉम के संग संग चलने लगा। घर भर के भगवानों के आगे रुकने। मॉम पूजा की थाली घुमाती, आरती करती, धूप की सुगंध लहराती, हर भगवान के सामने नमन कर रही थी। सिलसिला ख़तम हो तो बोलें, सिड इस मंशा से साथ हो लिया था। मगर आरती तो हर बुत और तस्वीर पे फेरनी है, एक उस बुत को छोड़ कर जो बड़े कहते हैं लाखों की है और कोई भी म्यूजियम ले लेगा मगर पिता जी की निशानी है, उनके जिलाधीशी के दिनों से, किसी खनन में मिली, तो बेच नहीं सकते, मगर खंडित है तो बाहर नहीं रख सकते और दादी के कमरे में, उनकी आलमारी में कपड़ों के पीछे है। पर एक मूर्ति की गैरहाज़िरी से कोई फ़रक नहीं पड़ता — पूजा थाल हर तस्वीर के फ्रेम में झलकता है और घर की कोई दीवार नहीं जिस पर किसी न किसी रूप में देवी देवता नहीं आसीन।

गलत, बाथरूमों में नहीं।

तो दीवारों आलों मेज़ों पर दिए की लौ और अगरबत्ती का धुआँ डल रहा है, पूरे घर का भ्रमण माँ बेटा कर रहे हैं, माँ जाप करते हुए, बेटा इंतज़ार करता हुआ। नयी अन्तरंगता में साथ। दोनों चलते, रुकते। एक चुप, एक बुदबुद। थाली पे जलते दिए की लौ को हाथों की फहर से भगवान की तरफ़, फिर दिए की तरफ़ ताकि बाद में आरती लेते वक्त सबका आशीर्वाद लौ में हो, और धूपबत्ती उठा के दो चार बार गोलगोल घुमा देना कि सब भगवानों पे पड़ जाए, घर में उनके आशीष पहुँच जाएँ। भगवान तो अनंत हैं — दुर्गा, कान्हा, शिव, शिवलिंग, श्रीनाथजी, काली, नंदी, शिर्डी के साईं, नरसिंह, सरस्वती, राधा, कृष्ण, राम, सीता, पुट्टापार्थी वाले साईं बाबा, हनुमान, लक्ष्मी, पार्वती, वैष्णोदेवी, सन्तोषी माता। भगवान दीवारों पे, भगवान हर कोने में, भगवान दरवाज़ों के पीछे भी, भगवान गमलों की आड़ में भी, भगवान से कौन सी जगह छिप सकती है, सब जगह उनकी पहुँच। फिर दादा, नाना, परदादा परदादी की तस्वीरों पे — पूर्वजों में भी भगवान् का वास।

सब्र की मूरत सिड।

पर जब टीवी रूम में शीशे के खाने पे पहुँचे तब आज का बच्चा कल की अम्मा के आगे हथियार-पस्त हो गया। यहाँ बहू और बड़े का गणेश-बटोर था। शीशे धातु लकड़ी के गणेश। एक रेक्सीन के जो शनिवारी बाज़ार में मिले। एक सुपारी पर छपे। लिहाज़ा कि लकड़ी पत्थर के कलात्मक गणेश, जिनके सूंड और पेट लगभग निराकार हैं, से लेकर आज-युगीन गणेश, डेकचेयर पे लम्बे हुए, गॉगल्स चढ़ाये, किताब खोले पालथी मारे, पेट पे सीना बिठाये, और पंचमुखी, रावण जैसे पर रावण नहीं, और तांडव करते या दूजे नृत्यमग्न, और छतरी लगाये और एक में माइक पे भाषण पेलते, शायद पैंट शर्ट में। दिन प्रति दिन उनके प्रकारों में इज़ाफ़ा होता है। हैरानी न होगी अगर इस बोलते बोलते और पत्नी के पूजते पूजते

बड़े या कोई और पीछे से हाथ बढ़ाएँ और एक और गणेश अपने अपनों के संग आ बैठें। फिर थाली उधर भी मुड़ेगी और लौ-धूप उन पर।

जितनी देर घरपरिक्रिमा ने ली, उससे ज़्यादा यहाँ लगने वाली है। सिड ने माथा पीट लिया, हे भगवान! बढ़ कर फ्रिज में झाँका कि कुछ रखा हो मगर आजकल हर चीज़ के लाले पड़े थे।

गराज की ओर लपक मारी कि विलासराम की बीवी, रूपा, या विलास से ही कहें झट रम्बल टम्बल या एक पराठा अपने यहाँ तैयार कर दो, भागना है, तो वहाँ पहुँचने के पहले ही दोनों भक्तजनों की टोली में घंटी बजाते, ओम जय जगदीश हरे स्वामी जय जगदीश हरे भक्तजनों के संकट पल में दूर करे, करते दिख पड़े। अपना संकट दूर नहीं हो रहा, सबूत कि हम भक्त नहीं, सिड ने खुद को चिढ़ाया होगा। अब पूजा-पेटपूजा को करो तर्क, और चलो एक ऐसी जगह जो धर्मकर्म के धूप-धुएँ से सुरक्षित है, और दादी प्यारी की गोद में सिर पसारो और चल निकलो खेलकूद के मैदान में।

तो एक सेब उठा, सिड दादी से रम्बलटम्बल फ़रमाइश नहीं, ओ चिल्ल ग्रैनी लेट्स बूगीवूगी करने घुसा और एक पल अस्थिर हो गया कि क्या देवीदेवताओं का सिलसिला यहाँ भी जारी है?

दादी ने, न जाने कब, नयी छड़ी उठा ली थी और लेटे लेटे उसे यों, नब्बे के कोण पे सीधा ताने, आँखें मूँदे, बुत बनी पड़ी थी, परलौकिक प्रतिमा लगती।

छड़ी हवा में सीधी सतर, पर पहले कि सिड हँसे, कोई चुटकुला बांचे, उधर से स्वर आया — मैं कल्पतरु।

घर में बसे हुए बाकी भगवानों से इसकी प्रेरणा मिली थी या क्या कहाँ से, कोई नहीं जानता, क्योंकि बहुत कुछ है जो कोई नहीं जानता।

लीलावती के माथे पर चिन्ता की लकीरें खिंच आयीं जब उसने यह सुना। वही लीलावती जो कंठेराम की बीवी थी और सुशीला की सास और हीरो की अम्मा जिसका असली नाम चम्पक था और जिसे बड़े ने ड्राइवरी करवा के सरकारी नौकरी दिलवा दी थी मगर जिसे सर्किट हाउस से निकाल दिया गया क्योंकि उसने एॅमएॅलए बाबू मिजाजीलाल जी की गाड़ी नशे के असर में चलायी थी हालाँकि इतनी सूझ उसे रही थी कि सुगन्धित सुपारी वाला पान अपने मुँह में दबा ले दारुई महक दबाने पर बार बार गाड़ी का दरवाज़ा खोलकर सुगन्धित तमाखू का लाल रस बाहर थूकता जाता जिसमें मिली सस्ती देशी शराब की बू बाबू मिजाजीलालजी की बेटी को आ गयी चूँकि वो ड्राइवर की सीट के ठीक पीछे बैठी थी और सामने का दरवाज़ा खुलता तो नशे का झोंका उसकी तरफ़ झपकता और सम्भव है

कुछ बूँदें भी जो वो खुशकिस्मत थी या बदकिस्मत कि अँधेरे में देख नहीं पाई और सबसे खुशकिस्मत खुद बाबू मिजाजीलाल जी जो इक्केवाले थे तब मिजाजी रहे ए॰ॅमए॰ॅलए होकर बाबू और जी हो गए और क्या कड़ाकेदार सफ़ेद खादी में सोते जागते कि पीक का वहम भी उसे मैलीआ दे और विधायक हों तो ज़रा सी भी छींटाकशी नाम डुबो सकती थी मगर सूँघने को कौन अँधेरा पर्दा-पार रख पाता तो बेटी की नाक ने चम्पक की कश्ती डुबाई चूँकि उसकी शिकायत सुनी गयी और ड्राइवर को निकाल बाहर किया और तब से उसका नामकरण बड़े ने कर डाला कि हीरो है और जब भी कंठेराम या लीलावती उनसे मिन्नत करते कि बड़े भैय्याजी कहीं लगा दीजिये तो बड़े को याद दिलाना पड़ता कि देखो मैंने लगवाया था इसलिए जेल की हवा से बच गया बच्चू वर्ना उसने तो कोई कसर नहीं छोड़ी थी और अब मैं कहाँ उसकी सिफ़ारिश करूँ जो फिर भी उन्होंने की और करते जिससे फिर से वो कहीं लगे और किसी दूसरे शहर में बिल्डिंग कॉन्ट्रैक्टर के यहाँ मजूरी का मौका मिला भी कि आ जाये तो उन्होंने हिदायत दी कि काम सीख लेगा तो खुद भी कॉन्ट्रैक्टर बन जाएगा जिसमें तुम सोच नहीं सकते कितना पैसा है लेकिन हमारा घर रिटायरमेंट के बाद और सिड बाबा का घर तुम्हें फ्री में बनाना होगा और सब हँसे और फुस्से का उदाहरण देखो जो किसी हाउसिंग सोसाइटी में महज़ प्लम्बर था बाथरूम बनाना वनाना उसका काम कि टाइल लगवा दो और नल शावर बदल दो फिर ऐसा एक्सपर्ट हो गया कि टॉयलेट सीट और वॉशबेसिन से शुरू करके खिड़कियों फ़र्श दीवारों व इटैलियन मोज़ैक और डबल ग्लेज़ और स्लाइडिंग स्क्रीन और शावर यूनिट करते करते मौड्यूलर किचेन विचेन बनाने लगा और फिर पूरे घर के ठेके उसे मिलने लगे और देखो कैसे रौबदाब से स्कूटर से उतरता है और लम्बी चौड़ी मज़दूर पलटन पर हुक्म चलाता है जो फाटक पे उसके इंतज़ार में बीड़ी फूँकती रहती है कि आज यहाँ का ठेका मिला है फुस्से बॉस को आ जाने दो और देखो फुस्से जैसे नाम के बावजूद वो बॉस हो गया है तुम तो हीरो बॉस होगे पर वहाँ भी हीरो ने जैसे तैसे तीन महीने काटे फिर ट्रक ड्राइवर बन गया और उसके बाद टैक्सी चालक जिसके बाद लम्बे अरसे तक उसकी कोई ख़बर नहीं आई पर एक दिन हवा का रौला उठा जिसने उसे वापस ला पटका उसके माँ बाप के पास एकदम भंगार हुए गुर्दे के साथ जिसकी दवादारू बड़े ने करायी ज़बरदस्त डाँट के साथ और रातोंरात कंठेराम और लीलावती छुट्टी लेकर उसे गाँव भगा ले गए जहाँ से वे छुट्टी की अवधि पूरी करके खासे अरसे पश्चात लौटे पर हीरो के साथ उसकी नयी नवेली दुलहिन सुशीला को लाये और लड़का सँभल गया लगने लगा हालाँकि उड़ती उड़ती उड़ती रही कि कभी कभी अभी भी अपनी सी पर उतर आता है और कम से कम एक रात याद आती है जब सुशीला ने दरवाज़ा खोलने से इंकार कर दिया और हीरो बाहर झौराते हुए बेसुरे गले से गाने लगा गुलाबी आँखें जो मैंने देखीं शराबी ये दिल हो गया जिस पर सुशीला ने जोर से दरवाज़ा खोला और ऐसा लपट्टा रसीद किया कि रात में देर तक वही गूंजता रहा पर गाना थम गया और बड़े के खर्राटे भी क्योंकि वो जग गए मगर तब तक सिर्फ़ हवा थी जिसमें वो बोले शोर मत करो सब तरफ़ बड़े अफ़सर रहते हैं और अब हीरो अफ़सरों के घरों में परदे टांगता है छल्ले वाले भी और फैशनेबुल चिक और ब्लाइंड्स भी और एक बेटा एक बेटी हैं गुड़िया और प्रिंस जो जब जी चाहे स्कूल से

लौटने पे या खेल से आके रसोई की खिड़की पर खटखटाते हैं कि ऐ अम्मा बर्फ़ का पानी दे दो या कुछ खाने को और कभी उन्हें अन्दर आने दिया जाता है कि अच्छा अपनी माँ का हाथ बँटा दो बर्तन हटा दो पोंछ दो या क्यारी से धनिया तोड़ लाओ पर पौधा नोचना नहीं पर कभी नहीं आने दिया जाता तब वे आँख बचा के घुस आते हैं और कोई देख ही ले तो पीठ करे पाए जाते हैं जिस पर बड़े की पत्नी बहुत कड़क सुनाती हैं कि सीधे होकर नमस्ते करो और मुँह में क्या भरे हो छिपाते क्यों हो कुछ चाहिए तो पूछ के नहीं ले सकते जिस पर ज़ाहिर है वो नहीं सर कुछ नहीं है मुँह में सर मेमसाहब को कहते हैं और घूमते घूमते एक गटक में बोलने-निगलने के उपक्रम में खांसने लगते हैं और इस पर भी पड़ती है कि माँ को देखना चाहिए बच्चों की आदतें तो नहीं बिगड़ रहीं न कि उन्हें बुरी संगत लगने दें और देर तक भिन भिन चलती पर उस दिन ये सब कुछ नहीं हुआ बस प्रिंस की दादी जो बूढ़ी थी पर उतनी नहीं जितनी अन्दर बिस्तर वाली दादी ने माथे पर बल देकर गंभीर सी आवाज़ में कहा वो दादी कल्पतरु जिस पर पोता प्रिंस सुशीला से कुछ कहने के बहाने से घर में घुसा और न बायें देखे न दायें कि वो न देखे तो वो न दिखे पर उसे कोई रोकने वाला नहीं मिला और वो बेधड़क बूढ़ी माता जी के कमरे में चला गया और धीमे धीमे उनके सिरहाने कि फिर से वे दोहरा दें जो सुना है उन्होंने कहा वो हैं वहाँ लेटे हुए छड़ी खड़ी पकड़ के सुबह सुबह।

वे चुप रहीं।

क्या है माता जी, प्रिंस ने उन्हें उकसाने की कोशिश करी और चारों तरफ़ एक चोर नज़र फेंकी। लेकिन कोई नहीं था जो उस पर बरसे — बड़े दफ़्तर में बचे खुचे फ़ाइल-सम्बन्धित कामों को करने गए थे, मेमसाहब नए घर में सामान बिठाने अटवाने गयी थीं, सिड भैय्या का कोई क्रिकेट मैच था, तो बादशाहत उसी की थी।

सो रहे हो तो क्या सुनाई पड़ता है? या बच्चे का पूछा प्रश्न किसी प्रण को फिर ख़बरदार होशियार करता है? बिस्तर में हरकत हुई और नहीं से नयी तक आई छड़ी, जो नींद की झूलन में कुछ नीचे आ गयी थी, जागी और पुरसतर्क तन गयी, या कहें 'तना' गयी, समकोण में, जैसे अपनी ही तिड़न्गा में उठी, और बूढ़ी माँ को हल्के से झकझोड़ दिया, जो एक हाथ से मूठ थामे, दूसरा सीने पे रखे, जाग गईं, और बोलीं — मैं कल्पतरु।

बच्चा ख़ुशी से खिलखिला पड़ा और हँस हँस कर मोहल्ले भर के सर्वेंट क्वार्टरों में यह ख़बर फैलाता गया, एक घर से दूसरे, पटाखे की तरह छूटता।

सही घड़ी हो तो कोई कुछ बन जाता है। सही जगह भी सहायक होती है।

लम्बा अलाप चल सकता है मोहम्मद बिन तुग़लक के न बन पाने पर और गाँधी के बन जाने पर, एक के ग़लत और दूसरे के सही वक़्त और मुक़ाम की बदौलत। या देसानी और

रुश्दी। या दिलीप कुमार और अमिताभ बच्चन। पर इतना तो अविवाद्य है कि इस गाथा की औरत अगर उस पल के अलावा किसी पल में, और कहीं और, अपनी नयी छड़ी का नया इस्तेमाल, नब्बे डिग्री कोण वाला, करती, तो जो हुआ न होता शायद, और जो इस हुए के पीछे होता गया, वह भी न होता। मसलन बड़े या बहू, माँ के कल्पवृक्ष बन जाने पे घर में होते, तो वे कभी इस पेड़ आलजाल को फलने न देते। छड़ी तो छड़ी, नयी या पुरानी, जाओ सब अपने अपने घर और हम भी। दूसरी बात ये कि वे घर में होते तो मतलब ये किसी अफ़सर के बाहर होने का टाइम नहीं होता, और नौकर बिरादरी भीतर काम में लगी होती, मालिकों की नज़र तले, न कि गेट पे, मोड़ पर, अपने और ठिकानों पर, अड्डेबाज़ी में रत, मालिकाना अन्दाज़ में लम्बायमान पड़ी, चाय की चुस्कियाँ लेती और इक्का दुक्का तो कॉफ़ी घूंटीयाती, और आज़ादी से गपड़चौथ करती।

तो जब प्रिंस बवंडर बना चटाख पटाख दिवाली की चटाइयों सा सारे में फूटता भगा तो बाकी बच्चों और सबके माँ बापों ने सुन लिया और सही जगह, सही पल आपस में मिल बैठे। फिर तो मच गयी और झुण्ड का झुण्ड माथे पर शिकन दिए, लीलावती से पूछने जमा हो गया कि यह पेड़माजरा क्या है?

कल्पतरु नहीं सुने?

क्या होवे?

कल्पतरु होवे।

प्रिंस वहीं लम्बा लेट गया और एक डंडी आसमान में ऊँचा तान चिल्लाया — ये होवे।

हँसी की फुलझड़ियाँ छिटकीं और पूरा मजमा हँसीबोर होने को था कि अचानक लीलावती का चेहरा लाल भभूका हो गया।

हँसने की बात नहीं है, वो गुस्से से तड़तड़ायी। ये धर्म-पुन्य की बात है, सुनो, और उसने दोनों हाथों का आटा परात में झाड़ा, गुंधे आटे पे कटोरा ढका और हाथ धो कर आँचल में पोंछे और गमलों और प्राइवेट वाहनों — क्योंकि सरकारी गाड़ियों में अफ़सर दफ़्तर गए हुए थे — के बीच मूढ़ा लगा के बैठ गयी और गहर-गंभीर सुनाने लगी।

कि हमारे चमोली के पास है कल्पतरु। जोशीमठ में। वो हमेशा हरा रहता है, एक पत्ता उसका नहीं सूखता और गिरता। दुनिया के हर कोने से लोग उसे पूजने आते हैं। बड़े बड़े सन्तों ने अपने व्रत प्रायश्चित उसके साये में पूरे किये हैं। दुर्वासा ऋषि कल्पवृक्ष के नीचे ध्यानसाधना में चले गए।

तो क्या माता जी दुर्वासा ऋषि हैं? प्रिंस का हँसना बंद हो चुका था।

साइकिल, पैदल रुक कर जो आ खड़े हुए थे, वो भी गंभीर थे।

गुस्सा नहीं होएंगी, सब की कें कें पेंपें पे? अपना जीवन इन पर लुटा दिया, उम्र देखो, और वो हैं कि कें कें पेंपें।

ओह तो क्या करेंगी अम्मा गुस्से होकर? आस पड़ोस के बच्चे पूछने लगे।

देखो, किसी बुज़ुर्ग ने समझाया। कुछ बुरा मत चाहो, क्योंकि वो सबको वही देंगी जो वो चाहेंगे। और उसने उस आदमी के बारे में बताया जो थककर, अनजाने में कल्पवृक्ष के नीचे सो गया। उठा तो भूख प्यास से बेहाल। हा, चाह उठी, कि खाने पीने को कुछ होता। तो

खाना पीना सामने बिछ गया। ये क्या, वो चकराया मगर खुश हो गया और खा पी के तृप्त हुआ। अब दोबारा नींद उस पर तारी हुई और उसे बिस्तर की तलब लगी — काश एक झिलंगी ही खाट होती तो पसर लेता। सामने झिलंगी चारपाई टपक पड़ी। आदमी उस पर लेट गया पर अब ज़रा सशंकित मन से। ये हो क्या रहा है, उसने अपने ऊपर फैले पेड़ को सहम कर देखा। इसमें कोई राक्षस तो नहीं छिपा बैठा है, मुझे मोटा ताज़ा करेगा, फिर छलांग लगाएगा और अपने मुँह का गप्फा बना निगल जाएगा? वही हुआ — कूदा दानव डालों से और भकोस गया उसे।

किसी की बच्ची रोने लगी कि अन्दर राक्षस है मुझे खा जाएगा हपक हपक।

न बेटा न, ऐसा कुछ न होगा। खुसुर पुसुर होने लगी।

बच्ची को बहलाने के साथ ढेरों और किस्से इस चमत्कारी पेड़ के कहे सुने गए। सबको पता चला ये तो समुद्रमंथन से उपजा था और बच्चे कभी देखें नीचे, कभी ऊपर, कभी घर के भीतर आँखें गड़ाएँ। ऐसा पेड़ कि इसकी जड़ें स्वर्ग में हैं — बच्चे ऊपर देखें, नीचे, भीतर आँखें गड़ाएं — और डालियाँ ब्रह्मांड में फैली हैं और इसके नीचे खड़ों की सब मंशाएँ पूरी होंगी और सुनो, माता जी कल्पतरु हो गयी हैं।

बहुत बड़ी शक्ति हैं। उनके चरण छू लो।

लोग कतार बनाकर, हाथ जोड़के खड़े हो गए और बारी बारी से भीतर गए कि माँ के पाँव माथे से लगा लें। वो लेटी रहीं, छड़ी उठाये, जो डाली की तरह अब पैंतालिस डिग्री के कोण पर झुक आई थी।

माता, उसका ब्याह करा दो, रंग जरा दबा हुआ है पर सुघड़ापे में कोई उसका सानी नहीं घर के कामकाज में, और ससुराल वाले राजी होंगे तो मैडमों के घरों में जाकर बालों में मेहँदी, चेहरे की मालिश, पैरों के रोंये उखाड़ना, ये सब कर लेगी। कुछ पैसा आ जाएगा तो कौनो हर्ज नाहीं।

माता आशीर्वाद दो, कंप्यूटर में स्पीड उसकी सलो है इसलिए नहीं लिया गया, नौ हजार में कोर्स किये बैठा है, आप आशिष देंगी तो कुछ भी हो सकत है, हाथ तेज चलबे ही करबे।

चाचे ने दुकान हथिया ली है, उसे निकलवा दो।

हमारे गाँव में बिजली आ जाए।

धन्नो के बेटा हो।

एक बार मोको जमुना जी में कूदना है ऊ जो नया पुल बना है उससे, ऐसा कर दो माँजी, कि जैसा कुत्ता कूदते ही तैरना जान जावे, हमें भी आ जाए और इह पार से उह पार पहुँच जाऊँ और सब भक उजबक देखते रह जाएँ बस एक्के बार।

लाल्टू के इहाँ ट्यूबवेल लग जावे।

माता जी मरने से पहले दीवार वाला टीवी हम ले पाएँगे?

सटर पटर अंग्रेज़ी बोले, ट्यूशन लगवा दी है, उसके दिन पलट जाएँ।

आपकी दुआ बनी रहे आपकी सेवा का अवसर मिलता रहे।

बड़ी दादी जी, सिर्री चाचा, नहीं अच्छे चाचा, नहीं सिर्री ही, हमारे लिए गाँव से इत्ता सुन्दर तोता लाये थे। हम उस प्रमोद के कहे में आकर उसे कन्धे पे बिठा के छत पे चले गए। उड़ गया तोता, बड़ी दादी जी। कहीं नहीं मिला। सब घर छत हमने ढूँढ़ लिया। मिलता कैसे, इत्ता ऊँचा उड़ा था हमारे सामने। जित्ता हवाईजहाज़ उड़ता है। आप उसे एक बार आवाज लगा दो। उसका नाम रामलाल है।

सुखशान्ति हो माँ जी, आशीर्वाद दो।

गाँव में बरसात समय से हो माँजी, पिछले साल सारी तैयार फसल खड़े खड़े बह गयी। घर भी बाढ़ में ढह गया। अभी तक सूद भर रहे हैं।

अरे हाँ बर्फ़ गिरते मैंने कभी नहीं देखा। बस टीवी पर देखा है। एक सुबह बाहर देखूँ तो बर्फ़ गिरती मिले।

बस आप आशीर्वचन देदो कि जियो जागो बड़ी आरबल हो, हमारी और कोई इच्छा नहीं।

माँ जी, हम चुपके से आपके कान में कह रहे हैं कि किसी और को सुनाने वाली बात नहीं है, पर हम बहुत परेसान हैं माँजी न, वो जो हमारे मिस्टर हैं न जिनकी हम मिसेज हैं, माँजी, उनको हमारे होंठ के ऊपर ये जो मस्सा है बिलकुल नहीं पसन्द और हमें भी नहीं और हमारी लव मैरिज है तो वो कहते हैं लाओ चाट चाट के गला दूँ और कभी तनिक दांत भी गड़ा देते हैं, पर हमें अच्छा नहीं लगता है, तो माँजी, मस्सा हटा दो तो बड़ी कृपा होगी और हम मिस्टरमिसेज प्रेमपूर्वक हो जाएँगे, मेहरबानी।

लोभलालच दूर हो, कुशल मंगल बना रहे।

मुज्तबा शारजाह बुलाते हैं पर मुझे अमरीका जाना है।

ऊपरवाले का डर दिल में बना रहे, जो मिले उससे ज़्यादा न चाहें, सन्तोष से रहें, आपका हाथ सदा हमारे सर पर हो और कुछ नहीं माता जी।

बड़ा ही पावन वातावरण था और सब सच्चा सुच्चा जब प्रिंस ने, प्रार्थनाओं से अभिभूत होकर कहा 'दादी टॉफी,' और ठीक उसी पल उसकी निगाह चांदी के कटोरे पर पड़ी जिसमें बटन और बिंदी और सेफ़्टी पिनों के साथ तीन टॉफ़ी रखी थीं। उसकी अरज सुन ली गयी।

दादी? अबके वो लीलावती की तरफ़ मुड़ा।

कमरे में शान्ति छा गयी जिसमें चमत्कार का हल्का सा स्पंदन था।

तब गुड़िया ने नेलकटर सेट की फ़रमाइश कर दी जो मुरादाबाद की नक्काशीदार पीतल की तश्तरी के नीचे था, जो पापा कलई करा के लाये तो वो एक बार रखने आई थी, ड्रेसिंग टेबल की उसी दराज़ में, और जिसमें हर साइज़ के नेलकटर और नाखूनों को रन्दा मार के गोलाई में लाने वाली चपटी खुरदुरी डंडी थी। छड़ी स्वीकृति में हिली सी। गुड़िया ने हाथ बढ़ा के सेट निकाला, कल्पतरु को साभार नेत्रों से दिखाया और उसे माथे से लगा झुककर नमन किया।

तीसरे पहर तक काफ़ी सारे कपड़े, पुराने शॉल, स्वेटर, साड़ी, ब्लाउज़ पेटीकोट, और और चीजें जिनमें वो ज़रा उधड़ा हुआ मगर बहुत गरम बत्तख के परों का स्लीपिंग बैग था,

और लोहे की कड़ाही और तवा थे जो नॉनस्टिक ने धकिया दिए थे और माता जी के कमरे में ऊपर टाँड़ पे चढ़ा दिए गए थे, और निरी और चीजें जिन पर माँजी का नाम था, जो सच्ची कहें तो हर शख्स और हर बित्ते चित्ते पर था, क्योंकि या तो उनके वक्त से, उनका सँभाला हुआ, जैसे इकेबाना फ़्लावर अरेंजमेंट करने फूलों पत्ते डंडियों को खोंसने वाले कांटेदार होल्डर, या उनके लिए लाया हुआ, जैसे हवाई जहाज़ में फुला के लगाने वाला अर्धगोलाकार गर्दन-तकिया, या दो मोटे एलबम्स जिनकी आज फ़ोटुओं को सहेजने के लिए ज़रूरत नहीं रही पर नयी चीज़ पुरानी होती जाए फेंकता कौन है, और सभी चीजें जो माताजी के कमरे में दबी जगहों में इसीलिए दबाई थीं कि अगले वक्तों में शायद काम आयें, अभी तो नहीं। छड़ी ने हामी दी और लोगों ने अपनी मंशाएँ कृतज्ञ हाथों से उठायीं।

ऐसा था आसमान जब शाम बेटी घर में दाखिल हुई और लीलावती ने पूरी श्रद्धा से बताया कि बेटी, बिटिया का वरदान भी कल्पतरु ने दिया, किसे, माँ पार्वती को, जो अपने अकेलेपन में इस कृपा से संगिनी पाकर सुखी हो गयीं।

स्पष्ट नहीं है कि बेटी ने क्या समझा और इस सारे वार्तालाप को मगजचट्टी जाना कि क्या, पर तेज़ क़दमों से वो अम्मा की तरफ़ बढ़ी और अलमारी देख कोई खयाल आ गया तो उसे खोल 'मेरी मूर्ति' बुदबुदा के झुकी।

दिनभर से सबकी अर्चना याचना सुनते सुनते कोई थक जाए, इस तरह कल्पतरु की डाल, उर्फ़ छड़ी, फ़र्श पर गिरी। तड़तड़ा के।

तो 'नहीं नहीं बीबीजी', कंठेराम बोल पड़ा। मूर्ति उठाने से रोकता। कल्पतरु ने तड़तड़ा के ये कहा हो जैसे।

नहीं नहीं, बड़े उसी पल घुसे। वे सब सुन चुके थे। मूर्ति के सम्मुख बहन को खड़ा देख भी लिया था।

खंडित मूर्ति जो लाखों अरबों में जाए अगर किसी संग्रहालय से मोलभाव पर उतरें।

टूट जाएगी। उन्होंने सख्ती से कहा। कहीं न देखते हुए।

भाई बहिन में मुखामुखम संपर्क के अभाव में, इसकी दरयाफ़्त कौन करता कि मूर्ति, छड़ी, किसकी बात की गयी है? जहाँ पूरा घर दूसरे घर में जाने की अव्यवस्था में था, वहाँ वैसे ही हर संपर्क की गति और गत उलझ मुलझ जाती है।

बड़े और बहन जब बच्चे थे, अलमारी से कुछ निकालते तो कंकाल दीखते बुद्ध की मूर्ति दिख जाती। डर जाते उस खोपड़ी चेहरे को देखकर जिसकी आँखें अँधेरे खड्डों में धँसी थीं। पर देखते देखते वे उसके आदी हो गए जैसे किसी अपने के। उनका आत्मीय, वृद्ध साधू जन, जिसकी दाढ़ी और तन पर रोये, उन्हें सोच कर भला लगता, अलमारी में, आयु बढ़ने के

साथ, बढ़ गए हैं। गड्ढा गड्ढा आँखें, साधना में बंद लगने लगीं, और लगता कि अचानक खुलीं तो उनमें से तेज फूटेगा। और वो लम्बा गांधियाना कान, उस पर हाथ हल्के से फेर देने को मन होता, जो वो कर देते। पर सबसे बढ़कर उन्हें प्रभावित करता बुद्ध का क्षुधित तन, जो इतने बरसों की साधना में पसलियों, धमनियों और शिराओं का बारीक गुंजाल बन गया था, जिस पर झीनी बीनी खाल पारदर्शी आवरण सी पड़ी थी। जैसे सब जो स्थूल था निकल चुका हो और बस सुन्दर निद्र्विघ्न निराकुल खरा पाक बच गया हो। मूर्ति नित और क्षीण और सौम्य होती जाती। अम्मा उसे मेरे पत्थर दिल कहतीं, बच्चे उसे स्टार्विंग बुद्धा कहते और उनके पिताजी कहते इनके पत्थर दिल और पत्नी को तप्तायी आँखों से निहारते और अम्मा उनका हाथ पकड़ लेतीं और बच्चे दोनों के सखाभाव पे हँस देते। पुरानी समाधिस्त बुद्ध मूर्ति खंडित थी। ज़रा सा कन्धा गायब और एक ही लटकौवां बौद्ध कान। दूसरा कहीं टूटा छूटा। रेत में।

बच्चों को बोधिसत्व की कहानी नहीं पता थी कि जीवन और मृत्यु के दुखदायी चक्कर से निस्तार पाने, गौतम बुद्ध, नदी किनारे, रेत पर, सब कामनाओं इच्छाओं को त्याग, साधना करने लगे। एक दाना तिल और एक दाना चावल रोज़ाना, उनकी साँस बनाये रखने को, बस। रेत उन्हें ढकती गयी, और वो रेत-समाधि में डूबते गए। पसलियों का ढांचा हो गए। एक बार नदी में नहाने चले गए और रेत-समाधि जल-समाधि होने लगी कि सुजाता ने उन्हें देख लिया। उसने हज़ार गायों के दूध का अर्क उनके मुँह में डाला तिस कारण बुद्ध लौट पाए और न रेत, न जल, वरन मध्यमार्ग को सर्वोच्च घोषित कर गए। मगर जल-समाधि और रेत-समाधि के आध्यात्मिक प्रकाश-पुंज ने उनके चेहरे को, हर उनकी छवि, उनके बुत, उनकी स्मृति को उज्ज्वल किया।

समाधि में उतरते समाधिरत के अंगप्रत्यंग रेत और जल में दब जाते हैं। उनकी मोक्ष साधना इससे फीकी नहीं पड़ती कि नरभक्षी ताकतें, मछली और मगर और अन्य जीव जंतु बनकर, उन्हें चबाने चूसने आ जाती हैं। उनके साधना स्थल पर नाविकों की तरह डुबकी लगाओ तो धड़ अलग और शीष अलग, बांह अलग और गुर्दा अलग और कान अलग तैरते मिल जाएँगे। ये समाधि-लीन प्राणी ही हैं जो ईंट, खोपड़ी, हड्डी, बासन, आभूषण, मूर्ति, मोती, सीपी, स्वर, साँस, पंख, पुखराज, दाना, दिल, कहानी, रूहानी, कंकड़, कण कण, कान, आँख, कुछ बने पड़े रहते हैं।

पर खुदाई तो खुदाई है। खुदा भी, खोदना भी। सब कुछ और कुछ भी वो निकालता है। रेत और मिट्टी से, जल और हवा से, पुरानी हड्डियाँ और कहानियाँ, खुदाई में और खुदाई में, अवतरित होती हैं।

इसीलिए इज़राइल और इटली में विकास लाना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि किसी नवनिर्माण के लिए कुदाल छुलाओ कि पुरानी सदी झाँकती है (कान, नाक, ईसा की आँख भी) और भक्तों की भक्ति लौट आती है। ये ही हाल सुमेर मेसोपोटामिया इत्यादि का भी था कि नीचे से उन्हें छुआ नहीं कि पुरानी कहानियाँ समाधि से उठने लगतीं। इसका तोड़ निकला उन्हें ऊपर से मार गिराने में। जब तक नीचे दबी खुदाइयों को ख़बर हो, सब बंटाधार।

फिर भी समाधि का अस्तित्व मिटाना दुर्लभ। जैसे बामियान में शैतानों के हाथ पहुँच गए और डायनमाइट मोगाम्बो की तरह खुश हुआ, तो वहाँ, पहाड़ियों ने धरती के भीतर ही भीतर समाधिस्त मूर्तियों को सरका दिया और वे दूसरी जगहों से ऊपर उठ आयीं। डायनमाइट परेशान।

मतलब सदियाँ उन्हें खाएँ, या जीव जंतु, और चाहे धूर्त धूर्तता पर उतर आयें, ये कहानियाँ, ये समाधियाँ, ये मूर्तियाँ मरतीं नहीं, न हमेशा के लिए दफ़न रहतीं। ये तो बस बैठ रहतीं, ध्यान मुद्रा में, और धीरे धीरे उन्हें रेत-प्रपात ढकते जाते और वो ढकी रहती हैं जब तक ढके रहना होता है।

पुराने लोग और ग्रामवासी जब इन समाधियों से टकराते तो वे वहीं

सिजदे में झुक जाते। कभी कोई पुराना पत्थर अपने घर या मवेशीघर की दीवार में लाकर स्थापित कर देते। एक ही बात, क्योंकि घर मन्दिर, और मवेशी देवप्राणी।

अंग्रज़ों की आमद ने इन समाधियों से अंग्रेज़ी बर्ताव किया। समाधिस्त खोपड़ियाँ, हड्डियाँ, कथाएँ, संग्रहालयों, पुस्तकालयों, बैठकों, दफ़्तरों में नुमाइश की वस्तु बन गयीं। उनके दाम भी सटोरियों ने लगा दिए। उनकी कहानियाँ उनमें से कुरेद खरोंच, खरोंच कुरेद के — जिसे वे शोध कहते — निकाल, खुद को कहानीकार और इतिहासकार ऐलानित करने का चलन हो चला। खुदाई की जगह खुदी आई और उसने दुकान सजाई।

पर इस कथा का वक्त क्यों ज़ाया करें? जिसे इसकी जिज्ञासा है, अख़बारों के सिलसिले में नज़र के गोते लगाये, आज तक और बार बार मिलेंगे खुदी और धंधा के मामले। एक तो हाल का खुलासा है — बौद्ध योगी समाधि में बैठा, हजारों वर्ष पूर्व, और खुदी में मिल गया आज, तो उसे चमड़े में मढ़वाकर हाट में बिठाल दिया और अब वो पश्चिमी देशों के संग्रहालयों में प्रदर्शनियों में अनचाही अनसोची समाधि-गर्दिश में नाच रहा है।

इसीलिए, जो पिताजी इस किस्से में भूले भटके बतौर ज़िक्र बस आये हैं, बड़े और बहन के, वे कहा करते थे कि ये चोरी और धंधा है जो इस मिट्टी से उजाड़ के संग्रहालयों में इन समाधिस्तों को अंग्रेज़ी नस्लें बंद कर लेतीं। साबुत न उठा पाए तो धढ़ शीष हाथ पाँव जो मिले, उखाड़ ले जाएँ और अपनी दीवारों पे ठोंक दें। हम इस मूर्ति को अपने घर में रख रहे हैं, हम ग़लत नहीं। ये हमारे घर की है, बाइज़्ज़त, और मूल्यवान है पर इसकी तिजारत नहीं करनी।

पर पिताजी, और बाद में बड़े, कहते खंडित मूर्ति बाहर नहीं रखते। तो वह कपाट के पीछे अलमारी में चली गयी। अम्मा उसके आगे एक फूल चढ़ा देतीं, कभी उसे रुद्राक्ष की माला पहना आतीं, कभी पूजा-त्योहारों पे रोली चन्दन अक्षत तिलक लगा देतीं, और कभी उस जीर्णशीर्ण बुद्ध के आगे एक रवा परशाद का रख देतीं।

होते होते पूरे परिवार को खास मोह सा हो गया बुद्ध से। जैसे वे गृहदेवता हों उनके, अपने आले से सबको आशीष देते, उनकी हिफाज़त करते। एक बार अलमारी खोल के उनको श्रद्धा से देख लेने को सब अच्छा शगुन मानते। और बाद हुआ तब बेटी ने कहा कि मुझे दे दीजिये, और तो कुछ मैंने लिया नहीं, और खंडित मूर्ति सामने न रखो आदि मैं मानती नहीं, मेरे यहाँ खुली जगह में रहेगी। कभी नहीं, बड़े ने माँ के मार्फ़त सुनाया। पिताजी

ने लायी और ये ही घर उसकी जगह है। और भी बाद हुआ तो बहू की सुबह सवेरे योग-सैर सखी ने कहा कि जानकार कलाविद बता देगा कितनी पुरानी है और कितने की होगी, लगती बड़ी जैनुइन है, लाखों की होगी, जिस पर बड़े की पत्नी ने कहा सारी मालूमात रखने में क्या हर्ज, जिस पर बड़े बरस पड़े कि पिताजी को खुदाई में मिली थी और बेचने का चीप खयाल तुम्हे ही आयेगा, पैतृक निशानी की जगह तुम क्या समझो।

खुदाई में मिली थी कि खुदाई में, किसी ने ये कहानी खोदने की नहीं सोची, और मूर्ति गायब हो जाए ये तो किसी के फ़रिश्ते ने नहीं सोचा, और अम्मा भी, ये तो कोई देखकर भी नहीं सोच पा रहा था।

सोग मना सकते हैं पर जो गया सो गया। उपहार, आशिष, जिस तौर पे, या कि लूट के, चीज़ें गयीं तो गयीं। तारीख़ के पन्ने पलट के देखें तो कोहिनूर गया तो गया। शिमला के राष्ट्रपति निवास से घंटा गया तो गया। टैगोर का नोबेल तमगा तक गया तो क्या लौटेगा? या भूपेन खक्खर की गुरु जयंती। या जवानी। या वक्त। गूगल में गए तो पता चलेगा भाषाएँ भी गयीं तो गयीं, अंडमान की अका-बो, अका-कोरा, अ-पुकिवार, कोचीन से वाइपिन, ऑस्ट्रेलिया से बिदयारा, और और भी, और और भी, और जाती ही रहती हैं और शायद हिन्दी भी। ख़ैर गूगल में गए तो तुम भी गए। सरस्वती तो कहीं गयी हीं, कहाँ अब बहती हैं? डायनासौर गए और जो मिलता नहीं जैसे येती तो वो भी गया कह सकते हैं। गया भी गया, कहाँ शेष रहा वो प्रखर तेजस्वी नगर जो गया था, क्योंकि उसके बौद्धिक से बौद्ध तो निकल गया। लोग भी गए तो गए और कुछ तो इस कदर गए कि टोटल से बढ़कर गए, जैसे इस गाथा के घर के पिताजी गए। वे गए माने गए और जो करने को छूटा था, बाकियों के करने को रह गया और वे उसमें उलझते गए और पिता बेचारे की तो स्मृतिघर से भी जगह जैसे गयी, जहाँ उनके अच्छे को याद किया जाता, जैसा मृत्योपरांत स्मृतिगृहों की परम्परा है, अगर आप हिटलर या बिन-लादेन न हों, जिनका बुरा याद है, क्योंकि थे ही वे वैसे, जबकि दुर्योधन भी सुयोधन का पल पा सकता है और रावण तो घोर प्रशंसा भी, और हमारे अपने वक्त में जिन्ना भी अच्छी बुरी दोनों स्मृतियों से संजोये जाते हैं, पर कुलजमा बात ये कि जीवन जीवन है और मृत्यु मृत्यु, जो मौत है, और गया गया है, और व्यस्त व्यस्त। सार ये कि बड़ी बड़ी हस्तियाँ और खज़ाने और स्मृतियाँ जहाँ गयीं और नहीं लौटीं, वहाँ इन रोज़मर्रा के मामूली असबाब की क्या बिसात? कुछ नहीं। हाँ रद्दी में फिंकने नहीं, बिकने योग्य जरुर, पर वो तो क्योंकि अब फिंकाऊ सब बिकाऊ है और गरीब गुरबा विनीतभाव से ग्रहण करते गए — वे भी गए — क्योंकि एक औरत अपनी मृत्यु शय्या पर थी और सबको लग गया — ये भी गया — था कि भगवान को प्यारी होने वाली है, पर ये नहीं गुमान आया कि भगवान अपने प्यारे को

बुलाते बुलाते उसी में घुलमिल गए और वो कल्पतरु हो गयी जिससे दीन हीन लीन सब उस सुबह से दोपहर तक दर्शन पाने आते रहे उसके द्वारे।

जब तक बाकी जीवित घर लौटे, घर काफी खाली हो चुका था और कम इस कम इस मामले में गूगल भी काम न आता कि एक क्लिक पे चिट्ठा खुल जाए कि क्या गया, क्या क्या गया। धूल धक्कड़ के गुबार में यहाँ सदियाँ लिसड़ी पड़ी थीं। जो दिखा सो फ़िलहाल फालतू लगा — जैसे सुशीला ने वो वाला पोलिथीन का गड्डर चाहा था जो माता जी बरसों से तह करके जमा करती थीं कि पैकेट हमेशा चाहिए होते हैं, कुछ ले जाने कुछ ले आने। उसके जाने से फसल और महँगाई पे कोई फरक नहीं पड़ता था तो उस पर चुप रहना ही ठीक था।

कुछ अभूतपूर्व घटे तो वैसे भी कुछ देर चुप हो जाया जाता है। बात गले नहीं उतरती। हाँ बच्चे भगवान् होते हैं, हाँ बुज़ुर्ग भी, मगर ये भगवानी रूप, क्या कहें, करें, कहाँ से? अपना ही घटियापन न लगे कि प्लास्टिक ऐनगैन कचरे को लेकर बवाल मचा रहे हैं? और क्या क्या गया उसके लिए क्या हरकारा दौड़ाएँ कि अफ़सरों के सेवकों के क्वार्टरों में झाँक आओ क्या नयी चीजें सजी हैं ताकि मिशन घर-वापसी की शुरुआत करें? या दरोगा को भेजें कि वॉरंट ले के दाखिल हो — जो ले गए हो चुपचाप लौटाओ? लोग कहेंगे दया भी नहीं इन बड़े लोगों में। जब कि दया कितनी है हममें। अम्मा है हमारी, जीवन के आखिरी कगार पे, बूढ़ी, अकेली, दानीपन का फ़ितूर सिर चढ़ ही गया तो चढ़ गया मान लो और कुछ काड़ कबाड़ गया जान लो। माँ का तो मन लगा, वर्ना पड़ी हुई थी कि अब बेकार हूँ, किसी के काम की नहीं। उसकी ख़ुशी में हमारी ख़ुशी जान चुप रह लो।

रोज़ी बुआ के आने पे वे चुप हो गए। खुश, पता नहीं। रोज़ी, हिजड़ा, बरसों से आती थी माँ से मिलने, बहन जी बहन जी करती। होली की बख्शीश, ईद की ईदी, बच्चों के जन्मदिन जश्नदिन पे आती, कभी कुछ लेती, कभी कुछ ले आती, और सबने देखा था माँ के संग बाहर, लॉन में, पीढ़े पे बैठ कर बातें करते और चाय के संग दालमोठ खाते। और बड़े दिन पर...

वाक्य अधूरा है।

कुछ वाक्य अधूरे रह जाते हैं, उस पल की बदौलत जिसमें वे शुरू हुए थे। क्योंकि रोज़ी बुआ जिसको कल्पतरु की ख़बर मिल गयी थी जो कैसे न मिलती, घर में घुसी तो बड़े और बहू अपनी तूतड़ाक अधूरी छोड़ के बोका बोका उसे ताकने लगे। बुआ ने हाथ जोड़ रखे थे पर उनके लिए नहीं, उनकी माँ के लिए, जिन्हें वो बहन जी कहती और जो अब कल्पतरु थीं जिसके सम्मुख वो और भक्तजनों के पीछे घुसी गयी। घर के नितांत अन्दर, न कि लॉन में बाहर।

अधूरा पड़ ही जाना था।

बहन जी, विनोदिनी और चप्पलें, उसने हाथ जोड़े कहा और बड़े और बहू जो अधूरे, दरवाज़े के बाहर से, तक रहे थे, कसमसाये, जैसे छड़ी के अनुकरण में, और बुआ समझ गयी। किताब उसने किताबों में से खुद निकाल ली, चप्पल के लिए लीलावती को इशारा किया।

सिंगापुर की चप्पलें थीं जो बेटी माँ के लिए किसी दौरे से लायी थी — सफ़ेद, तितली सी हल्की, समुद्र तट के लिए कि बालू उड़ाते उड़ो। उस पर गुलाबी फूल और हरी पत्तियों का डिज़ाइन और माँ ने लीलावती के सामने रोज़ी से कहा था कि मैं भूलेभटके पहनती हूँ, अगली बार दे दूँगी, साफ़सूफ करा के। बुआ बोली थी लीलावती याद से अलग रख लेना और लीलावती को ज़रा खल भी गया कि अब हिजड़ों को फ़ैशन कराने का ठेका हमारा। फिर पिताजी, ग़मी, सर्दियाँ, और चप्पल-घड़ी नहीं बनी। आज आ बनी।

नहीं चाहते थे मेरी भानजी को दूँ, अब पछताओ, बहू ने मुँह ही मुँह में बुदबुद की।

रोज़ी ने वरदान की चीज़ें कन्धे पर लटके शनील के कढ़े हैण्ड-बैग में डालीं और ढिलाये जूड़े को खोल कमर पे बालों को लचकाया, रंगीन क्लिप जिसमें मोती का फुंदना झूलता था निकाल के होठों में दबाया, फिर औरताना अदा से बालों को समेट, दोनों हाथों में ऊँचा उठाके, हवा में लपेटा मार के वापिस जूड़ा सजाया और क्लिप भी वापस खोंस दिया।

रॉकिंग चैयर पहले ही उठा ले गयी, बहू ने झिकझिक का सिरा उठाया, कि अधूरा पूरा हो।

रोज़ी जा चुकी थी।

उसकी क्यों उठा रही हो? वो तो इस सब के पहले की बात थी। अधूरा आगे बढ़ा, अब बड़े के बढ़ाये। वैसे वो नीपा के माली को दिया था।

कि गुड़ाई निराई के बीच पेंग भरो?

तुम्हारी तो नहीं थी, वो जिसे चाहें दें।

उनकी भी नहीं थी। बंसी पूरे घर के लिए लाये थे।

धीरे से कहा किसी एक ने कि वैसे तो सब कुछ उन्हीं का है।

फिर ऐतराज़ उठाया, मगर वो म्यूजिक सिस्टम मेरा था।

पैसा मैंने दिया था, ऐतराज़ पर ऐतराज़ उठा।

थरमस भी नहीं दिख रहा।

अरे वो मैं कैंटीन से लाया था।

मेरे मामा के कैंटीन कार्ड से।

पैसा मैंने दिया।

पैसा तुम्हारा ही होता है, चाहे किसी का हो।

भड़कते कड़कते दोनों समझौते पे आये कि वैसे नये घर में सब कुछ अटना तो है नहीं, निकालना पड़ता ही। ऐसे ही सही। संकट-भाव में हास्य रस का घुलाव!

घर बदलना है, दंपत्ति ने सयानेपन में हामी भरी और गहरी साँस ली।

घर बदलना है, इन दरोदीवारों को यहीं छोड़ना है। क्या घर को बुरा लगता है? क्या दीवारें दर चुपचाप, अदृश्य साथ चल देते हैं? आत्मा की तरह? जो भीतर है? भीतर जो है वोही घर को महल बनाता है या दड़बा, बाहर के नाप की इसमें कोई दरकार नहीं, ये तो सुना होगा? घर के भीतर घरवाले होते हैं, तो क्या उन्हें ही आत्मा कहते हैं? उन्हीं के इर्दगिर्द चीजें जुट जाती हैं जिन पर लेटा बैठा झूला जा सकता है, पर ये सब सोचने के फेर में बड़े और बहू कहाँ पड़े? और इस समय घर के रंगरूप को देखकर ऐसे ऊहापोह में गोते लगाना और गफ़लत पैदा करता।

घर दफ़्ती के चौकोर कार्टनों में खो-सा गया था और जानदार लोगों का उनके बीच खुद को समेटना मुश्किल हो रहा था। हर तरफ़ फैले डब्बों के बीच से एक दूसरे तक पहुँचना असम्भव और अपना अकेले का भी तन और मन और धन एक जगह संकलित करना असम्भव।

इन डब्बों में क्या था, क्या नहीं, आते दिनों में पता चलेगा अगर तब तक याद दुरुस्त रही। नए घर में पहुँच कर सब डब्बे एक संग नहीं खुलते। एक चीज़ मिलेगी, दूसरे की ढूँढ़ायी होगी और नयी बहस छिड़ेगी कि फ़लानी चीज़ कहाँ रह गयी और तुमने खो दी या मैंने दबा दी या वो भी दे दिवा दी गयी। घबराहट में तितर बितर रस्सियों कागज़ो डिब्बों को फिर से झटकाया जाएगा और फिर...

फिर कुछ नहीं। वापस उन्हीं पदचिन्हों पे कैसे लौटा जाएगा कि चोर या कल्पतरु या कोई और बता सके कि अमुक चीज़ गुम है, ऐसे?

अगले किसी दिन ये ज़रूर पता चला कि मूर्ति तो पैक भी नहीं हुई थी और गुम है। बूढ़ी अम्मा भी।

ऐसा *है कि बूढी अम्मा के अलोप होने की बात बढ़ाई जा सकती है। या उनकी पुत्री पे शिकंजा कसा जा सकता है जो नए ज़माने की परिवार-मूल्यों से विमुक्त खुलीआत्मा थी, कमसेकम अपनी ज़बानी। या दोनों को विस्तार दिया जा सकता है, बारी बारी के परिच्छेद में, जो यक़ीनन भ्रामक हो सकता है।*

ये ही तो। कि रस्ते कहाँ कहाँ ले जा सकते हैं। अगर एक कोण, एकराह ही हो, तो बात शुरू हुई कि ख़तम। पर नहीं, राहें उलझती हैं तभी नए क्षितिज खुलते हैं। कोई तो इसीलिए

दीगर राह चल देती है कि देखें कहाँ पहुँचते हैं। कोई स्पष्ट साफ़ के घेराव में रहना गनीमत समझती है कि एक नज़र में मतलब हो तमाम और छिछलती निगाह की छिछली समझ को हो लेता है गहरे और पूरे का गुमान।

समझ बड़ा छिजाया हुआ, गाली खाया हुआ, शब्द बन गया है। कि उसके मायने हैं मतलब को स्थापित करना, जबकि मायने उसके हैं मतलब को विस्थापित करना। ऐसे हिलाना कि बिजली कौंध उठे। कौंध हो स्पष्ट नुकीली चुटीली चमकीली तेज़ और उसमें उठ आये धरती आकाश और उनके बीच बहे संवाद की तरह समंदर कि एक दूसरे को बूझो, बूझते रहो, बिना अन्त पाए।

क्या बदली क्या लहर क्या धुआँ क्या हवा
क्या पहाड़ी क्या जनावर क्या कंकर क्या तरुवर

सादी सी बात ये कि सधी बात वो ही जो झलमलाये टिमटिमाये। पूछ खुद से, मूरखमन, कि मरीचिका से ज़्यादा चमक कहाँ और वो क्या झूठा, उसके नीचे पृथ्वी ठोस नहीं है क्या, और उसके ऊपर हवा नहीं गुंजान? और हम जब उसे देखे हैं, उम्मीद, लालसा और कविता हममें नहीं अखुआए क्या?

इतनी सी बात, खरी की खरी, कि उलझाव इसी ललक से है, कि हमें जानना है कि पहला, मौलिक, असल रंग क्या और किस गुहा से फूट रहा है, मगर जानो तो कैसे, कि किस गुहा से, जब हर समय उस रंग पर आसमान और ज़मीन, पर्वत और पवन, अपने सायों के गेंद फुदका रहे हैं? इस पल सफ़ेद, अब काला, हरा, काही, लाल, अभी खुरदुरा, अभी चिकनी छाया, अभी गोलमोल, अब कांटेदार। क्या जानें क्या था वो पहले और अब हो चला है क्या?

तो हर कथा गाथा गल्प गप्प में है अबूझ और बुझौवल का पुट पक्ष, और हर कहानी है ज़िन्दगानी का नंदन चाहे क्रन्दन कक्ष। और जब उसकी भूलभुलैया में प्रियजन गुम जाते हैं तो दिल का सारा लुत्फ़ ग़म हो जाता है जिसमें हर रंग खेल जाता है पर मज़ा नहीं आता है।

ये थीं चेहरों की हवाइयाँ जब जाना कि अम्मा गायब हैं।

माँ जी कहाँ हैं? अभी यहीं थीं।

कोई नारीवादी मन कह सकता है कि पहले भी नहीं थीं, बरसों से नहीं थीं, बाल बच्चों घर की निगरानी में फिरती एक साया थी जिसका असल लापता था। पर कोई कलावादी उलझा सकता है कि असल कौन और साया कौन, किसे कभी पता चला? क्या हर रंग में अलग असल जीवन नहीं हो सकता?

विटगेन्स्टाइन ने कहा था मुझे पहाड़ी के तल पर रहना है बिना कभी तमन्ना किये कि उसकी चोटी चढ़ूँ। मगर माँ के बच्चे विटगेन्स्टाइन नहीं थे कि शान्त बैठें, न उक्त तरह के नारीवादी कि कहें गायब थीं गायब हैं। उनका मानना था कि माँ अब तक यहीं थीं, अब गायब हो गयी हैं, जब वो अपने बिस्तर पर नहीं पाई गयीं।

जो उठती नहीं थी, कैसे उठी कि ऐसे उठ गयी?

दिमाग हुए दही, घर में मची चिल्ला चिल्ली।

OceanofPDF.com

सुशीला की याददाश्त लटपटाने लग गयी कि जब वो गरम पानी का थरमस और निम्बू की फांक ट्रे में गिलास और प्लेट के साथ रख के आई थी तब माँ जी थीं कि तभी से चम्पत? उसको लताड़ पिलाई गयी मगर ये उसके संग अन्याय था। पहाड़ में जैसे चुहिया, वैसे रज़ाई में बुढ़िया। माँ किस तह में सिकुड़ी पड़ी हैं, ऐसे ही पता न पड़ता। फिर सुशीला, सब सोये रहते, अँधेरा टिका रहता, तब आती। सुबह में, अपना चेहरा दुशाले में डाकुनी की तरह गायब कर, मुँह से भाप छोड़ती, जिसमें आँखों के आगे और अँधेरा छा जाता। दबे पाँव आती माता जी के सिरहाने, और बेआवाज़, उनकी बगल में रक्खी तिपाई पर चीजें धर के चुपचाप निकल जाती। एक खड़ी, एक लेटी, दोनों चुहिया नाईं।

बड़े का ध्यान बंटा था। दफ़्तर की हड़बड़ी में नहा के निकले थे और जल्दी जल्दी पूजा परिक्रमा कर रहे थे, पूरे घर में श्रद्धा से दीप घुमाते, और अम्मा के कमरे में पिताजी की तस्वीर पे लहर लहराते। उसी में उन्होंने मल-दल रज़ाई का अक्स देखा और जाप-बीच कनखियों से सोचा कि देखो कैसे बेजान पड़ी रहती हैं और अब डाँटती भी नहीं कि खौलते पानी से नहाकर देखो नंगे बदन घूम रहे हो और फिर खोंखों सुड़सुड़ करते रहते हो। शायद उसी हसरत में बड़े कुछ बिस्तर से मुखातिब हुए, और खुल के अपना लापरवाह तन दिखाते कि वो देखे और डपटे। कहते हैं कि तभी उन्हें छींक आ गयी, अगरबत्ती जो आजकल की इतनी तीखी होती हैं हिली क्योंकि, और पूजा की थाली में कोई घंटी सी टुनटुनायी, जो पूजा की घंटी नहीं थी, वो छोटी सी तांबे की, गंगाजल की लुटिया की बगल में, बल्कि दिल के बजने से थी कि ऐं?

'अम्मा' उन्होंने पुकारा होगा, ज़रूर पुकारा होगा।

फिर उन्होंने घड़ी की तरफ़ नज़र फेंकी और फिर रज़ाई की तरफ़, जो गुजीमुजी फैली थी, कहीं दबी, कहीं उठी, कहीं तही, कहीं उड़ी, जैसे उसके नीचे कुछ हो भी सकता है और नहीं भी। फिर उन्होंने बाथरूम की तरफ़ देखा और उसके दरवाज़े को छुआ। धीरे धीरे खोलते हुए ज़ोर ज़ोर से अम्मा अम्मा पुकारा कि वो हों भीतर तो सँभल जायें। फिर रज़ाई को उठाया खिसकाया जैसे छुपम छुपाई के खेल में लुकी जगहों को टटोलते कि माँ की चोटी दिख जाए या पाँव का नाख़ून या कनपटी तो चिल्ला दें 'आइसपाईस'!

तब तक सब आ गए और सुशीला रोने लगी कि मैंने देख लिया होता तो ट्रे तो मेरे हाथ से छूट जाती और थरमस का काँच ज़रूर चकनाचूर हो जाता जैसे एक बार पहले हुआ था और दूसरा थरमस तो माता जी ने दान कर दिया है, ये ही एक है, तो मेमसाहिब आपको नया लाना पड़ता।

तब बड़े को कुछ सूझा और सूझता गया और जो सूझा था वो दरार आकार का रहा होगा, जो बढ़ते बढ़ते खाई हो गया और उनके पूरे भेजे को ही निगल गया, जितना भी बड़ा वो रहा हो, उन्हें, उस पल, एकदम शून्य, मुँह बाये छोड़, अपनी सारी उम्र और अफ़सरी का सरमाया जैसे यही।

गुमी वस्तु को तलाशने के ढेरों तरीके हैं। गुमे इन्सान को भी लगभग वैसे ही ढूँढ़ा जाता है। एक ऐसे, कि रज़ाई को थपथपाएँ, समेटें, जैसे वो आटा है जो गूंधा जा चुका है और अब आप उसे हल्के हाथों से छुहियाते हैं।

दूसरा ऐसे, कि आप सोचें आटा नहीं, ये तो तम्बू है और उसके किनारों को कुछ तूफ़ानीपन से उठाते गिराते हैं और गुमे को पकड़ने को अन्दर हाथ दौड़ाते हैं और कुछ हाथ न लगने पे खुद हाथ के पीछे दौड़ पड़ते हैं और इधर से घुसे उधर से सिर निकाल के बड़ी बड़ी आँखें झपकाते हैं। जैसे पानी से बाहर आकर फूली हुई साँस सँभालते हों, ऐसे आँखें नथुनों की तरह जिलती मरती हैं।

तीसरा ऐसे, कि आपको लगता है ये तो कालीन है और बिस्तरा पूरा उठा के झटकते हैं जैसे अम्मा उसमें चिपकी टिड्डी की तरह अलग गिर पड़ेगी।

फिर समझ आता है कि छिपने वाला तो कोई भी आकार धारण कर लेता है और नाप भी बदल सकता है तो अब आपके लिए कोई जगह, कोई वस्तु सम्भावनाहीन नहीं रहती। खोज गहराती है, इन्द्रियाँ बेसब्रा हुई जाती हैं।

तो आप उसे बिछिया रूप में सोचेंगे तो बिछी चादर को बारीक चुन्नी सा फटकायेंगे। पत्र की कल्पना करेंगे तो तकिये के नीचे ताकेंगे और गद्दे के नीचे भी हाथ डाल देंगे। बिल्ली का बच्चा, तो रज़ाई को पोटलियों की तरह जगह जगह दबोचेंगे कि हाथों से फिसल न भागे। हाथी अगर, तो आप झटके से रज़ाई फेंकेंगे और उचक कर दूर खड़े हो जाएँगे कि वो पागल न हो, टूटे आप पर। पटाखा सोचें तो भी कुछ इसी किस्म से माचिस लगाके कूद मारेंगे कि ऊपर न फटे।

कल्पना की सीमा आजतक नहीं मिली है। एक लाँघो तो एक और उग आती है। हर आकार अन्दाज़े-कल्पना में दर्ज हो जाता और नयी नयी जगह वो अपनी माँ को तलाशते गए। थरमस पर लगे कप को भी घुमा के खोला और घूरा, पिताजी की फ़ोटो के पीछे भी देखा और इलायची की डिबिया में भी। पलंग के नीचे, खिड़की के पल्ले पर, अलमारी के भीतर, दराज़ खोलकर, टॉयलेट पॉट में झुककर, और हर बार सुशीला का रुदन पुन: फूटता — माताजी कहाँ यहाँ नहीं।

मगर जब सुशीला ने गद्दा उठाया कि उसके नीचे झांके तो उसे पड़ी कि एकदम पैदल हो क्या?

नहीं, मैंने सोचा, वो सुबकी।

क्या सोचा? और पड़ी।

कि भूले से माताजी ने गद्दा ओढ़ लिया हो...कहीं...

कहा इस तरह भी जा सकता है कि इनमें से कोई भी माताजी अम्मा माँजी बूढ़ी दादी ग्रैनी चिल का आकार नहीं थे, बल्कि फाख्ता हुए हवास के आकार थे, पर तब तो ये भी कहा जा सकता है कि ये जो फाख्ता है, सबसे अधिक कल्पनाशील वही, और कुशल जादूगर भी, जो एक लहरुआ फहरा के लकड़ी को सांप और बड़े को छोटा और मरे को ज़िन्दा और पड़े को उड़ा व दिखते को अदृश्य कर देता है।

मतलब ये कि सबके दिमाग चारों खाने चित्त पड़े थे और चकरा के जो वो उठते तो मुमकिन-नामुमकिन के भेद से अनभिज्ञ, हर कुछ का मुआइना कर रहे थे। दीवार तक किसी ने ठोंकी ठांकी, एक दरार सी उसमें शायद देखकर, जो चोट खायी लग रही थी, जैसे ठंड में सिकुड़ते सिकुड़ते चटक जाने से फट पड़े और घावित हो जाए। छेद बन जाए, जिसमें साँस का धागा सुई की आँख उसे बनाकर घुस सकता है और दीवार की दूसरी तरफ़ निकल सकता है।

ख़ैर थी तो ये फ़िज़ूल सी बात। कहानी में जो चाहे करा लो, वर्ना क्या एक समूची औरत को दीवार की दरार में डोल की तरह उतार दोगे और दूसरी तरफ़ उठा के छलका दोगे?

लकड़ी को बेटी की नज़र ने ढूँढ़ा। मतलब पापा की छड़ी को। और फिर अम्मा की नयी नवेली छड़ी खोजने लगी। पर उसे सांप समझने की जुर्रत उसने नहीं की होगी कि ज़हरीली चाल में चल दी हो अम्मा को साथ लपेटे।

मूर्ति की भी कोई क्यों सोचे, जो बचपन से आड़ित रही, गरिमामय, बहुमूल्य, पुरातन, खंडित हो तो क्या, जिसे कोई भी संग्रहालय खरीद ले बेचो तो, लाखों करोड़ों में, इसलिए भी अन्दर रखो, कोई न देखे जाने सोचे, वही ठीक।

तो इसका कोई उत्तर नहीं मिलेगा, जैसे निरे और प्रश्नों का, कि क्यों बड़े ने खोयी को अनेक रूप अनेक नाप में तलाशते तलाशते बीच राह में खोजना रोक दिया और पूजा थाल व दीपक फिर उठा के दिशा ऐसे अचानक बदली कि लपक बुझने को लहराई पर बुझी नहीं और कूद-सी लगा गयी, उनकी तरह, जो करके उन्होंने अलमारी का वो पल्ला खोला, खटाक से, जहाँ मूर्ति का वास था, और क्या जाने उसे देखने को आँख उठाई, या आरती करने को दीया, और बड़ी समझदारी उनके चेहरे पे लहरायी कि मूर्ति गायब है।

वैसे वास्तविकता ये है कि उन्हें कुछ समझ नहीं आया था।

परिवार की दशा दिल्ली नगरी सी है। ठस्समठस्सा तितरबितर अस्तव्यस्त चीलसपट्टा खील बताशा पुराना सिकंदर लोदी सबसे पुरानी इन्द्रप्रस्थ जगर जगर मॉल बुक्कायंधी झोपड़पट्टी और ऊपर और नीचे धरती और अम्बर के चीथड़े बिजली और टेलीफोन के तारों पर मटमैली पन्नियों से झूलते और कभी पास खड़े मति-मारे को छुल जाते और करंट लगा के

उसका सफ़ाया कर जाते। पर इससे न तो शहर साफ़ होता, न आबादी घटती। दिल्ली और परिवार अजर अमर, बमगोले पे टिके, फटते, फूटते, चलते रहते।

उसी तरह जैसे किसी को नहीं ख़बर कि क्या हो रहा है दिल्ली में, किसी को नहीं मालूम परिवार के भीतर भी। मसलन इस घर की माँ जी कहाँ गयीं और क्यों गयीं किसी को नहीं पता। जितने सर उतनी बातें और सर तो कितने उस साँसत के दिन। क्योंकि पुराना दस्तूर निभाते जनता दौड़ी, सारी कि सारी, अपनी उम्र के हिसाब से तेज़ या मट्ठर, उतावली या संजीदा, और बहुत चिन्तित कि हाय कैसे ये हुआ, बेचारी, और एनजीओ के कार्यकर्ता भी आ धमके कि कहीं बुजुर्गों के संग ज़्यादती का मामला तो नहीं?

वर्ग पाठ का दिन वो बन गया और सीख सकते थे कि कहाँ वर्गों में लचीलापन है कि इधर से उधर झूल लें, कहाँ किलेबंदी है कि न आर न पार और ये कि उनका सारा वैविध्य एक जगह जमा। एक तो छात्र निकला, किसी हमदर्द अफ़सर का बेटा, जिसके शोध का विषय वर्गीकरण का ब्यौरा माँगता था। उसका लैपटॉप साथ रहता ही था, झट निकाल के नोट्स लेने लगा कि इसकी चाल, उसकी ढाल, कैसे उनके वर्ग को दर्शा देती है। एक सर आसमान में उठाये घुसती है, अगला 'एक्सक्यूज़ मी' कह कर गलियारा पार करता है, कौन सबको अनदेखा करके धढ़धढ़ा के जाता है, किसके लिए जनता स्वयं पीछे हट जाती है, कौन गर्भगृह में पहुँचकर कुछ पूछेंगी, कौन नौकरों के क्वार्टरों में जाकर फुसफुसायेगा, कौन बस खिड़की की ओट से पलक झपकायेगा, कौन खाली बिस्तर पर बैठ जाएगा, कौन पैताने खड़े, अनुपस्थित पाँवों पर माथा टेकेगी, ऐसा कुछ, ऐसे नोट्स। ये जगह नहीं है उसकी तफ़सील में जाएँ पर ढेरों बारीकियाँ नोट कीं शोधार्थी ने, कि किस वर्ग में खानदानीपन का विनीत बड़प्पन था, किसमें नवधनाढ्य की फूहड़ अहंमन्यता और किस निचले तबके में जाति-विशेष निरीहता, किसमें अस्मिता उद्दंडता। इतना कहना फ़िलहाल काफी होगा कि वर्ग के सारे प्रकार जो दिल्ली में पूरे में फैले थे, यहाँ एक जगह मिल गए और स्टूडेंट की तो चांदी हो गयी।

उधर से गुज़रते ऑटोरिक्शा वाले भी इंजन चलाये रखे रुकते और पूछते क्या हो गया और कोई आगे बढ़ जाता कोई पूरा रुक जाता व हुजूम में जुड़ जाता। जैसी जिसकी रुचि और मसरूफ़ियत।

एक बच्ची ने माता जी के कमरे की दीवार पर, बाहर की तरफ़, घाव देख लिया। वहाँ वो आए दिन लकड़ी से शक्लें खुरचती थी। डरी कि मैया ने पकड़ लिया तो बोलेंगी तेरी ही कारस्तानी है। तो वो क्या कहेगी? ऊँहूँ, कह देगी दीवार ठंडी से सिकुड़ते सिकुड़ते चटख गयी मैया, मैं क्या जानूँ इस फटे के बारे में। उसे नहीं पता था कि इस फटे के उस तरफ़ माताजी का पलंग था जिस पर से वो गायब हो गयी थीं। उसने यूँ ही तीन ईंट एक पर एक रखीं और डिगडिगाती उन पर खड़ी हो गयी। फटा है तो दूरबीन हो जा। भीतर झाँकने की आज़माइश की, नज़र ऐसे अन्दर घुसाती जैसे धागा पिरोती हो होशियारी से। गुपचुप मुस्करायी, आँख-देखे पे कम, मन-देखे पे ज़्यादा। क्या-आ, किसी ने नहीं पूछा क्योंकि सब अपने अलग तनाव में थे। अन्दर सुनसान था।

सब ठीक हो जाएगा, बड़े की पत्नी बोलीं, सीधे पति से नहीं पर उन्हीं के लिए, जैसे उनका अक्सर ढंग था एक दूसरे से बोलने का, आधे अलग घूमकर। वो आ जाएँगी, जैसे पापा बिना बताये निकल जाते थे और अपनी मर्ज़ी से लौट आते थे।

उसी पल बड़े की बहन ने फ़ोन नीचे पटका और तमतमा के कहा आज तक कुछ नहीं पड़ी थी, अब सब हमदर्दी में मरे जा रहे हैं।

नौकरों को लगा यह बात मेमसाहब के लिए कही गयी है। आपस में बोलने लगे कि फरक तो है ही अपने और पराये खून में, अपने बच्चे जैसे तड़पते हैं, गैर कैसे वो महसूस कर सके हैं, तभी तो इतनी आसानी से मैडम कह रही हैं कहीं नहीं जाएँगी आ जाएँगी और पहले से नहीं कहती रहीं जाएँगी कहाँ घूम फिरकर यहीं आएँगी? बेचारी, तिनका सी जान रह गयी थीं, खाना भी कुछ नहीं पचता था, दो दाने दिक्कत से चुगती थीं, सुबह एक फुल्का, संझा को ज़रा सा सूप, दो निवाले टोस्ट के, सबकी ज़िद पर, उस पर तोपगोला रोज़ कि मँहगाई है मँहगाई।

साहब अपनी अलमारी में कपड़े नहीं रखते, मेवा मिठाई चॉकलेट पे ताला लगाते हैं, कि मेमसाहब अपनी साथिनों और रिश्तेदारों को बाँट दती हैं, फुसफुसी हँसी छूटी।

गुलाबी चटख नेल-पोलिश लगाये हैं मैडम, आज भी, दिल टूटता है। साहिब का तो एकदम रोनू चेहरा हो गया है।

वो तो पहले से लगी थी।

मिटा नहीं सकतीं? कौन अपने से करना है — हाथ फैला के बैठ जाती हैं कि स्पिरिट से साफ़ कर दो।

उधर सिड बाबा भी नहीं हैं और दूसरे बाबा तो फ़ोन से सारी चिन्ता कर लेवे हैं। वहाँ से माँ की सुन लो और दु:ख जता दो। और माँ भी हर छोटी बात की शिकायत वहीं लगाती हैं। आज सुना गयीं कि साहब को चाय में शहद नहीं दिया तो बिफर गए। खाने पीने से बेचारे यों ही बेज़ार हो गए हैं, क्या नन्हा सा मुँह निकल आया है, एक चाय अपनी पसन्द की चाह लें तो उस पर भी ऐतराज़। मुझ पे चिल्लायीं कि उनका हरा पेटीकोट नहीं फैलाया। भई किसे कुछ याद आज के दिन, सब परेशान, कहाँ हैं माताजी, क्या हो क्या सकत है?

माने चिन्ता की सरगोशियों में बहू पर ताने कसे जा रहे थे या इसी के बहाने अपनी बहुओं को लेकर भड़ास निकल रही थी। क्योंकि किसी को ऐसा नहीं लगा कि पति के चेहरे पे पसीज के पत्नी ने कहा हो कि खुद को सँभालो, कोई ऐसे नहीं उड़ जाएगा।

बड़े की पत्नी के भी होंठ काँपने लगे और आँखों में यों बड़े बड़े आँसू छलक आये और निकलीं तीर की तरह सेल-फ़ोन लिए कि ऑस्ट्रेलिया फ़ोन लगायें कि मुँह खोलो न खोलो हम तो खलनायिका हैं, एक बाप तुम्हारे, एक बुआ, सारी चिन्ता उन्हीं को, और उनके देखादेखी अमलों की भी ज़बान कतरनी बनी हुई।

बहू का एड़ियाँ ठोंकते बाहर निकलना, बेटी का थकी चप्पलें घसीटते अन्दर आना, चलता रहा। दरवाज़े पर दोनों उलटी दिशाओं में बढ़ते हुए रुक जातीं, आँख न मिलाने सा मिलातीं, और दरवाज़े ने कुछ कहा तो कहाँ सुन पातीं, जो बातों में एक और बात।

ख़ैर बातें तो बातें होती हैं, सही ग़लत चलती रहती हैं और मुँह बंद रखना किसे आता है, पर मुद्दा तो माताजी थीं जो कब से बस पड़ी थीं, पीठ बनी, फिर कल्पतरु बन गयीं और फिर हवा।

वो लौटकर नहीं आयीं।

ये भटकाने वाला जुमला हो गया अगर अगला न पढ़ें।

वो लौट कर नहीं रहीं उस घर में।

पर दोनों मिलकर भी भटकाऊ जुमले ही हैं।

इस तरह के भटकाव बहुत होते हैं। कुछ ही शब्द सुनें, बाकी सुनें नहीं, उतना जितना कान में पड़ा लेकर आगे बढ़ लें और कहानी कोई और मोड़ और मतलब ले उड़े। मसलन कि खरीदारी करते हुए आप सब्ज़ी की रेढ़ीयों के बीच हैं, कान में पड़े 'भला उनका सा लगता कहाँ है', जो अपने में खासा दिलचस्प सवाल है, अगर सुर के बारे में है और किसी के गले में किस जगह सा सुर बैठा है के बारे में, चूँकि उसी से तय होगा उसका गाना कि वो तार सप्तक में चलता है, जैसे ओंकारनाथ ठाकुर या कुमार गन्धर्व का, या मंद्र में जैसे अमीर खाँ और वहीद हुसैन खाँ का। पर हो सकता है बात गवैये की नहीं, किसी आमजन के बोलने की है कि उसका सा कहाँ लगता है? ओंकारनाथ तो ओंकारनाथ ही रहेंगे और कुमार जी भी, चाहे पतली आवाज़ हो, पर बोलने वाला तो रिरियायेगा मिमियायेगा। हाँ औरत की बात थी तो शायद महीन सुर उतना अजीब न लगे। मगर तब राहगीर ये सवाल क्यों करती या करता? उलटा गयी आवाज़ हो, कि मर्द की औरताना, और स्त्री की मरदाना, तभी तो सा की ऐसी जिज्ञासा उठेगी। पर ये भी तो पता नहीं कि रे के पहले के सा की कही है, या नी के बाद के सा की? सब्ज़ी भाजी से निपट कर, घर में ज़रा आँख लगने की इच्छा से आप लेटें, और यूँ ही, क्यूँकि यूँ ही ही सबसे अधिक घटता है, कान में राह चलते उस प्रश्नकर्ता का सवाल बज जाए, तो तब तो फुर्सत न थी पर अब आप सोच में पड़ सकते हैं कि उसका तात्पर्य था क्या, और लाख उहूँ करें कि मुझे क्या, हो सकता है जवाब ढूँढ़ते रहें या कम से कम ये सवाल बहुतों के गाने और बोलने को सुनकर पूछने लगें, कि इसका और उसका सा कहाँ लगता है। जिसका सा मूल सवाल में पूछा गया था कहाँ लगता है कभी नहीं पता चलेगा, चूँकि आप सब्ज़ियाँ ताज़ी ही खरीदें की फ़िक्र में लारीवालों के पीछे दिमाग खपा रहे थे, न कि इस दिलचस्प सवाल को पूछने वाले की छाया, दबे पाँव वाली, बने उसके बाकी वार्तालाप को सुनने चल दिए थे कि सन्दर्भ और शख्स स्पष्ट हो जाएँ।

या यूँ करें — यूँ ही — कि भटकने से बचने के उपक्रम में दूसरे ढंग से भटका दें? लौटने की बात हो रही है पर इस गाथा में लौटता घर है, घरवाले तो जगह बदलते हैं। तो क्या

अबके कह रहे हैं कि घर नहीं लौटा? वही दीवारें और दरवाज़ा, नए गारे चूने में? बड़े का सरकारी घर छोड़ने के बाद, दो माले सीढ़ी चढ़ के किराये वाले घर में गया कि नहीं?

अभी वो पल नहीं आया था और क्यों नहीं जाएगा जब अब तक जाता रहा है? वो बुढ़ा नहीं रहा है कि लिफ़्ट न हो तो सीढ़ियाँ न चढ़ पाए। नहीं जाएगा तो पहली दफ़ा ऐसा ब्रह्मांड में घटेगा। कि पीढ़ियों तक साथ देनेवाला दरवाज़ा मुकर गया। सही माने में वो होगा सदी का लोप।

अभी उनकी बात कर लें जो लोप थीं और जब तक सो थीं, कहा जा सकता है नहीं लौटीं। उस सरकारी बंगले में जिसमें चंद दिन बाकी थे, हैण्डओवर के पहले।

तेरह घंटों में बूढ़ी माता जी मिल गयीं, यों कहा जाता है। तेरह दिन, ऐसा भी मशहूर हुआ, और तेरह हफ़्ते बाद, इसकी भी डुगडुगी बजी। अन्त में बात ये ही कि दिन हफ़्ते माह पट्टियाँ हैं, जो खिलाड़ी काल अपने शौक के लिए फेंकता है कि नापो, जो कोई नहीं कर पाता, और जो ये जानते हैं पहले ही हार मान के पट्टियाँ अपनी आँख पर चढ़ा लेते हैं कि जो ये कहे सो भी ठीक और जो आप कहें सो भी, पर मिल तो गयीं न? घंटों, हफ़्तों, महीनों की बहस में लगे रहतों को आज भी एकदम सौ फ़ीसदी सही माप मियाद का भरोसा है। इन अटकलपच्चुओं के मुँह क्या लगें कि वक़्त गया और सोलह आने सच और सौ फ़ीसदी घूरे में पड़े हैं।

एक एक तफ़सील समझौता एक्सप्रेस पे विस्फ़ोट की भी पता नहीं चली, जहाँ उच्च स्तरीय जाँच और सुपर डुपर जासूस सुँघाई कर रहे थे, तो यहाँ तो रोते बिलखते सन्नाये घर सदस्य ही थे और जनता की लपलपाती ज़बानें चालाक रुझानें और सरल मनानें। सभी ने तड़का लगाया या दिल को समझाया और मूल कहानी बेचारी की खुद की शक्ल निरी थोपी शक्लों में घुलती गयी।

सारी कहानियाँ तो कौन इन पन्नों पे समेटे, पर कतरब्यौंत विवरण बहुत आएँगे।

बहू ने आक्रोश से कहा था कि बेटा दूर समुंदर पार से पचासों बार फ़ोन कर रहा है कि ये कोई तरीका है, इतने लोग घर में और आसपास और मैं ज़रा देर को निकली, वो भी उनके लिए और तुम्ही सब के लिए अगले घर की साफ़सुफाई कराने और यहाँ क़यामत ढा गयी? बहुत गुस्से में है, पूछ रहा है कि हम कब तक मारे मारे फिरेंगे, पुलिस को ख़बर करें, बूढ़ी हैं, कितनी, ताकत पिद्दी भर, न जाने किस हाल में कहाँ कैसे निकल पड़ीं और पड़ी हों कहीं अँधेरे में घायल बेहोश कुछ भी।

जिस पर बड़े ने काँप कर विलासराम को अम्मा के हीटर पर डले कपड़े को 'किसने उस पर ढकने को कहा', डाँटा।

बेटी ने कस कर कहा कि फ़ोन कर दिया है इलाके के पुलिस स्टेशन में और दबे स्वर में बड़बड़ायी, मगर गुस्सा फिसल निकला, कि सब नयी छड़ी के कारण है, न आती तो न अम्मा उसे उठातीं, न उठ पातीं। उठी तो हैं ही और किसी ने टेक तो दी है और छड़ी गायब है।

ठीक से फिर देखो, यहीं होगी छड़ी, बड़े का स्वर कड़क और पिलपिले के बीच गडमडाया, जैसे छड़ी कहीं दिख गयी तो अम्मा भी संग होंगी। बिस्तर के नीचे कि दरवाज़े

की आड़ में। अम्मा उसे खोलना भी नहीं जानती थीं, वो उम्मीद से बोले।

नहीं नहीं खुली थी, सीधी सटाक, कल्पवृक्ष की डाल, कंठे वंठे या सुशीला वुशीला के मुँह से फूटा पर सबके चेहरे देखकर फ़ौरन बुलबुले बन उड़ा।

हाँ, इसका सबूत है, जो यहाँ देकर क्यों जगह बर्बाद करें, कि सुशीला के मन में खयाल आया कहीं कल्पतरु ने किसी अभिलाषी को छड़ी पकड़ा दी हो तो फिर माँजी तो घोर बेसहारा हो गयीं हों, पर फ़ौरन उसने इस खयाल को खारिज किया कि अपनी मूल डाल पेड़ कैसे अलग कर सके है, ये तो आत्महत्या हो जावे है। ऐसा डरावना संवाद वो किससे करती? अपने से उसने पूछा कि कल्पतरु से कभी किसी ने कल्पतरु माँगा है, सास से पूछूँ न पूछूँ?

देखो चप्पल कौन सी पहन गयी हैं? या नंगे पाँव ही...? यकायक बहू को सूझा।

अरे कैसे...? बड़े भड़के। जैसे अम्मा के बातमीज़, बातहज़ीब होने पर सवाल उठाया गया है।

बहू ने बगलें झाँकीं, चप्पल चुप्पल बाँटती रही हैं इसलिए...

झुरझुरी छूटी होगी कि अम्मा गायब हैं। धीरे धीरे, लम्हा लम्हा, एक एक करके, ये भी पता चलता रहेगा और क्या क्या गायब है। झांई सी चिन्ता इसकी भी कि अन्त आते आते पता चलेगा कि जितना लुटा महसूस कर रहे हैं उससे कहीं अधिक लुटे हैं। बाकी जीवन इसी की तफ़सील क्या कि हमने और क्या क्या गँवा दिया?

रात होती है अगर बाहर अँधेरा हो।

घना घुप अँधेरा था। भूली बिसरी बत्तियाँ, सड़क पर और दूर के घरों में, सन्नाटे से घिरी हुईं। दुनिया सोयी पड़ी। पहाड़ी के ऊपर मातम के लिए जाना था। रास्ता दुर्गम था। चट्टानों की किल्लियों पर रस्सी की गाँठें लगी थीं। रस्सी हवा में झूल रही थी। उसे पकड़ कर अपने को ऊपर खींचना होता। हर बार रस्सी पकड़ के जब झूलते, लगता अभी रस्सी टूटी और कहाँ तो गिरेंगे? स्पुतनिक माफ़िक। एक बार रस्सी समझ के थामा तो झाड़ की टहनी निकली। फेफड़ा डर से माथे को उछला। शुकर की हवा में फडफ़ड़ाते पाँव उसी पल ठोस पत्थर को छू गये। अँधेरा था घनाघटोप तो कैसे पता चलता? पर मातम में जाना था। फिर से पकड़ी रस्सी कि तन उस पर लटका के ऊपर चढ़ा दें। फिर डंडी हाथ लगी। अबके चट चट चट आवाज़ करती और बड़े हवा में ढेला सा गिरने लगे। 'गए' वो चीखे और हवा को फाड़ते हुए रॉकेट की तरह छूटे। उलटी दिशा में। नीचे। चीख ऊपर रह गयी। बेआवाज़, वो लकड़ी से लिपटे हुए, तीव्रतम गति से गिर रहे थे। लकड़ी नहीं थी, छड़ी थी। कहाँ थी जहाँ से उनके हाथों में आ गयी? चट चट चट चट खुल गयी। अम्मा बैठी थी किसी झाड़ में,

उसने पकड़ा दी? बड़े ने गिरते गिरते देखना चाहा कि वही छड़ी है? तितलियाँ उड़ीं। अरे वही! सुनहली। ऊपर, उन्होंने हाथ पसारे और पैर कस कस के हवा में चलाये, कि कुछ पकड़ में आ जाये जिसके सहारे वो ऊपर झाड़ की तरफ़ खुद को खींचें। ज़ोर से वो बिस्तर में गिरे और उनके नीचे ज़लज़ला सा आ रहा था। उनकी आँख खुल गयी। छोटे से बच्चे की तरह वो पैर झटक पटक हवा में चला रहे थे। पेट से बन्दूक सी दागी गैस छूटी। घबरा के उन्होंने बगल में देखा। बीवी बेखबर सो रही थीं।

वो बड़े हो गए। धीमे से उठे और खिड़की पर खड़े हो गए।

बाहर अँधेरा था क्योंकि रात की बात थी। कुछ घरों में और सड़क पर सूनापन बाँटती बत्तियाँ जल रही थीं। सब सो रहे थे।

ऐसा कैसे हो सकता है, उनके मन में हूक उठी। कन्धे पर बीवी का हाथ छुला तो वो मुड़े। वो पीछे आ खड़ी हुई थी। सो नहीं रही थी।

उनका चेहरा आंसुओं से तरबतर था? दिल के टूटे फूटे टुकड़े चेहरे पर बिखर गए थे? पता नहीं। काली रात।

मैं आता हूँ ज़रा, उन्होंने बीवी का हाथ हल्के से अलग किया।

मैं भी चलती हूँ, बीवी ने नाइटी पर ड्रैसिंग गाउन डाल लिया।

खोने कि ढूँढ़ने, इससे जैसे अनजान, वे घर से निकले। सामने के दरवाज़े से नहीं, पीछे लॉन में जाकर, गुपचुप चुपचुप। सारी झाड़ियाँ चुप खड़ी थीं क्योंकि हवा का एक ज़र्रा भी नहीं था कि उन पर पड़े। बिस्तर-लगी बनने से पहले अम्मा माली से तमाम तकरार करतीं कि किस पौधे को कितने पानी में डुबोये। अम्मा पाइप अपने हाथों में ले लेतीं कि उन पत्तों को नहलाना पड़ता है पर इनमें सिर्फ़ जड़ों के पास पानी छोड़ो, ऊपर से डालोगे तो पत्तियाँ टूट जाएँगी, एकदम मुन्नियाँ हैं।

पाइप है कहाँ, बहू ने झाड़ियों के आसपास नज़र गड़ाई। अँधेरे में दीखता जैसे।

दोनों छोटी फटकिया खोलकर बाहर निकले। इसी फटकिया पर अम्मा एक बार गिर पड़ी थीं और अकेले ही हँसती पाई गयीं। बाहर मोहल्ले के बगिया के माली ने उन्हें उठाया और घर तक सँभाल के लाया। कहा माताजी गिरी हुई थीं, हँस रही थीं, जैसे दोनों एक सी बात हुई। डॉक्टर ने देखा कि कोई अंदरूनी चोटवोट न हो। न थी। बाद में बड़े से कहा मोतियाबिंद के पकने के लिए अब कोई नहीं रुकता, लेज़र सर्जरी से कच्चे में ही चट निकाल देते हैं। धुंधला देख रही हैं, सीढ़ी पर पाँव गड़बड़ा गया होगा। आत्मविश्वास कम हो जाता है, तारीख ले लीजिये। हँस क्यों रही थीं, बड़े ने पूछा, तो फिर हँसीं कि दर्द हो रहा था बेटे, जिस पर बेटे ने कुछ डपटती नज़र उन पर डाली। अरे कैसी बुद्धू तरह से फिसली थी, जिस पर बड़े की नज़र और सख्त हुई कि कहने क्या बुद्धिमान तरीका भी कोई है फिसलने का, और तब अम्मा बोलीं कि अरे बेटा खून बहे जा रहा था और कोई सुन नहीं पाया और तुम दोनों बटई की शादी में थे तो रोना आ गया। पर रो नहीं आप तो हँस रही थीं। वही तो। लगा मैं गयी तो लगा कि जा रही हूँ तो रोते हुए क्यों जाऊँ, हँसते हुए जाऊँगी। तभी नट्टू माली ने देख लिया, मस्जिद से लौट रहा था।

हँस रही होंगी, मन ही मन खयाल आया, जब मिलेंगी?

चश्मा तो नहीं भूल गयीं, एक तो यहीं है, पर एक और भी तो था। घर में देखें तो पता चलेगा और कंकर पत्थर बड़े ने चप्पल से सपाट बिछाये कि ठोकर का डर न रहे।

रात का समय। हवा अभी सो रही थी। पेड़ रुंआसे खड़े थे। सड़क पर दो बदन सैर पर निकले हुए थे और पूरे मोहल्ले में और उसके आगे भी, उन डालों डगालों जड़ों झाड़ों गड्ढों पुलिया कूचों गलियों में झाँक रहे थे जहाँ दिन के उजाले में पूरी फ़ौज के साथ खोज कर चुके थे। मानो जो दिन के उजाले में अदृश्य था, रात के अँधेरों में साफ़ उजागर हो जाएगा।

रात थी भी ऐसी कि जैसे काली चादर में ढकी चली और जगह जगह अँधेरे की ढेरियाँ लगा गयी। क्या मालूम किस ढेर में कुछ निकल आये, कोई कनी झलक मार दे?

अम्मा? उसके मुँह से यकबयक निकला। जल्दी से देखा बड़े ने सुना तो नहीं? वो आँखें खोले, या बंद किये, न सोये न जागे, बगल में लेटे थे।

घड़ी है, वे बोले। टिक टिक टिक टिक।

जाने उसे क्यों लगा कि घड़ी नहीं अम्मा का दिल टिकटिक उसने सुना। अम्मा की घड़ी थी। उसके बेटे ने विदेश से ला दी थी और उनके बिस्तर के आगे लगी रहती। एक घोंसले में मढ़ी। प्लास्टिक तिनकों टहनियों की कारीगरी। उसमें अटके दो अंडे और नीले पंख फैलाये चिड़िया। बस उड़ने ही वाली। घोंसला आईने की तरह दीवार पर। बहू ने कल ही माँ के कमरे से उसे अपने और बड़े के बिस्तरे के आगे टांग दिया था क्योंकि यहाँ वाली पैक हो गयी थी और अम्मा तो...। अपराधी की तरह वो वहीं देखती रही। अम्मा तो नहीं कोस रहीं? टिक टिक बनकर?

बहू बाथरूम में घुस गयी। रात फ़ोन रखा था तब से उसे अजीब सा लग रहा था। बच्चे ने फ़ोन पर विचलित होकर कहा कि माँ कैसी बात कह रही हैं, ऐसे थोड़े होता है कि कोई हवा में उड़ जाए, अच्छे से देखिये वहीं होंगी, उठती थीं नहीं और भाग गयीं, वो जा कहाँ सकती हैं, किसी एलियन ने रेज़ फेंकी और उनमें क़ैद करके अन्तरिक्ष में खींच लिया, या कोई देवी ने अदृश्य कर दिया? ऐसी ही असम्भव बातें वलवला गया।

हुश्श, उसने सर झटका, ऐसे थोड़े होता है कि एक पल है, अगले पल गायब कोई। या तो दुश्मनी हो और कोई बदमाश...। वो घबरायी। बड़े उसके मन में आये विचार को सुन तो नहीं रहे वर्ना...। या अपहरण, रैनसम, फिरौती, हाय हाय (डरी फिर बहू कि बड़े न पढ़ लें उसका मन) क्यों कोई अम्मा को ऐसी साँसत में डालेगा? बेचारी अस्सी की तरफ़ बढ़ रही हैं, इतनी दया धर्म तो इस जग में बची होगी।

वैसे आते तो रहते हैं किस्से जिसमें लोग अभी थे अगले पल गायब और फिर पता नहीं ज़िन्दा या...वो फिर डरी कि बड़े तो नहीं पास में, मेरे इस ख्याल पर ही बवाल मचा देंगे,

मानो मैं चाहती हूँ कि...

कोई मुझ पर विश्वास नहीं करेगा। कोई कभी नहीं करता। वो रुआंसी होने लगी। मैंने उनका कमरा ठीक किया कि उन्हें सब आसान लगे — थरमस गरम पानी का, संगीत के लिए छोटा प्लेयर, न चलायें तो मैं क्या करूँ, गुलदस्ता, टीवी भी मैंने कह कर लगवाया कि ख़बरें ही लगा लें। छोटी से छोटी चीज़ मुझे सूझी, इन्हें नहीं। पॉटी के संग पॉटी शावर ये लोग तो बांयी तरफ़ लगा गए थे, मैंने बदलवाया कि दाहिने को रहे, दाहिने हाथ से लेंगी, आराम से यूज़ करेंगी। इनको बड़ी बड़ी सूझती है और समझते हैं उसी से वो बड़े हैं। इनकी बहन जी भी लगा गयी थीं वो डिप्रेसिंग डार्क रंगों की एब्सट्रैक्ट पेंटिंग सामने, रामकुमार कि जाने किस कुमार की, कि देख कर जी घबराए, मैंने ही उसे साइड पर किया और नेचर का सीन लगाया कि जंगल चिड़िया नदी देखकर जी हरा हो, उठने का जी करे, उस पर भी समझते हैं कि भाभी ननद को नीचा दिखाने में लगी हैं। मेरा बच्चा न होता तो मैं कब का भाग जाती, उसके कारण निभाती हूँ। उनकी हर बात का खयाल रखती हूँ, रातों में उठ उठ के झाँकती हूँ कि सब ठीक, पर बाकी हैं कि अम्मा अम्मा करने पहुँच जाते हैं जैसे वही सब कर रहे हैं। अम्मा नाम का विमान चला लिया है कि उड़ आओ उस पे सवार और खा पी के निकल लो? मेरा बच्चा सही पूछता है कि धरमशाला है कि घर?

मेरा घर कभी मेरा नहीं था। इन्होंने जिसको चाहा बुलाया, मेरी क्या चली? बस बहुत हुआ, बच्चा कहता है, अब कुछ अपनी सोचो और दूसरों को अपनी करने दो।

कैसे मगर? कितने हम परेशान हैं और उस पर भी हमीं को कह रहे हैं लोग कि आपके रहते कैसे गायब? ऐसे होता है कोई गायब?

कोई नहीं मानता कि उसका भी दिल रह रह कर धुकधुका जाता है, तभी बच्चा फ़ोन पर परेशान है कि माँ अपना खयाल रखो, सब हैं तो करने को, आखिरकार आप ही सँभालती हैं, आपको कुछ हो गया तो सब ठप्प हो जाएगा। पति जी ऊपर से शेर, भीतर से पिचकिया हैं, स्कूल में नाम मिकी माउस था, अम्मा ने बताया।

बता कर कहीं चली गयीं। कहाँ?

निवृत्त होकर बहू उठी और हाथ धोने लगी, मल मल साबुन उन्हें झाग में गायब करती। ऐसे ही अम्मा हाथ धो रही होंगी? हाथ साबुन से ढक गए होंगे और रगड़ने लगीं होंगी तो साबुन के संग हाथ भी निकलता गया हो? अम्मा ने चौंक कर बाँहों को देखा हो तो वो ठीक उनकी आँखों के सामने फेड करते गए हों? जैसे रंगीन तस्वीर नेगेटिव होने लगे और फिर नदारद। डरी होंगी, शीशे में झाँका होगा और वहाँ कोई नहीं। जिस पर डर कर बहू ने शीशा देखा। पर वो थी। वो हल्के से हँसी पर हँसी रुलाई सी लगी।

वाकई आई हो कोई दिव्य शक्ति, उन्हें अदृश्य कर गयी और भगा ले गयी? या हों अभी यहीं बैठी, मुझ पर हँसती?

वहीं होंगी, बच्चे ने तिलमिला कर फ़ोन पर कहा था। बहू ने घबरा के चारों ओर देखा। हैं? अम्मा, धीरे से पुकारा, फिर खुद को झटका दिया।

या किसी और ग्रह ने खींच लिया? हम जानते ही क्या हैं ब्रह्मांड के बारे में? हम सब फुर्ती में, इधर उधर, वो सोयी पड़ीं, आसान था उन पर रेज़ फेंकना और उसमें क़ैद करके

अन्तरिक्ष में उठा लेना।

जो बेटे ने झल्ला कर असम्भव बातें बतायीं थीं, वही सम्भव लग रही हैं। बहू हँसते से रोने में चली गयी। दुनिया में क्या नहीं हुआ है? ऐसे ही कोई उठा है और फिर कभी नहीं लौटा? हे प्रभु बड़े कहाँ हैं, कहीं उनके कान में पड़ी तो...। एक लेखक सैर को निकले और आज तक लापता हैं, घरवालों को उम्मीदी-नाउम्मीदी के पाट पे झूलता छोड़। एक बच्चा गेंदतड़ी खेल रहा था, बॉल लगी, धप्पा हुआ, वो उसे उठाने झाड़ी के पीछे गया और बस कभी नहीं मिला। नेता जी भी तो गायब हो गए और कहीं सन्यासी रूप में दिखे या नहीं भी। और एक पति तो पान खाने गए, नहीं लौटे तो नहीं लौटे। आलम साहब याद हैं, उनकी बहन के शौहर पाकिस्तान बना तो गए कि लेने आवेंगे और आज तक वो इंतज़ार बेगम हैं।

बहू जल्दी से बाथरूम से निकली। अलमारी खोलकर साड़ी चुनी, चुनते ही सोचा ये क्यों चुनी, ये तो अम्मा के लिए आई थी, बोलीं थीं मुझे भारी लगती है, तुम पहनो। पर वही क्यों हाथ लगी? बहू ने हैंगर सहित उसे उठाया तो देखा दाम की चिप्पी लगी हुई है, उसे फाड़ने लगी तो देखा आधी खुरची जा चुकी है, दाम गायब है बस लिखा है पैठनी। उसे लगा किसी ने आधा फाड़ा, क्यों, मैंने तो नहीं, कोई राज़, कोई है, और वो फिर टुकुर टुकुर इधर उधर।

उसके मुँह से दूसरी बार निकला 'अम्मा'। घड़ी टिक टिक कर रही थी। अम्मा की।

हे प्रभु ये कैसी बातें मन में आ रही हैं, बहू ने झकझोरा मारा। एक बार चाहा बड़े के पास लौट जाए, पीछे से चिपक ले और आँखें बंद कर ले। मगर इतने बरसों में किचकिच झिकझिक ही सहज रह गया था, ऐसा कुछ किया तो दोनों शरमा जाएँगे। निकलो यहाँ से, बहू ने रीबॉक बाँधे, हैंडबैग उठाया। जो करना है वो तो करना ही है और लौटते में वो अमरूद लेगी, खुद चुनो तो और बात होती है।

धीरे धीरे चलने लगी तो लगा हर कदम पे ज़रा हल्का होता जा रहा है उसका रंग, और हल्का, और हल्का, और हल्का, बस बॉर्डर का अंकन, और फिर...

वो दरवाज़े पर थी। उधर से ननद आ रही थीं। दोनों ने कुछ आँख मिलाई सी। दरवाज़ा कुछ अचंभित सा कि बाहर निकली अन्दर आती, अन्दर की गृहिणी बाहर जाती, और दोनों बढ़ लीं अपने भय अपने से साझा करतीं।

उसका मन होने लगा कि वो डरे। वो दुखी हो रही थी जो स्वाभाविक है क्योंकि नींद उड़ गयी थी। ये भी कोई जागने का वक्त है, जब हवा में सिहरन बची है, रात अँधेरी है?

रात अँधेरी क्योंकर हो पाई है, उसे गुस्सा आया, जबकि ऊपर चंदा जी गोल हुए जाते हैं? धुंधलके के घेरे के भीतर टिकली सा टिमकते। जादुई नहीं, भुतहा सा उजेला बिखेरते,

जिसमें सब झूल गया है, कुछ ठोस नहीं रहा। जैसे चुड़ैल ने जाल में फँसा के अपने धुआँये लहरते कन्धों पर पूरी सोसाइटी को उखाड़ के रख लिया हो और रात में चल रही है, जिससे घर डोलते, पेड़ लटके, बाग के टुकड़े सहमे झाँक रहे हैं। बैडमिंटन कोर्ट, क्यारियाँ, चौकीदार का केबिन भी। सारा समां बीच अधर में टंगा हुआ, अपने कसमसाते पंजे जाल से बाहर निकाले हुए, कि धरती से कैसे लग लें, टिक जाएँ, खड़े हो जाएँ।

अम्मा बताती ग्यारस का चाँद है, बेटी ने चाँद को देख कर 'देशी' अकल लड़ाई, और बात भुतैली थी कि चाँद कि अनमनी सी बाहर सोसाइटी में निकली वो खुद, बस ये समझें कि इसके बाद सब गडमड हो गया और जैसे तेरह घंटे और तेरह दिन कि तेरह हफ़्ते कि माह और एक के बराबर दूसरे की गुत्थी किसी ने नहीं उठाई, इस याद के उलझाव को भी कोई नहीं चला सलटाने।

क्योंकि अब ये बचपन की रात हो गयी जो बीती न थी और बड़े और बहन उठे बैठे थे। फागुन जाएगा तब न चैत आयेगा। आँखें मलो, सोते सोते स्वेटर जैकेट पहनो, बाहर निकलो। बाहर है होलिका की तैयारी, जिसे देखते ही आँखों की नींद हिरन और हम दौड़ पड़ते हैं कि इधर उधर झाड़ियों में टहनियाँ डगालें अभी भी दिख जाएँ शायद, या आस पड़ोस में कोई अपनी लग्गी डंडा सोंटा छड़ी भूल गए हों तो उन्हें भी खींच लायें होलिका में डालने और इसलिए हम आँखें फाड़ फाड़ के हर तरफ़ देखते हैं जिस अपलक फाड़ने से वे फटी फटी हो गयी हैं और उनमें पानी आ गया है। मगर मंटूरी ज़्यादा ही मुस्तैद है, सब सो रहे थे तभी झाड़ू फेर गया है और कोई तिनका भी नहीं अब मिलेगा, टहनी तो टहनी। अब कैसे फेंकें, वो परेशान हुई, बैडमिंटन कोर्ट में होलिका जमाव बचपन से ला जमाकर, और फ़्लैटों के आगे पीछे दौड़ने की सोचें कि एक डंडी मिले और वो डंडी नहीं छड़ी हो, सुनहली, रंगबिरंगी तितलियों में घिरी, उसे उठा के ऐसा ज़ोर से दहन को फेंकेंगे कि छड़ी नहीं जेवलिन हो और तितलियाँ डर से फडफ़ड़ायेंगीं, देह रूह सब जल जाएँगे तो ये रात ऐसी भुतहा नहीं होगी। मन करने लगा होलिका जले और सबों की धौंस की छड़ी दहक उठे, जो सोतों को जगाने नाहक आ गयी। भड्डुरी को चिल्ला चिल्ला कर बुलाओ और वो सर मुँह सब गमछे में छिपाए रात में से कूद आयेगा जिससे सड़क पे लगे बिजली के खम्बे के नीचे सोया काला कुत्ता भौंकने लगेगा। भड्डुरी का चेहरा और अंग अँधेरा निगल गया है और एक लिपटा गमछा और नीचे कोई लिबास खाली खाली बढ़े आ रहे हैं। वही होली जलाएगा, पर ये क्या गडमड मचा रखी है, इस बैडमिंटन कोर्ट को उसके बचपन के भड्डुरी ने देखा ही नहीं है और मंटूरी इसे देखता है, न हैं वो खम्बा और कुत्ता, और छड़ी तो गायब है माँ के साथ। उसे हुआ वो मुँहफाड़ चिल्लाये जो पुकार की तरह घरों झाड़ियों रस्तों में रात के अँधेरे आकारों को बाँधती जाए और बिना प्रयास छिपों को ढूँढ़ निकाले। वो चिल्लाई क्या, कि हाथ पर हाथ धरे क्यों बैठे हो, बेला आन पहुँची है चिंगारी लगाने की, फिर हमको अम्मा जौ गेंहू के होरहा थमायेंगी कि भूंजो आगी में, फिर लौटेंगे तो खाटें आज से बाहर आंगन में लगी मिलेंगी और सोयेंगे बची रात में सुबह तक, छड़ी की क्या पड़ी पड़ों को, और उठ के होली खेलेंगे, टेसू मिले पानी को उलीच के। तभी उसे अमलतास की लड़ियाँ दिख गयीं, रात में रात के रंग की। और गुस्सा आया — इनसे कोई रंग नहीं बनता, भुल्ताव देने को झूल गयीं सामने। इसे

भी जला दो, जड़ तने सहित उखाड़ के, उसका दिल धुकधुक जला। फ़ोन बजा और समुन्दरों पार से आवाज़ आई जो उसके ख़िलाफ़ थी और उससे नहीं कही जा रही थी पर वो सुन रही थी कि मॉम, नहीं, माँ, रक्तचाप मत बढ़ाइए, भला भला सोचिये, उनके बच्चों को भी तो कुछ करने दीजिये, अख़बार में विज्ञापन दिला दीजिये, हैं न उनकी बेटी कुछ लिखने पढ़ने वाली, जब न तब आ जाती हैं अपनी पलटन साथ लिए, अब दिखाएँ अपनी ताकत, और क्या अपने बुरा बर्ताव नहीं करते, आप कभी ऊँची आवाज़ में नहीं बोलीं पर उन्हीं के बेटा बेटी बोलते ही घुड़कते हैं, दादा को भी कैसे डाँटते थे, दूर से ज़्यादा समझ आता है, पास रहकर इसी घमंड में होते हो कि तुम्ही कर रहे हो, दूर से उनकी मनपसन्द चीज़ हम हैं लाते, हुलहुलाकर गुस्सा सिर को चढ़ रहा है, बजने दो उनके फोन, लौटो घर में, जल चुकी होलिका और ढल जाएगी रात पिशाचिनी, और अँधेरे में ही बड़े के घर चलूँ, देखूँ, पता तो करें, सोते कैसे पड़े रह सकते हैं, और देख तो लें वो अपने बिस्तर पर आ सोयी हैं, लेकिन आँगन तो है नहीं वहाँ कि अम्मा ने बिस्तर बाहर लगवाया हो, तभी तो नहीं वहाँ सोती और नइनई करती रहती हैं, बेचारी, छोटी सी, बस हाथ बढ़ाओ, आ जाएगी उसमें, छोटी सी चिड़िया जैसी, जो बड़े ने अँधेरे में पकड़ ली बचपन में। नहीं नहीं मैं नहीं पकडूँगी, मैं भागी, पर बड़े खिड़खिड़ करते हुए मेरा हाथ खोल के उसमें चिड़िया रख देते हैं। चिड़िया की फडफ़ड़ मेरे दिल सी, जो बैठने लगता है और वह मेरे हाथ में मर जाती है और न मैं गिरा पा रही हूँ, न थाम सकती हूँ, मर गयी मार दिया किसने मारा, कभी इससे उबर पाएँगे, नहीं न, और कैसे बेमुरव्वत अपने ही लोग कि इसकी हांक उसकी हांक कि पैसे की चिन्ता मत करना कि कभी भी फोन कर लेना, मैं हूँ न, जो पास वो हांके जो दूर वो हांके और फ़ोन पर भी हांके। बजने दो मोबाइल बेटी ने बरज के सोचा पर बड़े क्यों चिड़िया मेरे हाथ में दबा देते थे मरने को कि वो मर जाती और फिर कहते मैंने मार दिया और उसने वास्कट की जेब से मोबाइल निकाल कर ठीक उसी तरह पकड़ा जैसे बचपन में बड़े की दी हुई चिड़िया कि न गिरा पाए न थाम पाए और चिड़िया फडफ़ड़ किये जा रही है, बिना रुके फड़ फड़।

उसका फ़ोन बजे जा रहा था, वाइब्रेशन मोड में। जूँजूँ करता ही जा रहा था। उठाओ। हैलो करो।

कैसे करते हैं हैलो, एक पल को वो भूल गयी।

कहना चाहिये परिवार को जब कि कहते हैं महाभारत को। कि जो दुनिया में वो उसमें, और जो उसमें नहीं, वो कहीं नहीं। कवि के तसव्वुर में भी नहीं। यानी भूला भटका आतंकवादी, गरमा भरमा वामपंथी, नारीवाद और नारी, हर-वादी और जीती हारी, सब परिवार में। या महाभारत में, जिसे जैसे रुचे पचे।

महाभारत में दुनिया, दुनिया परिवार में, और इसलिए परिवार में महाभारत। जो रोज़ रोज़ के हंगाम, हरेक एक महाभारत।

इसलिए परिवार के हर सदस्य को पता है कि जो मुझमें वह किसी में नहीं और जो मुझमें नहीं वह होने लायक नहीं।

और ये कि मेरे पास दिमाग है, औरों के पास पैसा।

और ये कि मेरा फायदा उठाया सबने, अब हम नहीं, बाकी करें।

और ये कि हम दूर रहके भी रहमदिल, तुम वहीं हो पर कितने बेरुखे।

और ये कि हमेशा हम ही देते हैं, और आप हमेशा लेते हैं।

और वाह आपकी सूझ जिसमें आप तो मिलन सार, हम वही तो मतलबी यार।

आप चुप तो विनयशील, हम चुप तो काईयाँ।

आप करें सो शिष्टाचार, वही हम करें तो लल्लोचप्पो।

आप कहें तो साफगोई, हम कहें वही तो बदतमीज़।

हम पूछ लें तो अश्लील जिज्ञासा, आप पूछें तो हमदर्दी।

हम करें तो हमारी सुविधा, आप करें तो आपकी कृपा।

हम करें तो कंजूस, आप करें तो किफ़ायती।

हम चुप तो घमंडी, आप चुप तो शर्मीले।

हम तो बड़े सीक्रेटिव पर आप तो बस रिज़र्व्ड।

और हमारे फ़ैशनेबल कपड़े नकल, आपके ज़माने से कदमताल।

और हमारा गया तो हुंह ऐसा क्या बवाल, आपका गया तो लुट गए हाय हाय।

और हमने किया तो क्या किया, और आपका इरादा वो भी किया।

यानी हम वो जो हमने किया, आप वो जो आपने सोचा।

और हमने कहा तो कटाक्ष, आपने कहा तो मज़ाक।

और हमने अपनी बताई तो मियाँ मिट्ठू, आपने बताई तो सहज सत्य।

और हमने पा लिया तो हथियाया, आपने पाया तो आपका अधिकार।

और हमने कहा तो हमारा गुमान, आपने कहा तो आप तो हैं ही सही।

और हम गुस्साए तो ह्यूमर की कमी, आप गुस्साए तो आत्मसम्मान।

और हम कर गए तो कर्तव्य था, आपने किया तो बड़प्पन हुआ।

और हम सफल तो आपका सहारा जो मिला, और आप असफल तो हमने अड़ंगे जो डाले।

और जी हम रह गए तो हम काहिल, आप रह गए तो आप त्यागी।

और जी हम न समझे तो पैदल, आप नहीं तो भोले।

और जी आपको हमसे वैर तो हम इसी लायक, हमको आपसे वही तो हम ईर्ष्यालु।

और जी हमने किया तो स्वार्थ, आपने वही तो परमार्थ।

और गर हम न करें तो बेपरवाह, मगर आप न करें तो मजबूरी।

और हमने जितना किया सो कम, आपने ज़रा भी सो ज़्यादा।

और हमारी नाक टेढ़ी तो बदसूरत, आपकी आँख टेढ़ी तो कलात्मक।

और जी अपनी तस्वीर अच्छी तो फोटोग्राफर माहिर, आपकी अच्छी तो आप सुन्दर।

और जी हम गोरे तो छिली बटेर, आप सफ़ेद तो आप तो विलायती लगें।

हम काले तो बैंगन भट्ट, जबकि आप काले तो ब्लैक इज़ ब्यूटीफुल।

हम मोटे तो खाऊ पेटू, आप मोटे तो रौनक चमक।

हम दुबले तो सूखी लकड़ी, आप सींक तो सौम्य सजिल।

और हम चलायें ए.सी. तो अय्याश, आप चलायें तो सेहत नाज़ुक।

हम पियें तो शराबी, आपने पी तो डॉक्टर की हिदायत।

हमारी ज़बान अंग्रेज़ी तो शो ऑफ़ हम, आपकी तो शिक्षित आप।

अच्छा, आपकी ज़रूरत तो हम एक परिवार, हमारी ज़रूरत तो आप अलग और अकेले।

हम शरीफ़ तो मुलम्मा, आप वही तो ख़ानदानी।

हम अपनी मेहनत की खाएँ तो फूहड़ पंसारी, आप जोंक सा लग जाएँ पर संस्कारी।

और जी आपका काम काम और हमारा काम तमाम।

हमको परिवार और हमारी नेकी खा गये, वर्ना हम भी होते आपकी तरह डाइरेक्टर, प्रोफेसर, अफसर।

अच्छा तो तुम हम नहीं क्योंकि तुम हम होना नहीं चाहते पर हम तुम नहीं चूँकि हम तुम हो ही नहीं सकते।

हम तो ज़िम्मेदार, कर्तव्यपरायण, धार्मिक।

हमारी नगरी सदियों से सुसंस्कृत, आप आज के गुंडों की कह हमारे शहर की बिगाड़ोगे पहचान?

अजी एक बार जो हम हो गए कूट कूट महानतम, तो बारम्बार हम हो गए कोटि कोटि स्वच्छंदतम।

जहाँ गार्गी ने याज्ञवल्क को हराया और मंडन मिश्र की पत्नी ने शंकराचार्य को, वहाँ रोते हो औरत के तिरस्कार, बलात्कार, बहिष्कार की बनाके

बकवास?

जहाँ राधा नाचीं, शिवजटा से गंगा उतरीं, वहाँ गू गोबर तुम्हें है दीखता?

येस जी, नो जी, हम जी, तुम जी, और हम और तुम और तुम और हम और अम्मा और इतना हमने किया और तुम साथ होके न देखते और बेचारी बुढ़ा गयी और पड़ी रही और अकेली और जानती भी नहीं क्या कर रही है और नाम भी गलत सलत दे रही है और दिमाग पर है असर और सब के सब दौड़ पड़े।

जो भागे थे उनके भी दिमाग गड़बड़ाये हुए थे या हो गए।

बेटी की ही लें। रात दिन बचपन अब सोयी जागी मंटूरी भड्डुरी ऊपर के नीचे और आगे के पीछे यों ही हो चुके थे। माजमज्ञा के भीतर सब गड़बड़झाला — दिमाग फिसल कर एड़ी में और पाँव उछल कर सिर में।

ऐसे में नए नए डर आ जाते हैं। नंगे पैर तो नहीं दौड़ पड़ी? दोनों जूतियाँ पहनीं? मोज़े सही जोड़े के? कपड़ा बदल लिया कि रात का ही? अईया, ब्रा पहना? और गाड़ी की चाभी ली? हे भगवान, ताला लगाया या घर खुला ही? पड़ोसी को बोले कि चैक करो और कुछ लटका दो? फ़ोन कहाँ रख दिया? कुण्डी भी खींची कि नहीं? गैस ऑफ है? नल? बैल्कनी का दरवाज़ा? खोला भी था? धूप का चश्मा? पैसा? उफ़ पैसा? मछली बास मारेगी, कूड़ा बाहर नहीं कर पाई। मन ही मन वो अनगिनत बार पलटी कि जाँच ले पेट पीठ अपनी जगह और बटन ताले सही घूमे हुए। अधिकतर सही थे जैसा होता है तूफ़ानी पल में भी क्योंकि पल अपने ढंगों में अभ्यस्त गुरु हैं — उँगलियाँ गैस खोलती हैं तो बेखुदी में भी बंद न करें तो खुजलायेंगी और घर से निकले पाँव आगे न बढ़ेंगे जब तक ताला लगा के एक बारगी उन्हें खेंचा न जावे कि सही लटक गए हो न भाई।

इन्ही पलटियों में वो गेट तक आ गयी। असल पलट वह नहीं लगा सकती थी क्योंकि उड़ के पहुँचना था। पुलिस स्टेशन।

चौकीदार अलाव सेंकना रोकके फाटक खोलने को खड़ा हो गया। बेटी ने गाड़ी बाहर निकाली और सोचा कैसे इसी बेला स्कूल के लिए फाटक से निकल के दाहिने को मुड़ते तो बजरिया थी जिसमें इदिया अलाव सेंकती दिखती और मुँह अँधेरे अपने खेत से लाया साग, पालक, मेथी, बथुआ, चौलाई, सोआ, चना के हरे हरे गड्डल निकाल के रेढ़ी पे सजाती दिखती। स्कूल से लौट कर हम वहीं भागते, उसे साग तौलते देखने, बाट वाला पलड़ा एकदम ऊँचा और साग वाला एकदम नीचे। रूई भरे लम्बे कोट पहने, जेबों में अम्मा के भरे चिलगोज़े खाते, जो अब देखने को नहीं मिलते, न वैसी तौल और तौलने वाले। न अम्मा, उसने चुस्ती से गाड़ी आगे की, गार्ड से कुछ बोली और निकलते निकलते नज़र पीछे को डाली जैसे देखती हो अभी भी भुतहा समा है? होलिका जल गयी, हूक उठी, पर वो बचपन-समय बचपन-घर बचपन-होलिका थी। अब वाली तो जलेगी, आते किसी रोज़।

कहाँ की कहाँ मिला रही है, उसने सर झटक कर सड़क की तरफ़ किया, कहती हो जैसे अलविदा, अब होगे न तुम तुम न मैं मैं। कि रात जो पीछे छूट रही है ऐसे दिन में उठेगी जो नया होगा।

बड़े भी बौखलाए गड़बड़ाए। पहले तो पजामे पर पतलून चढ़ा लिया जब कि इरादा था कि कुरते पर पैन्ट पहन लेंगे। फिर चिल्लाये कि ड्राइवर इतनी जल्दी आता है क्या, क्योंकि सुशीला ने सरकारी गाड़ी की चाभी थमा दी थी? कुछ पल, जिसमें हर पल अमूमन से लम्बा था, प्राइवेट गाड़ी की चाभी आँख-मिचौली खेलती रही पर चलो, मिल गयी। बाल काढ़ने की सुध नहीं थी तो सुबह सुबह जो दोनों तरफ़ घुंडीदार सींग उग आते थे, उसी खोपड़ी सहित वो चिल्लाते हुए कि हरीअप, नहीं तो तुम ड्राइवर के साथ आना, बाहर लपके, पर फिर लौटे, पूजा में जाकर दिया जलाया, शीष नवाया, और तब गाड़ी का इंजन चालू कर दिया।

बीवी अलग चिल्लायीं, रुको, मैं आ गयी, पर ज़्यादा सधे कदमों से आयीं। मुँह धो लिया था, साड़ी पहन ली थी और थरमस में गरम चाय, थैली में बिस्कुट, सेब, केला, चाकू, और बांह पर अम्मा का शॉल था। हिदायतें देतीं निकलीं कि रसोई में क्या कर लेना और अम्मा के कमरे और बाथरूम को चमका देना और चादर बदल देना। गीज़र ऑन कर देना। छोटा कालीन फिसलता है, हटा देना और जूट कारपेट बिछा देना। और माली के आते ही जो गमले कल नीचे रखवाए थे उन्हें टेम्पो वालों से अपने सामने चढ़वाये कहना। समझ गई? भाग के अम्मा का, या कोई भी, कंघा ला दो। माली से कहना नीले वाले फूलदान में अच्छा सा गुलदस्ता लगा दे, उनके कमरे में रख देना, समझ गयी न, नीला, गोल वाला, ऊपर आधा चाँद सा कटा है, काँच वाला, समझ गयी, लाल मिट्टी वाला नहीं, सुराही टाइप वाला, समझ गयी?

फ़ोन पे क्या कह रहे थे?

कि छोटी औरत मिल गयी।

छोटी कि बूढ़ी?

कहा शटशट शट शट छड़ी खुलती है

हाय रे, अम्मा।

नाम भूलभाल गयी हैं।

हाय अम्मा।

कहाँ है पुलिस स्टेशन यहीं होना चाहिए उन्हें कैसे मिल गया हमें तो मिल ही नहीं रहा...

क्या थी वो मुस्कान कोई बता सकता है? नहीं, कोई नहीं। मैं भी नहीं।

अगर मुझसे पूछा जाए, जो होना नहीं है क्योंकि मैं तो अपना सीन करके हट चुका हूँ।

बस वैसी सी मुस्कान।

बाकी जो हुआ सब अन्दाज़ की बात है। दीवार में दो छेद थे ही, एक अन्दर की तरफ़, दूसरा बाहर को। धागे सी साँस इधर डालकर उधर निकाली जा सकती थी और शट शट शट शट फर्राटे से छड़ी खोलकर फाटक से बाहर निकला जा सकता था, क्यों नहीं?

माँ का कोई मक़सद था, ऐसा रोज़ी बुआ की बातों से, आगे कभी शक हुआ। उसे पूरा करके माँ वापस पलटी तो तब गयी गड़बड़ा। गेट नम्बर बावन के आगे निकल गयी और चलती गयी और हर कदम के साथ गेट पीछे होता गया।

एक औरत थकी हुई, सालों से दूसरों की लय में अपनी गुमा कर, महीनों से बिस्तर में पड़ी, बाल बराबर साँस पर टिकी, जो अकेली उसकी अपनी है और सबकी ओर पीठ करने से कुछ कुछ पहचान में आ रही है, और माना कि एक छड़ी भी आ गयी जिसे तान के

कल्पतरु बना जा सका और वैसे भी छड़ी पे सवार होकर चुड़ैलें तक उड़ जाती हैं, तो माँ तो बरसों की अम्मा थी अम्मागीरी में रत, जो सब भुला देती है, तो क्या ये जन्म नहीं है, एक नया जन्म, और नयी जन्मी कौन डग भर पाती है, सीखना पड़ेगा कि नहीं, डग डग डग डग और नयी जन्मी खोती है रोती है मुस्काती है कि नहीं?

कैसे तो वह मुस्काई वह मुस्कान।

गेट बावन के पार निकल कर एक के बाद एक एक से अफ़सरी बंगले होते हैं, जिनके कभी नम्बर दीखते हैं, कभी बेल खम्बे पाइप की ओट में छुप जाते हैं, और तिरपन चौवन से होते होते एक हज़ार तिरपन एक हज़ार चौवन हो जाते हैं, और फिर तो ये ही नहीं पता पड़ता कि हम कर क्या रहे हैं और जीवन से चाहते क्या हैं और मौसम भी ऐसा कि बदन में फुरफुरी छूटे और बिस्तर ने पैरों को दम भर दम चलना भुलवा सा दिया है। ये कहिये कि छड़ी थी जो उसे उठाये रखे थी, वर्ना उसके अन्दर तो सब कुछ गिरता जा रहा था, एक एक करके, टुकड़ा टुकड़ा, साँस ब साँस, सारी सूझ, सारे एहसास, सारी बूझ। एक फाटक से निकली और अगला फाटक और उसके आगे अगला चलती गयी।

लुढ़कती हुई, झुकी जाती, छोटी होती जाती, शून्य शून्य खाली खाली भूली भूली उड़ी उड़ी कि उसे देखकर कुछ बच्चों को होली सूझी जिसका मौसम उसके आने से पहले हो जाता है और उन्होंने उसके चेहरे पर सफ़ेद वार्निश दी पोत। पर बकौल सुधीर चन्द्र बुरे वक्त में अच्छे लोग उम्मीद बने फिरते हैं, सो एक राहगीर ने देखा, सोचा कुछ तो है जो बुड्ढी छड़ी पे गिरने गिरने को हुई जाती है, चोगा भी अजीबो गरीब सा चढ़ाये है, और हँसने लगी है जैसे दीवानी कोई न समझ पाए कि हँस कर रुका भी जाता है या कि इस हाल में तो रोना चाहिए। डाँटा बालगोपालों को कि क्या पुताई रचा रहे हो और छोटी सी औरत के नज़दीक जाकर पूछा क्या चाहिए माता जी?

सूखे सफ़ेद होंठों से माँ ने कहा पानी।

क्या ढूँढ़ती हो माता जी?

फाटक, वह बोलीं, पर अब उन्हें क्या पता था वह क्या कह रही हैं और क्या कहें जब उसने नम्बर पूछा।

कौन है घर पर माताजी?

बेटा, वह बोलीं।

क्या करता है माता जी?

अफ़सर, वो बोलीं।

पति माताजी?

अनवर वो बोलीं।

अफ़सर अनवर क्या कौन, क्यों उस बन्दे को समझ आता, जब कहने वाली माता जी खुद विक्षिप्त विक्षिप्त।

राहगीर उन्हें सहारा देकर पास के पुलिस स्टेशन ले गया जो वो वाला नहीं था जहाँ बेटी का फ़ोन गया था पर 'पुलिस हमेशा आपकी आपके साथ' ने इस वाले से संपर्क कायम किया और सबको पता चल गया कि एक अस्सी के इधर कि उधर माताजी लापता हो गयीं

और सुनहली छड़ी उन्हें ले भगी है, सतरंगी तितलियों की उड़ उड़ के साथ, और बाकी ये कि यह वारदात बावन नम्बर हाउस की है।
अंधड़ से घुसे सब पुलिस चौकी में, एक दूसरे से रेस करते।
अम्मा ने नज़र ऊपर की। भ्रूण सी सिकुड़ी गुजड़ी। बड़ी दूर से आती नज़र, मानो पुराने जन्मों से उठके। रास्ते के सारे दु:ख दर्द भटकाव अटकाव उजाड़ ठुकराव को पार करती। इस जन्म तक आती। पुरातन पीड़ाती देह में। रोम रोम बंद बंद में बसी थाक से उठी तब एक मुस्कान। वो वाली। जिसमें होंठ थरथर कांपते हैं, फिर स्मित में हल्के हल्के खुल जाते हैं। जिसमें विश्वास सन्तोष विस्मय पहचान अभी अभी उग आये हैं।
वो मुस्कान। अम्मा की।
माचिस की तीली जिससे सब परिवार वालों की मुस्कानें जल उठीं।
नहीं मुझे बुलाने का फ़ायदा नहीं, मैं भी बयान नहीं कर पाऊँगा।
वो मुस्कान नवजात की जो पहली बार दुनिया को देखे और पहली बार किसी से जुड़े।

दिल टूट जाता है।
बच्ची तुम्हें देखे, मुस्कराए, तुम उसकी दुनिया हो। माँ इस तरह देखे तो सब ख़तम, तुम वहीं ढेर। इतना सादा भाव, इतना सीधा, ज़र्रा भर बनावटी नहीं। मासूम, सरल, विश्वास।
ओस। सुदूर सितारा। इन्द्रधनुष का एक बिंदु। हवा की छुअन।
आप वहीं फिसल के ढेर।
चलें? चलो।
बीड़ी सिगरेट पीती हो, ऐसी महक वाला मरदाना कम्बल माँ के कांधों से हटा, उसका शॉल वहाँ लपेट। चलो। चलें।
अम्मा कितनी छोटी है। हमारी कमर से बालिश्त भर ऊपर। ये कब हुआ? लिहाफ के भीतर वो अपने को कतरती रही क्या?
उसके चेहरे पर पुती सफ़ेदी उसे मरायल जोकर बनाती है। गीले रुमाल से पोंछा। बच्ची कसमसाई। जोकर बनी रही।
अम्मा खाँसती रही। पैकिंग और धूल की मची में वे आ गए थे। डब्बे पहाड़ बने थे। दरवाज़ा खुला था।
अम्मा की नज़र उजबक।
मिट्टी इतनी है, बहू ने माफ़ी माँगी। इधर आइये अम्मा।
दीवार वाले कमरे में वापिस? अम्मा अनमनी। बिस्तर है।
उन्सियत से खाली माँ की आँखें। पलंग की पाटी पर बैठीं जैसे उठने को। खांसती रहीं।

पाँव कैसे सूज गए हैं। नसें फटी फटी हो गयी हैं। खांसी के दौर रुक के न देते हैं।

गरम पिलाओ गरम पीजिये सूप अम्मा सर्दी लग गयी है धूल भर गयी है सर यहाँ रखिये तनिक गोड़ दबा दूँ माई री देखि बाल कैसे उलझ गइन हैं एकदम जैसे साधू की जटा लाइए हम धीरे धीरे सुलझा दें। सब उसे कपड़े की तरह तहाने खोलने सलवट निकालने में लग गए। ये नहीं पूछो कि दिन और रात कैसे काटी, ये नहीं सोचो कहाँ पड़ी थी, कहाँ गयी थी माँ, गयी कहाँ थी तू कैसे अम्मा?

अम्मा लेट जाओ, थोड़ा सो लो। पाँव सीधे कर दो। हाय कितनी नन्ही है, सच में छोटी हो गयी है। आँखें बंद कर लो। आँखें खुली हैं। टुकुर टुकुर। बंद कर लो, आराम मिलेगा। खुली रहीं। खोयी खोयी।

बड़े अलग खड़े देखा किये। माँ थक गयी है। भूल गयी है। अपना नाम ग़लत बता रही थी कि तारा कि चंदा? पति का भी। पुलिसवाले ने कहा बोली अनवर। कौन अनवर? पति का नाम। नहीं पति का ये नहीं। जीभ को भी थाक लगती है। बोली होगी शौहर। या अफ़सर। छड़ी ने सँभाले रखा। छड़ी ने ही पहचनवा दिया। हाँ एक बुड्ढी, छड़ी पे टिकी।

बहू चम्मच लेकर खड़ी रही एक बूँद ले लीजिये, मुँह सूखा हुआ है। बेटी रुई में क्लेंज़र लगा के सफ़ेदी साफ़ करती रही। शायद अभी भी सबको यकीन कि कर हम रहे हैं बन दूसरे रहे हैं। माँ को नए जीवन की तैयारी करा रहे हैं।

बेटी ने माँ के बाल पीछे करके, झुक कर गौर से देखा कि जड़ों के पास सफ़ेदी तो नहीं? रुई नर्म फेरी। माँ की आँखें खुलीं। जैसे गाय शान्त चित्त, उसे नहलाया जाता हो। और बोली चलो। जैसे रम्भाई।

माँ खाँसते हुए उठने लगी और दया एक बवंडर सी सबके भीतर उठने लगी। कहाँ थी, इस उम्र पर बेचारी ने क्या क्या झेला।

सोने दो। बड़े देखते रहे। अम्मा को नींद चाहिए, तब तक उनकी चेतना नहीं लौटेगी।

अभी, माँ ने सीधे होते खाँसियों के बीच कहा। बेटी से।

पता नहीं बाद में भी बेटी सोच पाई कि 'अभी' 'अब' है जैसे 'नहीं' 'नई' है? इस पल तो उसे बस माँ की निरीह मुस्कान और उजबक निगाहों ने मारा और उसके मुँह से निकला कि हाँ यहाँ बहुत धूल है अभी मेरे घर चलो।

उसने अपने हिसाब से बड़ी तीरंदाजी दिखाई थी — यहाँ वालों पे भी वार कर दिया, अपनी जगह की कशिश जतला दी और एक सुस्त-तन-मन प्यारी का चित्त शान्त कर दिया। कुछ वैसे जैसे जोगिन्दर पाल का किरदार कराची में बज़िद हो कि ये लखनऊ है तो उसे सच्चाई सुना के विचलित न करो, सयानी संवेदना दिखा के उसकी हाँ में हाँ मिलाओ।

बाद में बहू ज़रूर ख़फ़ा और दुखी लगी और ये बड़े बड़े आँसू भी छलछला गए और कहा या नहीं पर उसके रोम रोम से इलज़ाम फूटा कि सारी उम्र किया हमने, ढोया, सहा, अच्छे वक्त, बुरे वक्त सब में, बिना गिला शिकवा और अब आखिरी उम्र में हमें बदनाम करने चल दीं। छड़ी उठा के।

किसकी आखिरी उम्र, ये पता नहीं। सूखे पत्ते सा सवाल, आकाश में उड़ता है। जैसे वे दूसरे सवाल भी जिनके उड़े उड़े जवाब सब बड़े ज्ञानी और आत्मज्ञानी खुद को देते हैं —

कि शौहर कहा या अफ़सर, अनवर कहे क्यों कोई?

कुछ का कहना है ये नया ज़माना है। औरों का कहना है औरतों की बात में हमेशा नया ज़माना होता है। नया ज़माना। यानी औरतों के लिए चीजें बदली हैं। (चीजें हमेशा बदलती हैं औरतों के लिए)। औरत अब उस भूमिका में नहीं जिसमें थी। (हमेशा वो अलग भूमिका में होती है)। वो बाहर निकल पड़ी है। (हमेशा ऐसा करती रही है)। भीतर जाती है। (हमेशा)।

और हमेशा, एक बार कम से कम, हर एक औरत, ये हो या वो हो, छोटी होती हो या बड़ी, खुद को दरवाज़े पे पाती है, एक पाँव हवा में उठा, किसी नृत्य की मुद्रा में जैसे, वापस उस घर में या दर में बढ़ने जिसे तज वो दूर जा चुकी थी, उस पल में पूछती कि ये है मेरी दुनिया जिसमें पैर रखने वाली हूँ, या वो है, जो मेरे पीठ पीछे छूट रही है, जहाँ चली गयी थी और जहाँ से अभी आई हूँ? मैं तो सिर्फ़ दो पल पुराने अपनों पर झाँकने आई थी, इतना ही न? खुश भी होने कि मैं वहाँ की नहीं रही। तो ये कौन सी सिटपिटाहट अचानक कि मैं पीठ पीछे की हूँ कि पेट आगे की? एक जगह मैं हूँ, एक जगह मेरा अभिनय, आगे कि पीछे, बता हे प्रभु मैं हूँ कहाँ? कदम पल भर लड़खड़ाता है, हवा में तिरा, जैसे नाचने से पल भर पहले की थरथर। खुले दर पर, जैसे एक पल अनिश्चित कि आगे जाऊँ या पीछे पलट लूँ, और आगे क्या है, और पीछे क्या छूटा, और मैं क्या करूँ, क्या होगा?

ये पल उलझन इसलिए भी बढ़ाता है चूँकि अपने को बाहर निकल गयीं मानने वाली बेटियाँ जिस पल बस मिलने मिलाने अंदर जा रही होती हैं, भीतर वाली कोई — जैसे बहूरानी — रीबॉक ठुकठुकाती उसी पल बेटी की बगल से बाहर निकलती है। बेटी अन्दर जा रही है, बहू बाहर आ रही है। सर से पाँव तक हर अंग अलग भँवर में भँवरा जाता है कि अँय हँय कौन अंग किधर का किधर मुड़े और सन्तुलन बिगड़ जाता है।

नया ज़माना चूँकि पुराने में उलझा होता है उसे अपनी जुल्फें सुलझा के नयी तर्ज में जूड़ा बनाने को वक्त चाहिए। पर हम सोच लेते हैं हमारे जीवन की परिपाटी अलग हो गयी है, हम फ़र्क़ हैं, पुरानी दीवारों की टेक नहीं, पुराने तसमों की गाँठ गयी और नया आसमान आगोश में। फिर ये दीवारें मुझे क्यों घेर रही हैं? बेटी अपनी कलाइयों और उँगलियों को परखती है, माथे को छू के जाँचती है, खुली, मस्त, किसी ने रंगा तो नहीं, कोई टिकली बिंदिया तो नहीं? बल्कि अभी भाभी बगल से निकलीं तो सिंदूर, ज्वालामुखी से फूटते लाल लावे की तरह, उन्हीं के माथे पर फूटता था। पर वो बाहर मैं अन्दर, उलटबाँसी?

ऐसी गाफ़िल सी वह बार बार खड़ी होती है। सामने पड़ी गद्दियों में कोई हो जिस पर अपनी थकी पिछाड़ी को अटा दे। इतिहास के पन्नों और नारीवादियों के नारों में जो तसमे चमड़े बकल साफ़ साफ़, अलग अलग, दिखाई पड़ते हैं, यहाँ अजब आकारों में एकमेक हुए

पड़े हैं। जैसे रीबॉक पहचाने लगते हैं मगर कभी रेस में तो कभी साड़ी के नीचे उन्हें देखकर बुद्धि का बल्ब फ्यूज़ हो जाता है। और अभी बड़ों और इसलिए बड़े की राय है कि बहन का क्या, वो अकेली है, शादी घर बच्चों की ज़िम्मेदारी से बरी, बल्कि फ्रीलांसर है तो हर ज़िम्मेदारी से बरी, ऐसा नसीब जब फ्री हो और लांसर जुड़ चले। अपने वक्त की मालिक, कार्यालय में जाकर दस से पाँच खटना नहीं, ट्रैफ़िक के जैमों मार्मलेडों में अटकना नहीं, पैसा भी ठीक ही ठाक, चाहे तो दिनभर सोये, रात भर जागे और कहीं भी बैठ कर कंप्यूटर पे लेख खटखट बना दे। आज मूड न हो तो कल। कोई नौकरी से बर्ख़ास्त करने वाला नहीं। अम्मा उसके पास जाना चाह रही हैं तो क्या हर्ज, ब्रेक हो जाएगा और बहन को भी घर का कोई मिलेगा। पड़ी रहेंगी दोनों कुछ दिन, किसी को कोई औंदा नहीं। फ़्लैट ठीक कर लेंगे और फिर अम्मा को वापिस ले आएँगे। हाँ कुछ चैक साइन करा लेते तो बेहतर, पर सिड आयेगा उसे भेज दूँगा, अभी तो अम्मा पस्त हैं।

मगर पस्त हो या दुरुस्त, लेटी पड़ी हैं या उठ पड़ी हैं, दिशाएँ वही चार, उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम। उत्तर में शिव, दक्षिण में शव का शीश, पूरब में सूर्योदय, पश्चिम में सिर्फ़ पश्चिम, बाकियों को मनाही, और क्या। हवा इन्ही चार दिशाओं के बीच बहती है और घुटन का भी यहीं डेरा है। सारे खेलकूद कूटनीति राजनीति यहीं। तभी वास्तु और फेंग शुई ने दावा किया कि ऊर्जा का सही बहाव हम करेंगे। पिल पड़े सारे आकांक्षी महत्त्वाकांक्षी कि सेहत मिले, सुख मिले, और धन भी क्यों पीछे रहे। पर जिस तरह ज़रूरी नहीं कि सुर पहचानो तो ही संगीतपारखी और नाट्यशास्त्र पढ़ो तभी कला विशेषज्ञ, ठीक उसी तरह भूमिपूजन कराए बगैर और वास्तु फेंग शुई वाले को दौलत थमाए बगैर भी हवा रौशनी सानी पानी का तारतम्य सुन्दर बन सकता है। ये कला मर्मज्ञ जानते हैं। कि पैमाना तो दिल है जो बता देता है गर चाल गड़बड़ाई और ढाल अचकचायी।

कला तो कला, रामानुजन तो गणितज्ञ थे और इससे अनजान कि कैसे कर गए सुलझाई। उत्तर सही और तकनीक से बेख़बर।

भले ही बेटी रामानुजन नहीं और अमृता शेर गिल नहीं मगर क्या ग़लत कहा कि दिशासत्य और दिशा-अनुकूल कि दिशाशूल में पड़े बिना उसने अपने घर में बहावों का सुन्दर जमाव कर लिया था और अपनी माँ के संग आ गयी वहाँ।

अन्तराल। कि एक और जीवन? एक और का जीवन। परिभाषा माँगती सुध। जो आयी न आयी, होली आई और गयी भी। सड़कों से रंग धुल गए। चेहरों बालों से पॉलिश वार्निश पुंछ गए। पर बूढ़े माली की सफ़ेद भवें अभी भी गुलाबी हैं।

OceanofPDF.com

धूप

OceanofPDF.com

बेटी के घर का दरवाज़ा खोलते ही लम्बे खुले हॉल के पार बैल्कनी से भीतर दाखिल होती ग्रीनबेल्ट थी और उस पर नीली छत्रछाया। बंद आँखों पे सुकून खेल जाए। या बंद आँखें खुल जाएँ।

ये वो वाला दरवाज़ा नहीं था। जहाँ से घुसते या निकलते कोई लर्ज़िश रोक लेती, बीच मुद्रा में, कि क्या कोई बोला? जहाँ बेटी गड़बड़ा जाती कि भीतर जाने वाली मैं मैं हूँ या पीछे जिधर से आई हूँ मैं हूँ? या रीबॉक दिशाभ्रम करा देते कि कौन अन्दर वाली, कौन बाहर वाली?

न, ये वो वाला दरवाज़ा नहीं। यहाँ तो बेटी की बनायी दुनिया खुलती।

अहमियत मगर हर दरवाज़े की। दरवाज़ा तो दरवाज़ा। अपना व्यक्तित्व बना लेता है। खँडहर में भी। आज के लोग उसकी ऊपरी धज देखकर आर्थिक तेवर आंकते हैं। पर उसमें निरी और सुनगुन हैं — उसकी चौखट लाँघने वाले का मनहरपन मनचलापन औघड़ता महबूबियत कराहियत खुशमन अनर्गल रुदन रमक रौनक ररक, अन्दर से जाओ बाहर तब, और बाहर से भीतर तब, परखो। दरवाज़े की आँख है, खोलता है, झपक, घूर, इलज़ाम, शान्त, उकताया। हाँ हाँ, उकता भी जाता है रोज़ उसी एक शख्स के आवागमन से। नज़र फेर लेता है और जैसे कोई अंग इस्तेमाल न करो तो मर जाता है तो मरा सा दरवाज़ा हो जाता है। भले ही खून रगों में और गोश्त बोश्त का जामा ठीक ही ठाक, पर मरा दिमाग मरी आँख मरी जान मरा दिल और फिरी पीठ हो जाता है।

क्या ऊबा दरवाज़ा जाग उठा? गिरती अम्मा को थामे बेटी जब आई। वो अपनी चूल पर हल्के से उझका। छड़ी हरकतायी। माँ की आँखें ज़रा खुलीं। वो हॉल के पार बैल्कनी और उसके आगे हरी बाउंड्री वॉल और उसके आगे मध्यकालीन गुम्बद वाली इमारत पे आँखें खोल रही थीं। उस पहले दिन आखिरी धूप के मुलायम कण गाढ़े होते पेड़ों में कोमल कोमल टिमक रहे थे वनविभाग के सुरक्षित फैलाव में और आँखों को नज़ारा भाया ही होगा और शान्त छाया भी होगा। बेटी कहती तो फिर भी शक कर लेते पर माँ की आँखों में जैसे भाव आये, शक़ की कोई वजह नहीं रही। वो भी थकी लंगड़ाती खंखारती माँ जो पूरे होश में नहीं।

नीम-होश में और सोते में उजागर जो हो जाए वो सच्चा गहरा बेकवच असल होता है। सुषुप्तावस्था इलहाम। समाधियों का सबब यही। सत्य और कला के सौन्दर्य में दो रंगों का घोर महत्त्व — नीला और हरा। पूरा आसमान, पूरी वनस्पति। इन्हीं से ऑक्सीजन आती है, इन्हीं से गिरह खुलती है।

नीले हरे ने सलामी बजायी। उनींदी आँखें अन्दर को डोलीं और फिसलती गयीं खुले खुले हॉल में, किताबों तस्वीरों असबाब के आगे बैल्कनी से आते आह्वान की तरफ़। सामने पेड़ों के झुरमुट में पुरानी छोटी ईंटों वाली गुम्बद पर बैठे हरे पक्षी एक संग गन-सलूट में उड़े। माँ चौंकी और हँस दी।

हँसी क्यों, बेटी ने पूछा।

हँसी आ गयी।

हँसी आयी तो हँस दीं, बेटी हँसी।

सोचा हो शायद माँ ने कि यहाँ साँस लौटेगी। कुछ चुप में जाया जाएगा। बस मैं होऊँगी, कोई और नहीं। अपनी लय होगी, दूसरे की नहीं, मुझे गिराती, लडख़ड़वाती। और क्यों न सोचे इस तरह यहाँ जहाँ कुछ परिचित उबाऊ नहीं, वो खखेटा, वही वही ध्वनियाँ, दृश्य, चीज़ें नहीं?

थकी माँ ये गहरी बातें सोच सकती है। क्योंकि थकन भी सुषुप्तावस्था है, समाधि मन है, जहाँ इल्हाम उग आते हैं।

पर हाँ, थका मन अभी कुछ न सोचता हो, ये सम्भावना भी है। उनकी साँस, उनकी लय की बातें, क्यों नहीं हो सकता कि बेटी को समझ आ रही होंगी? उसे अम्मा की शोचनीय स्थिति पर कब से चिन्ता है, सारी औरतों का बीड़ा वो उठाती रहती है। आज वो अम्मा को नया जीवन प्रदान कर रही है। थकी माँ को पुन: जिलाएगी। विभोर होकर उसने माँ के कन्धे घेरे।

छड़ी पे टेक दिए माँ दरवाज़े पर ठिठकी हुईं। सामने फैले लगभग बे-दरोदीवार के घर को निहारती। बेटी मुस्काई। मेरे घर में नज़र फँसती नहीं, किसी भरकम व्यवधान से भिड़ती नहीं। छोटे से गलियारे में बड़े से चीनीमिट्टी के बड़े से मर्तबान में छाते डंडे। एक तरफ़ जूतों की आलमारी कि दुनिया की धूल लिए जूतों को उतार दो और रंग बिरंगी चप्पलों में से एक पहन लो, पास रखी नक्काशीदार नीची सीट पर बैठ के, चाहो तो। बगल में एक हल्का फुल्का दरवाज़ा जिस पर मोरपंख लगे हैं जैसे उसी का बना हो, जो खुला है और गेस्ट रूम में खुलता है जिसके रंग हैं हल्का बैंगनी और हरा। वहाँ भी किताबें पेंटिंग्स मूर्तियाँ। वहाँ की आलमारी का स्लाइडिंग दरवाज़ा खोलो तो लम्बे कोट टंगे हैं और इस्त्री करने की फोल्डिंग टेबल और इस्त्री हैं और हीटर और ऐन तैन। और कोने में चन्दन के फूलों की लड़ियों के पीछे बाथरूम है और दूर एक और दरवाज़ा जो खुला है, पर यहाँ से अन्दर का दीख नहीं रहा। बाकी घर एक विशाल खुला हॉल। नीची हल्की फुल्की दीवारों या बुकशेल्फ़ों से अलग खांचों की खिलंदड़ी बाँट जैसे खेतों के बीच मेड़ हों। अरे इसे दीवार कहें कि क्या जिसको नज़र मज़े से फांद कर स्टडी में जाती है जहाँ मेज़ कुर्सी, कंप्यूटर, बुक शेल्फ, जिसके पार बैठक है कि सोफ़े पे बैठो, या पुराने रेलवे स्टेशन के वेटिंग रूम की लम्बी आर्मचेयर में, जो टीवी के ठीक सामने है पर न चलाओ टीवी जैसे बड़े के यहाँ अपने से चलता रहता है, और आगे, वाह, झूला लटका है, उस पर झूलते हर तरफ़ टंगी पेंटिंग्स देखो या बाहर बैल्कनी देखो जो इस वक्त खुले शीशे के पार है और दाहिने को खाने की मेज़ और चार कुर्सियाँ हैं और उनके आगे फिर नीची दीवार और रसोई, टमाटर रंग और बादामी रंग की और उसकी

दीवार पर खुली खिड़की जिससे झाँकता नीम और हर तरफ़ अन्दर बाहर में छेड़छाड़ कि भला तुम ज़्यादा खुले या हम और स्पेस ही स्पेस में खिलती फिसलती नज़र।

वहाँ, वो अम्मा को हॉल के अन्त पे रंगीन पत्थरों से जड़े दरवाज़े तक ले जाती है। ये, वो कहती है। अन्दर मेन बेडरूम है। हवादार कमरा। यहाँ भी शीशे के खिड़की और दरवाज़े, नीम पीपल झाडफ़ानूस स्नेहिल झाँकते। कलात्मक नमूने शेल्फों पर। नीली झील सी दीवारें जिनमें मछली की तरह तैरने का एहसास।

या वो भी थकन बदौलत और माँ बिस्तर पर पल भर में लेट गयीं और हल्के खर्राटे लेने लगीं।

टूटी फूटी बेचारी अम्मा। बेटी ने अम्मा बन कर सोचा। गला रुंधा।

जब जब अम्माओं ने इस नज़र से अपने जने को देखा है ऐसा हुआ है कि उनकी सारी इच्छाएँ वहीं घिर आई हैं। फिर कोई नहीं माँ बच्चे के बीच में —न कोई शख्स, न कोई मुराद। अलावे इसके कि बच्चे को सब कुछ दे दूँ, बच्चे के सितारे जगमग कर दूँ। सारे अहंकार और सफलता एक तरफ़, माँ बच्ची एक तरफ़। दुनिया जिस भी गुरूर में, माँ का ये गुरूर सबको धता बतलाता।

बेटी ने माँ बनकर माँ को बेटी बनाया और उनके माथे पे हाथ फेरा। आ गयी यहाँ, अब न जाने दूँगी। कैसी कमज़ोर हो गयी है, मैं न होती तो गिर ही पड़ती। इतने में हाँफ गयी। न जाने उस दौरान कहाँ गिरती पड़ती रही? कहने को इतने सारे लोग देखने वाले और बेचारी बेसहारा को न देख पाए। अभी भी धूल कहीं कहीं जमी रह गयी है। कब से नहाई न होगी। सो लेने दो। फिर मैं स्पंज कर दूँगी, धीरे धीरे जिला न दूँ तो देखना।

मनोवैज्ञानिकों ने कहा है कि कमरे में और महफ़िल में घुसते ही जो प्रकृति कारगर होती है, वही व्यक्तित्व रच देती है। आने वाले पल का रंग अब तय। कमरे में घुसते ही माँ बिस्तर पर सो गयी और बेटी माँ बन गयी। अब नींद से उठेगी तो एक और जीवन होगा। एक और का जीवन। बाकी तो हर किसी की अपनी दौड़, आमीन।

माँ की सुबह बड़े इतमीनान से उठी। उसने आँखें मूँदे मूँदे अंगड़ाई ली, बेटी उछल के सामने।

सामने रज़ा का चित्र। माँ के पपोटों के पीछे से निरी नारंगी बिंदियाँ चित्र में उड़ीं और रज़ा की बिंदी को उकसाने लगीं कि फ्रेम के सपाट सींखचों में बंधने की मजबूरी नहीं। चित्र का नाम जब हवा हवा थी। माँ पपोटों के पीछे से पढ़ गयी क्या?

आँखें खोलीं और बेटी को देख जो ताज़ी मुस्कान फेंकी कि ज़ाहिर हुआ कि थकन को अपनी बोरी में भरकर नींद ने वारेन्यारे के हवाले कर दिया है। नज़र जो इधर उधर गयी वो

उनींदी न थी, थकी थुकी नहीं उड़ी उड़ी नहीं कटी कटी नहीं पिटी पिटी नहीं चटी चटी नहीं। बेज़ार, बेपरवाह नहीं कि सब वही देखा सुना उकताऊ। कुछ ख्वाबीदा हाँ, कि जागी हूँ कि सोई? नयी नज़र, नए जन्मे की, कि आहा आहा दुनिया खुलती मेरे सम्मुख पहली पहली बार।

माँ ने हाथ ऊपर उठाये कि जैसे जो रौशनी की सिक्त बिंदियाँ उसके चेहरे पे सहल सहल हैं, उन्हें बांहों में समेटे। होंठों पर जीभ फेरी कि उनकी तपिश चखे। शिशु, जो हाथ लगे, उसे ही मुँह में भर लेने को तत्पर।

(एक बार सिड ने इसी उतावली में बचपन में उलटे पड़े कॉकरोच को मुँह में ठूंस लिया, जो निकाला गया और उसके एवज में चांटा पिलाया गया और बुक्का मार के रोती उसकी माँ को सुशीला ने चुपकाया कि मत रो माता, सांप होता तब घबराती, नहीं था न।)

माँ ने पैर लिहाफ से बाहर किये। बच्चे कैंची भाला फिरकी साइकल जाने और क्या, पैरों से लेटे लेटे चलाते हैं। ऐसा नहीं किया माँ ने। पर नज़र की क्या उम्र और नए संसार पे फिरती नज़र में फिरकी चली।

उठेंगी? बेटी झाँक रही थी।

ज़रूर उठेंगी। कब से सोई हैं अब उठने का वक्त है।

बेटी ज़्यादा उनींदी लग रही थी। वो सो नहीं पाई थी। माँ की फिकर में रात भर सो नहीं पाई थी। माँ ज़रा हिलती तो वो चौकस उठ पड़ती कि क्या है? बाथरूम जाना है? माँ न उठती तो वो और चौकस जाग जाती, कहीं मंद गति मंद से मंदतर हो गयी हो? नींद इस कर भी नहीं आई कि अम्मा की खुर खुर की आवाज़ अनजान थी और किसी के साथ इस तरह सोने की आदत बेटी की जाती रही थी। माँ सिहर फहर के सोयी रहती जैसे बच्ची ख्वाब में और थोड़े थोड़े अन्तराल में झटक मारती मानो थकन को और खर्राटा और गहरा लेती, पर बेटी उचक जाती, फिर ऐसी बेपलक जागी तकती कि जो दीखता है रात को ही जैसे दीखता है। क्या है, पूछ भी जाती, मगर अम्मा बेफ़िक्र सोयी पड़ी। शुकर शुकर उसके मन से निकलता। तृप्त तृप्त, दिल होता।

पहली रात थी। जो अब हो रहा था होते जाना था। दुनिया सोती है तो कायनात आने वाले वक्त को कुम्हार की तरह गढ़ती है।

माँ नहीं बोलीं कि नहीं मैं तो नहीं उठूँगी। बोलीं हाँ। और अकेली ही उठने का उपक्रम करने लगीं। उछल कर बेटी ने छड़ी थमाई, खुद थामा और कहा कि चलिए बैल्कनी पे चाय पियेंगे।

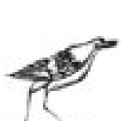

तो। पहला पल। जो आगे की तर्ज़ तय कर चुका था। सुबह होगी, बैल्कनी में चाय होगी, खूब सारा उछलना होगा। बेटी का। वो माँ की हर हरकत पे उछलने लगी, हर हरकत पे सँभालने दौड़ती जैसे फ़िक्रमंद माँ। दिन तो दिन, रात में भी।

आती रातों का ये कार्यक्रम हो गया। जितनी बार माँ उठती कि बाथरूम जाए, जो कम से कम तीन या चार बार होता, एक कोई ग्यारह बजे, एक दो के लगभग, एक चार वार बजे, फिर छे साढ़े छे पे। तब तक बेटी तो उठ ही गयी होती या यूँ भी कि बेटी तो सोती नहीं। एक दो झपकियाँ जो आ जातीं वो उसे और चौकन्ना कर देतीं। मामूली सी हरकत और उछल और पूछ या टॉर्च जला। अम्मा झिड़कने भी लगीं कि तुम सोओ नहीं तो मैं उठना बंद कर दूँगी। वो ख़ैर कैसे मुमकिन था? उठना तो पड़ता ही। और अब वो नहीं-उठूँगी गठरी थी नहीं।

तो बेटी चुप रहती पर उठ जाती। चुपचाप माँ को उठते देखती, चार दो पल बैठी है, फिर चप्पलों में पैर डालती है, थोड़ा घिसर घिसर, छड़ी के लिए हाथ बढ़ाती है, सँभल कर उठती है, कुत्ता भौंकता है, ट्रक गुज़रती है, माँ ठोकर खाती है, दीवार पे हाथ रख देती है, बेटी लपकने को होती है फिर दबी रहती है, बाथरूम का दरवाज़ा ठेलने पे लाइट का दायरा बढ़ता है, बेटी आँखें झट बंद कर लेती है, माँ अन्दर है, कुछ आवाजें आती हैं, बैठ गयी है, सब चुप है, बड़ी देर से, कितनी देर से, बेटी चुपके चुपके उठती है, बिल्ली की तरह दरवाज़े पे जाती है, पहले कान लगाती है, कोई आवाज़ क्यों नहीं, पैर हिलने की आवाज़ आई, बेटी दूसरे बाथरूम में हो आती है, वापस आके सुनती है, शान्त, क्यों, दरार से झाँकती है, अम्मा पॉट पर बैठी हैं, शान्त हैं, बस बैठी हैं, क्या करे, किचन में जाकर पानी पीती है, वापिस, अरे अभी भी नहीं निकलीं, 'अम्मा' वो अपने बिस्तर की तरफ़ से पुकारती है, सो जाओ माँ कुछ सख्ती से कहती हैं, वो चुप, फिर कान चिपकाती है, फिर झाँकती है, 'क्या कर रही हैं', अरे सो जाओ, माँ कुछ गुस्से, कुछ रुँआसे स्वर में कहती हैं, पानी की आवाज़, माँ को धोये बगैर चैन नहीं, बेटी कहती है रात में लू पेपर इस्तेमाल करिए तो इतनी बार नहीं आयेगी, भूल गयीं बच्चों को करानी होती है तो माँएँ पानी छिड़कती हैं और सूसू आ जाती है, पर माँ को पानी से जमकर धोना है, फिर हाथ जमकर धोने हैं, और बार बार जाना है, दरवाज़ा भेड़ने पर लाइट अचानक कम हो जाती है, बेटी तपाक से टॉर्च जला देती है, उफ़ तुम सोती नहीं हो, थक जाओगी, माँ लताड़ती हैं।

इसलिये भी बेटी की नींद उसे छोड़ अगली कक्षा में चली गयी थी। उसे अँधेरे में सोने की आदत थी। उसे अकेले सोने की आदत थी। उसे सोतों की हरकतों के बिना सोने की आदत थी। उसे बेफ़िक्र होके सोने की आदत थी। माँ ने फिटकार तो लगा दी पर कितना सुकून था उसे कि बेटी पास है, वो उसकी सोती देह ही जानती थी। वो बेटी के हर खिसकने पर खुद खिसकती और उसी तरह लगभग उसकी बाँह पर सर टेक देती। जैसे उसकी नींद इस पर टिकी है कि देह बेटी को छुए रहे, उसकी उपस्थिति भानकर अपनी चिन्ताएँ तर्क कर दे और निश्चिन्त सो ले फैल ले।

इस तरह हुआ कि माँ की हर जुम्बिश पे जगी बेटी और जाग जाती। कहीं आँख लग गयी और अम्मा की तरफ़ फैल गयी, उस पर ग़लती से हाथ पैर मार दिया, उसको जगा

दिया, इस भय से वो किनारे को सरकती जाती। सोती माँ बेटी की मौजूदगी टटोलती उसके पीछे पीछे सरकती और उससे सट जाती। बेटी साँस साधे लेट रहती।

आते दिनों में बेटी बिस्तर के कोने पर, लगभग पाटी पर बस सिमटी पड़ी होगी और माँ का सर उसकी बांह में और बाकी देह पूरे पर। बेटी ज़रा और खिसकेगी तो उसके हाथ पैर पाटी से बाहर लटक जाएँगे जो होता। सुबह तक अम्मा आड़ी तिरछी पूरे पर, बेटी सिकुड़ी गिरती कोने पर, पैर नीचे जैसे खड़े होने को पहले से तैयार।

देखने लायक थी माँ की अष्टभुजा मुद्रा पर देखता कौन? सिर्फ़ धूप। जो सुबह आती, माँ के चेहरे को चुमकारने और फिर माँ उठती और दोनों एक दूसरे को देखती रहतीं। माँ और धूप।

धूप के साथ माँ उठने लगी और पहले आँखों से, फिर पूरे से धूप ही के साथ घर में फैलने लगी।

बेटी कहती, उनके चेहरे पर धूपिल बिंदियों में खुली आँखों को देखकर, चलिए। उछलकर छड़ी उन्हें पकड़ाती और खुद भी उन्हें थामती। कितने त्रास से गुज़री हैं अम्मा और बड़े के घर भी दुखी पड़ी रहतीं, पैरों से कमज़ोरी जाते जाते जाएगी, पर मैं हूँ न, सेहतमंद, खुशबाश न कर दिया तो देखना। अभी डग डग चलती हैं, पकड़ पकड़ के, पर सीख जाएँगी। चलना। सिखा न दिया तो जानो।

सुबह का सूरज सामने वन में गुम्बद पर उगता और पहली आँख बैल्कनी पे मारता। माँ उधर चल पड़ती, फिर रुकती। बेटी मज़बूती से पकड़ती कि आआआ गिरी गिरी। माँ साँस ले तब बेटी ले, दोनों की हुए जाए साँस एक।

शुरू के दिन। माँ को अपना सन्तुलन और चाल पाने को था।

वो धीरे से बैल्कनी पर रखी आराम कुर्सी पर बैठके और चाय की चुस्कियों के बीच नज़रें आगे, कभी पीछे, कभी पास आसपास, धूप की घुमाइयों में घुमाती। धूप भी किसी तृप्त जानवर की तरह माँ के आगे लोटें मारने लगी और पूरी बैल्कनी सुनहली होने लगी।

बेटी समझती रही कि वो अम्मा को बैल्कनी पर ले जा रही है, उसे ख़बर नहीं पड़ी कब धूप ने माँ की छड़ी में फन्दा लगा दिया और इसरार से माँ को अपने साथ खींचती चली।

इसीलिए आगे चलकर माँ को घर में धूप के संग संग फिरते देखा गया — जहाँ धूप, वहाँ माँ, बैठी, लेटी। और कभी धूप-मुग्ध खड़ी। हर खिड़की दरवाज़े से जिस घर में आसमान पेड़ और हवा दस्तक दे रहे होते उसमें धूप बआसानी बही आती और माँ के संग लुभो-लुभाये खेलने लगती।

हाँ, पहले माँ ज़रा आआअ धूप की गोद से गिरती सँभलती, बाद में बड़ी हो गयी और तब दोनों एक दूसरे की कमर में हाथ डाले दिन भर घर में फिरती रहतीं। चाय नाश्ते तक बैल्कनी में, फिर जब माँ बाथरूम में होती तो क्या पता धूप वहाँ भी घुसी होती क्योंकि वो निकलतीं तो धूप से नहाई दिखतीं। (शुरू में बेटी-माँ ज़रूर बाथरूम में माँ के संग घुसती क्योंकि माँ कितनी कमज़ोर थी। वो ब्यौरा शायद आगे आ जाए)। धूप और छड़ी के सहारे माँ झिलर झिलर डोलती आतीं और उनकी चाल देखकर धूप को झूला सूझना मानी बात है। वो तिरछी मुस्कान मारती और झूले की तरफ़ झुकती और धीरे से माँ को उस पर बिठला देती और दोनों वहीं सुस्तातीं। (बेटी समझती वो बिठा रही है पर बेटी को कुछ ज़्यादा समझने की आदत थी ही)। धूप को झूले पर बैठी माँ पर खिलना कुछ इतना भाता कि वो खिलती जाती और कुछ अति कर देती। वहीं टिकी छड़ी के सुनहले पे सुनहला ऐसा चढ़ता कि तितलियाँ गर्मी से फडफ़ड़ाने लगतीं। अब धूप तेज़ लग रही है, जैसे वो कहतीं और माँ कुछ हिलतीं। धूप समझ के सँभलती क्या पिली पड़ रही हूँ और माफ़ी माँगते हुए माँ को उठाती। दोनों खाने की मेज़ पर जातीं और धूप छाँव के करीब उन्हें बिठलाती (बेटी अपनी ख़ुशफ़हमी में यहाँ भी मुब्तिला), स्नेहिल सी फिसल कर उनके पाँवों पर टिक जाती।

उसके बाद भी दोनों साथ साथ जगह बदलती रहतीं और माँ की इच्छा मुताबिक धूप उनकी कमर की सिंकाई करती, उनकी पीठ को गरमाती, उनकी दोपहर की झपकी को गुनगुनाती। हा धूप की तन में उतराई, हवा की त्वचा पर झुलाई। जैसे तन पहली बार अपने को सूझता हो, उस पर पड़ती छुअन पर उई उई मज़े की हो गयी है, माँ उसे धूप के मुताबिक घुमाती है, बड़े से बिस्तर पर सर ख़ुशी से इधर पटकती है, फिर तकिया खिसका के आगे, आड़ी तिरछी होती, जैसे धूप उसे लचकवाए।

और शाम तक माँ को सोफ़े पर बिठला, खुद सिन्दूरी होकर बैल्कनी के पश्चिमी तरफ़ की खिड़की से जाती रहती। जाती रहती जैसे जाने का मन तो हो नहीं रहा मगर सँझा बेला के संग अन्याय नहीं कर सकते, उसका कभी तो वक्त हो ले। माँ पे ललाई छिटकाती वो आखिरकार निकल जाती। माँ दुलाई लपेट लेती पर आराम से। वो खूब जानती हैं, खुद से कहें या नहीं, कि धूप कल लौटेगी।

जब माँ में बांह उठाने का दम लौटेगा तब वो छड़ी को धूप में डुबोयेगी और दिनभर घर की दीवारों, जहाँ जहाँ वो हैं, और असबाब को जैसे ब्रश उठाकर रंगती चलेगी। यानी वो भी धूप को जगह जगह घुमाएगी जैसे दो सखियों में संधि हो कि कभी मैं कभी तुम।

पर जहाँ सभी की अपनी खुशगुमानियाँ, बेटी को इतना ख़ारिज करने की क्यों पड़े? बड़ी हो रही बेटी छोटी सी अम्मा को कितने चाव से देखती है चेतते। धीरे धीरे, दिन प्रति दिन। और कितना सँभाल सँभाल के उनको सँभालती है कि जैसे काँच की गुड़िया न कि छोटी सी बुढ़िया। अम्मा भी उसके संग ऐसे कर रही हैं जैसे टूट जाएँगी। बेटी ने बालों में तेल लगाया है। माँग माँग खोलकर कि कहीं सफ़ेद वार्निश या कोई बैरी अवशेष तो नहीं। माँ अभी सर भी मुश्किल से उठाये रख पाती है, उँगलियों के चलने पर आह हाय करती है।

अम्मा, बेटी लाड़ से तरेरती है, खुद अम्मा बनके।

सच्ची दर्द है।

माँ अभी झुकने, मुड़ने लायक नहीं है। ज़रा ज़रा में थक जाती है। बेटी उसे नहलाएगी। प्लास्टिक की कुर्सी में मंटूरी को बाज़ार भेज के छेद करा लिया है कि पानी बह जाए, उस पर आराम से बिठला कर। माँ बैठ गयी, जहाँ चाहो, जैसे चाहो, नहलाई धुलाई कर दो। थोड़ा ही विरोध किया कि हट, छी, तुम्हारे सामने थोड़ी सब खोल दूँगी। अरे मैं पीछे हूँ, देख थोड़े रही हूँ, वैसे इसमें क्या, बेटी हूँ, अम्मा, बेटी ने डपटा।

उई उई। जब बेटी साबुन मलती है। माहोसाल की गर्द और सुस्ती में दबी देह निकलती हो जिससे नया नया साबिका पड़ रहा है और अभी तो सब बड़ा नाज़ुक है, दुखता है, उई उई, जहाँ छुल जाए।

लेकिन पाँवों में बिवाइयाँ, माँ खो के लौटी है न। तलवों में छाले। धीरे धीरे झाँवे से चिकना दो।

बेटी पीछे से झुककर सब जगह गुदगुदा स्पंज फेरती है। माँ छोटी छोटी आवाजें करती है जैसे अपने तन को पहली बार महसूस करती।

बेटी पानी उलीचती है। फेन के नीचे से नयी देह चमकती निकलती है।

उनको बैठा रखकर बेटी उनका तन पोंछती है। फिर बड़े से तौलिया में लपेटते हुए उन्हें सहारा देकर खड़ा करती है और बाहर कमरे में लिवा लाती है। माँ बच्ची सी नरम नाज़ुक नंगी।

देखो, माँ कहती है। उसकी बांहों पर कहीं लाल कहीं नीले निशान।

बेटी धक्क से। मैंने ज़ोर से रगड़ दिया क्या? पीठ पर भी निशान। ये लापता दिनों की दास्तान है जो लापता है। बेटी पूछ के याद नहीं दिलाना चाहती। कहाँ सोयी थी, क्या खाया था, कुछ भी बेटी नहीं पूछ सकती। अम्मा जूते पहनी मिली थी, तो क्या सोच समझ के घर से निकली? कैसे? अकेली? छड़ी सहारा ले के? बेटी नहीं पूछती। दु:स्वप्न को धो पोंछ कर उतारने में लगी है।

अपने हाथों में हल्का सा बेबी ऑयल लेके माँ के तन पर मलती है। माँ उई वुई ऐसे करती है, सच्ची, जैसे दर्द मज़ा दे रहा और पोर पोर को अपना एहसास हो रहा है। सन्तरे का जूस देखकर माँ किलक मारती है और पस्ती से पैर फैला के फैल जाती है।

ये शुरू शुरू के दिन हैं। नहलाने धुलाने खिलाने चलाने तक सब कुछ बेटी करवाती है। लेकिन हमेशा थोड़े उसे ही कराना होगा? माँ तंदरुस्त हो जाएगी। खुद सब करेगी। नहाना

धोना खाना सोना। बेटी ही कमरे से बाहर हो जाएगी और माँ बिस्तर पर मस्ती से अष्टावक्र हो जाएगी।

एक डंठल, एक पंखड़। हाँ जी माँ ने बैल्कनी पर चाय पीते कह दिया कि यहाँ पौधे होने चाहिए। जब मुझे, बेटी ने उंह की, यात्राओं पे निकलना पड़ता है तो देखेगा कौन? तो देखेगा कौन माँ ने भी कहा। दोनों हँसे और एक माली तय हो गया जिसके संग माँ मिट्टी में हाथ डालती हैं और कोई बात नहीं, बेटी सोचती है, उन्हें खुश होने दो, जो वो चाहें करें, यहाँ बड़े के नियम, भाभी की माँगें, अफ़सरों के चोंचले नहीं होने, जो चाहो पहनो, जो चाहो बोलो, हम आज़ाद हैं, बनाओ बैल्कनी पर गार्डन।

आये दिन एक और पौधा पाँव उठा के एक और गमले में चढ़ता है तो उसकी वही अलबेली ठुमक होती है जो माँ की होती जा रही है। ठुमक चलत रामचंद्र बाजत पैजनियाँ। माँ चलते चलते धूप के टुकड़े में रुक जाती है, छड़ी गमले पे टिका के, हाथ उठा के अंगड़ाई लेती है, और फिर दोनों हाथ से कमर पकड़े, दायें बायें नचाती है। पौधे भी दायें बायें नाचते हैं।

क्या हो रहा है, बेटी हँसती है। उसे अच्छा लग रहा है अम्मा का धीरे धीरे चेतना।

अच्छा लगता है, कमर दु:ख गयी, बाथरूम में बैठे बैठे।

अम्मा दर्द की कहती है पर सुखी भाव से।

हर चीज़ में आपको दर्द होता है, बेटी लाड़ करती है। कान में दवा जाए तो उई अन्दर तक चरचरा रहा है। नाख़ून काटूँ तो उई उई दांतों में दबाके।

होता है। माँ कुनमुनाती है। देखो ये लाल हो गया है।

ये पहले भी था। बेटी देखती है।

पर छोटी सी बिंदी थी। कितना बढ़ गया है। और यहाँ देखो बैंगनी हो रहा है। और कल सुनो, क्या हुआ, सो रही थी उसी में हो गया।

माँ कहती है आज ईसबगोल भी लूँगी और गैसट्रोमोन भी, पता है कितनी हुई, नाख़ून के नोक बराबर, माँ अपनी कब्ज़ पीड़ा व्यक्त करती है। असंयत किलकारी लेती अपनी व्यंजना पर। ये राज़ की बातें पेट में जोशें मारती।

मस्सा तिल फुंसी झाईं का फटना फूटना माँ का रोज़ का कार्यक्रम। अपने अंगों को सहलाती, घूरती, इधर कपड़ा खोला, उधर लाइट में किया और देखो, खुजली भी हो रही है। ज़रा फैल भी रहा है। रंग भी गहरा गया है। पिछले हफ़्ते तिनके की नोक बस थी, आज फोड़ा जैसा। कहीं कुछ हो तो नहीं रहा?

फोड़ा फुंसी मस्सा न हुआ, अबोध बालिका के सीने पे नोकें मचल रही हों।

अपने बदन की कहते हुए माँ ऐसी जैसे कोई नयी नयी बच्ची से रहा न जाए कि सुनो, गुड न्यूज़, मेरा पीरियड शुरू हो गया, आज स्कूल नहीं जाऊँगी, डिस्पिरिन लूँगी और हॉट वाटर बॉटल और धूप में पड़ी रहूँगी।

या चुपके से दिखाती हो देखो यहाँ बाल उगने लगे।

तब मज़ा न ले पाई तो इसलिए अब? या खिल खिल फूल फूल जब मालूम पड़े, तभी सीना मचलता है, जीने का एहसास, जन्मने की शिद्दत तभी आने लगती है? बदन तो बदन, साल सोलहवां या सत्तरवाँ कि अठहत्तरवाँ, उभरवाँ दबवाँ नुमाइश में इतराता। हवा का लहका पड़ा या धूप ने धौल जमाया कि पेड़ पौधे की तरह खिल खुल मची। झुक झुक के अपने को जांचे निहारे, बगलें सूँघें, कलियाँ चटकाए। नया पौधा झूमे तो हवा के नचाये थोड़ी, अन्दर हिलोरें हैं, गर्दन उमंग से अपने को ढूँढ़ती है, मटकती है।

कोई नहीं, बेटी समझाती है, उम्र के साथ ऐसा होता है।

राज़दारी। लड़कियों के आपस के नोट्स। मेरा तो पहले दिन जैसे नल खुला छोड़ दिया गया। मेरा एक हफ़्ते चलता है। मेरा तो तीसरे दिन बूँद टप टप, फिर छुट्टी। यार मैं ट्यूशन से उठी तो हाय सोफ़े पे ताज़ा धब्बा, मैं देखूँ, ट्यूटर देखें, दोनों के चेहरे उसी की तरह लाल।

अन्तरंग बातों के बीच लड़कियों की हँसी छूटती। ये जो बदन के मज़े हैं, सन्तुलन गड़बड़ाए गया है। खूब खूब बहने में मज़ा है कि किफ़ायत से, समझ नहीं पा रहीं।

सब शान्त है। कुछ नहीं हो रहा। सब तरफ़ शान्त और कुछ नहीं का होना माँ को भाता है।

आह, अम्मा करती है।

अरे धीरे, बेटी कहती है।

माँ अपने बाज़ू देख रही है। क्या देख रही हैं अम्मा? धूप सेंक रही हैं अम्मा। बाज़ू पे मस्सा है। देखो, कहती हैं अम्मा। पहले नहीं था। अच्छा नहीं लगता। दर्द तो नहीं न? नहीं, पर भद्दा है, चुभता है, माँ नखरीली।

भूल जाइये, बेटी बहलाती है।

माँ भूल गयी है। वो पीठ पीछे की रार।

डीवी पलुस्कर राग श्री गा रहे हैं हरी के चरण कमाल। उनके स्वर माँ बेटी की आपस की बातों में मंद मंद घूम रहे हैं। सूरज अलविदाई अन्दाज़ में झुक गया है। पन्ना पलटा। मेज़ पर पॉपी रंग की प्लेट थमी हुई है। कुर्सी खींची। मसाले का डब्बा बंद किया। फ्रिज से बोतल निकली। मिक्सी चर्र चली। घड़ी की सुई टिकटिक। सूरज की लाली कल लौटेगी। किताबें आले पर कतारबद्ध। साये जगह जगह आराम से। फुलकारी की शॉल चुप फहर। सुई गिरती है। रात का खामोश स्वर। चुप के मायने बेस्वर होना नहीं है। उसके मायने स्वर के घेरे में

चुप का बसेरा है। उसी का बयार बन के बहना। पीठ पीछे ख़ामोशी घिरती है। अपनी साँस का स्वर सुनाई पड़ता है।

उसे तरह तरह से बजाने में लगे, यों माँ अपनी साँस के संग करने लगी है। लम्बी लम्बी श्वास नि:श्वास। गहराती। और ध्वनियाँ उनमें जोड़ती।

अआ आअहाअहा अआआहो। जम्हाई में मुँह फाड़ते हुए।

ऊऊ ऊऊ ईईईईइमा उईउम्मा। कमर झुलाते हुए।

हिस्स्सअंग एहह्ह्ह्छ। छड़ी उठा के दीवार पर धूप और हवा छलकते हुए।

व्हीईईई ईईईईई ईई ईइ। कान में उँगली डाले कस कस खुजाते हुए।

अपने बदन के अन्दर बाहर को कुरेद रही है और उसे बोलों में व्यक्त कर रही है।

हर करवट पर आह, बांह उठाये तो ओह, कदम बढ़ाये तो अईया, घंटी बजे तो ओ ओ, कोई आये तो हुश, रोटी खाए तो कुट, अनाप शनाप शब्द सुनाई पड़ते। साँसों की आरोही अवरोही तानों के साथ।

बदन साँस आवाज़ के नए नए अंजाम।

बच्चा ये ही करता है। अपने तन को काटता चूमता है और स्वर को तरह तरह से आज़माता है। दुनिया में बढ़ने की ट्रेनिंग होती हो। पिछले जन्मों की ध्वनि हो जिससे फिर खुद को इस जन्म में रचा जाए। कुछ त्याग दे, कुछ अपना ले, कुछ अभी बना ले।

माँएँ हँसती हैं रीझ जाती हैं। बच्चे की प्यारी अल्लम गल्लम।

बेटी माँ को दुलारती है। क्या जिबरिश बोल रही हो। टेप करूँगी। तुम्हारे सब बच्चों कच्चों को सुनाने। अकेले, दुकेले, खाते पीते जागते, सोते भी। करवट लेते हुए आ ऊ करने में जैसे कोई सुकून। खाती है तो उम् अम्म चप चप होंठ से होंठ बजाती। पीती है तो सुड़क। अंगड़ाई लेती है तो ईआँऊँ। बाथरूम से भी आवाजें आती हैं, आ आ आ हुन्हूँ हूँ। बेटी हँसती।

किन्तु रात को हँसी नहीं आती। नींद चौंक जाती। अम्मा बिस्तर पर अंग ऐसे फेंकती है जैसे अभ्यास करती हो दिन में दोहराने को, दुनिया में निकलने को। हर अदा, हर मुद्रा में पड़ के देखूँ। और हर जुम्बिश पर आह कराह ऊह, ओओह, आह्ह्हहो खर्राटे।

इन नए स्वरों के बीच में माँ जाने पहचाने शब्द भी कभी डाल देती हैं। अआहअच्छा हिस्सएको नहींफुर्ररऐ मुँहेव्हीए ऊऊओह्कनटोप ईईपलस्टरऊई। पर मतलब तब भी नहीं बनते। बस मानो आवाज़ करने को आवाज़ की जा रही हो। नया बाजा मिला है, बजाया जा रहा है।

ये क्या व्याकरण गढ़ा जा रहा है बेटी नहीं समझती। पर ये सब शान्त के स्वर हैं वो समझ जाती है। कौन कहता है आवाजों से शोर होता है?

शान्त के स्वर।

सड़क पर झाड़ू की घसघस।

अख़बार वाले की दौड़ती चप्पलें। पेपर का थप गिरना।

बाहर के दरवाज़े का खुलना। बाहर की शहतीर का भीतर कूदना। साथ ज़र्रा भर गर्द का उड़ना।

सफ़े पलट सुर्खियाँ पढ़ना। सफ़ों का फड़फ़ड़ करना।

खिड़की पर पत्तों को झाड़ती डालियाँ। एक पत्ता आह भरता है, धरती की तरफ़ लहराता है।

सड़क पार के वन में मोर प्याओं प्याओं करते हुए। सुनाई पड़ रहा है उनका पंख खोलना, पाँव घुमा घुमा के नाचना।

माँ और धूप का सखीभाव। उनकी चेमेगोइयाँ। उनकी चुप चुप आवाज़ें।

चाय केतली से कप में झरने की बारीक़ धार बजाती उतरी।

पारदर्शी केतली से निकलती धुपीली चाय भी मीठी चुप चुप है, फिर भी माँ दो चम्मच शहद डालती हैं।

चंपा के फूल गिरते देखो तो उनका स्वर सुनाई पड़ेगा।

किसी फ़्लैट में कामवाली ने बाल्टी टनकाई।

किसी ने ताज़ा मसाला कूटा। सुगंध गायी।

किसी ने खरल में इलाइची पीसी, दिल को भायी।

माँ ने लम्बी चुस्की ली जैसे चिड़िया की धुन निकालती हो।

एक चिड़िया बाहर बोली जवाब में।

सोसाइटी के माली की खुरपी मिट्टी में बोली खच्च खच्च।

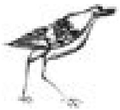

आदमी तो नहीं बन रही? दाढ़ी है देखो।

एक बाल, बेटी हँसती है। अरे मेरे भी ठीक वहीं।

हाँ, इसी जगह ठोढ़ी पे बाल आता है। देखो एक बस। लम्बा होता जाएगा। माँ नोचना चाहती हैं। कैंची दो।

नहीं नहीं, बेटी घबराती है। मैं ट्वीज़र से खींच दूँगी। कमाल है मेरे भी ठीक उसी जगह बस एक बाल आता है। हम दोनों की दाढ़ी।

हु हु हु हु।

इस क़दर माँ अपने तन के नखरों में, जैसे पहली बार उसे देखती। या इश्क ये, कि जब हो वही पहली बार?

इस क़दर इश्क कि हर तरफ़ से प्यार। आर पार। कि तन उसका कोट, जो सीधा पहना था, अब उतार के उलटा पहन लिया है। अन्दर का फटेला अस्तर ऊपर हो गया है। हवा लगेगी, फफूँदी निकल जायेगी। ऊबड़ खाबड़ फटा फूटा उलझा बहता दिख रहा है। नीली नसें, फोड़े, फफोले, चीरे, थिगलियाँ। उन्हें तलाशती है, सहलाती है, देखती है, दिखाती है।

बेटी को मज़ा आ रहा है। अम्मा अपने आप चलने लगी है और देखो कैसे लहर बहर से घर की परिक्रमा करती है। ये क्या है? हुसैन के प्रिंट्स? अपनी माँ को ढूँढ़ते हैं? माँ को कभी नहीं जाना, अपने चित्रों में उनकी कल्पना घोलते रहे? वाह कला करिश्मा! और ये? ये बस्तर वासियों के जानवर हैं। उनके यहाँ पशुपक्षीपुरुषप्रकृति एक, सब की रक्षा, सब की इज़्ज़त एक। वाह।

बेटी की साँस माँ की लौटती साँस में। बेटी का रंग माँ के पुलकित होते रंग में।

ये सब किताबें तुमने पढ़ी हैं? हाँ। कुछ निकाल दो मैं पढ़ना शुरू करूँगी। अभी आँखें लाल हो जाती हैं। पानी गिरने लगता है।

कहाँ रहीं जो ऐसी कमज़ोर हो गयीं, सवाल बेटी के मन में फिर घुमड़ आता है, दिल पसीज जाता है।

लेट जाइये। एक संग सब मत किया करिए। बीच में सुस्ता लिया करें।

फ़ोन बजा। केके का फ़ोन। उसने जल्दी से साइलेंट पर किया। माँ जो बच्ची है जग न जाए। बाद में बात करेगी। दारएसलाम से लौट आया होगा। भूल गयी थी। पर याद होता तो भी

अभी उसे यहाँ नहीं आने दे सकती। और यहाँ सोने भी नहीं। बिस्तर पे वैसे भी अम्मा हैं। अभी नहीं। कुछ रोज़ ये दूसरे रिश्ते तर्क।

मन भी नहीं है। बेटी ने जाना, पर शायद अवचेतन में, कि माँ और प्रेमिका एक खाल में नहीं रहते। आपकी खाल में माँ उग आये तो बड़ी आसानी से प्रेमिका की केंचुली उतर जाती है।

माँ पराठा और साग खाती है। बेटी ने पड़ोसी के यहाँ वाली बाई से तय कर लिया है कि खाना बना दे। अम्मा को वो अपनी सब्ज़ी अनाज मिलामुलू के एकघोंट पका देने वाली खिचड़ी, जिसे केके सानी कहता है, नहीं परोस सकती।

बेटी को रास आता है माँ को नए अनुभव कराना।

देखिये। बहुत अच्छी अंग्रेज़ी फ़िल्म है। सब समझेंगी। उच्चारण सुनते सुनते साफ़ आने लगेगा। नात्सी जर्मनी की। सच्ची घटना पर आधारित।

माँ बेटी फ़िल्में देखती हैं। पश्चिमी चुम्मे देख कर सकपकाई सी हँसी दोनों हँस देती हैं। छीछी, माँ एकदम अनछीछी भाव से कहती हैं — कैसे मिलाते हैं थूक में थूक? दोनों अबोध बालिकाओं सी खिलखिलाती हैं। पता नहीं उनके गालों पर लाली धूप की है कि भीतर से तपती?

केके से उसने कह दिया है, अभी सेटल होने दो, अभी माँ ठीक नहीं हैं, बाद में आना। वो कह नहीं पाई — न अपने आप से — कि मन बदला बदला है। उसने ये तो पढ़ा है कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं पर ये नहीं कि एक खाल में माँ और प्रेमिका का वास नहीं हो सकता। एक बिस्तर पर भी दोनों नहीं सो सकतीं।

बिस्तर पर माँ फैल के सोती है। वो लेटते ही सो जाती। सोते सोते टटोलती है कि बेटी है न, हाँ है, सर, हाथ, घुटना उससे सटा, बेहतर सो जाती है। बेटी अलबत्ता जागी रहती मगर तो क्या, अम्मा नींद पूरी कर रही है, उसे इसी में आराम पहुँचता। सुबह तक बेटी लगभग बिस्तर नीचे, अम्मा पूरे पे। बेटी अलार्म लगाती पर जगी हालत में उसकी घंटी बजने के पहले उसे बंद कर देती।

पर और घंटियों पर उसका बस नहीं आजकल। न फ़ोन की न दरवाज़े की।

घंटी यहाँ कोई नहीं बजाता था। बिना पहले से तय किये कोई नहीं आता था। जिन्हें आना होता उनका वक्त पता था और उनकी आहट पाते ही बेटी दरवाज़ा खोल देती। केके के पास अपनी चाभी थी। कूड़ा वो बाहर रख देती, दूध की थैली बाहर। तो रोज़ की वो ढेरों घंटियाँ जो घरों में बजने की आदी थीं, यहाँ नहीं बजतीं। वैक्यूम बेटी कर लेती, झाड़ पोंछ भी और कभी कभी वो कम्पनी जो केके के ऑफ़िस में सफ़ाई करती, यहाँ भी पूरी प्रोफेशनल सफ़ाई कर देती — जाले, कीड़े मकोड़े, किताबों की धूल, नालियों की ज़ंग। तो सब था भला चंगा और बावर्ची था नहीं क्योंकि बेटी सेहत का खयाल रखती मगर खानों के नखरे नहीं। एक जन का खाना, कभी दो का, और जब तब पार्टी, क्या मुश्किल? बल्कि पार्टी का मज़ा बढ़ जाता कि आज कुछ अलग धूम मचाएं। इटैलियन, चाइनीज़, मेक्सिकन, गुजराती, बंगाली, मलाबारी, अलग अलग ज़ायकों की पार्टियाँ होतीं। केके पकाने में माहिर।

मगर अब घंटियों की फ़सल थी। बावर्चिन की घंटी, माली की, झाड़ू पोंछे वाली की, सब्ज़ी फल वाले की, नारियल पानी वाले की, और नाते रिश्तेदारों की। किसी का कोई टाइम नहीं और किसी का फ़ोन करके आने का ढंग नहीं। कब अम्मा के सेल फ़ोन की घंटी है, कब दरवाज़े की, बेटी हर बार गच्चा खाती है। अपने घर की घंटी की वो आदी नहीं, माँ के फ़ोन की भी नहीं, अपनी खाल में कूद जाती।

दूर पास के परिवार वाले और बड़े और बहू की दोस्त बिरादरी सब फ़ोन करते हैं। सुना आप कुछ दिन को बेटी के पास हैं, अच्छा है, उसके लिए भी, और कैसी हैं? बहू रोज़ पूछ लेती अब ले आयें वापस, नया घर काफ़ी दुरुस्त कर लिया है, आपके कमरे में धूप आती है। बड़े फ़ोन करते, कब लौट रही हैं, आपका नहाने वाला स्टूल भेज दें, कुछ खाने को मिलता है, पराठे बनवा के भेज दें? सिड करता है बॉस्टन से कि लौटने पर ख़बर लूँगा, सुना सैर सपाटे पे अकेले ही खिसक गयी थीं, मुझे ले चलतीं, मुझसे कहतीं, वैरी बैड ग्रैंडमदर। और माली करता है माता जी मछली वाली खाद मिल रही है, बैंगनबेलिया तो ढेरों रंगों के हैं, मैरी पामर भी, मगर चाईनीज़ ऑरेंज अभी नहीं मिला, दूसरे बाज़ार में देखूँगा, पाइप ले लिया। फल वाला करता है माता जी पपीता, इंजेक्शन वाला नहीं, नैचुरल। भाजी वाला करता है माता जी बथुआ, सोआ, दोनों लाया हूँ। माता जी कहती हैं काली गाजर भी ले आना। बाई से कहती हैं कस दो, इसका हलवा बनायेंगे।

दरवाज़े की घंटी अकस्मात् बजती है तो बेटी फ़ोन उठा के हेलो हेलो करने लगती है। फिर सामने का दरवाज़ा खोलती है तो और विमूढ़ तकती है जैसे कौन हैं पहचानती नहीं। जब कि सब जाने पहचाने हैं, पर यहाँ तो पहली बार प्रकटे हैं। इस नयी स्थिति की अभी उसे आदत कहाँ पड़ी है?

एक रात एक बजे घंटी बजी तो और मति-चाक। कैसे तो उसकी आँख लग गयी थी और वो हड़बड़ उठी और शॉल कन्धों पे खींच, गिरती पड़ती दरवाज़ा खोलने भागी। वहाँ अँधेरा, फिर भी उसने सोचा गार्ड को फ़ोन करके डाँटे कि कैसे ख़बर किये बिना किसी को भेज दिया? पर बेचारे ने भेजा कहाँ किसी को, ये जागते जागते समझ आ गया। फ़ोन था माँ का, और उन्होंने उठा लिया है। इस वक्त? उसका गुस्सा कहीं से कहीं पलटा और डर बन गया जब मौत की बातें सुनीं। बड़े ने किया था। सुदूर एडमण्टन में बसी तिन्नो चची चल बसी थीं। कल ही सिड उनसे मिलने गया और बड़ी खुश थीं, हाँ अस्सी से ऊपर थीं, अरे नब्बे की हो गयी होंगी, जब तुम्हारे पापा के संग हम रांची में थे तब वो आई थीं, बीस साल से पहले की बात है, सत्तर तभी रही होंगी। उम्र पर बहस चली और बेटी का डर मौत की संभावित उम्रों को लेकर बढ़ गया। बची रात में माँ का डर के मुआइना करती रही। ख़ैर नींद वैसे ही नहीं आती थी।

घंटियों से उसे डिस्टर्ब न होने का नुस्खा ढूँढ़ना है।

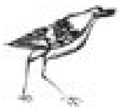

अम्मा सो गयी है जैसे सब शान्त था और है। सो है ही। शान्त का शोर से कब वास्ता? शोर का शान्त से क्या? जब चुप होता है तो चुपचाप रहता है। उसके घेरे में शान्त है तो आप चुप में हैं, चाहे बाहर दुनिया धूमधड़ाका मचाये। उसके घेरे में शोर है तो सन्नाटे में भी आप शोर में हुए।

चुप में माँ बात करने लगती है। अपने आप से, जैसे दूसरों से कर ली अब खुद से करूँ। मानो वो दो प्राणी है, एक जो दूसरी को देखती है और उससे कहती है कि अब जाओ नहाओ, दूसरी जवाब देती है हाँ देर हो रही है, चलूँ नहा लूँ।

ऐ सँभल के पहली कहती।

आँ, बच गयी। दूसरी हँसती।

जिसको मन की आँखों से देखना आता है, करे बंद आँखें और देखे माँ को अपने ज़रा लथड़ते कपड़ों में, अपनी ज़रा लडख़ड़ चाल में, अपनी थिरकन वाली छड़ी के संग बेटी के घर में फिरते, ज़मीन से दो इंच ऊपर डोलती सी, चुप के नाज़ुक बुलबुले से घिरी जिसमें सतरंगी धूप के कतरे हैं।

शान्त को शोर नहीं तोड़ता।

सुबह सुबह जब माँ बैल्कनी पर चाय पीती है काली चिड़िया लम्बी सीटी मारती है। चढ़ती उतरती लय।

धीरे धीरे माँ घर के कोनों कोटरों मे अपने को उंडेलती है। उसे लगता है वो उड़ रही है। अच्छा लगता है। यहाँ पाँव ज़मीन पर नहीं पड़ते मेरे। चुपचाप उड़ती है। साँसों की आवाजाही सुनती। तिनके का उड़ना सुनती। घास का उगना सुनती। धूप का लहरना सुनती। शाम का उतरना सुनती। बदन का खुलना सुनती। खुलने का खिलना सुनती।

बेटी दुलार से कहती है अपने नए घर के कोनों कोटरों में तुम खुद को हवा की तरह उँडेलती हो। माँ कहती है मैं हवा उंडेलने खातिर चल रही हूँ। छुओ, पेट हवा से कैसा तना फूला है। चलो तो हवा निकलती है। हवा उड़ाती हो और हवा के गुब्बारे में उड़ती हो। हाहा हा हा, दोनों को आपसी फूहड़ता रास आती है।

पेट पे लम्बे लम्बे वार्तालाप चलते हैं कि यहाँ इतना खा रही हूँ तो भी कभी तिल बराबर, कभी मखाने बराबर ही क्यों निकलता है। हर समय लगता है जाओ पर होना हवाना बस हवा है। आंतें ढिल ढिल हो गयी हैं, इसलिए लगता है आ रही है। अन्दर झोले बन गए हैं वहाँ सब जमा रहता है। निकलना नहीं चाहता। अंजीर ला दूँगी। वो तो तुम्ही खा जाती हो। तो मेरी उम्र बढ़ती नहीं क्या? तुम भी देर तक पॉट पर बैठो। फिर दोनों घूमें हवा फैलाते।

एं री अम्मा, घनिष्टता छाती है, माँ बेटी हँसती हैं। पुचकार के तुम तू करती हैं।

देखो अम्मा गमले में मिट्टी गोड़ती है। सुनो चिड़िया उतार चढ़ाव वाली सीटी-धुन सुना रही है। बेटी कुछ तला खाकर उँगली चाटने लगी। तितलियाँ सब देख रही हैं। धूप गमकीली हो रही है।

हँसी होती है क्या करती रहती हो तुम।

हँसी चलती है क्या करते रहे हैं हम।

बैल्कनी और सीटी। चिड़िया और सीटी। अम्मा और चिड़िया। बैल्कनी पर गमले आ गए हैं। माँ मिट्टी में हाथ साने रहती हैं। कोपलें फूट रही हैं।

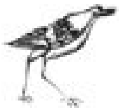

हर फल का अपना मौसम होता है। सावन भादों में जामुन टप टप गिरते हैं, ग्रीष्म में आम फटे पड़ते हैं। शिशिर में हर हरे अमरूद पे हरे हरे तोते डट जाते हैं और परिवार में रौनक का मौसम हो तो सीटियाँ बजने लगती हैं। बजते बजते उन्हें अपने होने का इल्हाम हो जाएगा और इस इल्हाम का नशा सिर्फ़ निर्वाण प्राप्त को नहीं होता, वरन सब मचल जाते हैं कि हम हैं, अईया मइया दइया, हम हैं! तेज़ तेज़ बजने लगते हैं और आसपास कि हर बजने वाली चीज़ मुलकने लगती है।

प्रेशर कुकर की सीटी। माने पक गया। नहीं तो जल गया। पर खाने के साथ साथ बेटी को सीटी बजने पर पकते देख, बाकियों को अपने बजने का असर आज़माने का और जी ललचाता। इसलिए सभी और बजने लगे या और सीटी बजाने लगे। फ़ोन, घर घंटी, पत्ते डाली, चिड़िया काली।

बेटी की ग़लती नहीं थी। वो इनकी आदी न थी। हर बार सिटपिटा जाती और हर बार एक यंत्र से दूसरे को देखती कि किसकी ये करतूत है? तब तो बजने वालों के हंगामे इन्तेकामी हो गये। जहाँ उसने चाय की प्याली उठायी कि कुकर चीखा और गरम चाय छलक पड़ी। जैसे ही बैठी कि कुछ तो अपने लेख को कहीं से कहीं ले जाए, तो इण्टरकॉम बज उठा कि फ़लाने आ रहे हैं माँ जी से मिलने। जिनको गार्ड पहचान चुका है उनकी ख़बर दरवाज़े की घंटी बिगड़े बच्चे की तरह चीख के देती और बेटी फिर गिरती या कुछ गिरा देती।

अभी अम्मा के फ़ोन की घंटी से पहचान नहीं हुई थी कि किसी आगंतुक का फ़ोन अलग बेहद तेज़ और भोंडे ढंग से शोर मचा पड़ता। बात बात पर गिरती पड़ती बेटी हो गयी।

बजी। हैं? फ़ोन? इंटरकॉम? चिड़िया चूंचिहुंक? दरवाज़ा? उठ तो गयी पर दरवाज़े को यों देखा किये जैसे वो उस पर लपकने वाला है।

मैं खोलती हूँ। बाई हाथ पोंछती किचन से आ गई थी।

बेटी औचट देखे जैसे पहली बार। रीबॉक की शायद उसे कभी आदत नहीं पड़ेगी। वैसे भी किसी को जहाँ देखते हैं वहाँ से अलग कहीं देखें तो शायद उसे न पहचानना ताज्जुब नहीं। दरवाज़े से फट-फट रीबॉक घुसे। कुछ याद आया। इसी फट-फट पे गड़बड़ाना, मैं बाहर की हूँ कि अन्दर की और यह?

मगर, उसने आँखें झपक झपक झपकायीं। ये तो मेरे घर का दरवाज़ा है, वो वाला नहीं। यहाँ तो हूँ ही मैं अन्दर और वो बाहर से आ रही हैं। ये घर वो वाला नहीं, ये तो, वो मुड़ी जिधर बहू बढ़ के झूले पर बैठी अपनी सास के पैर छू रही थी, मेरा घर है।

अरे, माँ बोलीं।

बहू खिलखिला के झूले पर बैठ गयी। आप झूलने लगीं?

मेरे घर में अम्मा झूलती हैं। बेटी इतरा सकती थी। मगर हाज़िरजवाबी हाज़िरदिमाग़ी माँगती है, सीटी घंटी पर कुदक्के लगाती अक़्ल नहीं। पल निकल गया और तब तक सास बहू को घर की सैर कराने लगी।

यहाँ कुछ बंद नहीं। देखो। छड़ी घुमा घुमा के। पूरा हॉल। उसी में एक आड़ में स्टडी, एक आड़ में टीवी रूम, एक आड़ में लाइब्रेरी, एक आड़ में टी रूम। दराज़ खोलो, अन्दर चाय केतली, चाय का सामान, सब फ़िट। चाय बनाओ, बंद कर दो। तुम भी अपने फ़्लैट में ऐसा करवा लो। माँ छड़ी से पॉवर पॉइंट प्रेजेंटेशन करती, घर दिखाती हुई जैसे अपने घर के नमूने पेश कर रही है बहू के अनुकरण के लिए। इस खिड़की पे नीम। इस पर पीपल। कल सुबह यहाँ शाहबुलबुल बैठा था। ये एॅक्स्ट्रा कमरा। देर हो तो यहीं रह जाओ। ये मेरा बिस्तर। आराम से उठ के बाथरूम में जाओ। दीवार खुद सहारा दे दे। बेफ़िक्र सोओ। पर ये सोती नहीं, टॉर्च दिखाने उठी रहती है। इसके काम का नुकसान हो रहा है।

क्यों नुकसान, बहू ने कहा, परिवारों की ब्याज-स्तुति वाली आवाज़ में जो कौन कह सकता है निंदा है? उसे आपकी संगत मिल रही है। माँ बेटी स्पेशल टाइम। चील निगाहें मुआइना करतीं। ये गरीबों के घर की रकाबियाँ। ये ऊलजुलूल चित्र। बेसिरपैर नहीं तो नंगेधड़ंगे, ये ही दो अंजाम आज की कला में। आदमकाल की कुर्सी। अलग अलग रंग के बर्तन, सेट बनाने से मतलब नहीं। मेजपोश की जगह पत्तल, रबर के। कालीन की जगह घासफूस की चटाई, पर्दों की जगह चिड़ियों घोड़ों ऊँटों की लड़ियाँ, गत्ते के नाव-आकार बोल जिनमें अखरोट और फल। अनमिल रंगों में रंगा हुआ फ्रिज। खुला किचन कि नौकर हर समय सामने। बेंत और जूट के सोफ़े मूढ़े। दीवारें जैसे गोबर से लिपीं, गाँव की झोपड़िया बनने का शौक। मुस्कान होंठों की मरोर में ऐसे कि नहीं हम हँस थोड़े रहे हैं। ये बेकमरों का घर। ये रद्दी से ख़रीदा फ़र्नीचर। ऐसा घर मुफ़्त मिले तो न लूँ।

मगर ऐसा कुछ नहीं कहा बहू ने। उसने अपने ऑस्ट्रेलियन बेटे को मिस्ड कॉल दिया और उसका फ़ोन आते ही उसकी बुआ के घर की तारीफ़ सुनाने लगीं। कि एकदम अलग, जैसे घर की तस्वीरें किसी पत्रिका अखबार में छापें, जैसे उदयपुर में एक ज़िन्दा पेड़ के तने और डालों के इर्द गिर्द बनाये एक घर की छपी थीं। नहीं पेड़ नहीं है पर सब चीज़ लचकती बलखाती। तुम यंग के लिए ठीक, कूद के इस पार, झूल के उधर, बोलीं। मैं तो गिर पडूँगी इन टेढ़ी मेढ़ी सीटों पे, झूले पे। सब इतना नीचा है कि एकदम नीची नज़र रखो नहीं तो पैर को कहीं भी लगेगी टक्कर। वैसे डॉक्टर मना करते हैं। पीठ, घुटनों के लिए अच्छा नहीं है इतना नीचा बैठना और हर चीज़ के लिए झुकना। हाँ और क्या, बेटे की हाँ में हाँ मिलायी होगी, तुम्हारी दादी को भी आदत नहीं इतने नीचे सामान की। याद नहीं बरामदे के तखत के पायों को ईंट रखवा कर ऊँचा किया था उनके लिए? पर चेंज अच्छा लगता होगा। कह रहा है अबके एक वॉकर ला देगा आपके लिए, साथ रखिये, जब मन हो यूज़ करिए। ज़्यादा कलाकारी वाला फ़र्नीचर हो तो। सँभल कर चलती हैं न? गिरियेगा मत।

अरे नहीं, बेटी कह सकती तो कहती। यहाँ नीचा झूलता सामान नहीं गिराता, सीटियाँ गिराती हैं।

अरे बड़ा मज़ा है, माँ ने कहा, अभी भी घर को खिलौने की तरह उलट पुलट दिखाती और बहू घर को सख्त नज़रों से उलट पुलट जांचती।

आंवले की चटनी भी निकाल दो। लो पहले छाछ पियो। बेल शरबत लोगी? माली को कहीं मिल गए।

वाह ये सब यहाँ। गृहस्थी जमा दी आपने। मूली पराठे? वाह। बावर्ची अच्छा मिल गया। और घर चमक रहा है। बाई भी रख ली? तभी। हिन्दुस्तान में वो हफ़्ता हफ़्ता हूवर नहीं चलता। बहू ने तारीफ़ें कीं। अम्मा ने तुम्हारे घर को घर बना दिया।

अम्मा खूब खुश दिख रही हैं, बहू ने और तारीफ़ की, खूब खुश दीखती। आ गयी ननद अर्श से फ़र्श पे। बड़ा दंभ था कि अलग, मुक्त जीवन हमारा। अब तो हमारे जैसी हो गयी। लुढ़क गयी दरक गयी फिसल गयी चटक गयी।

रश्क इस रटपटिया जीवन तर्ज़ पे नहीं। भाभियों को वो जीवन नहीं चाहिए जो ननदें जी रही हैं। मगर ननदों को उनके चाहे जीवन से विलग हो गया देख अच्छा लगता है।

कौन जाने बहू ने ये सोचा या बस उसको ननद-भाभी के रस्मी रिश्ते में अटा दिया जाता है। रिश्तों की रस्म बन जाती है। काहिली में उन्हें उसी तरह बरता जाता है, सुना और देखा जाता है। उस खांचे के बाहर रिश्ता निकल गया क्या, ये जांच करने की कौन मशक्कत करे?

दिल डूबा डूबा बेटी का। ये वो सहर तो नहीं जिसकी आरज़ू लेकर, चले थे यार कि मिल जाएगी कहीं न कहीं।

आपकी साड़ी। होली पे लाये थे। फ़ॉल लगा दी है। अरे साड़ी आधी से ज़्यादा खोंसनी पड़ती है, तुम ले जाओ, तुम पहनो। क्यों अच्छी नहीं लगी? क्यों नहीं लगी? इत्र तो लगायेंगी। मिट्टी। चांदनी चौक गयी थी। चैक। इन्होने कहा है साइन कर दें। इस कागज़ पे भी। पैसा चाहिए? रख लीजिये। बेटियों से नहीं लेते। कब चलेंगी वापस? कान क्यों खोद

रही हैं? ठीक तो सुन रही हैं? आप कहीं मत जाया करिए, कुछ न कुछ गड़बड़ हो जाता है। मुझे भी ईएनटी स्पैशलिस्ट के पास जाना है, साथ चलेंगे।

बड़े क्या करता है कि आ नहीं सकता? माँ ने डाँटा।

बेटी दर्शक बनी देख रही है, सुन रही है। जैसे मंच को। ये हो रहा है नाटक या वो था जो हो चुका?

कि तभी घंटी फिर बजी। दरवाज़ा? चिड़िया? कुकर? माँ? दिल? फ़ोन? केके? कह दे आ जाओ, अभी, देखने दो सबको मेरे जीने का ढंग, आपकी दिखावटी नैतिकता नहीं यहाँ। आ गया होगा विशाखापटनम से।

माँ का फ़ोन था। हैलो। हैलो। माँ जी? नहीं मैं। अरे मैं रोज़ी बुआ। नमस्ते रोज़ी बुआ।

आ गयीं? हैलो। लम्बा निकल गयी थी अबके। हाँ हाँ आ जाओ। कभी भी। बेटी पता समझा देगी।

वही? हिजड़ा? बुआ? बहू ने पूछा। वो यहाँ भी आती है?

आएगी।

बेटी सुन रही है भाभी को सुनते। कोई मुश्किल नहीं है रोज़ी बुआ। माँ यहाँ हैं। अब ठीक हैं। हाँ दोनों ब्रिज क्रॉस करिए। बस-डिपो से सड़क उतरती है, आगे दुकानें हैं, लू मार्शे आपके बांयी तरफ़ हो। लू मार्शे। फ्रेंच है। सब बोलेंगे ल मार्ट या ल मार्श। उसके आगे गोल चौक। सीधे आइये।

आसान हो जाता है अगर परम्परा के दिए खाँचे में सोचें। उस हिसाब से बात ये ही बनेगी कि बेटी का मूड कुछ जुड़ा गया। हमारे यहाँ कोई रोक टोक मनाही नहीं। और देखो माँ की आवाज़ कैसी खुल गयी है। यहाँ निर्जीव नहीं पड़ी रहती।

उसे लगा रोज़ी ने रीबॉक को धता बतला दी। अब बोलो कौन सिकंदर?

सिर्फ़ माँ। किसी को ख़बर नहीं।

इन्हीं में से किसी दिन की बात। या कि रात की। एक और घंटी बजी।

सोती-जागती बेटी की आँख झटके से खुली। घंटी जैसी घंटी नहीं। पर कौन सी घंटी आजकल घंटी जैसी घंटी है? या अम्मा ने अपनी ईजाद की भाषा में इज़ाफा किया है, वो नीम अँधेरे में तकने लगी। माँ सो रही थी। पर उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। फिर हुई आवाज़।

खनक तिन पिन।

चूड़ी। माँ की कलाई में।

दो ठो चूड़ियाँ। उनमें झूलती दो तीन सेफ़्टी पिन। इन्होंने मुझे जगा दिया? बेटी ने तिरस्कार भाव से करवट फेर ली।

मगर। तुल आयीं चूड़ियाँ। जैसे उनमें बजने का जोश क्यों न खलके। या क्या माँ की चाल थी कि अब चूड़ियों का दांव खेलती हूँ ताकि तुम अलग सोओ और गहरी नींद?

रात ज़्यादा नहीं हुई थी। ज़्यादा रात अभी बाकी थी। दो चूड़ियाँ उसमें बजने लगीं। जैसे ही बेटी नींद में डुबकने को होती। महीन सी, कंचनी चमक वाली। माँ ने चेन, कंगन, सब उतार दिए थे पर जाने घरवालों की सलाह या सुशीला या किसी की या खुद अपने मन से या भूल से ये चूड़ियाँ नहीं उतारीं। जाने सारी घिरी खल्क़त से छुटकारा पाकर इन चूड़ियों ने भी अपना वजूद पा लिया कि बजने लगीं?

हज़ार और ध्वनियों से बेपरवाह बेटी और कुछेक प्रेमियों और एक बार एक पति के खर्राटों में नींद लेने से गुज़री बेटी, इन दो चूड़ियों से मात खाने लगी। माँ का उठना, चप्पल में पैर डालना, दरवाज़े का चूंऊऊऊ करते खुलना, बत्ती का भक से जल जाना, पानी का फ़ौवारा उछलना जगाए रखते ही थे, उनमें जा मिलीं ये दो चंचल चूड़ियाँ। दूसरी आवाजों को लगभग झेल रही थी, पर अब चटक गयी। यों ही नहीं गाया शायर ने इन कश्तियों का क्या है, अक्सर ये ही हुआ है, मझधार से निकल के, साहिल पे डूब जाएँ।

ये उनका बजना था या बतियाना? कि खिल्ली और षड्यंत्र? सो न जाए मिरगिल्ली। जैसे जानबूझकर अपने को इतना हल्का रखा है कि हल्की सी जुम्बिश पे बज पड़ें। ज़रा उछलें, ज़रा लपकें, ज़रा फिरें। नींद-हरण करें, रतजगा करायें। रात भर नाचें गायें। जितना बेटी तन सिकोड़ती और कान बंद करती उतनी ही चूड़ियाँ और बतरस में मटकतीं। माँ सोते सोते हाथ उठाती और कहीं रखती तो वो ऐसे चिहुंकतीं कि जैसे माँ ने जानबूझकर ज़ोरों से हाथ पटका है उन्हें खनकाने।

उनकी आपसी भिड़ंत, जिसे कोई और हल्की खनक कहेगा, बेटी के कानों में ज़िद्दी ज़िद्दी आती रही। कान में ऐन्टेना हों जो उनकी पिद्दी सी आवाज़ भी पकड़ रहे हैं। दो चूड़ियाँ रात भर ऐसी वाचाल हो गयीं कि शोर की परिभाषा और शान्त का न होने का पर्याय वो ही हो गयीं। शोर और शान्त का धीमे और तेज़ से क्या वास्ता? बड़ा बड़ी बेअसर हो जाएँ और ज़रा ज़ुरा कान फाड़। ख़लील जिबरान के धीमे स्वर। गुलिवर के लिलीपुट। हाथी की चींटी।

ये तक आ गया था बेटी के मन में उन नींद उड़ाती रातों में कि चूड़ियों के वेश में कोई दुष्टात्मा घुस आयी है उसे खलास करने। बड़ा चली थीं काम करने वाली आज़ाद पंछी बनने और औरतों के हक की लीडरी करने। तो कीजिये अब सरदारी। और गृहस्थ जीवन नहीं चाहिए था। मगर पाइए अब, जब उसके लायक नहीं रहीं। अब आप किसी के लायक नहीं रहेंगी। न घर की न घाट की न अकेले की न केके की न काम की न खेल की न जागे की न नींद की चूँकि नींद तो हर हालत में चाहिए और वो हम हर लेंगे और खनखन खनखन, खुसुरपुसुर खुसुर पुसुर। उनकी भाषा मैं नहीं जानती मगर कुछ तो शैतानी पका रही हैं। कभी तो लग जाता कि आपस में भिड़ के झकझक कर रही हैं — मैं तुमसे सुन्दर, तुम मुझसे निर्धन। न न, दोनों का उद्देश्य एक — मुझे सोने मत दो, कान में बजो। खी खी खिखी खनन खनन।

वाचाल चूड़ियों के साथ बेटी ने रात काटी और माँ के मन की उसमें घुसने लगी कि अलग सोना ही पड़ेगा, गेस्ट रूम में मैं चली ही जाऊँ, माँ को तो नहीं भेज सकती।

बेटी उठी तो बाकी बिस्तर पर विशाल देश की तरह फैलती माँ गायब थी पर दो चूड़ियों का शोर उसके कान में भर गया था। और नाक में कुचला लहसुन भी क्या इन दुष्ट चूड़ियों ने भर दिया है?

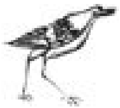

लहसुन की महक पे बेटी की आँख खुली और चूड़ियाँ अन्तर्मन में गूँजती रहीं। अम्मा बगल से गायब। ऐसा होने लगा था कि सुबह उसे नींद आ जाती और माँ खुद उठ के चल देतीं। वो कुछ असन्तुलित चलती कमरे से बाहर आती और बैल्कनी में माँ नज़र ऊपर करतीं और बुलातीं। चाय पास में, हाथ पौधों पर फेरती, या उनकी मिट्टी में गड़ाये।

हकबकाई सी बेटी हॉल में आई तो रोज़ी और तामझाम फैलाये माँ उसके साथ और लहसुन की ज़ोरदार लहरा मारती हवाएं।

अरररे, रोज़ी बुआ ने चेताया। गिर जाओगी बेबी।

उसका मुझे बेबी कहना मुझे नहीं पसन्द। माँ का चुपचाप उठ आना ठीक नहीं। चाय फिर बना दी? और लहसुन? दरवाज़ा भी खोल दिया? हवा इतनी तेज़ है। हर्राफ़ा की तरह घुसी आई है।

पता चला रोज़ी ने नुस्खा सुझाया है उभरते मस्सों तिलों के लिए, जो माँ को पसन्द नहीं आते। कि लहसुन मसल के उन पर लीप लो।

माँ हाथ और पैर फैलाये बैठी थी। जगह जगह लेप चुपटाये। लहसुन के कतरे उसकी त्वचा पर चिपके। माजमज्ज़ा उलट दी है और अन्दर की नलियाँ अन्तड़ियाँ खुल गयीं और उनमें खून साँस जान के कतरे नंग-धड़ंग खुले हैं।

बेटी को जंचा नहीं माँ का यूँ उघड़े बैठना।

देखो कैसे बैठी हैं बेबी तुम्हारी अम्मा, रोज़ी ने हँसी की। जैसे लड़कियाँ मेंहदी लगा के बेकार हुई बैठ जाती हैं।

लहसुन जला देता है न बेबी, रोज़ी ने समझाया। ये देखो बैंड-एड से दबा दिया। बास गयी।

कहीं नहीं। कैसी हैं आप? बेटी ने मुस्कराना चाहा और लहसुन के छिलके फ़र्श से बीन के किचन की तरफ़ मुड़ी।

उसे खुद पर गुस्सा आ रहा था कि ये सुबह सुबह मैं सो क्यों जाती हूँ और माँ चुपके से बिस्तर से खिसक क्यों आती है? रात को भी माँ ने खिसकना चालू कर दिया है कि उसकी हर साँस पर मैं जागूं नहीं। मैं ही अँधेरे में उसका कपड़ा या तन छू कर तसल्ली करने लगी हूँ।

माँ सोचती हैं मुझे जगह चाहिए। वो अलग खिसकती हैं कि मुझे जगह मिले। मैं उनके पीछे खिसकती हूँ कि ठीक तो? वो कोने पे पहुँच जाती हैं और मैं उनके पास और पूरा बिस्तर खाली। तभी उनकी नींद मुझसे पहले खुलने लगी है।

बाद में वो सोचती रही गार्ड ने फ़ोन किया होगा, क्या कहा होगा, कौन मिलने आई है, कि आया है, आने दें या क्या, और मैं सोती रही। माँ ने इंटरकॉम उठाया होगा। उसी से जागी हो शायद। ख़ैर क्यों न आये रोज़ी बुआ? और यहाँ तो वो नहीं चलता कि बाहर ही बाहर मिलो और निपटा दो।

वो फुस्स-चित्त बैठी थी बैल्कनी में और कनखियों से माँ और बुआ को देखा किये। शायद होली की बख्शीश अब लेने आई हो। कह न रही थी अम्मा कि कहीं लम्बा निकल गयी थी?

तो इस तरह रोज़ी का आना जाना चल निकला। जैसे कोई हवा चल निकले।

कभी भी घुस आये। हवा की तरह बजती। पूरे घर को बजाती। बुआ चली जाती तो भी भरी रहती और हर तरफ़ उसके निशान। कभी एक पौधा ले आई है। कभी एक गुच्छा धनिया। कभी पुरानी दिल्ली से पापड़, बड़ियाँ, अचार। घर में नयी महक भरते हुए। महक में अपनी बास बसाते हुए।

क्या लगाती हैं उसने माँ से पूछा। हाँ कोई तेज़ इत्र है। उंहू रोटी में भी इत्र की महक। और आपमें लहसुन की।

कहीं नहीं। अभी बाल धोये हैं। हर्बल शैम्पू से। मुझे तो उसकी खुशबू आ रही है।

तो सर पे तौलिया क्यों लपेटे हैं? धूप है, खुले में बैठ के बाल सुखाइए, बेटी ने हिदायत दी।

न, माँ ने सयाने स्वर में जवाब दिया। रोज़ी ने बताया है कि कुछ देर तौलिया में बाँध कर बाल सुखाने चाहिए। नहीं तो नेचुरल चिकनाहट हवा धूप के संग उड़ जाती है और रूखापन आ जाता है।

बाल काले रंगने को नहीं कहा? बेटी का इरादा बदतमीज़ी का नहीं था पर ये क्या रोज़ी माँ में त्वचा बाल मस्सा छेड़े रहती है?

मैं चाहूँगी तो वो भी सुझाएगी। वो ब्यूटी पार्लर में काम कर चुकी है इसलिए ये नुस्खे जानती है। लो मुंगौड़ी चखो। गरम गरम। अबके नरम हैं। कढ़ी में डाल के पकाना नहीं चाहिए, कड़ी हो जाती हैं। बस उतारते वक्त डाल दो।

अम्मा को रोज़ी के मिलाये लेप में वो हर सुबह देखती — आँवला, भृंगराज, ब्राह्मी और एक चम्मच मेंहदी। इसको उबाल, पीस, घोल, रोज़ी ने शीशी में रख दिया है, माँ रोज़ फ्रिज से निकाल कर उँगलियों की पोरों से बाल की जड़ों में रगड़ती है, फिर टूटते बाल खींच के लपेटा गुच्छा बेटी को पकड़ाती है लो फेंक दो और कहती है देखो कल से कम टूटे हैं। उसके बाद नीम्बू के छिलके से नाख़ून से नीला रंग रगड़ती रहती है और बेटी को हड़काती है अभी गूदा है फेंकना नहीं और मेज़ तिपाई से नीले सड़ते घिसे नीम्बू रात दिन झाँकते हैं।

जीवन की नयी करवट। उई उई करती माँ और सँभालती लताड़ती रोज़ी।

ऐ है ऐसे करती हो बाजी जैसे छुईमुई हो।

अरे लगती है चोट। देखो। नीला पड़ गया। माँ हँसे जाएँ।

ये तो आप कहीं टकराई हो।

नहीं बस दरवाज़े से धम्म से लग कर उठी।

उसे ही टकराना कहते हैं। हौ बाजी। लग रहा है पिटाई हुई है।

अरे सब जगह पिटाई हुई है। पंखे की हवा भी मारती है।

सुना बेबी, रोज़ी ने बेटी को देख कहा। आपकी अम्मा सोलह की हो गयी हैं। हवा भी इनकी कमसिन चमड़ी पे चोट करती है। सुना बेबी।

ज़रूर सुना। कि माँजी बाजी हो चली हैं। मैं थी कहाँ? मैं हूँ कहाँ? कुछ से कुछ होती भाषा और मुझे कानोंकान ख़बर नहीं? माँजी बाजी कैसे हो सकती है। अब मैं भी अम्मा से छम्मा करूँ?

अल्लसुबह बोरिया लिए आ गयी। बेटी आँखें मलती निकली तो बैल्कनी और कमरे के बीच आज कपड़ों की थानें बिछी पड़ी थीं। रोज़ी सामने पर माँ किधर? देखा मिस्र का

तूतनखामन फ़ैरो बनी सफ़ेद और सुनहले थान में माँ लिपटी बैठीं हैं। नन्हा सा सिर बाहर। मिस्र की स्फिन्क्स का पुतला।

माँ का ये रूप! हतप्रभ।

ये क्या? बेटी ने पूछा। थान में क्यों छिपी हैं?

क्योंकि बाजी बकरकना, रोज़ी ने ठहाका दिया। कान छिपा रही हैं।

जो मज़ाक बेटी को फूहड़ लगा। ज़्यादा फ्री हो रही है।

पता चला रोज़ी ने माँ के आये दिन छोटाते कद और उसपे साड़ी पहनने की झंझट कि डबल तह कमर में ठूँसो, पुराना होल्डौल बन जाओ, पेटीकोट की हेम भी रोज़ छोटा करने को मोड़ो, इन सबसे निजात दिलाने का तोड़ सुझाया है। कि गाउन पहनो। मैं बनवाऊँगी।

दर्ज़ी से। कोई रज़ा टेलर मास्टर।

अब नाईटी में रात दिन, बेटी ने कहा? अस्तव्यस्त हँस के। हँसी, क्योंकि उसके यहाँ मध्यवर्गीय चिन्ता कि दूसरों के आगे ऐसे दिखो वैसे दिखो का आडम्बर नहीं, पर अस्तव्यस्त, क्योंकि उसके दायरे के बाहर निर्णय लिए जा रहे हैं। उसकी राय भी नहीं चाहिए, उसे सोया छोड़ फिर फिर मनमानी। माँ को आये दिन एक नया साम्राज्य बिछाए सुबहों में पाने का भी अभ्यस्त होना पड़ेगा।

(अमरीका से लौटकर सिड भी सुबह सुबह जॉगिंग के बाद टपक लिया करेगा और केके भी कभी उसके इंकार की परवाह किये बगैर पहुँच लेगा और पहुँचता रहेगा।)

नाइटी नहीं बेबी, गाउन।

ड्रेसिंग गाउन। बेटी ने कहा जैसे वो भी वाहियात है।

ईवनिंग गाउन, डे गाउन। देखना, फिर तुम भी चाहोगी।

जेबें भी हों कि रुमाल रख लूँ, माँ ने फ़रमाइश की।

हाँ बेशक। रुमाल, इलायची, कलम, रोज़ी ने लिस्ट बढ़ाई।

हाथी घोड़ा पालकी।

सुन्दर सी कढ़ाई।

भड़ाका नहीं।

कपड़ा चुना जा रहा था कि भड़काऊ न हो, सोबर रंग और बारीक किनारी हो या हल्की सी कढ़ाई।

तुम भी बनवाओगी बेबी जब देखोगी इन्हें महारानी विक्टोरिया बने। और बाथरूम जाने में भी आराम। पैरों के बीच फसड़ फसड़ फँसता कपड़ा नहीं।

कुछ भी बोल देती है। क्वीन विक्टोरिया, कनाबकर या कुछ, अब ये।

जो हो, माँ का लिबास तय हो गया। रोज़ी कपड़े पे डिज़ाइन पेंसिल से छाप के काट लेती और रज़ा टेलर मास्टर से बनवाने ले जाती। बेटी के घर में कैंची धागे सुइयाँ इंच टेप कभी बैल्कनी पर मिलते, कभी झूले पर, कभी किसी मेज़ पर, कभी स्टडी की मेज़ पर भी।

क्योंकि बातों से बातें निकलती हैं, और थानों से कटपीस, जिन्हें माँ ने कहा फेंको मत, छोटी थैलियाँ, पॉकेट वाले झोले, रुमाल, गए बचपन के रूईदार गुड्डे गुड़िया तोते बन्दर भी बनने लगेंगे, जिनके मोतियों के नाक नक्श होंगे। माचिस और तीलियों के घर गाड़ी बनेंगे

और बोतलों के ढक्कनों के पहिये। माली और बाई के बच्चों को खिलौने मिले, बेटी और घरवालों को कुछ थैले थैलियाँ, बाकी सब रोज़ी-मुनाफ़ा वही जाने।

पर बातों से बात बढ़ी तो ये कि सोसाइटी वालों को भी ये छूत की बीमारी लग गयी और वो भी अपना अट्टसट्ट माँ और रोज़ी को पकड़ाने पहुँच जाते और एवज में कुछ पकवान, कुछ हस्त शिल्प का नमूना ले के खुश खुश चले जाते।

सच कहें तो कचड़ा कचड़ा नहीं रहा। क्योंकि सबको मना हो गया बिना माँ और रोज़ी की हामी के कुछ भी फेंकना। डब्बियाँ शीशियाँ कतरनें टूटे कप प्लेट बटन छिलके लक्कड़ पत्थर पंख सिक्के सब सँभाले जाते और जियाये जाते। जानवर बनते और न जाने क्या क्या।

माँ के बालों से भी गधे की पूँछ बनी। बाल ट्रिम किये गए थे क्योंकि नहीं तो स्प्लिट एॅन्ड होते हैं तो बाल सुन्दर घने और लम्बे कैसे होंगे?

और माँ सुन्दर कढ़े अबा या गाउन, जो चाहो कहो, पहनने लगी। घर में फिरती तो हवा का लहरा चलता फिरता लगता। आगे चलकर वो नीचे भी उतरने लगी और कभी तो पड़ोसियों के साथ लॉन में बैठ जाती पर सबसे अच्छा उसे रोज़ी के संग सड़क पार ग्रीन बेल्ट के मध्यकालीन मज़ार की सीढ़ियों पर बैठने में लगता।

बेटी को याद है रोज़ी बुआ त्योहारों पे आती थी। इत्तेफाक से वो उसी वक्त माँ को देखने बड़े के घर गयी होती तो मिल लेती। माँ के लिए लॉन में कुर्सी लग जाती और लॉन के पीछे वाले फाटक से, छोटा वाला, गराज-साइड का, उससे रोज़ी आती, हाथ जोड़ती, बेटी को देख बिलफेल उसके सर पर हाथ फेरती और अरे बेबी आई है, जीती रहो, कब आयी, कुछ कहती।

तब बेटी को बेबी बुरा नहीं लगता।

हट्टीकट्टी बुआ रंगीन साड़ी या सलवार कुरता या कभी गरारा शरारा टाइप कुछ पहनती। उन पर सलमे सितारे गोटे ज़रूर होते, ब्लाउज़ पे या ओढ़नी पे। बेल बूटे कढ़े होते। उसका ब्रासियर पुरानी फ़िल्मों की हीरोइनों जैसा, नुकीली पहाड़ियों वाला था। पर बुआ नाचती गाती नहीं थी, बल्कि दिखावे का कोई तमाशा पेशा नहीं लगता उसका। स्वर कुछ भारी पर सो भी जैसा बहुत सी औरतों का होता है। माँ के साथ तहज़ीब से बैठती। माँ बात करतीं, नेग देतीं, नाश्ता भी और इतना ही बेटी को याद है। कभी कभी के घटने वाले दृश्य में याद रखने जैसी क्या बात हो सकती है?

मगर तब थी रोज़ी अब है रोज़। काबुलीवाला की तरह बड़ा सा झोला लेकर आती है। वाकई में बेबी होती तो पूछती काबुलीवाले तेरी झोली में क्या है और हाथी उसमें से

निकलता।
हाथी नहीं, मूर्ति निकली थी, ये बेटी को बहुत दिनों बाद पता चला, जब सीढ़ी पर चढ़के वो एकदम ऊपर की शेल्फ में कोई किताब तलाश रही थी। ये? यहाँ? किसने यहाँ चढ़ा दी?
रोज़ी ने, माँ का टका सा जवाब।

OceanofPDF.com

रोज़मर्रा घटते पर पर्दा सा डाल देता है। घटा तब नज़र आता है जब वो काफ़ी घट चुका होता है। छोटी मोटी प्रतिक्रिया की बेटी ने, मगर अधिकतर ये ही उसके मन में आता कि बेचारी माँ, कैसी टूटी हारी पड़ी हुई थी, उस पुराने चालचलन वाले घर में, मैं नहीं भूली सिकुड़ी रखने वाली और उसके बाद खोने देने वाली और ये तो कहो कुछ अनर्थ नहीं हुआ वर्ना सब का जीना हमेशा को शापित हो जाता। यहाँ सब शान्त और ठीक और कीमती पल ये माँ बेटी के और ख़ुशी है कि माँ ठीक हो रही है, खुश हो रही है, रंगीन छड़ी ठकठकाती, धूप के संग पूरे में उड़ फिर रही है, और ये आज़ादी से साँस लेने वाला सहन है। जियो माँ जियो अपने मन से, बेटी के रोम रोम से फूटता।

जिस पर एक और कहानी याद आ सकती है, याद आये या नहीं। एक थे जिन्हें पेड़ बहुत पसन्द थे और वो उसी की बखानते रहते कि कैसे उगता है खिलता है लहलहाता है और कैसे तो वे सुबह शाम उससे बात करते और इसीलिए उन्होंने अकेलापन तो जाना ही नहीं। सेम्हल खुश हो गया और उनके आसपास टप टप टपकने लगा। बड़े बड़े फूल उसके पट पट गिरने लगे। गाड़ी उनकी नीचे खड़ी और उसके इर्द गिर्द पक्का ड्राइववे। मार सफ़ाई का जंजाल खड़ा हो गया। कौन अब आव देखे या ताव, बस कटवा डाला पेड़ उन्होंने जिसे वो जीजान से चाहते और जिसकी कहते न अघाते।

या उनकी कहानी याद आ सकती है, आये तो, जो अमरीका सा शर्मनाक देश कोई नहीं मानते, पर ज़रा से मौके पे हगत चले गए कि पुचकार के बुलाये तो क्यों न जाएँ?

कहानी याद कर रहे हों, अगर कर रहे हैं, तो उनकी भी है जो अपने आप को लेखिका कहतीं। शहरों की भूरिभूरि बुराई पर उनके जीवन की धुरी। मैं तो निकल जाऊँगी, मुझे कुछ नहीं चाहिए, बस मेरा कलम, कॉपी, दो किताब, और प्रकृति। निकल गयीं इन्हें लेकर किसी जंगल के डाकबंगले में अपना उपन्यास लिखने। सुहानी पहाड़ी पर बंगला, हवाघर सा कमरा, आकाश में टंगा। खोला कलम कागज़, बैठ गयीं कि अब तो नयी जान आएगी, जान ही जान। आयीं। नयी जान ही जान। क्योंकि हवाघर में जहाँ हवा बेधड़क आती जाती है वहाँ हवा के संग हर कुछ आने जाने लगता है। शुरू तो शुरू की बेला से होती है। लेखिका विभोर मन अपना आदर्श मुजस्समा खिलता खुलता देखा कियें। हर हवाई झोंके के साथ पत्ते डंडी धेले किरचें गुलेल माफ़िक अन्दर। वाह जंगल, वाह प्रकृति, उनका कलम सुखलम जियलम। मगर ये वो फ़ौरन न जान पायीं कि प्रकृति मरी वस्तु नहीं, हवाघर ताबूत नहीं। यहाँ तो सब ज़िन्दा। और जो नहीं वो लहका पा जी उठे। जैसे लाश नया पौधा उगाये। स्मृति अनजियी कहानी उठाये। आदि। इत्यादि। प्रेरणा से प्रेरित लेखिका को न आँखों पे हो विश्वास, न कानों पे, न अपने कूढ़ मगज पे कि अब तो जो है वही ज़िन्दा है। जिसे वो मिट्टी का लोंदा समझ रही हैं कोई कीड़ा है जो अचानक दौड़ने लगा। पत्ता पंखों वाला जीव

निकला। टहनी तक, टहनियों को जोड़के बनी छोटे बच्चे की पहली ड्राइंग सा, एकदम से दीवार पर पलट कर चल दिया। और तो और ऊपर छत में छुपम छुपाई खेलते चूहों ने ऊपर से ही कोरा कागज़ देख अपने लिखे से भर दिया छपक्क। लेखिका को काटो तो खून नहीं। हवा रह गयी, ऊपर की ऊपर, नीचे की नीचे। फड़कती ज़िन्दगाती फिज़ा में मरीं तो वही, अगर कोई। प्रकृति से प्यार गया तेल बेचने, और शहर से नफ़रत की याद यों तड़पी जैसे नफ़रत प्यार का पर्याय।

मगर इस सब का इस गाथा कथा से क्या वास्ता? बेटी तो हर तरह से माँ का जीवन संवार रही है। किसी के आने जाने पर मनाही नहीं कर रही। अलग तरतीब का खाना ओढ़ना देख मुस्कुरा रही है। बैल्कनी पे जंगल उग आने दे रही है। बाद में केके तक को, इजाज़त बग़ैर, घुसने देगी, जब वो घर से बाहर गयी हो और लौटेगी तो पायेगी उसे माँ और रोज़ी के साथ चुहल करते। रोज़ी तो आती ही है मस्ती से और इससे बेटी को क्या कि वो ये है कि वो। उसे माँ के पाँव के नाख़ून काटते पा उसे ज़रूर अटपटा लगा, लेशमात्र, पर सिर्फ़ इसलिए कि अरे मुझसे भी तो कह सकती थीं। ये दोनों रम जाती हैं जिस दम वो कहीं और मसरूफ़ हो। कुछ असमंजस भी हुआ कि क्या माँ को इतना फ़्री हो जाना चाहिए जस्ट बिकॉज़ फ़्री की सेविका मिल गयी है? मगर।

और आगे तो सब मगर ही था।

हाँ, माँ निकल कर अपनी मूर्ति देने जाएँ, ये कुछ ग़लत सी बात। और रोज़ी भी कहीं जाने की जल्दी में माँ से नुक्कड़ पे मिले और वहीं से उन्हें वापिस रवाना कर दे कि वोही तो है बड़े का घर, जिसके फाटक को माँ मिस कर दें और अगले पे बढ़ लें और फिर तो निरे अगले ही अगले। ऐसी भी क्या पड़ी मूर्ति हटाने की? और छिपाने की? उसे के.एम. मुंशी की 'जय सोमनाथ' की ज़रूरत पड़ी कि कहाँ है, जिसलिए वो सीढ़ी से किताबों की अलमारी के ऊपर वाले खानों को देखने चढ़ी, और हुई झंझान क्योंकि मुंशी के आगे गायब हुई मूर्ति रखी थी। बचपन वाली। जो वो चाहती थी और बड़े ने मना कर दिया था।

मैंने चोरी की, बेटी चकराई? चिल्लाई 'अम्मा'।

सब चोरों की तरह उसके हाथ में मूर्ति को देखें। वर्ना नीचे से न वो, न मुंशी नज़र आते थे।

मैंने वहाँ रखी, रोज़ी बोली।

मेरे कहने पर, माँ बोली। उन्होंने हाथ बढ़ाया। रोज़ी ने मूर्ति ले के सामने रख दी।

दोनों उसे निहारते हुए। एक बुत के तीन विस्तार।

बेटी त्रिमूर्ति को दूर से देखती हुई। दूरी दूरी से नहीं दृष्टि से आती है और जिगर मन फ़िकर से। वो कब से चाहती थी, उसी को दे देतीं। आ भी गयी है मेरे ही घर पर मेरी मर्ज़ी और जानकारी से नहीं।

ये मर्ज़ी और जानकारी हैं जो कभी कभी उसमें उखड़ा उखड़ा भाव जगा देते हैं, वर्ना उसे किसी बात से गुरेज़ नहीं।

हवा हवा हवा चली।

हवा *बहुरुपिया है। स्मृति दर्द इच्छा यक़ीन जलवा हसीन कल्पना अम्बरीन।*

एक झोंका और पृथ्वी घूमी। बीज अखुआया और पेड़ की तरफ़ चढ़ा। पक्षियों के गोल हरी दूब पर उतर गए और अपने को कमल का फूल समझने लगे, दूब को पानी। इस तरह पानी का दूब-हरा हो जाना। हवा लायी रात को रात में। सूरज को ले गयी बरसात की ओट में। हवा ने गुदगुदाया कि सूरज और ओट हुआ, बादल हँसी से लोटपोट होके मोटे हो गए और बरसात बन के टूटे। और ये माँ-समय हो गया कि हर झोंके पे उई उई करे, खुश हो के हवा से बनते निशानों को देखे, दर्द पे जुनून सा आँखों में चढ़े, तन पे साँस और जान की फुर्कियाँ लुढ़कें।

कोई सोचता नहीं पर सोचें तो सोचेंगे कि हवा तन के भीतर के द्रव को छेड़ दे तो क्या नहीं होता। विमान 27 हज़ार फीट की ऊँचाई से जब 7 हज़ार पे ढुलक आता है तो हवा कान पे ढक्कन लगा देती है। हर जुम्बिश पर ढक्कन को हल्का सा हिलाती है कि थोड़ी हवा पीछे घुस जाए और अगले झटके पे धीमे धीमे दर्द की सीटी देती निकले। कभी देर तक ढक्कन लगाये रखती है कि निकलने का रास्ता न पाए, तब सीटी अन्दर ही अन्दर मार ऊधम मचाती है, कहीं कान से नीचे कूदाफांदी करती, कहीं गाल में नस बन फडफ़ड़ाती, कहीं आँखों के पपोटों के पीछे छुक छुक चलती, कहीं भवों के नीचे पंख बन फड़ फड़ करती। डर के डॉक्टर हकीम वैद्य बुलाओ जो बताते हैं द्रव का सन्तुलन गड़बड़ाया है। मगर गड़बड़ाया किसने अगर हवा ने नहीं? सदियों से स्थिर द्रव ठोस जमा नहीं रह सकता। हवा उसे हिला देती है, उसकी मुर्दानि हिला देती है और फिर वो नन्ही नन्ही फुरकें मारने लगता है। स्मृति कल्पना दर्द भर्त्सना फिरते हैं जब माँ हवा का कतरा बन सारे में फिरती है?

तन भी घर है। हवा के जो कारनामे घर में, वही तन में। हवा की राह में जो आता है उसे लाँघ कर कि घेरकर पार करने में वो कहीं टकराती है, कहीं सुरंग बना के सीटी बजाती है, कहीं और ऊधम करती है। अटक मटक बलखाएगी।

खिड़कियों के खुलने बंद होने पे हवा की सिम्त बदलती है और नए नए अन्दाज़ से हवाएँ नए नए राग छेड़ देती हैं। दीवारें वाद्य बनके बजती हैं जैसे हम्पी में।

तो कथा अब बेटी के घर के आसपास आ जुटी। जो यहाँ आ जाए वो कलम को रास आ जाए। पर बड़े के फोन आते, वे नहीं। तो बड़े पर कैसे जाए कलम?

वो ऐसे। पुराना रिवाज़ है परिवार के मामलों का कि बड़े बेटे के पास सब आते हैं। मगर इसका मतलब सब नहीं भाँपते। मतलब कि जो जहाँ मिले बड़े से, वो ही आया गया है उनसे मिलने। जैसे तहसीलों से दौरे से लौटते में कोई दरोगा, टाइप बाबू, कोई पंचायत बाबू बड़े सरकार को 'कुछ घंटे हमारे यहाँ रुक लीजिये और भोजन नाश्ता करिए' के लिए तैयार कर लेता तो बड़े नहीं उसके पास गए होते, वो ही अभी भी बड़े के पास गया होता और हाथ बाँधे, अनुगृहीत मुस्कान लपेटे सत्कार कर रहा होता।

बड़े के संग रहने वालों की कहें तो वो भी इसी किस्म की बात। बड़े के संग रहने वाले, जहाँ भी जाएँ, जितने भी अरसे को, बड़े के संग ही रहते हैं और अवकाश पूरा करके लौट आते हैं। अम्मा उन्हीं के संग रह रही है, रह कहीं भी रही हो। उसके पैसे का बंदोबस्त, उसकी देखरेख का, उसके जीवन मरण का उन्हीं का ज़िम्मा है, कहा जाए या नहीं, सोचा जाए या नहीं।

तो बड़े पर कलम अभी भी चल सकती है क्योंकि जहाँ हो परिवार, वृद्धा माँ, दरवाज़ा, बड़े होंगे ही होंगे चाहे हों या न हों। दीवारों को साथ जोत के दरवाज़ा, दूसरे मकान, पोस्ट-रिटायरमेंट फ़्लैट, में चला आया है। अलग दीखता मगर वही। और माँ अभी वहाँ नहीं दिखती मगर है वहीं। छोटी मोटी यात्रा पर निकली हुई जैसे। जहाँ बड़े फोन करके उसकी खोज ख़बर रखते।

आया फ़ोन बड़े का।

कम बड़े बेटे हैं जिन्हें घरवालों से बात करनी आती है। अगर हाल चाल लेना, दिल की कहना, अन्तरंग बातों पे ख़ुस फुस करने को बात करना कहा जाए। आदेश देना, तरीके सुझाना और ये नहीं तो छेड़छाड़ करना, इस तरह बड़े बेटे बतियाते हैं। बाप की सख्त शख्सियत पहने हुए, चाहे दिल अपना हो और नर्म। बड़े की आवाज़ बदतमीज़ अकड़ू व्यंगाती चिन्ताती इधर उधर की करती। क्योंकि बड़े बेटों को आता कहाँ है सीधे सादे प्रेम के दो लफ्ज़ बोलना।

(बाहर वालों से बात की बात अलग है। वहाँ राजनैतिक बहसें, कविता शायरी फ़िल्में और एक दूसरे से एक दूसरे का साझा चलता है।)

अम्मा, वो पापा की गाड़ी का क्या नम्बर था?

पापा की गाड़ी? माँ फ़ोन पकड़े झूलने लगीं। झूले पर।

अरे वही जो फतेहपुर में ली थी।

हाँ, फतेहपुर में ली थी।

उसका नम्बर क्या था?

गुलाबी फ़िएट थी। अब तो देखने को नहीं मिलती।

मैं नम्बर पूछ रहा हूँ।

उसी में ड्राइव करके लखनऊ जाते गौतम साब से मिलने। उनकी लड़की का भी क्या खूब नाम था। एक चीज़।

अम्मा मैं नम्बर पूछ रहा हूँ।

उससे क्या? कानपूर भी गए थे। स्वरुप नगर। तुम्हे कुत्ते ने काट लिया था। मोटे मोटे इंजेक्शन लगे थे। पर पालतू कुत्ता था।

उससे क्या? नम्बर याद है?

नाम था अड़गड़ानन्द।

कुत्ते का? बड़े हँस पड़े।

नहीं जी, जिनका कुत्ता था उनका।

अम्मा मैं फ़िएट का नम्बर पूछ रहा हूँ।

अरे वो मुझे क्यों याद रहे?

और अड़गड़ानन्द क्यों याद रहें?

अरे तुम्हे काटा था।

उन्होंने?

पता नहीं हैं अभी कि गए? भले आदमी थे।

काटते थे तब भी?

ऐ बाज़ नहीं आओगे। नम्बर पता करो। जल निगम में थे। एक बार चलें।

कब आयेंगी? तब तो चलें।

बड़े की बात इसी पर आने के लिए होती। कि मना ली छुट्टी, वापस आइये। बोले घर सेट हो गया है। बड़े बेडरूम में आप और डी रह सकती हैं, जो मियाँ बीवी का एक दूसरे को पुकारने का नाम था, शुरू में डार्लिंग का संक्षेप, बाद में डफ़र का। नहीं तो साइड का कमरा भी ठीक है, ज़रा ही छोटा और दोनों कमरे बाथरूम से जुड़े हैं, दोनों ओर दरवाज़ा।

क्यों, बहू तो कह रही थी अभी सब बक्से नहीं खोले हैं, बस खास खास चीजें, और उसमें भी आधी चीजें नहीं मिल रही हैं, कि सब जगह धूल बैठी है और बहू कह रही थी न सोने का न खाने का वक्त है तुम्हारा, नहाते भी नहीं हो और बनियान पहने घर के बाहर निकल आते हो, रिटायरमेंट का ये मतलब है, और शुगर चैक कराया, जिस पर बड़े बोले ओके बाय बाय और फ़ोन रख दिया।

अपनी बात भी सहज तरह से बड़े को नहीं आती करनी। बस फ़ोन करते हैं क्योंकि कचोट रहती है कि नए फ़्लैट में चीजें अट रही हैं पर माँ फ़िट नहीं हुई हैं और पहले सा न बड़ा है न पहले से सेवक सेविकाएँ, तो उन्हें कैसा लगेगा पर ख़ैर तब तक बहन के संग चेंज से मन बहलाने दो, ऊलजुलूल जीवन शैली देख लें, वो भी वापसी के लिए मन चंगा कर देगा। कुछ कायदे का खिला पिला रही हैं, अच्छा है, और बहन की झोलाधारी ऊलजलूल मित्र मंडली को भी कोई कायदे की दीख रही हैं तो वो भी बढ़िया। सोसाइटी वाले भी जानेंगे उसके आगे पीछे नेक परिवार है, अच्छा है ना।

बड़े को कहाँ से भनक पड़े कि आजकल बहन की झोलाधारी टोली टली पड़ी थी। अम्मा की ही मंडली में एक झोलाधारी शामिल है। रोज़ी। पहली बार दरवाज़ा खोला, सामने बड़ा थैला लिए रोज़ी बुआ और बगल में गार्ड, जिज्ञासु, किंचित असहज। अब नहीं आता। पर और सारे आते हैं कचड़ा लेकर और मज़े से देखते हैं उनसे बनी चीज़ें। जिनसे रोज़ी दुकान खोल लेगी और ऑड्ज़ एॅन्ड एॅन्ड्ज़ नाम से इनका व्यापार करेगी। और गर्मी

की शामों में आकर माँ को नीचे उतारेगी और दोनों मज़ार पर बैठी दिखेंगी कभी तो बस चुप बैठी, किसी नयी क़बूलियत में। कचड़ा कबूल, हिजड़ा कबूल, बड़े क्या, कोई भी क्या जाने, जीवन में क्या क्या कबूल?

उड़ते हुए रुई के फाये और डंठल कतरन से गनगनाता घर। हवा बहुत चल रही थी और ईंट से ईंट बज उठी, अलग मुहावरा बनाते।

अकेला वाला घर बेटी के काम को समझ गया था। आदर से चुप बैठ रहता। बेटी देर तक पन्ना खोल झुकी रहती। कार्य देवी की उपासना में। किसी भी पल देवी प्रसन्न हो जातीं और धीरे से सरकी आतीं और उसके पास बैठ जातीं। अपने आप कलम उठ जाता और पन्ने पर चलने लगता। लेख, कहानी, किताब बनने लगती।

आजकल घर ढिठा गया है। हर ईंट अँगड़ाई लेती है। बातें चीतें होती हैं। कोई ज़्यादा हुड़दंगी आ जाए तो दीवारें और चुहल में। आनेवाले संग खेलती हैं। उसकी हल्की सी टीप पर दीवार बज उठती। जैसे उसमें हवा फूँक दी। माँ के छूने पर तो निस्बतन धीमे से मगर जब रोज़ी बुआ का लहीम शहीम तन इधर उधर लहराता तो पता ही नहीं चलता किधर से खनक उठ के किधर बजी। गप्पबाज़ी में शिरकत करते खम्बे चौखट भी टुनटुना उठते। रोज़ी भी न, कभी हाथ ठोंकती, कभी पिछाड़ा चिपका के खुजलाती, और कभी माथा कहीं लगा के ठनक देती, जैसे खूब पता है मेरे छूने से दीवारें झंकृत होंगी।

माँ भी आज़माती है। उँगलियों की टीप पे सप्तस्वर निकलते हैं। पैर की थाप से पंचताल बजता है। इस ईंट में जलतरंग, उसमें तबला, इस खम्बे से वीणा, उससे मृदंगम, इन पायों से टकराव तो घटम, झूले की ज़ंजीर खड़काओ तो घंटी घंटा, स्लाइडिंग दरवाज़ा खींचो तो शहनाई, धूल फूँको तो शंख, गमला हिलाओ तो डमरू।

कार्य देवी झाँकती है। डर जाती है। यहाँ तो बड़ा मौजोगुल है। हम तो वीरानों की देवी हैं। पतली गली से खिसक लेती है।

माँ ने कहा काम करती नहीं, नींद लेती नहीं, आँखों के नीचे काला देखो, तुम्ही गेस्ट रूम में सोना शुरू कर दो।

माँ की मानकर नहीं, गर्मी से आजिज़ आकर बेटी मान गयी।

अम्मा कहती अब उतनी गर्मी नहीं रही, बरसात की तैयारी है। वो खिड़कियाँ खोल के खुश, पर बेटी नहीं। तो ए.सी. चलाकर मेहमान कमरे में लेटी। आखिर चूड़ियाँ जीत गयीं। बेटी को बाहर किया। उसने रोज़ी और अम्मा ऑड्ज़ एॅन्ड एॅन्ड्ज़ तामझाम खिसकाया और अपने दुखते अंग और थके स्नायु मेहमान पलंग पर ढेरा दिए।

गेस्टरूम में चूड़ियाँ नहीं बोलेंगी। टनटनाने वाला बाँस का मोबाइल जो वो केके के संग बाली से लायी थी, उसे उसने उतार के, रोज़ी के टिन से पंख पंख काट के, धागों पे लटकाए मोबाइलों के पास लपेट कर रख दिया कि न बजे।

बीच बीच में चैक कर आऊँगी। वैसे अम्मा अब ठीक है। मेरे संग रहकर निखर आई है। घूमती है खाती पीती है हँसती है खूब बोलती है।

गर्मी खिसक ली तो एक दिन रात हुई। घंटों की वर्षा के बाद आसमान खुला था। चाँद बादलों में उलझते सुलझते माँ के गमलों के ऊपर झुके पेड़ की फुनगी पर बैठ गया। माँ कुर्सी पर बैठी थी, उसी तरफ़ देखती और वो बातें करने लगी। अकेली। या चाँद से।

बेटी की इच्छा हुई आगे बढ़ के चुप्पा चुप्पा सुने। पर नहीं उठी।

उठी तो कॉफ़ी की महक पर। आँखें मलती वो निकली तो महक उड़ाता कॉफ़ी कप दिखा और उसे थामे केके का हाथ। ये कहाँ आ गयी मैं, बेटी ने इधर उधर झाँका। जैसे रात अपने घर सोई और उठी कहीं और है। नींद के डकैत ने खाट सहित उसे उठा के कहीं और रख दिया। पर नहीं, ये अपना ही घर है, मनमाने ढंगों वाला।

अब तक चल गया। केके की लम्बी यात्रायें थीं। फ़ोन पर टालमटोल चलती। आज नहीं, मैं बताऊँगी, माँ की बात नहीं, कोई न कोई पहुँचा रहता है, सब एक दूसरे से ऑकवर्ड हुए रहें, किसी को मज़ा न आये, क्या

फ़ायदा।

क्यों मना कर रही है, बेटी क्या कहे। क्या करोगे आकर, बेटी पूछ नहीं पाती। पहले तुम अपना लैपटॉप लेकर काम करते, मैं अपना करती। सब तरफ़ शान्त। किसी को आना नहीं। मिलकर कुछ पका लेते, खा लेते।

बीच बाच में सुस्ता लेते, लिपट चिपट कर लेते। शाम औरों को कभी बुला लेते। केके जाना होता चला जाता, रहना होता रह जाता। एक्स्ट्रा चाभी थी, कभी एअरपोर्ट या कहीं जल्दी निकलना है तो वो सोती रहती वो निकल लेता।

पर अभी इनमें से कुछ भी फ़िट नहीं होता।

अरे शक्ल देखेंगे। एक दूसरे को देख के ललचायेंगे।

बेटी को उसकी बात अश्लील लगी। ये अकेले की बातें हैं, न कि भरी सभा में ज़ाहिर करने की।

क्या मैं जो हूँ बस अकेले में हूँ? भरी सभा में वही जो दूसरे चाहते हैं? तो बदला क्या? पर ये सवाल दूसरे फ़ेमिनिस्टों के हो सकते हैं, बेटी के जी में अभी उनके लिए अवकाश नहीं था।

हाँ हाँ अम्मा से तो मिलाऊँगी ही।

मैं सोती रही और अम्मा से ये मिल रहा है, सीधे केन्या से यहीं उतरा है?

माँ ने दरवाज़ा खोला कि इसने खुद, बेटी के मन में गुस्सा उठा। आप अकेले क्यों उठती हैं? गिर पड़ीं तो यहाँ नौकरों की पलटन नहीं है कि कोई देख लेगा। पड़ी होंगी कहीं अकेले, उसने माँ को फटकारा। मन में जोड़ा, जैसे पड़ी थीं कहीं अकेले।

हेलो हेलो केके ने करा।

वे दोनों सहज, वो सहज होने में लगी हुई। वो बुझ गयी।

रात भर जगी रहती है, सुबह ज़रा घड़ी सोती है, माँ बोलीं, नहाये धुलाये पौधों पे फ़ौवारा छलकाते, कॉफ़ी पास रखे, केके पास खड़ा हुआ। उठ उठ के मुझे टॉर्च दिखाती है। इसलिए सुबह मैं चुपके से उठ गयी।

बेटी यों हुई जैसे उसकी पोल खुली।

चुपके से घर का नक्शा बदल गया। जिस हिस्से को बाहर रखा था वो नया शहर बन के आ गया है नक्शे में।

अब तो बरसात शुरू हो गयी। उसमें क्या लगी हैं पानी देने? बेटी अम्मा पे फिर बरसी।

तुमने बताया नहीं इतनी अच्छी कॉफ़ी रक्खी है। माँ का जवाब था।

ये दोनों एक दूसरे को क्या बताते रहे हैं? बेटी यों घबरायी जैसे कोई राज़ खोल दिए हों जो न खुलने थे। कुछ निर्वस्त्र हो, ऐसे वो आँखें चुराने में। गयी बाथरूम से ड्रेसिंग गाउन पहन आई जो उसने आगंतुकों के किसी भी वक्त आ धमकने के कारण निकाला था। माली, बाई, सब सुबह पहुँच लेते और घरवाले, बाहर वाले, सोसाइटी वाले, कभी भी। पहले की तरह आधे अधूरे कपड़ों में नहीं फिर सकती।

मैं चाय पियूँगी, उसने चिढ़ कर कहा। फिर औपचारिकतावश जोड़ा, कॉफ़ी ब्रेकफास्ट के साथ लेती हूँ।

हैलो भी नहीं, केके ने फुसफुसा के उसके कानों में कहा। कॉफ़ी बनाने माँ को बैल्कनी में छोड़ कर आया था।

कब आये, पर पूछने का मन न हुआ बेटी का। क्यों आये, पूछा नहीं जाता। कैसे हो, स्नेहिल आवाज़ माँगता है। क्या करने, तो सरासर बदतमीज़ी होगी। कब जाओगे, बेटी कुछ बदमिज़ाज लगी।

रिलैक्स, केके ने उसके कन्धों को घेरा। शी इज़ कूल।

बाहर चलो, माँ के पास, मैं आती हूँ। बेटी ने सख़्ती से कहा।

चाय पीते हुए वो बैठ तो गयी उनके संग पर बातें उन्हीं में चलीं। माँ को अचानक केन्या की रिफ्ट वैली में बेहद दिलचस्पी हो गयी थी। उन्हें गपियाता छोड़ वो अन्दर तैयार होने चली गयी। शावर लेकर वहीं खिड़की पर खड़ी रही। बरसात का मौसम चरम पर होगा तो यहाँ से नीम के भीने फूलों की खुशबू आयेगी। फिर निमौड़ियाँ लटकेंगी। जो पक कर पट पट गिरती हैं जैसे पत्तों में छुपे जीव जंतु शरारत से निशाना साध नीचे चलने वालों की खोपड़ियों पर गेंद मारते हों। धरती पर पड़ते ही निमौड़ियाँ, बिना किसी के कुचले जाने पर भी फट जातीं और उनमें से मीठी-कड़वी महक उठती।

पता नहीं अबके वो महक आयेगी कि कुचली सौंफ, लहसुन, कॉफ़ी होड़ में आगे निकलेंगे। निमौड़ियाँ भूली गिरी पिच जाएँगी।

केके की आवाज़ पर वो मुड़ी। दरवाज़े पर ऐसे खड़ा था जैसे कभी भीतर न आया हो। चलो इतना मान तो रखा।

धीरे से बोला मैं अपनी कैंची लेने आया था। देख लेना मिस्ड कॉल्स होंगे। फोन नहीं उठा तो सोचा सुबह लेकर निकल लूँगा। वर्ना मूँछ कटा देनी होगी, वैसी कैंची नहीं मिल रही। सफ़ाई देता गया।

थोड़ा बुरा मान गया है। बेटी मुस्करा दी। बगल से निकली तो केके ने पीछे हल्का सा नोचा लगाया। वो उछली।

उसी पल घंटी बजी।

रोज़ी का आना और केके का जाना। बेटी समझ नहीं पा रही थी इसको उससे मिलाकर वो ज़्यादा खीझ गयी या उसको इससे? ख़फ़ा ख़फ़ा उसने केके को रवाना किया तो उसने सबसे आँख बचाकर एक चुम्मा चुपका लगा ही दिया पर उसके झटका दे उसे दुरियाने पर खीजा। अरे ऐसे कर रही हो जैसे मैं लम्पटगीरी कर रहा हूँ। अलग होकर बोला कहो तो कैंची छोड़ दूँ, तुम्हारी नाक से एक बाल निकल रहा है, बहुत बुरा लग रहा है, काट दो, वो झल्लाया निकल गया। जैसे ऐसा कह कर बाज़ी उसकी हो गयी।

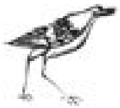

अम्मायें तारीख जानती हैं। ये तब की बात जिस बरस पप्पू का मुंडन हुआ था, या उसी बेला मुन्नी इक्के से गिर पड़ी और सामने का दांत टूट गया, या ये उस बरस की बात है जब हमारे

ग्राम मन्दिर में गणेश दूध पीने लगे और पूरे भारत में फिर गणेश जी दूध पीने लगे। या जिस फसल जम्मन के चेचक निकल आई थी। या लम्बा विस्तार उस काल का जिस में चचुआ छत से गिर के टांग तोड़ बैठा था, जब बाढ़ आई थी और घर का सारा अनाज सारे संदूक और हम सब खुद छत पर जा खड़े हुए और ये मोटे मोटे सांप पानी में बह रहे थे जिसने पूरे गाँव को तालाब बना दिया था और सरकार ने उड़नखटोले छोड़े थे हमें रस्सी की सीढ़ी से उठा के कौनो पास के शहर के अस्पताल में शरण देने।

पर इस तरह की घड़ी और इस तरह की अम्मा यहाँ नहीं हैं। जहाँ सब आ रहे थे, पुराने तो पुराने, नए भी, माँ से दो जून बात करने, उनका सिला या सिलवाया झोली झोला लेने, अपने घर का कचरा भी उन्हें देने कि आप इसका कुछ बना देंगी, या चाय नाश्ता का ब्रेक लेने, तो वहाँ सिड तो बेवजह, बेबात आने वाला बच्चा हमेशा से था। पहले मौके पर, यानी यू एस का अपना असाइनमेंट पूरा होते ही आ टपका। कि ग्रैनी ग्रैनी गायब हो गयीं और अब बुआ के यहाँ पार्टीइंग, मेरे जाते ही बदमाशी?

इतिहासकार ज़रूर अटकल लगाते रहते हैं कि किस तारीख को कौन सी ऐतिहासिक घटना घटी। किसे बड़ी, किसे छोटी घटना कहें, वो माप उनका डांवाडोल रहता है। क्या मालूम रिसर्च करने लगें कि सिड किस दिन पहुँचे ग्रैनी को लाड़ लताड़ लगाने? रोज़ी के पहले कि बाद? केके के पहले कि बाद? गिरने के पहले कि बाद? अस्पताल के पहले कि बाद? इतिहासकारों से लाख गुणा अच्छे कथाकार हैं जिनके लिए जिसकी लग जाए धुन, उसका छोटा से छोटा लम्हा और ज़िक्र भी बड़ा। तो ये कि जो भी दिन था, पहुँचा अम्मा का पोता। उसकी बुआ ने दरवाज़ा खोला और औचक दिखी जैसे पहचानती न हो ये कौन खड़ा है। सिड से मुलाकात उसकी उस घर में होती जहाँ वो जाती रहती अपने माता पिता से मिलने।

मगर ऐसा भी कह सकते हैं कि कब तक आदी नहीं होगी कि अब हिन्दुस्तानी चालचलन में लोग सुबह शाम कभी भी आ सकते हैं और सबको शायद तुम न पहचानो और वैसे भी तुमसे कम, माँ से अधिक, मिलनेवाले होंगे। तुम तो अपनी सोसाइटी वालों को ही ख़ास हाए हेलो नहीं करतीं, तो शक्कर जामन के रिश्ते क्या जानोगी? न पौध गच्छ के। माँ ने बैल्कनी पर बगिया बना दी है। आई पास से कोई, माताजी, बस माली से कह दें पानी देते वक्त नीचे देख ले, हमने कुर्सियाँ रखी थीं और मेज़ पर नाश्ता और कल शाम छींटे उसी पर आ गए। जिस पर माँ ने उइमाँ किया कि कल शाम तो मैं पानी दे रही थी, माफ़ करना, बुड्ढी कहीं की, अंधी कहीं की, घोंचू कहीं की, और शिकायत करने वाली हँस पड़ी और वहीं बैठ के कुछ नाश्ता करने लगी और बगिया निहारने और बाद में आयी किसी पौधे की डंडियाँ लेने कि इसे बस मिट्टी में खोंस

दो, उग आता है और ऐसे महीन पत्तों और लाल दानों से लद जाता है माँ ने बताया। मतलब कि आयी शिकायत करने और नाश्ता सूत के और पौधा लूट के चल दी।

और तो और साल दर साल जो झगड़ा होता था कि पेड़ काटने हैं, वो झगड़ा भी सोसाइटी वालों ने माँ से नहीं करा। जिस शहर में पार्क के मतलब कार-पार्क हो चले हैं वहाँ इतने फूल पत्ते हरीविभा देखकर माँ रीझ गयी। पेड़ की डालियाँ काटने को माली को मना

कर दिया। वो हँसने लगा माता जी आपकी सुन लेंगे, बहिन जी तो लड़ती रहती हैं फिर भी कटवा देते हैं। अरे मगर पेड़ों से क्या बैर, माँ हैरान हुई। क्या जानें माता जी। कहते हैं जीव जंतु घुसते हैं। कीड़ा कॉकरोच। और उसके पीछे मकड़ियाँ। उनके पीछे छिपकली। और गिलहरी चूहे पंछी। जो पेड़ों पे चढ़ के देख लेते हैं अन्दर मेज़ पर रसीले फल रखे हैं। बिल्ली उनकी टोह में घुस आती है। बन्दर लालची है ही और सांप तो सदियों से रेंगते हैं। चोर भी समझ जाते हैं और पेड़ों के रस्ते चोरियाँ करते हैं।

अच्छा माँ ने उसे तरेरा। तभी हटो हटाइए काटो काटिए। डालियाँ छाँटो, मैं खड़ी हूँ, वो सन्तरी बन के खड़ी हो गयी, छड़ी यूँ ताने कि बन्दूक हो। नहीं हमें धूप नहीं चाहिए। हाँ हमें चोर और साँप चाहिए।

माली गार्ड सब हँसे। पर माता जी तो माता जी। उनसे सोसाइटी नहीं लड़ सकती। उनसे सब मिलने आते हैं। बेटी दरवाज़ा खोल के रास्ता देती है जैसे किसी और के घर में अतिथियों के स्वागत को तैनात है।

येस आंट, सिड हँसा, युएस रिटर्न्ड अनजान जानवर, मैं हूँ, योर फेवरिट नेफ्यू, सिड सिड, ताज़ा ताज़ा, अमेरिकन बेकरी से निकला।

अमरीका ऐसा ही। कोई दो दिन में उसकी भट्टी से अमेरिकन बर्गर होकर निकले, बाकी हर भाषा और स्वाद भूल जाए, अमरीकी से ज़्यादा अमरीकी सुनायी दे, पर कोई आजीवन रह आये और भोजपुरी लिट्टी बना रहे। कोई अमरीकी आइसिंग चिपका के सजे, कोई गन्ना गुड़ गोबर लीपे रहे। कोई दरवाज़ा खुला रहे, कोई दरवाज़ा बंद होकर खुले, और भीतर वाली तके जैसे बाहर वाली। माँ सूरज को कपड़े के थान की तरह घर में खोलती नज़र आये और उसमें से सुनहली कतरनें सारे में छितर जाएँ। घर में धुपैली टिमटिम टिमक।

मैंने देखा। ये मैं बता रहा हूँ। देशी और अमरीकी उच्चारण जैसी बेफिज़ूल बातें करने वालों से माइक लेकर, कि उनकी बयानबाज़ी रुके और नैरेशन मैं करने लगूँ। क्योंकि ये ही जीवन की तर्ज़ — कभी कोई, कभी कोई कहता है, पत्थर, परिंदा, पेड़, पानी, कभी हम कहते हैं अपनी समझ, जबकि होती है तुम्हारी समझ और कभी तो ख़ैर हमीं कहते हैं।

बात ये कि एअरपोर्ट से निकले ही थे कि सिड को सूझी चल ग्रैनी को सरप्राइज करते चलें। लगभग रास्ते में उसकी आंट का घर। तो अमरीका की धूल में सने हम धूप की चिन्दियों में झूलते घर में। गार्ड ने हमारे इंटरनेशनल टैग्स देखकर न रजिस्टर भरने को कहा न फ़ोन किया और हम सर उठाये दरवाज़े पर। घंटी। किसी बाई ने खोला। बुकशेल्फ के पार मेज़ पर झुकी आंट का सर गुब्बारे की तरह उचका और फिर बाकी वो उचकी। बिना पहचानते।

मगर जिस लहलहाहट से ग्रैनी घर में फिर रही थीं वो बहाव अलग था। अ बलून बॉबिंग अलॉन्ग।

अर्ली मोर्निंग वॉक ग्रैनी?

पेट की वॉक मेरा बच्चा, ग्रैनी ने उसे चिपटाया। फिर मुझे भी।

ग्रेट टू सी यू अप एॅन्ड अबाउट, मैंने कहा।

हाँ हो गया है। फिर आ धमका हूँ। वादा करके कि इन पन्नों से अपन का पलायन पक्का, आई एम गॉन। मुझे खूब पता है कि मेरे बिना ये दुनिया चलती है, चलती रहेगी। इस किस्से में मैं कोई इम्पोर्टेन्ट विटनेस टू अ मर्डर नहीं। हालाँकि इस पर अलग बहस हो सकती है कि नाउअडेज़ मर्डर क्या है और विटनेस क्या। सलमान खान को हिरन मारते किसने देखा, पेवमेंट पर सोये गरीबों पे गाड़ी उसने चलाई, उसके ड्राइवर ने, और क्या गुनाह और किसका, और दादरी लिंचिंग और गइयों के कारोबार करने वालों में गुनहगार कौन और कानून रक्षक कौन? यहाँ तक कि देशप्रेम और देशद्रोह के मामले में भी कानून कहाँ कब का किन बीती किताबों में किन जोड़ तोड़ दंद फंद में उलझा हुआ, तो फिर किसका मर्डर कौन विटनेस?

पर लो, यहाँ मर्डर कहाँ? सिर्फ़ रेनबो।

ये हो सकता है कि मैं न होता तो उस पर फिर किसी की नज़र न जाती। पर मैं तो फ़ौरन पहचान गया। यों भी जिसका किस्से में कोई लेना देना न हो, वो उससे अलग खड़ा उसे देख पाता है, जैसा किस्से के भीतर के किरदार नहीं। चुप, बाहर, और करना क्या है उसे, बस देखो सुनो सूँघो रसो। निर्मल वर्मा के तटस्थ किरदारों से ज़्यादा तटस्थ।

मैं। सिड के साथ। चला जाऊँगा, कब तक न जाऊँगा, पर लुकिंग ऐट द सीन तब तक।

तब तो मैं था नहीं जब ग्रैनी गायब हुई थीं और न तब जब वो अपनी बेटी, सिड की आंट के घर, चेंज के लिए चली आई थीं, ताकि उस बीच सरकारी बंगला वेकेट करके नए घर को उनके लिए सेट कर दिया जाए। मैं तो अब था जब वो सिड को अपने कब्ज़ की परेशानियाँ ख़ुशी से बता रहीं थीं। कब्ज़ की बात है तो ग्रैनी, अ स्मॉल डंडी साइज़ सॉलिड ईक़ुअल्स अ घड़ा भर लिकुइड, वो अपनी बकवासबाजी कर रहा था। जिस पर मैं हँसा और आंटी ने कहा शटअप, क्या छीछी बातें लगा रहे हो। ग्रैनी खुश दिखीं जैसे उनका कब्ज़ बोलकर हल्का हो गया।

मुझे ग्रैनी की चाल अच्छी लगी। बॉबिंग अलॉन्ग। धूप के घेरे में बॉब अप बॉब डाउन। पतंग कि गुब्बारा? शायद वो जो पहने थी, टखनों तक का गाउन, ऐसा था कि लगे वो गुब्बारा हैं। या पतंग। पता चला ये यूनख़ रोज़ी बुआ बनवाती हैं। उनकी धुंधली सी याद आयी जो उनके उस शाम आने से ताज़ी हो गयी। पता चला वो काफ़ी आती हैं, ग्रैनी के लिए बहुत करती हैं, और पूरे मोहल्ले के ये डब्बे ढक्कन चिन्दियाँ कार्टन बर्तन टोकरी बटन कतरन हैं जिनसे ग्रैनी बुआ के संग प्लान करके कंटेनर्स फ्रूट बोल्स खिलौने झोले बनवाती हैं। मुझे एक ऐशट्रे मिला विद हिदायत कि स्मोक मत करना। बाकी रोज़ी बुआ ले जाती हैं, कहीं बिकवाने, जिसका पचास परसेंट चिल्ड्रेन्स होम में जाता है और बाकी बुआ अपने कुनबे की ज़रूरत के लिए डोनेट करती है।

नाम सिड ने सुझाया कि ऑनलाइन शॉप खोलो ऑड्ज़ एॅन्ड एॅन्ड्ज़। हिन्दुस्तानी नाम क्यों नहीं, ग्रैनी ने पूछा? चांस नहीं। सिड ने सुनाया। देखिये चारों ओर। वेलवेट होटल। स्वीट ड्रीम गेस्ट हाउस। स्नोव्हाईट ब्यूटी पारलर। कॉमेडी नाइट्स। और मैंने अपना ठोंका — सिड, नॉट सिद्धार्थ। रोज़ी को नाम रुचा। जब वो आईं। अभी वो नहीं थीं। अभी हम थे और ग्रैनी ने आंट और बाई को लगा दिया था कि बच्चे विदेश से आये हैं, आज ठेठ

हिन्दुस्तानी भोजन सबके लिए और सब कुछ। सिड के पा को फोन भी चला गया था कि एअरपोर्ट से हम यहीं आ गए हैं, खा पी के आयेंगे।

पहले नहाना धोना हुआ और फिर जैसा अनप्लैंड पर एक्सपेक्टेड था, हम दोनों लेटे और सो गए। ग्रैनी के बिस्तर पर, क्योंकि गेस्टरूम में ऑड्ज़ एॅन्ड एॅन्ड्ज़ का मेला झमेला फैला था। सो गए तो शाम तक नहीं उठे।

उठे क्या, उठाये गए। आंट ने कहा कि जेटलैग हटाने के लिए यहाँ के टाइम में जल्द से जल्द लौटना ज़रूरी है। नहीं तो रात को नींद नहीं आयेगी। और सूरज के उतरते गुलाबी रंगों के बीच हमने ग्रैनी का शानदार लंच-टर्न्ड-डिनर किया। उस वक़्त सिड ने वो वाइन निकाली जो हम प्लेन से लाए थे। गिलासों में ढाली और कहा सेलिब्रेट रिटर्न ऑफ़ ग्रैनी।

और तुम्हारा। आंट ने कहा।

अ ड्राप फॉर ग्रैनी, सिड ने अपना गिलास उनके होंठों की ओर बढ़ाया। तो वही हुआ जो पहले हुआ था कि आखिरी सूरज ग्रैनी की आँखों से लपका और वाइन में रेनबो तैर गया।

मैंने देखा। ऊपर देखा कि आसमान में भी क्या? उसका रिफ्लेक्शन ग्रैनी के चेहरे पे? और मैं तो कंफ्यूज हो गया कि इसके पहले जो देखा था, उस लंच पार्टी में, वो आज इमैजिन कर रहा हूँ, या दोबारा वही दृश्य, यानी छलका हुआ रेनबो है?

अब ये ही कसर रह गयी थी, ग्रैनी ने नहीं नहीं सिर पीछे खींचते ऐतराज़ किया, मगर जैसे झूठे ही। कड़वी होगी, मुँह बिचकाया।

आपको कैसे पता, सिड ले उड़ा। पकड़ी गयीं। ग्रैंपा के साथ ये होता था?

पी कर ही पता चलता है? ग्रैनी हँसी। और एक घूंट तो चढ़ा गयीं और खुश लगीं।

एॅन्ड नाउ, सिड ने अपनी खास बेबाकी से कहा जिसे बेबाक होने का गुमान नहीं, ग्रैनी बतायेंगी कि भागी कहाँ थीं।

जस्ट लाइक दैट। सिड ऐसे ही सटाक से कह देता है जो और जनता गोलमोल करके भी नहीं कह पाती।

मूर्ति सँभालने। रोज़ी के पास। उसे ट्रेन पकड़नी थी। टर्न पे छोड़ वो भाग ली कि यहाँ से गेट दीखता है और ग्रैनी अपने गेट के आगे निकल गयीं क्रॉसिंग गेट आफ्टर आइडेंटिकल गेट।

वाह वाह, सिड ने कहा और गिलास बढ़ाया।

मुझे लगता है ग्रैनी ने और एक दो घूंट सरकाये। शायद बातों की रौ में। या सब फ्री महसूस कर रहे थे इसलिए। जैसे अब किसी चीज़ की मनाही नहीं। या कि चलते चलते सब चख लूँ। या कि हर चीज़ में दिलचस्पी है। और रेनबो इसी चमक की उपज है।

आंट ने अपने गिलास से थोड़ा दिया। तो मैंने भी। सिड ने मज़ाक़ भी किया कि नाम हमारा लग रहा है, ड्रंकर्ड ग्रैनी हो रही हैं।

ग्रैनी ने उसे मारने को छड़ी उठाई। रेनबो और तितलियाँ संग संग उछले।

हो सकता है मैं गिल्ट में रेनबो को अहमियत दे रहा हूँ, अपना इन पन्नों पे लौट आना जस्टिफाई करने। कि मैंने रेनबो देखा। देखा तो क्या, न देखा तो क्या। रेनबो आसमान से आया था कि ग्रैनी की आँखों से ऊपर जा खिंचा, इससे भी क्या। आये दिन कहीं का रंग

कहीं छलछला जाता है। सब खुश हैं तो बस ठीक है। बाकी तो कुछ खास हो नहीं रहा था। और मेरा आना मैंने नहीं चुना था। सिड और मैं एक साथ लौटे थे, उसने तो मुझसे पूछा भी नहीं, संग ले आया। वर्ना मैं तो एअरपोर्ट से निकला था कि अपने ठिकाने लौटूंगा। सब मुझसे भी वेलकमिंगली पेश आते हैं तो हैपिली आ जाता हूँ, वर्ना क्या मुझे पता नहीं कि दे बिलौंग हियर, मैं तो झूंगे में।

डैम इट, और कोई कुछ नहीं कह रहा, मैं ही अपने को कोसता हूँ और गाँठ में फँस जाता हूँ। जैसे कभी कोई और बेसबब बेमक़सद कहीं नहीं आया गया!

अपनी पीस ऑफ़ माइंड के लिए शायद अबसे सिड को मना कर दूँगा। ये लीजिये आई बाऊ डीप इन अ सलाम अलविदाई। अब न मिलेंगे। शॉर्ट्‌र्स टीशर्ट सिड की आंट के एक्स के हैं, वो तो लौटाने होंगे। और जो कपड़े उतारकर, उनके कहने पर वहीं लौंड्री बास्केट में डाल आया हूँ, वो भी लेने होंगे। बट किसी से मंगवा लूँगा। या ड्रॉप इन किया भी तो इस गाथा के सीन से दूर रहकर जल्दी से फूट लूँगा। इन पन्नों के बाहर ज़िन्दगी चल ही रही है, मेरे कपड़ों की भी वहीं रहने दूँगा। बड़े बड़े गैप्स रह जाते हैं किस्सों गाथाओं में, इस गैप को तो कोई नोटिस भी नहीं करेगा।

शोरशराबे *का गुणगान करने वाले चुप-शान्त को मकबरा कहते हैं। कोई नदी को गीला, रेगिस्तान को सूखा कहते हैं। बेसाख्ता हड़पते झपटते आदमी को मर्दे-मर्दा कहते हैं। और नेकबख्त औरत उसे जो नुचे पिटे और ज़ब्त करे। सजी सजाई दुकान होती है, अटा अटाया जीवन होता है। सड़क पे सड़की, घर में घरेलू रहते हैं। घी पर छादन, दूध पर बालायी तैरती है। उसको ओस में मिला के बनारसी मलइयो बनाते हैं और उसे दही में फेंट कर पंजाबी लस्सी बनाता है। बारिश में बरसात बरसती है, गर्मी में लू। माँ का तन नए बोल बोलता है, बेटी का मन फटा ढोल हो जाता है। छोटी होती औरत हल्का होने को अपने को ज़रा और छोटा कर लेती है। बड़ी होती औरत सिलवटों में अटकती है जिससे रात को नींद में उतरने में देर हो जाती है, सुबह नींद से निकलने में।*

अब बरसात के दिन आ चले हैं पर बरसात हो, ये इस मौसम की शर्त नहीं है। मनमाना मौसम मैन-माना है और मैन मानता ज़्यादा है, जानता कम है तो घूमफिर के ईश्वर पे ही लौटा जाता है, चूँकि सब कुछ रामभरोसे। जब हवा माँ की तरह शान्त न डोल रही होती है तो झन्नाटे से चलती है। तब धूप की नहीं, पानी की बुंदकियाँ बौछार से या टिपटिप करती पतली धारों में घर का भ्रमण करती हैं। बेटी नींद के इस तरफ़ या उस तरफ़ से उचक पड़ती है कि बिजली चमकी चम चम, बादल गरजे घन घन, डालियाँ घसकें घसघस, रोयें पीटें आने दो, हमें क्यों निकाले हो।

प्रकृति क्या खूब है। दुनिया भर की अभिव्यक्ति वहाँ। बस प्रकृति से लय पकड़नी है। दिल जान हवा के हवाले। बादल घुमड़े तो नायिका का दिल बादल और रघुवंशम। कलियाँ चिटकीं तो पाँव थिरके और चैतन्य महाप्रभु। ओस की बूँद में टैगोर को दिखा ब्रह्मांड। हवा के ठहराव में अरस्तू का जागा फ़लसफ़ा।

रो दिए तो बारिश में दिल कागज़ की नाँव की तरह कांपता। चकाचक मनप्राण तो धूप और चांदनी और बूंदों पर लटक गया। पड़ी से उठी अम्मा तो बूँदें उन पर ऐसे खेलती हैं कि लड़ियाँ झूलती हों। वो शान्त चले, हर तरफ़ रमक दमक चले। और गमक।

माँ चलती है, गंभीर भी शान्त, खुश भी सौम्य। सोती तो शान्त, बोलती तो शान्त। नयी खुलती जगह जो भीतर से बाहर तक फैलने लगी है उसमें विश्राम कर रही है। उसमें उड़ आते परिंदों से पहचान हो रही है।

एक परिंदा रोज़ आकर सीटी बजाता है। ऊपर नीचे लहराती धुन में।

कभी चुलबुला, कभी ग़मसाज़।

ऐ बाजी, कौन लौंडा लपाड़ा सीटी मार रहा है? रोज़ी एक रोज़ उचकी कि जैसे हो जाएँ दो दो हाथ, सामने आओ।

ऐहै। चिड़िया है। माँ ने टोका।

सीटी बजी। लम्बी। बदली हुई धुन।

काली चिड़िया है। श्यामा पक्षी। ब्लैकबर्ड।

कहानी सुनाती सीटी। जैसे दूर से आती टेर।

अम्मा मुँह गोलाती है और फूँकती है। रोज़ी उनकी नकल करती है।

दोनों सीटी बजाने की कोशिश में।

चिड़िया चुप।

रोज़ी और माँ चुप हो जाती हैं। चिड़िया की सीटी फिर। वे भी फिर सीटी सुर निकालती हैं। तीनों संगत बिठाती हों।

बेटी ने घर के दरवाज़े पे ताली घुमायी, मेरे घर से सीटी की आती आवाज़? दरवाज़ा पहले से खुला है। रोज़ी और अम्मा सीटी जैसी आवाजें कर रही हैं। फिर चुप। फिर चिड़िया। जैसे उन्हें सिखाती हो। फिर सीटी।

देखा, रोज़ी की आवाज़।

बुरक दो, माँ की आवाज़।

तब आसमान में सितारे भरे दिखे।

तो कोई वजह नहीं बची थी कि माँ गिर पड़े। यानी जब गिरने की कोई वजह नहीं रही तब गिरना आ हुआ।

वो सीटी बजाती है।

पौधों को पुचकारती है और एक एक पत्ते टहनी को सुबुक हाथों से मल्हारती है। पहले उन्हें पोंछने चमकाने, अब बरसात है तो यों ही, प्यार बौछारने।

खरल में कभी सौंफ मलती है, कभी लहसुन कूचती है, कभी भुने मसाले कूटती है। महक उड़ाती है।

खुद उठती है। खुद नहाती है। खुद चाय बनाती है। खुद खाती है, खिलाती है।

नीचे से निकलने वालों को नमस्ते, हो हो, हेलो करती है।

अकेली बैठी अपने से कि आसमान से कि पेड़ से बतियाती है, मगर कान पे ज़ोर पड़ता है अगर सुनना चाहो। और तरह की आवाज़ें भी निकालती रहती है। कराह, आह, सिसक, चीख, सब में दर्द का मज़ा। औरों से तो बातें करती ही है। माँ बेटी टाइम। रोज़ी बाजी टाइम। आतों जातों टाइम। और सिड हो तो कुछ चुस्कियाँ वाइन या बियर के भी लेती है। एक बार केके ने कोनियैक खोल के दी। पहले तो मुँह बनाया। उसने शहद डाल दी जिस पर बेटी ने 'कोनियैक का मर्डर' करके शोर मचाया। मगर माँ ने होंठ चाट चाट के ली और फिर केके के संग कोनियैक शहद की चाट लग गयी। यहाँ तक कि ख़तम हो जाए तो कहे ज़रा सा ठंडा पानी डाल दो, कोई बूँद फेंकनी नहीं।

मगर किस्सा यहीं नहीं ख़तम।

खुद चलती फिरती है छड़ी को छड़ी के अलावा हर इस्तेमाल में लाकर, जैसे तखत के नीचे से चप्पल खोजना, ठेल कर खिड़की का पल्ला उढ़काना, दीवार से छिपकली को ठक ठक बाहर भगाना, तलवे खुजाना, छड़ी से पॉवर प्रेजेंटेशन की तरह इशारे करके अपनी बात समझाना, घर की दीवारों और फ़र्श को बजाना जैसे येहुदी मेन्युहिन हो, उलट गए पावदान चटाई दरियों को बिना झुके सीधा सलटाना, चींटियों को गुदगुदाना इत्यादि।

फ़ोन पर बातें करती है। किसी को तफ़सील से बता रही थी कि कन्धा जहाँ धड़ से जुड़ता है, वहाँ दर्द है, ज़रा ज़रा, और इसे ही शायद फ्रोज़न शोल्डर कहते हैं, इतना उठा लेती हूँ, इसके ऊपर, उई नहीं उठ रहा। बता यूँ रही थी जैसे दूसरी तरफ़ दूरबीन है जिससे सुनने वाला उसके उठते, न उठ पाते, अंगों को देख लेगा। बता ऐसे रही थी जैसे हर दर्द में मिठास है। हर रोंया सहलाने काबिल। हर कतरा हर तिनका हर रेशा पुर-एहसास है।

ऐसे ही कान की। रुको बैठ जाऊँ। बायें कान पर लूँ। दांया बंद है, न न, बरसाती हवा नहीं, उम्र से कहते हैं सिकुड़ जाता है, छेद छोटा हो गया है। पचास प्रतिशत कम सुनती हूँ। बल्कि साठ।

ऐसे ही पाँव का सूजना दिखाती। देखो दोनों में फ़र्क है।

ऐसे ही बोनटेल में दुखता है कहती। जो टेलबोन थी।

ऐसे ही कब्ज़ के कारण बताती और कितनी हुई आज सुबह सुनाती। दिन भर का ये ही कार्यक्रम, दोपहर तक कोशिश चलती है। उठ के जाओ, चाय पीके बैठो, सैर टहल के बाद फिर, फल लेकर ट्राई, नाश्ते बाद सिंहासन। बेल लेती हूँ, त्रिफला गैसट्रोमोन सोफ्टोवैक लूज़ ईसबगोल कुछ नहीं छोड़ा। उबली सब्ज़ी ही खाती हूँ। हर वक्त कुछ लटका लटका लगता है। मांस भी तो लटक गया है, वो ही लगता रहता है। कल तो मैंने दोनों समय लूज़ ले लिया। जिस पर रोज़ी ने दीदे मटकाए कि सारा इलाज बाजी आप खुद करेंगी कि डॉक्टर के लिए भी कुछ छोड़ेंगी?

ये रोज़मर्रा की बातें। कौन इन्हें कुछ-हो-रहा-है की उपाधि देता है। जेल से भी रोज़ गुण्डाराजा का गुण्डाराज चलना रोज़मर्रा ही रहता है, कुछ नहीं होता सा। या प्रदूषण का रोज़ का रोज़ भयानक होना, स्थायी भाव की तरह कुछ का होना नहीं है। हिटलर के गैस-चेम्बर का ड्रामा रोज़मर्रा नहीं था, इसलिए हाँ, कुछ हुआ था। कुछ हुआ उसे कहते हैं जो थोड़ा नाटकीय हो, नोटों का अचानक बेकार कागज़ बन जाना, आगरा एक्सप्रेसवे पर एक के बाद एक बाईस गाड़ियों का एक में दूजी टकराना, बंगलुरु की झील का आग पकड़ लेना, कश्मीर की संकरी बर्फ़ीली पगडण्डी पे एक्सपर्ट गाईड का सैलानियों को सँभाल सँभाल के आगे बढ़ाना और फिर खुद हवा में पलटा मार के चारों खाने चित्त हो जाना, या फिर माँ का बेटी के घर में गिर जाना।

जिसकी कोई वजह नहीं थी। बस, यकायक, बेवजह।

क्यों गिरी, इस पर बवाल छिड़ा। जिससे ये तात्पर्य नहीं कि मेज़ के चारों ओर बैठ कर कोई बहस हुई। पीठ पीछे जुमले उठे, जो पेट आगे पहुँच लेते।

बेटी का सोचना बना कि गिरने का कारण था या थी या था कि थी रोज़ी बुआ। माँ के साथ ऊटपटाँग हरकतें करना और मज़ार तक से उन दोनों की सीटियों की आवाजें आना जो वे दिन प्रतिदिन और खूब बजाने लगीं कि सारा मोहल्ला सुने और सोचे हो क्या रहा है, तो एक न एक दिन गिरना तो था ही। रोज़ी बुआ अम्मा को फटकार भी देती है और साथ उठती बैठती है और एक गड्डी पुदीना लाकर पूरी थाली हज़म कर जाती है। अम्मा को नया नया आज़ाद माहौल मिला है, अपने तईं जीने का, तो बेचारी सादगी से उसे लूट मचाने देती हैं। शहर भर के घरों का कबाड़ यहाँ आता है और डिज़ाइन कर करके चीजें बनती हैं जिसमें किसका नफ़ा किसका नुकसान सब साफ़ दीखता है। अम्मा कुछ ज़्यादा ही करती हैं, स्ट्रेन होगा ही, गिरने की भरपूर तैयारी। इसी के कारण पहले भी अम्मा का बुरा हाल हुआ, खो गयीं, बदहाल पड़ी रहीं। इसी ने कुछ समझा दिया होगा कि मूर्ति पर बहुतों की नज़र है और

बड़े कहते ही हैं लाखों में बिक सकती है, बेटी माँग चुकी है, और लोग भी देख रहे हैं माँ अपना सब कुछ दान करने में लगी है, फ़रमाइश कर दी तो आप, बाजी — बाजी! — मना करने से रहीं, मेरे पास रख दें। चली गयीं भोली अम्मा अपनी कमज़ोरी से बेख़बर। न जाने कहाँ। झुग्गी झोपड़ी में, ठोकरों में। हम जाते हैं, काम करने, पर अम्मा हमेशा घर में रहीं। एक मूर्ति के पीछे बीमारियों में चली गयी। तभी से कोई कमज़ोरी लग गयी हो, ज़रूरी थोड़े है कि पूरी बीमारी पके, यहाँ लाकर मैंने पकने भी नहीं दिया पर इम्युनिटी घटा लायीं। उन्हें क्या पता था यहाँ आएँगी वर्ना शायद मुझसे पहले कह देतीं ले जाओ। अब मूर्ति यहाँ आ गयी है पर लगता है मेरे लिए नहीं। मैं चोर और रोज़ी बुआ सिपाही। खूब जगहँसाई बुआ ने करवाई। अब भी करवा रही है और प्रॉफ़िट मिल रहा है, जबकि सारे आइडिया माँ देती हैं और इस उम्र पे इतना झुकना चलना खींचना काटना झूलना करती हैं और गिरती गिरती हो गयीं और गिर गयीं।

केके ने असहमत होकर कि ऐसे तो कोई भी किसी को भी कुछ भी के लिए दोषी ठहरा ले, अपनी आजकल की लो सेक्स-अपील और घटा ली। 'कुछ' क्यों कहा, वो लड़ पड़ी। 'कुछ' पे तो नहीं दोष दे रही। 'कुछ' माने क्या? पहले केके 'कुछ' के मायने समझाता रहा, फिर उसने हार मान ली और आखिरी पत्ता मारा कि कुछ ऐसा ही तुम्हारी भाभी कह दें तो वो कोई बात होगी? कुछ तो होगी, उसकी आजकल एक्स, ने तंज़न आँख मटकाई। कहती भी होंगी भाभी।

जो सही अनुमान था। कहती थीं। कि अजीब जीवन-पद्धति में रहने वालों के पास भेजोगे तो ऐसा होगा ही, गिरेंगी। तो क्या वो बड़े को भी दोषी ठहरा रही थीं? लगता ऐसा ही है। लगे हाथ। अपने तो जाकर देखा भी नहीं तुमने किस हाल में हैं, तुम्हे क्या पता? ठीक है कि घर शिफ्ट करते वक्त भेज दिया पर इतना लम्बा वहीं पड़े रहने देना। वहाँ खाना कम, पीना ज़्यादा होता है, दवा कम दारू ज़्यादा चलती है, और वक्त से कुछ नहीं मिलता और फ्रिज खोलो तो खाली, और कुछ उठाना है तो दोहरे होओ, एक कदम चलना है तो दीवार फांदो, फ्रूट बोल से फल उठाना है तो झूले पे पेंग लगाओ और लहरा मार के उठाओ, और किसी भी पल गिर पड़ो। घासफूस, जो मुफ़्त मिलता है, उसका फ़र्नीचर, कि धूल गन्दगी अन्दर भरी रहे। और बाहर वालों का कचरा उन्हें थमा दिया है कि चीजें बनाओ जो दूसरे बेचें। क्या फ़ायदा हुआ किसी का अम्मा को वहाँ भेजकर, हैं वहाँ पर दौड़े हमें ही जाना है, डॉक्टर को हमें दिखाना है, सीजीएचएस से दवाएँ हम मँगाते हैं, नाम बेटी का होए। चाय तक अम्मा खुद उठ कर बनाती हैं। यहाँ उन्हें उठना नहीं पड़ता था किसी काम के लिए। बिस्तर से राज करतीं, जो चाहें मँगाए, हुकम चलायें। इतने शान और मान से थीं। अब रूखा सूखा, वो भी खुद इन्तेज़ामें, इस उम्र पर, क्योंकि उस घर, अगर उसे घर कहें, की मालकिन तो दुनिया फ़तेह करने में लगी रहती हैं, अम्मा को नौकर नौकरानी के हवाले सौंप और वो भी कैसे कैसे, तो गिरेंगी नहीं? बदनाम हम कि जैसे हमने निकाल दिया जबकि मैंने कहा भी कि बेटी के घर नहीं रहा जाता, भले ही वो बिनब्याही डिवोर्सी अकेली जो भी हो। रोज़ बेटा फ़ोन पे समझाता है कि आप ज़बरदस्ती तो नहीं ला सकतीं न और उनकी बेटी है, दुश्मन नहीं। मेरा ही मन घबराता था। बेटी है पर उसे आती नहीं किसी की देखभाल, अपने ही

फटेहाल है। यहाँ थीं तो मैं चिन्तित थी, नहीं हैं तो भी, और बेटा समझाता है कि दूसरे की ज़िन्दगी आप नहीं जी सकतीं, गिर गयीं तो आपकी फ़ॉल्ट नहीं है, पर इतना मेरा दिल कांपता रहा है और तुमने तो बस मुझे या सिड को भेज देना होता है कि जाओ हस्ताक्षर करा लाओ, एक बार भी खुद जाकर देखना मुनासिब नहीं समझा कि किस हाल में हैं और ले आयें वापस।

मैं कैसे जा सकता था, बड़े ने तरेरा? उन्होंने बताया नहीं कि अम्मा साड़ी की वजह से गिरीं और कौन कहता है मैं नहीं गया और मैंने नहीं देखा।

क्योंकि उन्होंने देखा। और गए थे। पत्तों के बदले ढंग से हिलने पे।

जिसलिए हवा बेसब्रा हो चली और इसलिए बड़े का मूड भी।

सबको याद है कि बड़े की अम्मा जब खो गयीं थीं तो जाड़ों के अन्त के दिन थे और जब पाई गयीं तो बसन्त के। वो कितने दिन की बात हुई जानना आसान नहीं है। साल-दर-साल, जाड़ों के अन्त में पेड़ ऊपर से सूखे पत्ते गिराने लगता है और नीचे से नयी कोंपलें फुटाने। यानी जाड़े में घुला-मिला बसन्त। ख़ुश्क आवाजें ऊपरी पत्तों में आती हैं और पृथ्वी पर घसघस करती हैं और नीचे नन्ही नन्ही पत्तियों में नन्ही नन्ही हवा दूब-हरी गुनगुन करती हैं। ऊपर आह, नीचे आस।

घर-बदल, दफ़्तर-बदल, फ़ज़ा-बदल में बड़े बेचैनी महसूस करते। इस सारी बदल ने उन्हें धरती पर सूखे पत्ते की तरह चरमरा दिया है। अम्मा लापता हुई, उस दौरान पत्ता और सूखा सूखा, दिल और खलबलाय, टूटाय।

पर माँ मिल गयी। दिल से बच्चे बच्चे स्वर निकले। नर्म महीन पत्तियाँ और कोंपलें उग आयीं।

कुछ रोज़ माँ को बहन के यहाँ भेज दिया। पत्ते जिन्हें गिरना है, गिर लें, जिन्हें उगना है, उग लें।

पता ही नहीं चला कब पत्तों ने फिर दिल का मौसम बदल डाला। बरसात पके पर। पत्ते मुटाये। पेड़ों पे भारी भारी। लटक गए उदासी चुआते। चुप हों तो भी भारी भारी। भरे बदन में लावण्य, पर गाढ़े रंग का शोक। दु:ख-राग। विलंबित, अति विलंबित, हताश आलाप। या विलाप?

पढ़े लिखे एॅक्स अफ़सर नहीं समझे। अपने मन में प्रतिध्वनित पत्तों का दुखी राग नहीं पहचान पाए। मुरझाये बैठे रहते। पत्नी कहतीं सबका ये ही हश्र, नौकरी से अवकाश के बाद, कि दिन कैसे कटे और रात कैसे, बनियान का कोना चूसते बैठे रहते हैं। वो भी पढ़ी

लिखी। पर नहीं जानतीं कि उदासी पत्तों से आ रही है, जिनके बीच हवा पहले रूखी थी, फिर बसन्ती, फिर कुछ नमई, अब घोर वर्षाई।

कोई नहीं समझता पत्तों से पैदा होते हवा-राग और इन रागों का दिल पे इशारा।

समझ क्या है, ये ही कोई नहीं समझता, और कहाँ? कि मस्तिष्क, जो माथा ठोंक ठोंक बजाने पे बजता है, वहाँ ठुंकी है समझ, ये सीखे हैं सब के सब। बाकी तन मन उस जलेबी शेप मस्तिष्क से झूलती राल! बाकी तुम ए्ॅलिस जो गायब और असल तुम वही भेजा जो मुस्कान बन हवा में टंगा है? नाक आँख होंठ गर्दन कन्धा कोहनी घुटना टखना पंजा जंघा नंगा व्यंगा पेट पोट पीठ ढीठ, सब गलीज़ कनीज़ बेसूझ बेबूझ बेदिमाग बेकार। काश जानते कि ये सारे अलग अंग उस जलेबी पे बालूशाही राजभोग मोतीचूर श्रीखंड केसर हलुवा कुल्फी बासुंदी हैं। उनमें दिल, दिमाग, जिगरा, सब है, जो उस ज़रा सी जलेबी में कहाँ समाये और इसलिए गुमान करें कि कितने सारे दिल दिमाग जिगर हैं, हरेक के पास। तभी बच्चा कंठ में वेद उतार के पंडित हो जाता है, जलेबी-दिमाग तक वेद के पहुँचने के पहले ही। भीमसेन और शराफ़त लताफ़त अंग अंग से सुरों के सुर सुर समझ लेते हैं और उनको बंदिश में उतार देते हैं। ये उस सूखे भुखड़े भुच्चे नंगे एक जगह ठस जलेबी-भेजे का हुनर नहीं। दस्यु रत्नाकर की जलेबी पड़ी रही और वो मरा मरा करता गया। बाकी दिमाग़-दिल-भक्ति का प्रताप कि वो तर गया और ऋषि बन गया। जलेबी तो बस दम्भी टुकड़ा, जिसके बूते का इनमें से कुछ नहीं।

सीधी सी बात कि दिमाग क्या? वो, जहाँ सोच। और सोच क्या? वो जो देखे सूँघे सुने महसूसे चक्खे लहराए इतराए चकराए। माथे में क़ैद जलेबी ये करेगा, कर ही नहीं सकता? दूसरे अंग ये करते हैं और वे ही प्रज्ञा-चक्षु जो असल दिमाग। माथे की जलेबी तो महज़ गोदाम या भंडार या पन्सार। वहाँ कुछ स्टोर हो जाता है बस।

बड़े के घुटने और कलाई और अन्य अंग-रोम में स्थित दिमाग, जिसका माथे वाले के विपरीत दिल जिगर सब है, में सरसराहट हो जाती। उदास हो जाते। कभी हताश। कि क्या करूँ। विलापी पत्तों की हवा पे कुछ याद आता, पर क्या, उन्हें नहीं याद आता। कि माँ जब साथ थी, उनके नौकरी के दिनों के बंगले में, तब जो घंटियों सी हवा नन्ही पत्तियों में बज रही थी, उसकी याद सता रही है, उनके वहमोगुमान में न आता। किस खुजलाहट में वो सिर खुज खुज करते हैं, अपना घुटना इधर से उधर मोड़ते हैं, अंगड़ाई लेकर बाँह फैलाते हैं, शून्य में ढूँढ़ते हैं, इस सबसे वो बेखबर रहे। बस एक दिन बैंक का काम करते हुए, जो अकेला काम है जो करने वो निकलते हैं, इस शेयर में लगाने, इस एफडी में डालने, और मैनेजर, जिससे उनका नौकरी के दिनों से याराना है, के साथ गप, लेमन टी, और पॉलिटिक्स पे भविष्यवाणी करने, वो करने के बाद जब वे गाड़ी से लौटने लगे तो अनजाने बायें को घूम गए, जिस सड़क पे बहन का घर था। वैसे पूरे नहीं घूमे थे, बस बैक करने में थोड़ा बायें हो गये जिधर से फ़लानी सड़क दिख गयी। पर बहन के घर वो जाते नहीं। हाँ उधर ही आगे जमाल का घर था, जिनके इंजीनियर बेटे को पिछले हफ़्ते हेट-क्राइम में, अमरीका में किसी पब में किसी ने गोली मार दी। मातमपुर्सी के लिए जाने का खयाल आया

कि उधर मुड़ ही गए हैं तो मिल आयें। बैंक से निकलने के पहले बाथरूम हो आना था, मन में आया। कहीं सड़क किनारे रोक के जाना पड़ेगा।

तो ग्रीन बेल्ट के पास मोटर रोक के उन्होंने सोचा यहीं, बरसाती झुटपुटे में। ऊपर देखा कभी भी आयेगी बारिश पर आखिरी धूप के थक्के भी हैं। और ये भी देखा वो रहा घर जिसमें अम्मा चेंज के लिए गयी हुई हैं। वह वाला, दूसरे माले पे, उस पेड़ से लगा, वो बैल्कनी, आहा गमले तो अम्मा जी की कारस्तानी ही होगी। पीछे लाइट है। बरसातों में जल्दी जलती है।

कोई बैल्कनी से निकला, बड़े झाड़ के पीछे डरे। अम्मा। लम्बे गाउन में। लम्बी लम्बी साँसें लेती हुई जैसे किसी खुशबू को छान के सूँघती हों। कुछ बोल रही हैं। गमले, पौधे, उन्हीं से। उन्हें जांचती हैं, कुछ समझा रही हैं, छड़ी से गुदगुदातीं। फिर छड़ी को आसमान की तरफ़ उठा के कुछ कहा माँ ने और हँसीं। उस लबड़ धबड़ लबादे में गिर गयीं तो? अजीब सी पोशाक, बहन खुद सीधा न पहन कर, माँ को अपनी तरह उल्टा पुल्टा पहना रही है? दरवेशाना फूसफास।

तभी माँ मुड़ीं। अन्दर जाने को। बड़े की तरफ़ पीठ। झलक दिखला के चल दीं। बड़े को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने गाड़ी लॉक की और सड़क के दूसरी तरफ़ आ गए, घर की साइड। पेड़ के पास, जिसका तना छोटी चट्टानों के बीच था और डालें उसी बैल्कनी की तरफ़ अग्रसर थीं। जाने क्या सूझा कि पत्थर पर चढ़े और उछल के पेड़ पर, उसके पत्तों में।

मस्तिष्क के दिमाग में ट्रैफ़िक जैम, बाकी दिमागों का एहसास नहीं, तो सूझेगा क्या? चढ़े हैं पेड़ पे अन्दर झाँकते जहाँ लाइट जली है ताकि वो अच्छे से देख सकें। उन्हें देखते किसी ने नहीं देखा।

पर देखा। कौवों ने। जिनकी मीटिंग को बड़े की इस छुपम छुपाई और कुदम कुदाई ने बिखरा दिया।

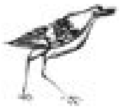

बड़े ने ग़लत देखा कि अम्मा छड़ी फहरा फहरा कर आकाश को कुछ सुना रही है। वो कौवों को सुना रही थी, खतरनाक स्वर में, जब उनका गोल एकदम से उसके पेड़ पौधों के ऊपर कांये कांव करता उड़ा। ये क्या हुड़दंगी तरीका है, उसने फटकारा? शोर किस बात का? नदीदों, पूरी टोली हमपर टूट पड़ी, क्या सोचते हो कुछ निवाला फेंकूँगी? कब्भी नहीं। और देखो मेरे पौधों का बाल भी बांका हुआ तो आँखें निकाल लूँगी, इस छड़ी को यों घुमा कर, और खाद बनाकर इन्हें खिला दूँगी। और तुम, बड़े शाणे बन रहे हो, छड़ी खूब मटक के उठी, मुझे आँख दिखाते हो? आओ आओ, उसने ललकारा, पट्टा पहना कर पालतू कुत्ता बना लूँगी। अपनी बात पर उसकी भरपूर हँसी छूटी कि कौवा है तू कि कुत्ता कहीं का? ऐसी कुत्ताफजीती करूँगी कौवों की। हँसते हँसते इतना हँसी कि बेटी निकल आई और बड़े ने

झटके से अपनी आड़ बढ़ाई। छड़ी की टेक फिर भी माँ ने नहीं लगायी और उसे हवा में झुलाती अन्दर चली गयी।

माँ का ज़ोर ज़ोर से आकाश-संबोधन बड़े को नागवार गुज़रा और उसे भी उन्होंने उसके अजोबो-गरीब कपड़े से उठता बहन-टाइप फ़ितरतीपन माना। अरे गिरेंगी, साड़ी क्या हुई, वो चिन्तित मन हो उठे।

दूसरी मंजिल के फ़्लैट और ग्रीन बेल्ट के बीच कच्ची सड़क थी। गार्ड का काम था कि राहगीरों को थूकने मूतने पखाना करने उधर न जाने दें, पर आजकल उन्हें इससे ज़्यादा रौब लड़का लड़की को जाने देना, फिर अचानक उनपर धमक पड़ना और डंडे से उनको अलग करना, जैसे दो चिपके टिड्डों को, में आता, तो अन्य चीज़ों के प्रति ज़रा काहिल हो गए थे। मगर ये भी हो सकता है कि बड़े का अफ़सरी रौब उनके डंडा-रौब पे भारी था और उन्हें आता न हो कहना कि ऐ अफ़सर, थूक मूत पाखानगी न कर।

मगर कौवों की तो बिगड़ गयी, मीटिंग भी और हवा भी। दूर दूर से उस दिन सब झुण्ड बना कर आये थे, बरसात पहाड़ प्रदूषण बिल्डिंग, सबके पार। जिसने देखा उसने देखा कि है क्या बात, आसमान आज काले डैनों से ढका गया?

ज़बरदस्त संख्या में कौवे पहुँचे थे। आयोजनकर्ता बहुत खुश थे और थोड़ी अफरातफ़री भी मची थी कि सब को कैसे अटाया जाए? लाउडस्पीकर की ज़रूरत सोची नहीं गयी थी, न ही सीसीटीवी की। वो सही भी न होता क्योंकि मुद्दा ये ही था — विज्ञान के नाम पर प्रदूषण फैलाने वाली तरक्की। तो छोटे कौवों को उनसे मोटे या उम्रदराज़ कौवों ने अपनी गोद में बैठा लिया। जैसे कंगारू अपने झोले में बच्चे को लिए हो, या बादाम में दो गिरी एक संग हों, या एक छिलके में केले दो हों, या एक धड़ पे शीष डबल हों, वैसे ही, एक कौवे तन पर सिर दो उचक रहे थे और आँखें चार हो गयी थीं। टीलों पर और पेड़ पर टू इन वन कौवे भरे हुए। पेड़ तो ऐसे सरसरा रहा था जैसे कि उसे नंगा समझ, उसके अंगों पर कौवा-जामा चढ़ा दिया गया है। सब मस्त हाल हवाल था और इतनी कांव कांव के बाद भी बाहरवालों का हमला नहीं था, न आँखों से, न डंडों से, न तवज्जोह से, क्योंकि शहरपरस्ती की होड़ में कौवों की किसे पड़ी थी।

कौवों की मीटिंग चल रही थी। बदलते मौसमों और विज्ञान परस्त इन्सान द्वारा उन पर कहरती परेशानियों को लेकर। मार कांव कांव हुई थी और पर्यावरण-प्रेमी परिंदों ने लिखित भाषण पंख के नीचे से निकाल कर पढ़े। जो बहुत सिद्धहस्त थे उन्होंने बिना पढ़े धाराप्रवाह प्रवचन दिए। सभा प्रशंसाभाव से कांव कांव कर उठी। या यों कहें कि इंसानों को महज़ कांव कांव लगती अगर वो सुनते, जैसे हर अनजानी भाषा लगती है, क्या हिन्दी, क्या मराठी, क्या तमिल, क्या मोर्स। जबकि भाषा तो भाषा, कौवों के प्रान्तों के हिसाब से प्रांतीय भाषाओं या पोलिटिकली करेक्ट की भूल जाएँ कि कौवों की ही तो बात, तो बोलियाँ थीं, जिनमें वे एक दूसरे से लम्बी चौड़ी बहस में उलझे थे। उनकी भोजपुरी, मैथिली, अवधी, ब्रज से गगन गुंजायमान हो रहा था।

बहस का ज़माना कौवों में अभी बरकरार था और बेधड़क बातें हो रही थीं। ये नहीं कि अपनी समझ पेश करने वाले को, चाहे अपने तजुर्बे से या अपने आदर्श में या नासमझी में,

फ़र्क सोच होने की बिना पर गोली मार दो। कौवों का बाहुल्य देखने लायक था। बूढ़े परिंदे, जिनके काले पर सफ़ेद नहीं पर सफ़ेद से हो गए थे, स्कूल कॉलेज के कौवे, नर, मादा, सब खुली बहस करते हुए कि सारी कायनात उलटी पलटी कर रक्खी है और हमारी प्रखर बुद्धियाँ भी हार खाने लगी हैं। पहले बिना बैरोमीटर कंपस थर्मामीटर एग्रोमीटर गूगल ट्विटर के हम जान लेते बरसात बढ़ रही है, जंगली जानवर शिकार पे आ रहा है, हवा रुकेगी नहीं, सात भाई चुप्पायेंगे नहीं, चूहा शेर हो जाएगा, बादल नर्तक, आदि इत्यादि। चेहरा देखकर दिल की पहचान कर लेते कि कौन पाजी तुम्हे ही निवाला बनाएगा, कौन जोगी अपने कमंडल से तुम्हे निवाला देगा। अब हमारी ये सलाहियत इंसानों ने दुनिया की हवा में दखल करके बिगाड़ दी है और अपने तो स्टेथेस्कोप टेलेस्कोप कोप ही कोप लेकर टर्राते फिरते हैं, हमारे बच्चों के खाने के लाले पड़ गए हैं।

बहस एल नीनो पर चल रही थी।

एक कौवा, ज़रा ढीठ, ज़रा उकताया, अपनी जवानजोशी में आत्ममुग्ध, कुछ ठिठोली में, कुछ जिज्ञासा में पूछने लगा कौन नीना?

नीनो, बगल वाले ने समझाया।

एल नीनो, एक और जानकार बोला।

ल क्या, ढीठ चोंच निपोर के बोला।

एल एल, बड़े कौवे ने ऊँचे स्वर में कहा।

जैसे एल बेरुनी? एल अज़हर। ढीठ ने मुस्की मारी।

ध्यान दो, हर बात मज़ाक में मत उड़ाओ, एक बुज़ुर्गनी बोलीं।

कि तभी बेपरों वाला बेपरवाह जीव उनकी गतिविधियों में खलल डालने आन पहुँचा। थमी बरसात में शाम का गहराता रंग था जब गाड़ी रुकी और वो शख्स उतरा और कौवा मजलिस के सामने की कच्ची सड़क, जो ग्रीन बेल्ट से लगी थी, उस पर खड़ा हो गया। पैन्ट की ज़िप खोली और प्रदूषण में इज़ाफा किया।

ए ऐ अबे, जवान कौवा उठ बैठा जैसे मारेगा। कौन यहाँ आया है, गन्दा करने, काँव काँव?

अरे गन्दा करके इधर ही आ रहा है, हमें उड़ाने।

मनहूस, जवान कौवा फिर चिल्लाया, हम कूड़े से खाना बीन कर अलग कर देते हैं तो हमें कूड़ा-पसन्द कचरा-पसन्द समझ रहे हो?

उसका चिल्लाना था कि सारे जवान कौवों का पारा चढ़ गया। नहीं जानता हम चेहरा कभी नहीं भूलते। अभी बच गए क्योंकि हमारे माता पिता यहाँ शान्ति शान्ति कर रहे हैं, पर आते दिनों कहीं न कहीं तो दीख जाओगे और सीधे चक्षु पर जो चोंच मारूँगा कि...एक पाँव नुकीले पंजे की तरह उठा कर अपनी चोंच को सामने निकालते हुए हवा में चक्षु-चाक वार किये।

स्वच्छ भारत अभियान जो चला दें, मीटिंग के संयोजक का बेटा बोला। सब ऑफ़िस बेअरर्स यहाँ हैं, अभी ही प्रपोज़ल पारित करा लेते हैं। और कुछ युवकों को चुनकर उन्हें कैमरा देते हैं कि जो सार्वजनिक जगहों में और प्रकृति की निरादारी में गन्दगी मचाता हो

उसकी तस्वीर उतारो और एक और टोली संगठित करो जो उनकी कॉपी बनाकर जगह जगह बरसायें। कि बन्दा शरमा जाए और बंद कर दे।

शरम का बाज़ार में अकाल है, एक दुखी कांव हुई।

तो एक हम-किसी-से-कम-नहीं युवती कौवी फुदकने लगी कि हर फ़ोटो पे पत्थर बाँधो और सारे कमीनों के सर फोड़ो। यों भी हमें गंजों पे पत्थर गिराने में मज़ा आता है।

ये ही पल था जब पेड़ और टीलों पे सरसराते कौवों से नितांत बेखबर बड़े उछले और टीले पर, फिर पेड़ पर चढ़ गए। खलबली मची, जिसमें सयाने चीख रहे थे कि भीड़ सन्तुलन रखे, एक कतार बना के उड़े और एक दूजे से टकराने से बचे और बूढ़ों और बच्चों को ठोकर न लगे मगर जो चिन्ताजनक बात थी वो ये कि ढीठ और उसके साथियों का तो खून और उबाल पर आ गया, क्योंकि अचानक की करतब पे वो भी डर गए थे और अव्वल तो उन्हें अपना डरना डराने वाले की जान का दुश्मन हो जाने को काफी था, मगर यों भी डर का मामला ऐसा कि अपना चेहरा उसमें अच्छा नहीं लगता, अपनी इज़्ज़त उतरी हुई लगती है, और हम बिलबिला जाते हैं या डूब।

तो समझिये कि पेड़ और टीले तमतमाते कौवों से फुदकने लगे और वहीं से आवाजें उठ रही थीं कि प्लीज सब सेटल डाउन करें और नवयुवकों के पास चोरी के मोबाइल सीटियाँ डमरू हों तो उनसे खेलना उन्हें बजाना बंद कर दें ताकि कार्यवाई शान्ति से होती रहे।

पर कौवों को लग गयी थी। इसी सब के ख़िलाफ़ रैली करने की ललकार उठी। ऐसी कांव कांव मची और पेड़ ऐसे कूदने लगा जैसे उस पर उग आये डबल सिरों को शिव-मंगल सूझ गया और पेड़-मंडल उनके तांडव से हिल रहा है।

ऐ, कांव कांव, अपने घरों को मैला करो, हमारे में क्यों घुसे हो, गन्दगी बजबजाने? हमारा घर तो ब्रह्मांड है और प्रकृति, जिसके नाश पे ये बेपंख कौम अपने घर खड़ी कर रही है। ख़ुदकुशी का शौक़ चर्राया है तो करें पर हमें क्यों उसमें घसीटते हैं? हम कहाँ जाएँगे जब हमारा आसमान और हमारे दरख़्त धराशायी कर डालेंगे ये। हमें मल मूत्र पे ऐतराज़ नहीं था जब तक वो आर्गेनिक थे। हमारे दरख़्तों को आता था दूध पानी अलग करना और खिलना। मगर अब उनमें ज़हरीला रासायनिक घोल है जो जड़ों को धरती को हवा को जला देता है, जो हो रहा है और हम इस सब के ख़िलाफ़ रैली निकालेंगे।

बहुत से प्रेजेंटेशन हुए थे जो पुन: कौवों के मुँह से फूटने लगे, जब ये बेपंख जीव मूतामाती व मट्टी-मुताई करके इधर आया जिधर टीले पत्थरों से घिरा वो पेड़ था जिस पर मीटिंग चल रही थी। और न सिर्फ़ टीले पर कूदा बल्कि उस पर फुदक के पेड़ की डाल पर उचक आया। मानो इतने सारे डबल सिर वाले कौवे अदृश्य हैं और उसे जहाँ जी हो घुसपैठ का हक है। ज़रूर हमारे रंग को भी ये नीची निगाह मारता है। ये हमारी तौहीन है, कौवों की कांव कांव दहाड़ बनी, हम काले हैं तो क्या हुआ, हम कौवे हैं।

मतलब, मतलब में अपनी इज़्ज़त का भी सवाल उछल पड़ा। कि हमारे माल के प्रति बेपरवाह और जान के भी और और तो और, हमारी भान के भी। हम तुम्हे दिख ही नहीं रहे! एक नहीं दो नहीं पूरी तादाद हमारी तुम्हारे लिए अदृश्य। है ही नहीं। अरे इसको तो हम देख लेंगे। जैसे बड़े बड़े बादलों को हम मिलकर अपनी चोंचों में चुन्नट चुन्नट खोंस लेते हैं और

एक जगह से दूसरी जगह उड़ा देते हैं, इसके मांस को चोंचों में खोंसो और ले उड़ो और पटक दो दूर जहाँ ये फट के गिरे और इसकी अस्थियाँ बरसें जो कोई बीन कर हरद्वार नहीं पहुँचा पाए।

सब गुस्से से फुदकने लगे और गुस्सा उनके तलवों से होकर टीलों डालों पे जलते शोलों की बुंदकियाँ बनता गया जिसे इंसान सूरज की आखिरी दीपियाँ समझने की भूल करता।

मार कौवा तंत्र का दृश्य था। कि सारे काले भुजंग चिंगारियों पे नाचते हों और उनके बीच एक अलग बेपंख बलि का जानवर भी वैसा ही करता हुआ, गर्दन तानता, घुमाता। भीषण यज्ञ।

चीखता जाप अचानक शान्त हो गया।

क्योंकि नयी हिदायत अनुसार मीटिंग के धन्यवाद-यापन अंग की जगह बदल दी गयी। उपवन के अन्दर पुरानी मज़ार के गुम्बद छज्जे और चबूतरे पे शिफ्ट कर दी गयी। काला हुजूम उड़ा, पेड़ टीलों से फूटता। हाँ जितने भी नौजवान कौवे थे वो ऊपर लपक के एक गोता नीचे को मारते, पौधों की तरफ़, जिनके पीछे लबड़धबड़ छोटी औरत उन पर चिल्लाई थी कि यहाँ आये तो नोच दूँगी, और फिर पेड़ पर डटे बड़े के सिर के पास से गरियाते उड़ते कि चला है हमारी जगह हड़पने और बुड्ढी हमें हड़का रही है कि उसके गमलों पे बीट न करें जबकि दुनिया भर में बीट फैलाने की आदत आपकी है, हमारी नहीं, हर चीज़ को बीट बना देना भी आपका हुनर। इस तरह धमका के कौवे उड़ गए। वन विभाग में।

एक बुज़ुर्ग कौवी, जो अपने नाम को अपने कौवीहृदय से साकार करती थीं, वहाँ कौवानियत का पाठ याद दिलाने लगीं। वो अपने वक्त की दबंग फेमिनिस्टों में, जिन्होंने ये हक अपनी बहनों को दिलाया कि हम मादाएँ भी हर मीटिंग में आयेंगी और पूरी बिरादरी के निर्णय में हमारी भी साझेदारी होगी। ये भी कि कोई अपना अंडा दूसरे के घोंसले में कौवाकाहिली में नहीं छोड़ेगा, और न सींक तिनका फेंकफांक कर घरौंदा बनेगा — हम भी करीने से रहेंगी, और कौवा भी अंडे सेंएगा, क्योंकि जो बच्चे होंगे वो उसके भी हैं। अभी भी वो मुँहफट थीं और सुन्दरता से अपनी बात रखतीं। वो दस से ऊपर की हो चुकी थीं तो वृद्ध हो ही रही थीं। उनकी आँखें गाय माफ़िक शान्त थीं और पंख बरगद की झूलती जड़ों माफ़िक दानिशमंद। वो धीरे धीरे फुदकतीं और कम लोग जानते कि वो ऐसा धूप के दिनों में इसलिए भी किया करती थीं ताकि भरपूर विटामिन डी उनके जोड़ों को मिले और आदतन नतीजतन ये उनकी चाल-तर्ज़ बन गयी। जहाँ बाकी हड़बोंग मचाते कूदने उड़ने लगते, वहाँ ये गौरवमय क़दमों से बढ़तीं। किसी भागाभागी में नहीं, बम फटता है पहाड़ टूटता है ऐसा कोई संकटग्रस्त भाव उनके चेहरे पे नहीं, बल्कि इतमीनान से।

जिस दौरान कौवे हवा में आक्रांत घूम रहे थे, वो उस कूद आये इंसान के समीप खड़ी रहीं, ध्यान से उसे देखतीं। फिर विचारमग्न भाव से ग्रीनबेल्ट के पुराने गुम्बद की तरफ़ आईं। उनकी निडर पंखचाल पर सामने वाले ने आदरभाव से उनको माइक पकड़ा दिया। जो बाँस की नीम-हरी डंडियों से बना था और उनकी आवाज़ सुन्दर कौवितामय गुंजान लिए आयी।

प्यारे बच्चों, ऐसे न बनो कि कौवा शैतान का पर्याय बने। नर्म हो जाओ। हिमपात की तरह अम्बर से बरसो कि तुम्हारे फाये पर संसार बिछ जाए। दिल से देखो न कि अकड़ से। देखो वो दुपाया कुछ तो नहीं कर रहा तुम्हारे खिलाफ़। वो किसी गहरे दु:ख में है, उधर देखता, उस घर के भीतर। शायद उसका कोई प्रियजन खो गया है। हो सकता है वो उसकी माँ है जो वहाँ से उसे नहीं देख रही। तुम ठीक सामने हो और फिर भी तुम्हें न देखा जाये तो कैसा लगता होगा? संदेह हो पड़ेगा कि हम हैं भी या नहीं ही। वो दूसरी उसकी बेटी होगी। हम बदल गए हैं पर वे नहीं, बेटे के रहते बेटी के पास माँ रहे, ये हार तिरस्कार है। चेहरा देखा उसका, कैसा खोया खोया चाँद।

और तुम, फ़ैमिनिस्ट कौवी ने ढीठ कौवे को तरेरा, ये हर बात पर हिंसा क्यों तुममें भड़कती है? रोज़ बारिश में नहाया करो कि थोड़ी ठंड पड़े। इतनी आसानी से भटक जाते हो बिगड़ जाते हो विवेक खो बैठते हो। ये सब इसलिए कि तुम्हें कौवाधिकार से बढ़कर उड़ने की तमन्ना है। तुम्हारे जैसों को ही कल कोई पकड़ेगा कि यह लो पेटी बाँध लो और जाओ मेले महफ़िल में और बटन दबा दो, रोज़ तुम्हारा थोपड़ा फ्रंट पेज पर आयेगा। बिना सोचे बूझे तुम चले भी जाते हो और उड़ जाते हो, बस अख़बार में थोपड़ा ही रह जाता है, जो तुम देख भी नहीं सकते। कौवा हो, गधे मत बनो। न चील बाज़ सारस। धैर्य बच्चे, उसके झुके सर पे हाथ फेरती वो बोलीं।

उनकी वाणी सुनके सारे कौवे धैर्यवान हो गये और सब्र से खड़े। बस अँधेरा गहराने से जो मच्छरों का धावा हो रहा था, उससे निपटने वो लाल चींटियाँ मसल कर अपने तन पर मलते क्योंकि फॉर्मिक एसिड ओडोमॉस से बेहतर है, पर शान्त भाव से, जैसे कोई गंजेड़ी तमाखू मसले और धीमे से फांक ले। बाकी वो कांव से कान हो गए थे और उन्हें बड़े के चुप विलापी स्वर सुनाई पड़ रहे थे।

खोया खोया चाँद कुछ बुदबुदा रहा था और सारे कौवों की आँखें डबडबा आयीं। ढीठ की भी, जिसने पत्थर मारने बदला लेने का इंतेखाब तज दिया और सोच में पड़ गया कि कैसे एक बेटे का मन हल्का चंगा करूँ।

इतना कि धन्यवाद ज्ञापन के बाद, जिन्हें अपने ठिकानों बसेरों पर लौट जाना था लौट गए, मगर कौवी और उसके पीछे पीछे ढीठ और उसके साथी सब वापस पुराने पेड़ की तरफ़ लौटे, हमदर्दी से।

बड़े के मन की बात सुनने। क्योंकि मन की बात सुनने का उन्हें खास अभ्यास था, खासकर अगर कहने वाला सो गया हो। पेड़ की डाल पर खड़ा।

फ़्लैट में कुछ हिला था। बड़े तपाक से झुके थे कि कम हों तो कम दिखेंगे।

अन्दर लाइट जल गयी थी और बाहर अँधेरा गहरा रहा था, पर कौन उन्हें बताता कि इसलिए उनके दिखने की सम्भावना कम है। दाढ़ी न हो चोर के, तिनके तो उसमें फँसते ही हैं। अपराध भाव से झुके, फिर दायें बायें रास्ता साफ़ है जांचा और कलाबाज़ी सी मारते ज़रा और ऊँची डाल पर उचक आये। यहाँ पत्तों की ओट बेहतर और फ़्लैट आँख की सीध में।

बेवकूफ बहन इस तरह बैल्कनी खुली रखती है और घर को दिवाली की तरह उजाले से भर देती है कि कोई भी अँधेरे और पत्तों की आड़ ले के उसके रहन सहन को घूर घूर घूरे। कभी भी उसने देखनेवालों की चिन्ता नहीं की। नुमाइश बनी खड़ी है और अम्मा को भी दर्वेशाना कॉस्टयूम में जग-हँसाई के लिए झूले पर बिठला दिया है। झूल झूल। देखो सब, न देखा न सुना रहन सहन, और देखो, लसड़ फसड़ कपड़ा और उफ़ अम्मा गिर न पड़े। अच्छी भली साड़ी बाँधती थी और फुर्ती से सारे काम करती थी और अब?

वो उन्हें साड़ियों में याद करने लगे। जिन्हें अम्मा ने तो फेंक दिया, बड़े ने सोचा और दिल में ऐसा गुबार उठा कि वो थक गए और सो गए।

साड़ी-स्मृतियों में सोता पुरुष साड़ी-व्यापारी से कम नहीं। थान पे थान थोक में खोलने लगा, मन के दुखी आंगन में, और पेड़ पर चढ़ा था तो डालियों पर लटकाता गया। ये वे साड़ियाँ थीं जो उसके बचपन में माँ पहनती थी और वे भी जो आगे चलकर वो अपने दौरों तबादलों पे माँ के लिए लाता। अम्मा साड़ी में ही अम्मा थीं। बनारस के दशाश्वमेध घाट पर विश्वनाथ मन्दिर से सीढियाँ उतरतीं औरतों के संग, थाल में आटे के दीये जलाए, तन पर मैसूर की रेशमी टेम्पल साड़ी। सिंदूरी रंग और पतली सुनहली एक धारी की किनारी। पल्लू सिर पर और चार छह स्वर्ण धारियाँ फ्रेम की तरह उसका चेहरा घेरे। आटे के जलते दिये पानी में औरतों ने झुक के बहाये और सितारों का आसमान नीचे उतर के पानी पर झिलमिलाता आकाशगंगा बन इठलाया। अम्मा ने पल्लू से हल्के से अपना गाल पोंछा और पेड़ पर सोते बड़े के गाल पर उसकी मखनी छुअन फहर गयी।

फिर वो गाल पर तमाचा बन गया। जो अम्मा ने रसोई से निकल कर रसीद किया था। सन नहीं याद, न शहर, मगर हवा में कड़वे तेल में तलती बेसन की पकौड़ियों की मादक खुशबू थी। कढ़ी चावल का दिन। अम्मा ने एक कटोरी भरकर उसे पहुँचा दी थी पर जीभ तो जीभ और हाथ तो हाथ और पैर तो पैर और बड़े तो छोटे। लौट जाएँ बार बार रसोई में और मुट्ठी मुट्ठी भर पकौड़ियाँ थाली से उठा लें। गरमा गरम, नरम नरम, कहीं कुरकुरी चोंच या पूँछ निकली हुई। गप्प पे गप्प। अम्मा किधर से आयीं देखा खींचा बाहर बुश्शर्ट की बांह खींचते कि कढ़ी में क्या डलेगा और सबके लिए जूठा कर रहे हो और लगाया एक गाल पे जो पेड़ पे बड़ा मीठा लगा, एकदम मैसूरी पल्लू सा नरम। पर उस दिन सूती धोती थी और पल्लू पीछे से आगे लपेट कर कमर में अम्मा खोंसे थी, वीरांगना सी। कभी तपते चेहरे को थप थप करें, कभी छोटे बड़े को थप्पड़ लगायें।

पेड़ पर सोते बड़े का हाथ स्नेह से अपने गाल पर था।

तब तक कौवी जवान टोली के संग वहाँ पहुँच चुकी थी।

और कुछ समझो न समझो, साड़ियों को जान लो, बड़े कौवों ने कागाफूसी की।

ज्ञान पाने को आतुर कौवों ने नोट-पैड निकाले और एक पंख पैंतरा मार के उखाड़ लिया और पेड़ के रस में डुबो कर अपना नाम और तारीख लिख के मुस्तैद बैठ गए।

सबसे पहले उन्होंने लिखा, 'सो रहा है'।

पेड़ पर अजीब दृश्य था, एक मानस गाल पर हाथ रखे सोता हुआ और ढेरों कौवे नोट बनाते उसके मन की बात सुनते हुए, उसके इर्द गिर्द छात्रों की तरह जमा, हर शाख पर कतार में बैठे। यानी हर शाख पर कौवा बैठा था। कौवी उनका मार्गदर्शन करने और सोते शख्स की बातें जब वे न समझें, स्पष्ट खोलने। साड़ियाँ खुलतीं और नरमी से डाली पे झूल जातीं। कौवे देखते के देखते रह जाते।

मन की बात आगे खुली।

कि फिर बड़े बड़े अम्मा के लिए साड़ियाँ लाने लगे। कोटा जाते हो सुनकर तो अम्मा ने ही कोटा डोरिया मँगाई। हल्की, गाय के दूध के रंग की, उसी रंग के चारखानों में फैली, पतली ज़री की। सफ़ेद लानी चाहिए, बड़े ने खुद से प्रश्न किया पर इतनी प्यारी थी और मातमी सफ़ेद कहाँ? गर्मी की शामों में अम्मा उसे पहन कर पापा के साथ छावनी तक जाती याद आयी। वहाँ कभी ब्रिगेडियर ढिल्लन के यहाँ से फ़ोन आता तुम दोनों यहीं आ जाओ हमने पेरेंट्स को खाने पे रोक लिया है।

कोटा डोरा, कौवों ने एक दूजे से कागाफूसी की।

कि देखा तभी कि बड़े के दिल से रानी कलर की थान खुली, एकदम पेड़ को जगर मगर करती।

वो पटोला थी, बड़े ने याद किया।

पटोला, कागा सिसकार उठे। रंगत तो देखो।

नाचती युवतियों का डिज़ाइन उस पर — नैरकुंज, बड़े को याद था — रास लीला में विभोर। हैदराबाद में चारमीनार से लाये थे। एक पत्नी के लिए भी, पर वो भी अम्मा वाली पर रीझी जायें। अम्मा ने कहा तुम्हीं पहनना मैं बूढ़ी घोड़ी इतनी नाच मटक वाली क्या पहनूंगी। पर बड़े ने पहनवाई और अम्मा कितनी प्यारी लगीं। पत्नी का डाह होगा जो चिनगारी बनकर उस पर दो चार छेद कर गया। धोबी ने गरम इस्त्री चला दी। फिर भी माँ उसे पहनती रहीं, उन छेदों को रफ़ू कराके। और पत्नी कम से कम तीन चार साल तक उसी की फ़रमाइश मेरे हर दौरे पे करतीं, या हैदराबाद से कोई आता जाता हो तो करतीं। जैसे सोते जागते उसे वही नैरकुंज जलाता हो। शायद अब वो उसी की अलमारी में टंगी होगी पर कुछ और तार तार हुई गयी होगी।

लेकिन गडवाल में जो रजस्व था वो किसी और में नहीं, मन बोला।

राजस्व, एक युवती कौवी ने नोट किया, उसे साड़ी प्रकार जान।

गडवाल, उल्लू, उसकी बड़ी बहन ने टहोका दिया।

कौवी, उल्लू नहीं, उसने दीदे मटका कर कहा।

साड़ी पेड़ पर खोलते हुए बड़े सोचने लगे कि देखो माँ की वजह से भारत के इस हुनर के बुनकरों जुलाहों को वो जान सके। कितने आदमी जानते होंगे कि गडवाल कैसी है? साड़ी पूरी सूती पर पल्लू और बॉर्डर रेशमी और सोने चांदी के धागों से कढ़े। पीली साड़ी थी

जिसका पल्लू तोते का हरा था और उस पर वाह रे वाह आम लदे भरे थे, कितने लहरों घेरावों में। आंध्र के गडवा क्षेत्र के पत्थर और काठ पर नक्काशी से चुने गए छापे।

इस पर बड़े को आम याद आ गये जिसका रस उन्होंने अम्मा की पोचमपल्ली इकत पर छलका दिया था। तब भी बड़े छोटे थे और बड़ा रोए। अम्मा मनाती रहीं कि बड़े बेटा इतने रंगों की साड़ी है, देखो मैरून, कत्थई, मेंहदी, हल्दी, सब की मिलीजुली डिज़ाइन, कि दाग दिखाई नहीं देगा। जब अम्मा उस साड़ी को पहनती, छोटे बड़े उसकी परिक्रमा करते और साड़ी हाथों से फैला फैला कर खोजते कि अमरस कहाँ गिरा है पर डिज़ाइन से अलग पकड़ न पाते और सब चिढ़ाते, पर वो चिन्ताग्रस्त रहते और कलमकारी...

कलमकारी, एक कौवी बोली और लिखने लगी।

उसके पहले पोचमपल्ली उसके बाद कांजीवरम। गाय जैसी आँखों वाली फ़ेमिनिस्ट कौवी ने धीमे से कहा, जैसे कोई पहाड़ा बनाती हो।

आपको पहले से कैसे पता, ढीठ ने जो पास आ बैठा था, उत्सुक होकर पूछा।

श्शश उन्होंने इशारा किया और बस मुस्कुरा दीं।

कलमकारी तो बहुत पहनती थीं हमारी अम्मा। बाँस के ब्रश पे बाल बाँध कर इन साड़ियों पे पच्चीकारी करते उसने कारीगरों को देखा था। कलाकार कहो, माँ ने टोका था। वाक़ई, साड़ियाँ खूब थीं। रंग भी अपने तरह के, सब प्राकृतिक। भूरा, कत्थई, गाढ़ा, ताम्बई। जड़, सुपारी, लोहा, तांबा, हल्दी से। फूल, पत्ती, और एक में नील भी था, वो किस अर्क से बनाया होगा, यह जानता था तो भूल गया हूँ। और कांजीवरम...

जिस पर ढीठ ने विस्मय से कौवी को देखा अरे आपने सच्ची कैसे पहले से कांव कर दी? और वो फिर राज़ राज़ मुस्कुरा दीं।

काली कांजीवरम थी, उस पर सफ़ेद राम सीता की कहानी चित्रों में। इतनी भरी हुई मगर फिर भी इतनी सादी।

क्योंकि काला सा कोई रंग नहीं, कौवी ने युवकों को समझाया। आहा, सब कर उठे। बचा बचा के डाली पर मीठी डोलती साड़ी को सहलाते।

चोंच से नहीं, कौवी ने ज़रा फुत्कार कर कहा था, तो पंख से।

दो हज़ार की लाया था। पहली बार दक्षिण गया था। पत्नी के लिए भी लाया था पर वो अम्मा वाली को भी माँग कर पहन लेती। उन दिनों के लिए बड़ी महँगी थी। पर उससे भी महँगी थी पैठनी साड़ी।

पठान। कौवा ने कांव की।

पठानी। एक कौवी ने उसे ठीक किया।

ओहो, बड़ी कौवी ने दोनों को चुप किया। पै-ठ-नी।

वड़ोदरा में मिली थी। गायकवाड परिवार के यहाँ कोई सर पे गठरी ढो कर औरंगाबाद से लाता कि असली पैठनी की पैठ शाही खानदान से बेहतर कहाँ होगी? इन्हें दिखाओ, रानी ने मेरी तरफ़ उसे करा, ले जाएँ अपनी बीवी के लिए। माँ के लिए भी, मैंने सोचा। बांगड़ी मोर वाली, ये कमल वाली, ये अशावली। इनका एक एक रेशा हाथ से कता और बुना है, डेढ़

साल में एक साड़ी बनती है साब। आपके लिए दाम कम, आप हमारे माईबाप के अतिथि हैं। एक जामुनी चुनी, एक काही।

इसे भी पेड़ पर लटका दिया और एक कौवा छात्र ने उसे जतन से पत्तों में लपेट दिया कि कहीं नुकीली टहनी में फँस के उधड़ने न लगे।

फिर सब मुड़ के बड़े को कौतुक से देखने लगे क्योंकि वो हँसने लगे थे जब तमिलनाडु का अपना सफ़र याद आया जहाँ उन्हें राह चलते दुकान में एक लाल ईंट के रंग की साड़ी दिख गयी। बाकायदा गाड़ी रुकवा के अन्दर गए और उसके बारे में पूछा। सेल्स गर्ल ने रुखाई से कहा नो सेल, डैमेज। वो मुड़ने को हुए पर दिल ने वापिस खींचा। दिखा दीजिये। डैमेज डैमेज लड़की चिल्लाई मानो किसी बहरे से बात करती। मगर देख तो सकता हूँ, वो भी चिल्लाये। लड़की ने ऐसे देखा कि निगल ले इस मेरे समय की बर्बादी करने वाले मूरख को और निकाल के विंडो से साड़ी लगभग उनके मुँह पे दे मारी। इतना तो बड़े भी समझ गए कि क्या लाजवाब थी वो साड़ी। तमिलनाडु सिल्क। लाल ईंट के रंग की। पूरे पे मोर ही मोर और पल्लू पे शेरों का बसेरा। इतना महीन काम और नाममात्र की जगह नहीं ख़ाली। फिर भी कितनी सौम्य। एकदम ख़ानदानी। और सिल्क कितना पक्का। छुआ वज़ना सहलाया रखा फिर उठाया, फिर कहा कितने की? वो लड़की यों कि किस पागल से पाला पड़ा। डैमेज, वो अब सज़ा सुनाते अन्दाज़ में चीखी और दिखाने लगी यहाँ से यहाँ तक एक चीरा, यहाँ भी फटा, ये एक और। पर बड़े भी समझ चुके थे ये एक ही ऐसी साड़ी है दुनिया में। कोई बात नहीं। और उस ज़माने में और गिरे दर पर कुछ हज़ार की लाये। आय हाय वो साड़ी। अम्मा ने पहनी और धर्मपत्नी ने भी। चीरे रफ़ू करा दिए। उन दिनों का रफ़ू भी ख़ूब। उसे अम्मा कालीन की तरह लपेट के, उस पर एक और साड़ी लपेट के, कागज़ में रिबन बाँध के अलमारी में खड़ा करतीं कि नहीं तो कट जाएगी।

इस पर बड़े को वो साड़ी याद आ गयी जो इस साड़ी पर लपेटी थी। टिशू की। बादलों का रंग और उसमें घुला सुनहला। असली सोना। क्या बात थी। उन्होंने एक डाल पर उसे लटकाया तो कौवे मस्त हो गए। सोना?

जी हाँ, बड़ों ने बताया। इसको लोग पिघलाते हैं सोना पाने।

हम तो कभी न बिगाड़ें। एक ने रिझाई से हाथ लगाया।

बचा के, दूसरी चिल्लाई। ये भी कटेगी अब।

अरे इसे देखो, एक कौवे ने सबका ध्यान उधर किया। जिधर एक अलग ढंग की साड़ी बड़े बड़ा सँभाल कर खोल रहे थे। छोटी सी साड़ी।

क्या कहता है उनका याद करता दिल? कौवे सुनने लगे।

इसे मैंने ख़रीदा नहीं। तमिल मंत्री की पत्नी के मन्दिर में देखा था। उनके पिता वहाँ पुश्तैनी पुरोहिती करते थे। देवी के श्रृंगार वाली साड़ी थी। मैं भी क्या था, मुझे वो ही भा गयी। वो भी लाल मगर बिलकुल भड़कौवा नहीं थी।

मन्दिर में कौवा? कौवा हैरान हुआ।

कौवा नहीं, भड़। दूसरे ने समझाना चाहा।

मैं समझाऊँगी। पहले सुनो। बुज़ुर्ग कौवी ने सतर्क किया। देखो।

साड़ी पर सुनहरे चैक थे।

छोटा अर्ज़, बड़े ने कहा, पर अम्मा बहुत खुश हुई और जोड़ लगा लिया कि पहन सकें।

सच, बड़े ने खुद से बधाईभाव में कहा, मुझे पता नहीं था मैं कितना साड़ी-ज्ञानी हूँ।

कौवी ने बच्चों को समझाया। तुम्हारे चारों ओर जो भाषा बजती है वो तुम्हारे अनजाने तुम्हारे मन में भरती है और तुम हैरान होते हो कि ये सब मैंने कब सीख लिया। इसीलिए, अच्छी बोली के बीच विचरो।

बड़ा अच्छा बड़े का साड़ी क्लास चल रहा था। उधर घर के भीतर के दृश्य से इतर जिसे वे देखने पेड़ पर चढ़े थे। वे सुप्तावस्था में करीने से साड़ी में लिपटी याद खोलते और एक एक करके पेड़ पे टांग देते। उनके छात्र सीखते और रीझते और मन की बात चलती रही।

सोते बड़े के दिल में छिड़ा कि साड़ियों का दंगल-नुमा कुछ चलता था। पत्नी को वही बेहतर लगती जो अम्मा के लिए वो लाते। वो बिलफ़ेल किसी न किसी रोज़ अम्मा से माँग कर पहनती, बस इतनी ज़िद करके कि एक दफ़े अम्मा पहन लें, इनॉगरेशन हो जाए, नाम अम्मा का चढ़ जाए, फिर मैं पहनूँगी। कभी कभी अम्मा कहतीं अब तुम्ही रख लो, क्योंकि पत्नी अपनी हील में दबाकर साड़ी को हर तरफ़ से फ़र्श तक बराबर करती और साड़ी में छेद हो जाते। पत्नी को शिकायत थी कि साड़ी के ब्लाउज़ सब माँ के नाप के हैं तो उसे कुछ मिक्स मैच करके जुगाड़ करना होता है। साड़ीकाण्ड सास बहू के बीच तकरार और करार का लगातार मामला था। घर में रौनक रहती और दोनों मौकों पर सजी धजी रहतीं। हालाँकि माँ सादे की तरफ़ ज़्यादा झुकतीं और ज़्यादा रंगीन तो पिता के रहते भी कम पहनने लगी थीं।

अरे याद आयी, वो गाढ़ी नीली साड़ी जो वे शान्तिनिकेतन से लाये थे। डिज़ाइनर साड़ी थी जिसका गायत्री जी ने धंधा शुरू किया था। मुग़लई डिज़ाइन के छाप की। पत्नी साथ थीं और उन्होंने चुनी कि बहुत रंगीन अम्मा कम पहनती हैं। लगभग काली नीली थी जिस पर काजली मीना ओ साग़र बने थे। कितनी डल है, बड़े नुक्स निकालते, पर अम्मा को बहुत पसन्द आई। कहीं इनाम बाँटने का आयोजन था, वो उसी में गयीं और मंच पर सिपाहियों को और उनकी औरतों को प्राइज़ देने लगीं। तस्वीर भी है।

साड़ी बिलकुल अलग है, कौवों ने प्रशंसक नज़रों से देखा। कौवी ने पंख बढ़ाकर उसे एक निचली शाखा पर लपेट दिया।

उस सोमवार — या क्या मंगलवार — की संझा बेला में उनकी बहस की गर्मी उनके पंजों पंखों में क्रीड़ारत हुई थी मगर अब वे शीतल भाव से कौवी चची के चार्ज में, पेड़ पे चढ़े के दिल से खुलती साड़ियाँ और उनके प्रकार

को देख देख हैरान होने लगे। कईयों का तभी जी चाहा कि कौवे चलें हंस

की चाल।

माने ये कि रात के आते आते पेड़ पर साड़ी मौसम छा गया। सोता व्यक्ति तो यों भी स्वप्नों से संपन्न होता है, जिसमें वो दृश्य भी आ जाते हैं जिसकी उसे होश में कोई ख़बर नहीं, यानी वो साड़ियाँ भी फडफ़ड़ा आती हैं जो उसने शायद ही वाकई जानी हों। तिस पर उसके मन की बात सुनने को काले हमदर्द पक्षी, तो फिर पेड़ को त्यौहार बन जाने से कौन

रोक सकता था? बड़े का दिल प्यारी साड़ियों की लहर फहर पे झूलता है और वो डाल पे आराम से सोते पड़े हैं। उधर वनविभाग में नगरपालिका के किसी अधिकारी की ग़लती से सही पसन्द की बत्तियाँ जल उठी हैं और इधर घरों के बाहर भी नर्म रौशनी के बल्ब हैं जिनकी भीनी रौशनी में पेड़ पर लटकती बेशुमार रेशम सूती साड़ियाँ लख मार रही हैं और कौवे उन्हें छू कर, पास से देखकर, कभी तो खुद पर लपेट कर भी, ऐसे लट्टू हो रहे हैं कि फिरक पड़ते हैं — वो देखो बाँधनी, ज़रदोसी, बंधेज, तन्चोई, इकत, अजरख, जामदानी, चिकनकारी, चंदेरी, मधुबनी, महेश्वरी, मूगा, कोसा, और वो बालूचेरी जिस पर हुक्का पीती औरतें हैं, ये सफ़ेद ढाकई, ये भागलपुर की टसर, ये तांत की बंगाली शान्तिपुरी, ये तो बस्तर की, संदली रंग की, जिस पर ढोलक बने हैं, जिसकी बाद में काट के ओढ़नी हो गयी, और ये भी कम नहीं, डांग से लाया हुआ लुगदा, प्याज़ी पर फ़िरोज़ी बॉर्डर, लम्बाई में थोड़ी छोटी पर अम्मा घर में खूब पहनतीं, रंग कच्चा था, फिर बहिन ले गयी जिसे वैसे ही देहाती बेढंगे कपड़ों का शौक है, कुछ पैदल है...

पैदली। कौवों ने नोट किया।

पैठनी। कौवी ने सख्ती से कहा।

वो हो गयी, कौवे ने नोटपैड उठा कर दिखाया। फिर रुक कर उसने एक पंख अपने गाल पर रखा और बहुत ही होनहार छात्र की भंगिमा में गऊ आँखों की ओर मुड़ के पूछा, मगर क्यों चची, इतनी सुन्दर साड़ियाँ त्याग के वो झोले में क्यों हैं?

क्योंकि बच्चे, उन्हें ऊपर की सारी परतों से परहेज़ हो गया है और वो भीतर की परतें खोल रही हैं।

उसी पल साड़ी परतों में अपनी पुरानी अम्मा को देखते बड़े जाग गए जैसे उन्हें नयी माँ का एकपर्तीय लिबास याद आ गया और हड़बड़ हड़बड़ अपने कपड़े झाड़ने लगे जिनमें चींटियों चींटों ने मटरगश्ती शुरू कर दी थी। कि उन्हें मसल के मल लो, तो एक काज से दो हाथी मर जायेंगे, चींटी और मच्छर, ये उन्हें स्कूल में नहीं सिखाया गया था। न यूनिवर्सिटी में।

ये क्या हुआ, बड़े ने घड़ी पे नज़र डाली और पेड़ पर झूलती साड़ियों में फँसते इस डाली से उस पर पैर रखा और नीचे की तरफ़ कूदे। साड़ियों का अंधड़ उड़ा जिसमें नए सिरे से तनचोई, टंगाइल, गडवाल, बनारसी, महेश्वरी, कांथा, पोचमपल्ली, कट्टक, बालूचेरी, चिकन उड़ीं और उनमें से चमकता चूरा उड़ा जैसे जगमगाता पसीना।

पर बड़े निकल आये और गुस्से से उन्होंने ऊपर बहन के घर को देखा। अम्मा लसडफ़सड़ चलती दिखीं।

अरे पैर फँसेगा, गिर पड़ेंगी। वो बिलबिलाये।

और वो गिर गयीं। पर उस समय नहीं।

पहला खबरी कौवा था। जो किसी को पता नहीं क्योंकि वो ज़माना गया जब परिंदा देखकर कोई जान लेता ये जयंत है और जटायु जो सीता को पहचान कर राम को तफ़सील देगा, इत्यादि। पेड़ आसमान नदी पक्षी सबकी इज़्ज़त सीमेंट में मिल चुकी है। पानी है बदबू का नाला, आसमान धुएँ का पटल, पक्षी गर कौवा तो चोरने आया या मल मूत छींटने।

वैसे चोरने का खयाल उसे पहुँचते ही आ गया था, जबकि सच में वो आया सिर्फ़ बताने था। मेज़ पर तले टोस्ट पर लाल लाल टमाटर में जज़्ब राजमा देखकर हृदय विचलित हो गया। लालच से जद्दोजहद करने लगा। भूख, उसने अपने को बताया, पर उसके भीतर जागा नया नया ज़मीर भूख को लालच नाम देकर उसको परेशान कर रहा था। बड़ा मुश्किल है जान पाना, उसने सोचा। भूख अच्छे बुरे सभी को आती है, पर चूँकि आजकल पेट स्वादिष्ट ग्रास को सामने देखकर गुड़गुड़ाने लगा है, पता ही नहीं चलता कब क्या है, कब क्या। उसने नज़र हटाने की कोशिश की तो मन में उछला एक कौर चख लूँ तो किसी की गुरबत में क्या फ़र्क़ आएगा? खिड़की खुली है, अपने पास पैर भी और पर भी, फुदक आऊँ या फुर्र। फिर बता दूँगा इनको इनकी अम्मा गिर पड़ीं। पर ये सुनने के काबिल हैं?

मियाँ बीवी उलझे पड़े थे।

उस दिन जिसकी तारीख ज़रूरी नहीं, क्योंकि ये इतिहास नहीं, गल्पहास है, बड़े पत्नी से लड़ पड़े। अम्मा की साड़ियाँ कहाँ हैं? बिदक गयीं पत्नी चूँकि इतने, बकौल फिरंगी बेटे के, सदमों के बाद उनकी सहनशक्ति सिफ़र क्यूँ न हो, कि मैंने दबा लीं क्या, मुझे पहन के घूमते देखते हो क्या, मेरे पास खुद ली हुई नहीं हैं क्या, और कल्पतरु मैं बनी क्या कि ले जाओ जीवन भर का सहेजा, और खाना किस लिए बनता है अगर डबल रोटी और केचप बस खाना है और क्यों हर शीशे के गिलास में व्हिस्की की महक आती है, मेरी दोस्तें उस फ़्लेवर का जूस नहीं पीतीं और पैसा दबाये बैठे हो जबकि प्याज़ सौ रुपये किलो मिल रहा है।

ये मेरे सवाल का जवाब है या जानबूझ के विषयबदल और मैं दबाये हूँ?

तो साड़ियाँ मैं दबाये हूँ और सारे शेयर्स में लगाने वाली मैं हूँ?

तो तुम्हारा छुआ, तो अम्मा का तो, तो तो तो?

झकझक में प्रतिद्वंद्वी का तमतमाना सुकून का बाइस। अम्मा का नाम आते ही बड़े का पारा सातवें आसमान में। अगला मज़ा तब जब सातवें आसमान से प्रतिद्वंद्वी कुछ ऐसा बक दे कि फिर ढिंढोरा पिट सके कि कितना घटिया कहा, कितने भद्दे हो, और सागर पार बैठी सन्तान भी सुनकर अफ़सोस से हाथ मलने लगे कि क्या करूँ, काम धाम सब छोड़कर मोर्चा सँभालने आ जाऊँ?

सब में अम्मा का नाम है और दूसरा नाम तुम्हारे बेटों का, मुझे क्या मिलेगा? और मुझे क्या? क्यों तुम्हारी अम्मा नहीं थीं, उन्होंने कुछ नहीं दिया लाडली को? देखो जी मेरी माँ की बात नहीं करो तो अच्छा। अच्छा बस, अगली बार साड़ियाँ ले जाना, बड़े ने धमकाया।

अपने तो जायेंगे नहीं, चैक मैं साइन कराऊँ, और जैसे मुझे कोई लाभ है उस घर में जाने से, जहाँ चाय भी कायदे की नहीं।

साड़ी चैक चैक बंद करिए, कौवे ने अपनी लार पर ज़ब्त लगायी और कांव की, माँ गिर पड़ी हैं।

ये वही कौवा था जो उछला था कि मीटिंग तितर बितर करने वाले की मैं ऐसी की तैसी करता हूँ और कौवी ने समझाया और वो समझा। पहले सर फोड़ने पे आमादा था, अब उसी सर को सहलाना चाहता था, माँ-रंज के किस्से को जानकर।

जवानी ऐसी ही होती है। जज़्बात उछलते हैं। जान दे सकते हैं, जान ले सकते हैं।

प्रसंग से प्रसंग निकलते हैं। कौवा कैसे दुश्मन से हमदर्द बन गया, ये लम्बा प्रसंग बन सकता है। उसकी भी अम्मा थीं जो प्रसव में मर गयीं। एक अंडा उदर में ही फूट गया और वहीं चिपका रहा और उनका तन क्षीण होता गया, साँस धीमाती गयी, फिर बंद हो गयी। उसकी मौसी ने उसे दर दर यानी घोंसला घोंसला भटक छिटक से बचाया। माँओं के नाम पर कठोर युवक दिल यों पिघला कि माँ हो गया। खुली पलक में झूठा गुस्सा बंद पलक में प्यार का दिखावा भी उड़नछू हो गया।

मामला ये ही है। दोनों भाव भीतर डाटें मारते हैं, कौन सा कब हावी होगा, बाहर छलकेगा, चिरकाल से राज्यों सरकारों चालकों की चिन्ता रही

है, अगर वे कूटनीति में उसे अपनी जीविका नहीं बना लेते। जो आसान लालच है।

यहाँ जो प्रसंग ज़रूरी न होकर भी निकल रहा है वो जवानी-प्रसंग है। जवानी कौवे को औरों के स्वार्थों का पुतला बना सकती है। जवानी की आंधी में सोच बाद में, करना पहले हो जाता है। संगत और माहौल तय करेंगे कि पुतला किधर कूदे — लड़ाई में कि लाड़ में?

लालच का ज़िकर आया है तो वापस बीन्स टोस्ट पर। लालच तो द्वेष प्रेम दोनों में मौजूद है। जैसे देश प्रेम में। तो कौवा वैमनस्य भूल, मलहम बनने को आतुर हुआ। बड़े के लिए ऐसा दिल उमड़ा कि पहुँच लिया पूछते पूछते उनके नए रिटायरमेंट-बाद के घर तक। दरवाज़े पे तो नहीं पर जिधर बड़े बैठे थे, उसके पास की खिड़की पे चोंच से ठकठकाने लगा। उन्हें बताने कि जल्दी करो तुम्हारी पूज्य प्यारी अम्मा गिर पड़ी हैं। मगर मियाँ बीवी ने न देखा न सुना और कौवे को मुँह का ग्रास दिख गया।

इतनी सारी दशाओं और दिशाओं के रहते ध्यान बँट जाता है और एक पल विस्मृत भी हुआ होगा कौवा कि आया क्यों है। औपनिवेशिक मनविस्मृति जैसे — कान उधर जिगर कहीं दिल इधर और आँख इधर उधर। पर अपने पर और पैर के खयाल पर उसमें करुणा पुन: उपजी कि बेचारों के मेरी तरह न पाँव न पंख और चोंच तक बनते बनते रह गयी, तो हैं ही किस काबिल? इस दया का छलकना था कि वो सारी दया लौट आयी जो आज उसे यहाँ लायी थी। कि अम्मा गिर पड़ी हैं, मैं आँखों से देख कर आया हूँ, आपका पता पूछते पूछते, चलिये।

तो कौवा प्रसंग अभी बाकी है। मगर 'तो' कह दिया तो तो-प्रसंग भी। इतना संक्षिप्त दीखता 'तो' ऐसा हक़ीर नहीं। बड़े बड़े भाषाविज्ञ, संस्कृत के ज़माने से और आज की एनी मौन्तों के ज़माने तक, इस पर छनन-मनन ज्ञानवर्धन कर रहे हैं।

तो-तान मज़ेदार है पर अम्मा गिरी हों तो मज़े पे ठहरना शोभा नहीं देता। यों तो अनगिनत अन्तहीन प्रसंग छिड़ जाएँगे। अन्तहीन वैसे हर बात होती है और कोई प्रसंग पूरा नहीं होता। जीवन भी नहीं। मौत से उसे ख़त्म जाननेवाले बेअक्ल हैं — मौत है तभी जीवन अनंत है। आज जीवन ख़तरे में है क्योंकि वैज्ञानिक पैदा हो गए हैं जो लगे हैं कि मौत को ही खतम कर दें और चिरकाल के लिए जीवित हो लें। वे ज़रूर जीवन का खात्मा करने वाले हैं। उन्हें शायद पता नहीं कि ययाति को हमेशा युवावस्था में रहने का वरदान मिल गया तो वे स्वयं उसे तज देने को बेक़रार हो गए। दुश्मनी जवानी से नहीं, हमेशा से थी, क्योंकि हमेशा हो तो उसकी हस्ती मिट जाती है। मौत से ही जीवन है और दु:ख से ही सुख। आदि इत्यादि।

ये सोचने वाली बात है, हँसने वाली नहीं, जैसा बड़े गुलाम अली ख़ाँ बोले जब उन्होंने गाया कि बाजूबंद खुल खुल जाए और बताया कि वो इसलिए कि पिया की याद में गोरी दुबली होती जा रही है और श्रोता हँस पड़े। आगे बात इतनी कि प्रसंग चलते रहते हैं, बंद होकर भी बंद नहीं होते, समाधिस्त रहते हैं, और कोई झोंका उन्हें फिर हरियाता है।

हमेशा कुछ रहता है तो वो है बाकी। चाहे तो-प्रसंग कि कौवा।

बहरहाल अभी चलेगा कौवा प्रसंग। उसने खटखट की पर किसने तवज्जो दी? ज़रूरी बात, ज़रूरी ज़रूरी, वो बोला। किसे फुर्सत? विश्वयुद्ध के चलते। कौवे ने गला खंखारा और सयानों के अन्दाज़ में धीरे धीरे बोलना आरम्भ किया — देखिये, आज मैं वापिस अपने मीटिंग वेन्यू पर लौटा और आपको भला लगेगा कि सोचा आपकी लटकाई साड़ियों को एक बार फिर देखूँ छू लूँ सूँघ लूँ और आपकी माँ की खैरियत भी देखता चलूँ। तो साड़ियाँ तो आपके जागने के बाद से ही शायद ग़ोल बनाकर उड़ गयीं। तो घूमा कि आपकी माँजी पर बैल्कनी से झाँक लूँ। सुबह भीनी भीनी थी, आसमान ने अल्कसी से पलकें झपकीं और गुलाबी आँखें खोलीं। धीरे धीरे जग में घुमायीं तो गुलाबी खुमार पूरे में बिखरने लगा। मेरा खुद का श्याम अक्स भी ललिहा गया, मैंने बैल्कनी के शीशे में देखा। पर पहले कि कुछ रीझूँ, इतराऊँ, मैंने कुछ और देख लिया और मैं भयभीत हो उठा। जैसे उस दृश्य को मेरा ही इंतज़ार था, वो मेरी इन्ही आँखों के सामने घटने लगा। चाय की ट्रे थामे आपकी बहन खड़ी थी और अन्दर वाले कमरे से आपकी माँ जी आगे आ रहीं थीं।

कौवा अपनी रौ में बोल रहा था कि देखा छिड़ी जंग पर उसका कोई असर नहीं। टोस्ट भी ज्यों का त्यों रखा रहा। वो खिड़की से कुछ आगे कूद आया मगर कुछ नहीं बदला। नहीं नहीं, वो उनकी सुनकर बोला, साड़ी से कोई मतलब नहीं, न उनके तम्बू लिबास से, वो तो नया नया आया था कल ही, वो जनखा सिलवा के लाया था। एक रात में वो अभी और छोटी नहीं हुई थीं और कपड़ा उनके टखनों से ऊपर था। तभी तो मैं उनके पाँवों का मुड़ना देख सका। दोष शाहबुलबुल का था जो गुलाबी सहर में उस डाल पर आ बैठा जिस पर आपने आमों वाली पोचमपल्ली टाँगी थी। आपकी माँ ने देखा और जैसे सब शाहों के बरगलाये बरगला जाते हैं, वो बरगला गयीं। ताकत झूठ है पर जो उसे अपने में गुमान ले, उसे सच जानने लगता है। जैसे शाह, जो इसीलिए इतना ढीठ और तेवरबाज़ हो गया है कि हिटलर भी पानी भरे। लोग बेवकूफ, इतनी ताकत एक में बटोर उसे कायदे कानून सुन्दरता

का प्रतीक समझ लेते हैं कि ये जग सजा देगा, जबकि वो अपनी बस सजाएगा। इसे मेरी हतक मत समझिएगा, मैं काला हूँ तो क्या हुआ दिलवाला हूँ, और मुझे शाह बुलबुल हंस इत्यादि बनने का मद नहीं। पर आपकी माँ नयी नवेली ज़िन्दगी में। जो देखें नयी नज़रों से, उत्सुक मन तन से। भटक गयीं। शाह बुलबुल की तरफ़ उड़ के जाना चाहा मगर उड़ते तो हम हैं। तेज़ जाएँगी तो दगा देगा, उड़ जाएगा, सो धीरे धीरे उधर मुड़ना चाहीं। समझे न?

राख और खाक समझे। लेकिन अब तक पस्त त्रस्त मियाँ बीवी इधर उधर हो गए, बीवी मेज़ पर नाश्ता सजाती, बड़े बिस्तर पर वापस आँखें बंद किये उदासी को गुस्से के जामे में छिपाते। कौवे ने सोचा अब शान्त हैं, सुनेंगे। उसने खटखट की आवाज़ बढ़ाई। ठकठक।

बड़े ने आँखें खोलीं। सामने खिड़की पर कौवा, नर्म धूप में नहाया हुआ। उन्होंने धीरे से हाथ बढ़ाया कि पर्दा पूरा अलग कर दें। कौवे की आँख में फुर्ती की उचक फुदक। दोनों मुखामुखम, आँखें मिला कीं।

बड़े को पता होगा कि उस उदास शाम में ये कौवा उड़ा था? ये तो नहीं पता होगा कि उनकी खोपड़ी फूटने से बच गयी। क्या पता बड़े को सब कौवे एक से लगते हों, जैसे अमरीकी को सब सरदार और जर्मन को सब कोरियाई और गोरे को सब काले और भोंडे को सब कमाल और लुच्चे को सब बादल और लफंगे को सब औरतें और इंसान को सब चींटे। वैसे वो देख ऐसे रहे थे कि पहचान बन रही हो। कौवा भी उत्फुल्ल बोलने लगा कि अब सुन रहे हैं।

जो न समझे वो कांव कांव ही सुनेगा, मगर वाणी में अलग उतार चढ़ाव, भाषा का रख रखाव, भावों का रस रचाव, सब था। कौवे ने बताया कि सोचिये अगर दिल कौवा बन उछले और पाँव कछुवा बने तो बुड्ढे गिरेंगे कि नहीं? आपकी माँ के मन और डग अलग पटरियों पे उतर गए और एक पाँव आगे बढ़ा, दूसरा पीछे गया। शाह ये ही चाहता होगा, कौवे ने राजनितिक विश्लेषण सुनाया। कि कदमताल गड़बड़ाये, जो हुआ। माँ की चप्पलें फिसलीं और सन्तुलन साधने की चेष्टा में पीछे को फट फट पलटने लगीं। अरे अरे अरे करती आपकी माँ, हक्का बक्का हुई आपकी बहन, और मैं अलग सकते में। जब तक हम सोचें कि उछलें और उन्हें लोक लें यानी रोक लें तब तक धड़ाम धड़ाके से हो चुका था।

उसी पल सिड अन्दर घुसा और अपने अन्दाज़ में बोला गुड मॉर्निंग पॉप लुक कौवा ऑल्सो सेइंग गुड मॉर्निंग मॉम कुछ खाने को मिलेगा?

जुड़ गयीं सब बातें।

झगड़ा थम गया। सिड बैठे। मॉम ने टोस्ट और बीन्स बढ़ाये। साथ में तले मशरूम दिए और कांटे पर लगा के पहला निवाला अपने बड़े बेटे के मुँह में डालना चाहा पर वो मेज़ से नीचे लुढ़क गया और कौवा बेटा बेसाख्ता उछल गया। पॉप ने कौवे को पॉप करते देखा और झुक कर टुकड़ा उठाके खिड़की से उसकी तरफ़ उछाल दिया। हमारे पति नहीं सुधरेंगे, मॉम ने सर हिलाया पर गुस्सा सिड हर चुका था। बड़े ने कहा, तुमसे तो बेहतर है, चुपचाप मेरी बात सुन रहा है, प्रतिवाद नहीं कर रहा। सिड हँसा। कौवे की आँखों में कौवानी चमक देखते बनती पर सूचना जो देनी थी वो उसने फिर दी कि जल्दी खा लो और चलो अम्मा जी गिर पड़ी हैं।

जाता हूँ, सिड उछले। कौवे ने समझा उसकी बात पर। इम्पोर्टेन्ट मीटिंग है, इंटरनेशनल ओलिंपिक एसोसिएशन के मेम्बर्स संग, वहाँ बात बन गयी तो लाइफ़ बन गयी।

पहले अपनी दादी को देखना, वो गिर गयीं, कौवे ने कौर निगलने के बीच कहा।

दादी के पास कब जाओगे? बड़े ने पूछा। कौवे ने अनुग्रह से उन्हें देखा।

आफ़्टर सन्डे, सिड बोला।

साड़ियाँ ले जाना। गिर न पड़ें।

गिर गयीं, साड़ी से लेना देना नहीं। कौवे ने और डॉक्टर ने बड़े को समझाया। मगर एक की काँव काँव की वक़त नहीं और डॉक्टर की या तो है तो हर बात उसकी हाँ, और नहीं है तो हर बात उसकी ना। और कोई कहता है ये समझने वाली बात है, पर कोई बोल देता है ये तो मन की बात है, जो दोनों अलग होती हैं।

OceanofPDF.com

नहीं, डॉक्टर बोले। उनके हर सवाल का जवाब बेटी मुस्तैदी से देती और हर सवाल पर और डर जाती।

डरे हुए को डराना आसान। क्या उससे कोताही हो गयी? माँ को एकदम स्वस्थ समझने की भूल, उनकी बढ़ती उम्र से बेपरवाह? गेस्ट रूम से कभी कभार उठ के आती कि अम्मा पे झाँक ले। कभी चूड़ी की खनक दूर से आ जाती, कभी बाथरूम की बत्ती सुनाई दे जाती। माँ देख लेती तो उफ्फो जाओ करती, मैं ठीक हूँ। न देखती तो कभी बेटी ही देखती माँ का पूरे बिस्तर पर घेराव। बेटी मुस्का लेती मेरे संग देखो कैसी मगन।

पर आज क्या हुआ कि जैसे डर ने सबक सिखाने की ठानी कि बड़ी निडर हो रही हैं आप। सुबह बेटी चाय बना कर खड़ी थी कि दोनों बैल्कनी में बैठें और माँ बेसबब बेवजह आगे के बजाय पीछे को घिसटने लगी। अरे अरे अरे कुछ गाती सी हँसती हुई, पानी का जहाज़ बनी पीछे को बहती, फट फट करती अपनी चप्पलों के चप्पू चलाती।

सेकंड दो सेकंड का मामला दीर्घकालिक हो गया। बेटी ने ट्रे कहीं रखी और उछली कि माँ की काया को घेरे पर तब तक काया पीछे को लुढ़की, दीवार पे घिसटी और ज़मीन पर। कमर में बेटी का हाथ पहुँचा सा, तो शायद सर दीवार पे कस के नहीं टकराया, मगर बाकी तो सदमा ही सदमा, क्योंकि माँ नीचे पड़ी है, हैरत से तकती ये क्या हुआ, हैरत से उत्तर देती अरे मैं गिर पड़ी।

बेटी सहम गयी। पकड़ा भी और पकड़ न पाई। सिर पे लगी क्या? माँ को कैसे उठाये? मानो मनो वज़न। बेटी ने उसे ज़मीन पर ही घसीटा कि कुछ उठाने में कारगर चीज़ मिले। फ़र्श पर गीला गीला छाप माँ के तन से रिसता। पसीना क्या? सूसू? उस पर और फिसलेगी। डर का आर पार न था। वो माँ को उठा ही नहीं पा रही थी। माँ की हँसी अब अपराधियों की। तुम हटो मैं खुद उठती हूँ। पर फिसलन, बेटी भाग के तौलिया लायी, उससे पोछा, फ़र्श पर आज का अख़बार फैलाया। माँ ने नज़र घुमायी, किस चीज़ पर वज़न डालकर अपने को ऊपर खींचे। एक कुर्सी लाओ, हुक्म दिया। घिसटती हुई माँ कुर्सी तक गयी जैसे बच्ची। कुर्सी का सहारा लेकर किसी तरह अपने को पलटा। कि पीठ ऊपर, पेट नीचे। फिर दो पाए कुर्सी पर, दो फ़र्श पर टिकाये और साँस बटोरती पड़ी रही। चौपाया कोई जंतु बनी। बेटी हाथ इधर उधर लगाती पर माँ अपने आप ही उठ रही थी। मादा भेड़ बकरी सी। उसका लबादा, ढेरों बच्चेजनी का झूलता पेट सा। उसको ऐसा देखकर बेटी के हाथ पाँव फूल गए, मैं अकेले कुछ नहीं कर सकती, केके को फ़ोन करूँ, बड़े को, पर इन्हें ऐसे छोड़ भी नहीं सकती।

देर तक माँ की उलटी काया सुस्ताती रही, फिर ज़ोर देकर उन्होंने अपनी पिछाड़ी उठाई, एक एक करके हाथ कुर्सी पे कसे और नहीं नहीं रुको रुको आ आ करती उचकी, बेटी को पकड़ के धीरे से घूमी और देर तक वहीं दीवार के पास कुर्सी पर पसर गयी। बेटी सोच सकती थी अब देखो नीची कुर्सी के फ़ायदे पर तेज़ तर्रार ख़याल अभी चूरे पड़े थे। माँ उठ पाई तो बोली सब ठीक है पर छोटी उँगली मुड़ गयी है और ज़िद्दी ब्राह्मणपन में बोली पहले नहाऊँगी।

बेटी झाँकती रही, छोटी सी रुई की गुड़िया, वस्त्रहीन, अपने अंगों को सँभाल कर धोती पोंछती।

डॉक्टर को फ़ोन किया। चक्कर तो नहीं आया? बेहोश तो नहीं हुई थीं? घुटनों में दर्द होता है? सिर भारी रहता है? फ़र्श पर गीला? पसीना तो नहीं था? क्या खाया था? गला जलता है? ब्लड क्लॉट ब्लड प्रेशर कैटरेक्ट ईअर प्रेशर हार्ट, चार्ट खुलने लगे।

नहीं, डॉक्टर बोले। उन्होंने बेटी को सुझाया कि अस्पताल ले आओ। माँ मना करती रही पर बेटी ले गयी, बड़े के सुझावित अस्पताल में, जो सीजीएचएस से जुड़ा था, जहाँ उनका सरकारी जाँच इलाज होगा।

अस्पताल की बेड पर माँ ठीकठाक पर अनमनी सी लेटी हुई। जैसे फिर लिटा दिया मुझे। अरे कुछ नहीं, वो झेंपी भी, झिड़कती भी। चप्पल पलट गयी और मैं गिर गयी।

सुबह के वक्त अस्पताल में फ़िनायल की रौनक थी। ओपीडी के बाहर सरदार जी की रौनक थी। ठट्ठे, मुबारकबाद की आवाजें बुलंद। डॉक्टर ने निकल कर झड़प लगायी कि ये अस्पताल है तो बूढ़े सरदार ने मिठाई का डब्बा बढ़ाया — डॉक्टर साब पोता हुआ है, लो मिठाई शिठाई खाओ। उनकी बगल में कुछ सरदार युवकों ने वल्ले वल्ले हाथ उठा के भांगड़ा रचाया।

अम्मायें गिरती हैं तो कथा में सारे किरदार गिरते पड़ते एक जगह जमा हो जाते हैं। एक झोंक में, जैसे झोंक नहीं झन्नाटा हो कि तड़तड़तड़तड़ सब लुढ़क पड़े एक ओर।

वही पुराना परिवारों का चलन। कि सबको फ़िकर, चाहे एक दूसरे से चिढ़ प्रतिवाद। आपस में बने न बने, अम्मा डोर जोड़ती।

सब अपने वक्त के प्रतिबिम्ब और सब अपने वक्त से अलग थलग भी। क्योंकि दर्पण के इतने कोण इतने मोड़ इतने कोने इतने अनहोने कि अक्स किसका और कैसा, टेढ़ा देखना न जानो तो कत्तई न भानो। आईने की कांख में समय की फांक और पंजों की दबोच में समय की आँख और जहाँ छवि सुस्ताने लगे वहाँ समय का टुकड़ा, अलग झुर्री, अलग झोल। शीशे का तुड़ा मुड़ा चटखना भी समय। हर रफ़्तार भी समय, चाहे झूलता झूमता

फिसलता चकराता उछलता तैरता और औरतें, उनकी तो कहियो क्या, कि रोज़ मर रही हैं पर किताबों में जी रही हैं और अस्पताल में पहुँची माँ के आगे पीछे सब पहुँच लिए हैं और वो हैं कि कहती हैं रोज़ी को बुलाओ।

बड़े ने शायद सुना साड़ी पहनाओ। अम्मा गिर पड़ी थीं अजीबो-गरीब फुरफुर उड़ते तम्बू-लबादे में। उन्होंने बहन के बचपन वाली जवानी के बाद आज सीधे सीधे उसे पैकेट थमाया कि इसमें हैं, निकालो। निकली साड़ियाँ।

पत्नी की आँखें फटीं कि मेरी अलमारी से ये कब इन्हें निकाल लाये और पुराना घाव हरियाया कि मेरी चीज़ कभी मेरी नहीं रही, ससुराल में जो चाहे उन पर हाथ मार ले, मेरे बच्चों तक को मुझे पालने न दिया, कभी बुआ जी की गोदी, कभी दादा दादी की, और घर तो जग भर की सराय, मुझे पता ही क्या कि अपना घर किसे कहते हैं, ननद तो जब चाहा रुक जातीं, अम्मा मेरी नाइटी बिना मुझसे पूछे दे देतीं कि आज यहीं रुक जाओ, और तो और जिसका जी हो आकर मेरी विंडो सीट पर बैठ जाते जहाँ से मैं अपना पढ़ना रसोई पर नज़र रखते हुए कर सकती थी। फिर इलज़ाम दें कि बहू को घर के कामों में दिलचस्पी नहीं रही। गाड़ी और ड्राइवर भी देखा कि खड़े हैं, तो अपने गाड़ी स्कूटर का पिट्रोल बचाओ और माँ के बहाने कि पास के मार्किट में नोर्र सूप मिलेगा, ऑर्गेनिक है, खाती नहीं तो उसे पियें, चल देंगे, और दस मिनट का काम घंटे भर में करके आएँगे, अपना ड्राई-क्लीन लाना, मिलना मिलाना, उलजुलूल करते हुए। सौ दिन में एक बार पेट्रोल भरा देंगे और दो सौ दिन तक अम्मा हर ज़िक्र में उठाएंगी कि पेट्रोल भरा दिया था। सब आते हैं अपना स्वार्थ साधने और खुद अपने घरों, अपने कामों में किसी की दखल नहीं लेते। ऐसे बेढंगे रहेंगे कि खुद ही कोई दूर तक न फटके। पूरा इतिहास एक बार फिर धुआँ धुआँ लहरा गया पर अस्पताल के नाज़ुक मौके पे चुप रहीं।

चुप हो जाएँ और चुप न रहा जाए तो अलग मुकामों से अलग आवाजें फूटती हैं — चीं चूं खिड़की पे जाला देखो साफ़ करो, फुस्स ये चारा बुरादा खायेंगी यहाँ, चलिए अम्मा घर चलें, पेंपों गज़ब हो जी, ये साड़ी यहाँ पहनेंगी, शॉकिंग पिंक, और यहाँ तो वैसे भी अस्पताल का गाउन है, और इन स्वरों के बीच पत्नी ने निकाल के गिन लीं कौन सी और कितनी उनकी साड़ियाँ यहाँ आ गयी हैं। सात साड़ियाँ अस्पताल के लिए।

तभी गिर गयीं, बड़े ने डॉक्टर को बताया पर डॉक्टर असहमत थे। वे तरह तरह के सवाल पूछते रहे मगर साड़ी से सम्बन्धित कोई नहीं था। क्या माँ को आँख से सूझा नहीं, आँखें जाँचो, कमज़ोरी आयी क्या, दिल जाँचो, ईअर प्रेशर गड़बड़ा जाता है, कान जाँचो, उँगली क्यों मुड़ गयी, बोन डेंसिटी चैक करो, अनीमिक हो सकती हैं, खून, हेमोग्लोबिन, प्लेटलेट, थाइरोइड, सब देख लो, ईसीजी, ईएनटी, एमआरआई, ये टैस्ट वो टैस्ट, सब लिख डाले। जब पता चला कि कभी माँ के गॉल ब्लैडर में पथरियाँ थीं और उसे निकाल दिया है तो उसका भी एॅक्सरे करो कि वहाँ सूजन रह जाती है जो फट सकती है।

माँ को व्हील चेयर में डाल दिया। उम्र, उम्र के तकाज़े। एॅडमिट कर दो, प्राइवेट कमरे में देखो, राहत बनती चली, जाँचें होती चलीं, गिरने पर माँ हँसी थी पर अब थक गयी थी,

उन सारे टैस्टों को करवा के जो अस्पताल में कदम रखते ही प्रस्तावित करे गए और जिनमें तीन दिन लग गए।

केके और बड़े अगल बगल खड़े थे। आपस में नहीं पर डॉक्टरों नर्सों से बात करते।

आँख मारती हो, माँजी? डॉक्टर ने फ़ाइल पढ़ के पूछा।

कभी कभी, माँ सोच के बोलीं।

गाती हो तो आवाज़ में खड़तलापन आता है?

गाती तो नहीं हूँ, माँ ने याद किया।

खाँसी मंद्र कि मध्य कि विलंबित?

तार सप्तक, माँ ने अपने सोच से सुर मिलाया।

और पाँव खुजाती हो माते तो कमर झुकाती हो कि पैर उठाती हो?

छड़ी बढ़ाती हूँ, माँ ने समझाया।

सपने आते हैं? पूछा।

बहुत। माँ ने कहा।

इनका...। डॉक्टर ने किसी अनजान भाषा में कुछ टैस्ट्स और लिख डाले। हैड डॉक्टर थे।

नर्स बोल पड़ी। डॉक्टर साब रात को, उसने रजिस्टर का पन्ना खोल डबलचैक किया, हाँ, 12-3 पे और फिर सुबह 4-52 पे पेशेंट सीटी बजाती है।

व्हॉट, सीटी हटाओ, इन्फ़ेक्शन हो सकता है।

नहीं नहीं, नर्स हँसी, अपने मुँह से बजाती हैं।

इन्टरेस्टिंग, डॉक्टर ने गौर से माँ को देखा और कलम एक आध बार अनिश्चय में उठाई, पर शायद इतनी सीरियस बात न लगी हो।

समझे न, साड़ी से कोई मतलब नहीं। वे हिक़ारत से बोले, बड़े को, जो जल्द से जल्द डिस्चार्ज करा के अम्मा को घर ले जाना चाहते थे।

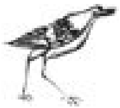

मेडिकल गाउन, स्टेथेस्कोप लटकाए, फ़ाइलें पकड़े, आ रहे हैं जा रहे हैं। ये गोली, वो गोली खिला रहे हैं, इंजेक्शन भी लगा दी, सेलाइन भी चढ़ा दिया, पर डिस्चार्ज बड़े डॉक्टर के हाथ में, जो सुबह है तो शाम आएँगे, शाम तो आती सुबह। पैसा बड़े कटवाएँगे, दिन भर सब आयें जायेंगे, रात बेटी रुकेगी क्योंकि उसका तो ऐसा काम, अगर वो काम, जो वो कहीं भी कर सकती है।

सबके चेहरे डरे बुझे। बेटी का मायूस। कि अकेले मैं नहीं सँभाल सकती और ये ही करना था तो औरों की तरह हो लेती, जिसमें अकेले न होने के फ़ायदे होते, यहाँ तो अकेले

के नुकसान और ज़बरदस्ती के साथ के भी नुकसान मेरी झोली में। बहू भी परेशान, किससे साझा करें, बस एक बेटा है जो मनोयोग से सुनता है। वॉर्ड से निकल कर फ़ोन लगाती हैं। दूर देश का बेटा उन पर आई मुसीबत की घड़ी में उनका। वहाँ से चिन्तित कि अपनी माँ को राहत कैसे पहुँचाए। माँ अस्पताल के कॉरीडौर को बताती हैं, कुछ दिन कहीं जाने दिया तो देखो गिरा दिया, देखें तो हम देखें, और कोई न देखे। बेटे ने कहा आप ग्रैनी को इलेक्ट्रॉल पिलाइए, सोडियम डिप हो गया होगा, और खुद भी साथ रखें, हर आध एक घंटे में माँ, एक घूंट दो घूंट लीजिये, पता नहीं चलता पर डिहाइड्रेशन होता है, इलैक्ट्रोड्स की कमी। हाँ बेटा, कभी सर घूम सा जाता है पर वो तो हर समय आगे पीछे करने से, आजकल मेरी योगा क्लासेज़ भी नियम से नहीं चल पा रहीं, बहू ने भीजे भीजे दिल से बेटे को कहा और थकी बुझी सुखी लगी। बड़े अकेले खड़े थे, चिन्तायुक्त। मगर धर्म-गर्व जागा हुआ था कि अब अम्मा फिर मेरे पास, सारे टैस्ट करा दिए, सब ठीक है, यहाँ से सीधे घर।

उनकी पुतलियों की धर्म-गर्व ज्योति तब मद्धिम हुई जब रोज़ी अस्पताल में दाखिल हुई। उसी सुबह वो उस केके के संग एक कमरे में थे। कुछ हैरान कि हमारे गोरे चिट्टे परिवार की लड़की को काला बैंगन भट्ट नसीब हुआ, इससे शादी करेगी तो बच्चे किसपर जाएँगे सोचा है, दोबारा बेशादीशुदा न हो जाए, बहुत भरोसेमंद तो लगता नहीं। और अब ये एक और मर्ज़ सीना ताने चली आ रही हैं।

रोज़ी सीना ताने आयी। पहले फटकारा, मुझे तो आज पता चला, घर की तरफ़ गयी तो गार्ड ने बताया। ये क्या, आपका चेहरा ऐसा उतरा हुआ? बाजी, जान है तो जहान है, जोश है तो जीत है। वर्ना कहानी ख़राब, वार्ता पूरी।

डॉक्टर नर्स ने एक नज़र देखा, फिर अपने काम में डूब जाना बेहतर समझा।

रोज़ी ने पर्स से छोटी कंघी निकाली और एक साइड पर होकर जूड़ा खोला, मुँह में जूड़े की पिनें दबायीं, हवा से बिखर गयीं लटों को समेटा और बाल बना कर माँ के सिरहाने बैठ गयी। तीन दिन से बाजी? उसने आँखें मोटी मोटी कीं। कसे कुरते के नारंगी और स्याह नीले फूलों के पीछे, चुन्नी के नीचे हाथ करके, चुपके से अपने ब्रा की मुड़ गयी पट्टी को सीधा किया।

खुद गायब थी, नालायक कहीं की, माँ मुस्करायी।

बाजी, रोज़ी की आवाज़ गूंजी। नालायक भला। हमेशा संग रहता है। लायक छोड़ देता है।

नर्स हँस पड़ी। माँ का टेम्परेचर नाप के जाने लगी।

कितनी गर्मी है हमारी बाजी में, रोज़ी ने पूछा?

नॉर्मल है, नर्स ने दक्षिणी भारतीय अन्दाज़ में सिर हाँ भी और ना भी में हिलाया।

हम आ गए न। सब नार्मल। नहीं तो पता नहीं क्या हो जाता।

अम्मा खुश खुश बोलीं। मर जाती और क्या?

बाजी, रोज़ी बुआ चटाक से पलटी, ऐसा आसान नहीं। एक दिन मरने के लिए हज़ारों दिन जीना पड़ता है।

अस्पताल के गलियारों में रोज़ी का ये कथन ड्रामे के मनपसन्द डायलॉग की तरह गूंजने लगा। जैसे गब्बर का अरे ओ साम्भा, कितने आदमी थे। कि एक दिन मरने के लिए बहुत दिन जीना पड़ता है, तब जाकर मौत नसीब होती है।

किसी को नहीं मालूम कि रोज़ी अस्पताल में तमाशा बनके न घूमे इसलिए या जितनी जाँच करनी थी हो चुकी इसलिए डिस्चार्ज पेपर्स तैयार हो गए और बड़े को बाद में पता चला कि कागदी कार्रवाई रोज़ी कराती रही, बेटी माँ को लेकर वापिस अपने घर चली आई। बड़े का धर्मगरूर फिर अधर्मास्थ हुआ। और अस्पताल वालों में रोज़ी के पिछले डायलॉग से भी अधिक लोकप्रिय ये वाला हुआ कि बाजी ने कहा बड़े को आने दो और रोज़ी बोली काहे के बड़े, दही के बड़े!

लौटीं तो हर तरफ़ से लोग दौड़ पड़े उनकी पूछने और दो ठो उनके सामान फ़्लैट तक पहुँचाने। गार्ड ने फाटक खोला, सलाम किया, माली ने गाड़ी का दरवाज़ा खोला, सफ़ाई करने वाले, गाड़ी पोंछने वाले और अख़बार वाला, बाइयाँ, अन्य ड्राइवरां और ऑफ़िस को निकलते सोसाइटी वाले सब दो टक रुके। कुछ नहीं था, बच्चे ज़बरदस्ती ले गए, उनकी तसल्ली के लिए मैं मान गयी, मल्लिका-ए-अम्मा ने फ़र्माया। उम्र दगाबाज़ है, प्रजा ने खुश होकर जयकारा दिया। क्या उम्र, बेटी ने कहा, डॉक्टर पूछ रहे थे क्या खाती हैं, दिल बच्चा है। और पेट बुड्ढा, माँ ने हाँकी। अपनी छड़ी घुमाती और रंग बिरंगी तितलियों को सबके सिरों पे नचाती।

ढेरों बदन जुलूस बनकर फ़्लैट तक छोड़ने गए। घर का दरवाज़ा खोला तो चक्रवात सी माँ अन्दर लपकी और सारी खिड़कियाँ खोलने खुलवाने लगी। जिससे गिलहरी फुदक के गौरय्या फुर्र से चींटा नन्हे पाँव चितिर पितिर ख़रगोश खरगोशी चाल हिरन छलांग न्यारी हाथी सूंड डुलाता बिल्ली दबे पाँव चूहा फुर्ती से भीतर और अलमारी के पीछे गायब कुत्ता प्यार से दुम हिलाता और ज़बान निकाल के चाटने को भीतर दौड़े, धूप हवा के भेस में।

बेटी को इतने सारे बदन देख कर कुछ कुछ हुआ। उनकी महक जिसमें मिट्टी पसीना साबुन खाना खुशबू तेल पिट्रोल सब मिलजुल गए, सीधे दिमाग को चढ़ी। वो घर में धीमी चाल घुसी जैसे वो है मरीज़ जो अस्पताल से घर आई है।

तुमने गमलों में पानी नहीं दिया मिट्टी एकदम पथरा गयी, माँ मूढ़ा खींच के बैठ गयीं और उँगलियों कोहनियों को मिट्टी में गाड़ दिया। वापिस पौधों के संग उगने। वापिस बदन में फड़कने।

फिर वही, सोलह को चढ़ती बच्ची न कि अस्सी में उतरती बुड्ढी। बच्ची नहाती है तो बदन निहारती है, सीने पर कलियाँ नाभि पर गोलाई जांघों पर बालियाँ चेहरे पर रिझाई। घबराती, मदमाती, रहस्य भी, हुड़दंग भी। अपना ही हाथ कहीं छुल जाए तो थिरकन। इस तरह फिसलता, सरकता, हल्की हल्की हिलोरों को ऊँचा उछालता। तब, तब? शुरू हो गयीं उई उई माँ की सिसकारियाँ।

अस्पताल ने भोंक भांक के बदन के एहसास और घाव ताज़े कर दिए। बांह पकड़ो तो, पीठ ठोंक दो तो, उई दब गया, निशान पड़ गया, देख लो, इतने इंजेक्शन एक साथ लगाए, नर्स को रग नहीं मिल रही थी सब जगह खोंपती गयी। कहीं रंग बिगाड़ता जैल लगाया, कहीं सूई भोंकी, कहीं बास मारता मलहम।

सब जगह दुख रहा है, वो सुख से कहती, अपने ढिलाये धब्बाये लटकते तन पर हाथ फेरती, आँख फेरती। देखो ये अस्पताल में उगा है।

वाह अम्मा तुम्हें रटे हुए हैं जो कह रही हो नया है?

क्यों नहीं, मेरा बदन मैं नहीं जानूंगी? ये देखो, ये छुओ, ओहो, अइया।

खुरदरे कोनों खरोंच गड्ढे दाग फफोले पाटने मिटाने की फ़िक्र में।

जिसका इलाज हकीम लुकमान के पास नहीं, बस रोज़ी के पास। लायी धतूरा का पत्ता मस्से पर बाँध दिया। आलू का छिलका चेहरे पर मल दिया। बदबुओं से घर को महका दिया और घर फिर वाचाल हो गया, दीवार खम्बा कोना खड़का के देख लो। माँ आँखें फाड़ती कि हाँ वाकई ज़रा कुछ चपटा गया और देखो देखो दायरा कुछ कम हो गया है, रंग भी फीका फीका। छड़ी से तितलियाँ उड़ाती, सरबसर बेखबर कि उनकी बेटी के मन में उठा है कि किसको पड़ी, कौन है देखे जो?

ये कौन सा बदन फ़ितूर है जो सिर्फ़ नए यौवन का हक और मद है? जैसे उसके बाद का जीवन दिन प्रति दिन और तिल प्रति तिल केंचुली उतारने फेंकने का है, विरक्ति का?

बदन रहस्य है। रोज़ी का, बेटी सोच बैठी, अम्मा को उसकी बांह पे टेक लगा के नीचे मज़ार तक घूमने जाते देख। ये कौन बदन अम्मा को हाथ लगाता, कि लगाती, है?

नुकीले सीनों वाला, जो रोज़ी के हाथ ऊपर उठाने पर ओढ़नी से कूदने को लालायित हो जाते हैं। सीमा का उल्लंघन।

ललित कलाओं, लोक संस्कृति में एक अलग जिस्म है सीमाओं को पार करता। सीमा जहाँ पार होती वहीं संगम होता है। आदमी औरत एकमेक। बिरजू महाराज और कत्थक, जयशंकर और सुन्दरी। शंकर और पार्वती। इनके मिलन जादू रचते हैं, अन्य बनकर, अन्य को अपना बना कर। गाँधी औरताना पालथी में बैठ कर सीमा लाँघते हैं। लच्छू चाचा रसोई लगा के सब दिल जीतते हैं।

लच्छू चाचा शादी बरात के मौके पे औरतों की टोली में सबसे आगे होते और पूड़ी कचौड़ी छानते, भरवाँ करेला टिंडा भिन्डी का मसाला भूनते पीसते। सर पर धोती डाल, आँगन में पैर पसार, जच्चाओं के लिए बड़ी परात में घी में भुने आटे और बेसन में सोंठ गोंद बूरा मेवा डालकर, जब वो हथेलियों में गोल गोल सिठौरे नचाते तो उनके ज़नाना रूप रुख पे कोई नहीं हँसता, बल्कि लड्डुओं की सुंघाई से ही नयी नयी माओं का जी जुड़ने लगता। चाचा हमें भी चक्खा दो, आदमी और बच्चे मिन्नत करते। चाचा हँसते और उनसे पूछते कि बेटा जना है कि बेटी, तब तो दें, और बड़की अम्मा लगते और आंगन में हँसी टीपें मारती। पर उन पर नहीं। न कोई उन्हें नामर्द और जनखा कहता। बड़ी इज़्ज़त थी उनकी। सारे मर्द खा लेते तब वो औरतों के संग रोटियाँ तोड़ते, मक्खन मार के। औरतों में उनका संसार और टप टप रस बहार।

लच्छू चाचा को नहीं जानते तो सिठौरों को भी क्या जानोगे? न राधे पहलवान की लस्सी और मलैयो को, या मौसा की बालूशाही को। और लालू चाचा के शक्करपारे। टिमक ताऊ की बाजरे की खीर। बड़नक्कू की इमरती और रसीली गालियों वाली नच्ची काकी की लवंगलता। सब रस जस से वंचित हो तुम तो।

मगर यहाँ उस युग का पुनर्निर्माण नहीं चल रहा, एक घर की दास्तान चल रही है, जिसमें जिस्मी आस्वाद के अलग अलग तेवर हैं और रोज़ी जैसों का तो समझ ही नहीं आ रहा और बेटी को समझ आना कि समझ नहीं आ रहा मिटी लकीरों की छवि बना रहा है। नीम उभरी, कि नीम डूबी।

कौनसेबदन वाली रोज़ी के संग माँ भी नयी नवेली बदन हो गयी है। बाल धो के निकली है, तौलिये में ढीला लपेटा था क्योंकि रोज़ी-हिदायत है कि गीले बाल खुले छोड़ने से हवाएँ उनका माल ले उड़ती हैं, रूखा कर देती हैं। अब ढीली चोटी बना रही है। माँ कुर्सी पर बैठी है और रोज़ी उनके पीछे खड़ी उन्हें छूती। किस बदन की किन उँगलियों से? अपने आप को हर किसी से छुवाना अजीब है, और क्या सोचे बेटी?

आओ बेबी तुम्हारी भी कर दूँ।

ढीली चोटी बनानी चाहिए। माँ कहती है। पत्रिकाओं में पढ़ा जो केके उनके लिए लाता रहा था कि रोज़ी की इत्रफुलेली बातों में आ गयीं?

हाँ बेबी। तुम्हारे बाल झाडू हो रहे हैं। सिर पर जो नाग की तरह लपेट के फन काढ़े रखती हो।

न तेल लगा पाती हूँ, न कंघी ब्रश कर पाती हूँ, नए कर्तव्यों में अपने पुराने काम होते नहीं, आपलोग तो मुझे मेरे हर काम से बाहर करके मानेंगे, अन्दर ही अन्दर बेटी का उत्तर।

ऐसे मज़बूत कर दूँ कि अपने बालों से हल खींचते हुए खेत जोत लो।

जी हाँ खेती बाड़ी का शौक पूरा करना है, मन में कहा।

क्यों नहीं? रोज़ी ने आँख मटकाई जैसे कुछ सुनकर। क्या बत्तख तैरेगी?

जिस पर बेटी चकरा के घूरने लगती है और बुआ और अम्मा हँसने लगतीं कि मज़ाक उन्हें समझ आ गया।

ये क्या उलटबाँसी है? शायद कोई सुराग है इस उलट तन को समझने का? अजीब कि रोज़ी को जो कहो, उसका उलट भी लागू। जैसे सपाट परिभाषाओं को धता बतलाने में लगा तन। सीमाओं की कोई वैधता न मानता बदन। इधर भी, उधर भी।

एक नदी थी जो बह रही थी। जब ऋषि ने वैश्या को हिकारत से ललकारा तो वो बोली अगर मैंने अपना धर्म निभाया है तो नदी दूसरी तरफ़ भी बहेगी। उसने हाथ जोड़े और मंगल अर्चना की और आँखें खोलीं तो नदी उलटी दिशा में बह रही थी।

ऐसे में जनमानस हमेशा पशोपेश में रहेगा कि सही दिशा कौन सी, तब तो उलट पता चले। इधर भी बहे, उधर भी बहे। सीमा के इस पार, उस पार। तब क्या समझें?

और जहाँ पानी सीमा पर मिलता है तो वो पल कौन सी ठिठक?

बेटी के बदन की ठिठक। केके के घुसने पर। अपने बदन से दूर निकल के खड़ी है ठिठक।

केके प्रसन्न। नीचे रोज़ी और माँ मिल गए, उन्हें मेरी गाड़ी में जहाँ वो जाना चाहते थे भेज दिया है। यहाँ कोई नहीं है, बस तुम और हम और चाभी मेरे पास।

कहाँ? बेटी ने घबरा कर कहा।

यहाँ। केके ने उसको पास खींचा।

अम्मा...कहाँ...? उसने उसके ज़बरदस्ती के बोसों के बीच कहा। अजीब हालत में कि एकदम झटक देगी तो बुरा न मान जाए और खीझ भी कि मैंने 'नहीं' कहने की आज़ादी भी गँवा दी।

कोई झील है जहाँ मेला लगा है। हवसी होंठों के बीच केके फुसफुसाया। आजकल उसमें बहुत पानी है, उसकी बेसब्री बढ़ी।

जमुना में पानी नहीं, किस झील में पानी?

बेटी को उसके होंठ सूखे चिपचिप लगे। हटो, उसने केके को ढकेला। कोई आ जाएगा।

बिल्ली, चूहा, कौवा, केके ने उसे चटाई पर लुढ़का दिया।

अम्मा...उसने कहने की कोशिश की।

अन्दर छुपी हैं? केके के हाथों में मस्ती, ज़बान पे मज़ाक।

वो सब जगह हैं, बेटी का तन बोला पर स्वर फूटा, हटो कहीं वो लौट आयें।

केके उस पर झुका। उसने मुँह जो हँसता सा खोला कि लार की एक लम्बी धार वहाँ से बेटी के चेहरे तक चू गयी। ऐसी रेशेदार कि चाहो तो उँगली पर धागे की तरह लपेट लो।

धागा केके को ही लपेट गया और जल्द ही वो धराशायी हो गया। घिन सा कुछ हवा में थूका पड़ा।

दोनों खड़े हो गए, बेटी झेंपी सी, केके रूठा सा।

इतनी जल्दी नहीं आयेंगी, वो बोला और अपने कपड़े सही करने लगा।

कुछ भूल गए हों। बेटी ने सहज बोली करनी चाही।

भूल तुम गयी हो। कि हम क्या थे और तुम्हें अच्छा लगता था।

ख़ैर, वो जाने लगा। मर्ज़ी तुम्हारी चलनी है। जैसे आश्वासन देता कि ज़बरदस्ती तो होनी नहीं, पर इलज़ाम भी कि मर्ज़ी तो मर गयी।

मर ही गयी। इच्छा नहीं होती। घरबार, घरद्वार, घरदारी चल निकले, सुचारु चारु सलीके से, तो जिसे कहते हैं वैसी इच्छा यानी लिबिडो, वो एड़ियाँ ठकठकाती खुले मौसम की तलाश में निकल जाती है, बिजली बरसात के धूमधड़ाके की हसरत में। इस क़दर सधे सँवरे कुशल गृहस्थ घर में लिबिडो का वास नहीं।

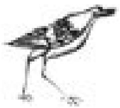

उसे बनाती लकीरें पुंछ गयीं हों, सवेरे के धुँधले में ऐसा धुन्धलाया हुआ बेटी का चेहरा।

वो प्रसंग बाद में।

यानी अभी।

अपने काम से, जो वो नहीं कर रही थी, माशा भर सिर उचकाया घड़ी देखने, तो मिटी मिटी लकीरों में गृहस्थिन का चेहरा उभरा। बेटी उठी, खाने की तैयारी कर दे। एक बार जो देख लिया कि दाल चावल हो, या सब्ज़ियाँ, बाई ने बस नल के नीचे डाला और निकाला, तब से ये काम बेटी खुद करने लगी। आजकल की ज़हर भरमार का बाई को न होश न परवाह। खासकर पत्ते हों तो बेटी खासकर ध्यान रखती है। मेथी चौलाई पालक बथुआ सोआ हाक सलाद। साग की गड्डी बिना खोले बाई जड़ पे काट देती है, बताया है पत्ते भी कट जाते हैं, अखबार पे खोलकर फैलाओ और एक एक पत्ते से मोटी डंडी तोड़ो, पर तूफ़ान की तरह आना और जाना। मैं ही करूँ तो करूँ। आटा भी निकाल दूँ। प्याज़ इतनी तेज़ी से ख़तम? चीनी भी उड़ जाती है। क्या क्या मैं निकालूँ, कितना ताले में डालूँ? नमक भरने का इतना फ़ितूर क्यों है बाइयों को? और तेल में तैराने का। क्या क्या देखूँ? पानी अलग भर देगी कि चलाना न पड़े और भाजी गल जाए। मना किया तो जला दिया कि देखिये जल गया। भूनोगी नहीं तो स्वाद कैसे आयेगा, पनिहल कर देती हो। बेटी छुप के देख लेती है और बाई झिकझिक करती है। खुद ही न करने लगे? पर इतनी चीज़ें अकेले कैसे

बनाये? रोज़ी कहती है खाने को भी साथियों की तलब होती है। दाल बना दो तो वो रोटी और सब्ज़ी का साथ चाहती है। फिर वो घी चटनी सलाद रायता और थोड़े चावल की संगत माँगते हैं। सब साथ मिलके मीठे की गुहार करते हैं। अम्मा कहती है थोड़ा एक्स्ट्रा रहे कि कोई आ जाए तो उसे खिला सको।

भोजन का भी संयुक्त परिवार!

आह हाय खुद से कहते बेटी खटर पटर करती है। कुकर का वेट निकाल कर छेद में फूँकती है कि साफ़ धुला है कि नहीं? रबर निकाल कर उँगली उस पर चलाती है कि बासी खाना तो नहीं चिपका। हे परभू खुद से बड़बड़ाती है। चलें उधर, खुद से पूछती है। हाँ चलो उधर, खुद को जवाब देती है।

बाई के लिए दरवाज़ा खोलती है। अब ये मुझसे पूछेगी क्या बनायें।

बताइए क्या बनायें और दीदी पैसा दीजिये, कड़वा तेल लाना है, माताजी ने कहा है कि उनकी बहू मैडम आयेंगी तो जैसा पिछली बार बनवाया था सगपहिता बनेगा, बहू मैडम आपके भैया जी के लिए ले जाएँगी।

सगपहिता, बेटी ने शून्य ताका? सगपहिता, बाई ने समझाया। सोआ पालक छिलका उड़द। ये सब चाहिए? नहीं, ये हैं, बाई ने समझाया। तो क्यों माँग कर रही हो, बेटी ने झिड़का। तेल के लिए। लहसुन तेल का तड़का लगेगा। तो झाड़न क्यों मेरे मुँह पे मार रही हो? अरे दीदी, बाई झेंपी हँसी, हटाया झाड़न सामने से, दिखा रही हूँ कि फट गया है, ये भी लाना है। तो लाओ, बेटी ने तमाम किया। पैसा, बाई चिल्लाई। चिल्लाओ नहीं, मैंने कहा था अब एडवांस नहीं माँगना, अभी दस हज़ार ले गयी थी मुंडन शुण्डन में जाने। अरे सब्ज़ी का पैसा, बाई और ऊँचा चिल्लाई। सब्ज़ी, बेटी भूल गयी क्या? सगपहिता, बाई ने पुरमानी आवाज़ में झुककर बेटी के कान के पास फुसफुसाया, मगर ऊँचे स्वर में। बेटी को लगा उसकी किस्मत सगपहिता हो चली है।

जाती है फिर अपने काम पर झुक जाने। एक निर्जीव टुकड़ा लिखा है इतने दिनों में, एलो वेरा पर, जो अब हर मध्य-वर्गीय के छत बैल्कनी कमरे में मिलने लगा है या बगिया में अगर बगिया नसीब है। मेरे बचपन में वो गट्टा था और हैसियत भी गट्टा थी। पर अब किटी पार्टी, एॅनिवर्सरी पार्टी में गिफ्ट और टेक-अवे हो गया है। बड़े प्यार से उसे रखा जा रहा है और प्यार से वो फूल फैल रहा है। कोई बाल में कोई गाल पे कोई गले में कोई राल में इसके गूदे को मल निगल रहे हैं कि सही जगह गोरे हों और सही जगह काले और बाकी प्राण दिलदार निरोग शतायु।

एलो वेरा तेरे दिन पलटे और मेरे भी पर अलग तरह से। बेटी मेज़ पर ऊँघ रही है। प्रेरणा बेगम आयें तो जगे, वो भी और काम भी। पर प्रेरणा रोज़ी नहीं। बेटी अभी भी कभी सुनती है उनकी आहट, चौंक कर घूमती है कि ज़रूर वो ही झाँक रही हैं, हाँ वही तो हैं। वो पाँव उठाती हैं कि भीतर आयें, बेटी अकेली है तो पास बैठें, पर बिलफ़ेल किसी की झलक पा जाती हैं और उलटे पाँव प्रेत बनकर उड़ जाती हैं।

अधसोई बेटी उदास है। कि नींद में चूड़ी बजती है। अम्मा की चूड़ियाँ खनकीं। माँ उठ गयीं होंगी। नहीं! ये मेरी कलाइयों पर बजीं! बेटी उठ जाती है। मैं तो थाईलैंड से लाये कड़े

पहने हूँ। चमड़े के। ये कैसे बज सकते हैं, नहीं बज सकते। कान बजे होंगे। या वो चूड़ियाँ बदमाशी में इनमें भूत बनकर उतर गयीं क्या? अब मेरे लकड़ी प्लास्टिक भूसे के ज़ेवर खनकेंगे?

उठ बैठती है बेटी। पैर चप्पलों में डाले तो फट फट झट पट अटपट सरपट कटपट लटपट जैसी माँ की चप्पलें करती हैं। अरे मैं हूँ कि माँ? बेटी पाँव देखती है। ये लो, तभी तो। माँ की चप्पलें उसने पहन ली हैं। ये कब हुआ, ध्यान नहीं दिया। इन चप्पलों की वो शिकायत करती रही है और येल्लो उन्हें ही भूल से पहन लिया? चलने पर आपस में गप्पाष्टक करती हैं और माँ के तलवों एड़ियों से लड़ती हैं। फटकह झटकह।

अम्मा की तरह न चले, इस सबब से बेटी चप्पलें दबा के चलने लगती है। बेस्वर हो जाती है।

जो शान्त होने से भिन्न है, जिसे उसने बड़े जतन से अकेले होकर टटोला था और बटोरा था। वो शान्त था आवाज़ पाने से, ये बेस्वर है आवाज़ खोने से।

उसे चुप चाहिए खाली चाहिए अँधेरा चाहिए। चुप में संगीत ख़ाली में शब्द अँधेरे में नज़र मिलती है। अकेले में मिट्टी। घास का उगना सुनाई देता है। फूल का फूलना दीखता है।

घास उग रही है ज़ेहन में। सूखी कंटीली।

उस दिन भी चूड़ी की खनक पर बेटी उठ बैठी। देखा कि मेरी कलाई मेरी है, अबके अम्मा की खनकी होगी। दुलार सा आया पहली बार उन चूड़ियों पे जो अपनी जगह बजीं। पर बाथरूम में मुँह धो कर शीशे की तरफ़ उठाने को थी कि डर लपका बेढंगा खयाल बनके कि अम्मा का चेहरा तो नहीं मुझे घूरेगा? सुना है कि जिसके संग रहो उसी जैसा दिखने लगते हो। मियाँ बीवी सा, कुत्ता मालिक सा, मालकिन गाय तोता बिल्ली सी, और क्या बेटी माँ सी? ऊपर से चुप दीखती बेटी अचुप हो गयी। जल्दी से घरघरा के कुल्ला किया तो याद आया माँ ऐसे ही गला साफ़ करती रहती है और जोश से बलगम निकालती। पर मैं ये पहले से करती रही हूँ, बेटी ने कोसा मारा। ये क्या घबराना हर आवाज़ पर?

तभी हॉल से आवाजें आयीं। माँ की चूड़ी फिर बोली। गेस्टरूम से ड्रेसिंग गाउन बाँधती और अपनी चप्पलों को दबा के चलती बेटी निकली तो वहाँ अम्मा तैयार और रोज़ी तैनात और केके अपने ड्राइवर को हिदायत देता हुआ।

कहाँ चलीं? बेटी ने पूछा।

आसमान खुला है, कह कर अम्मा निकल गयीं। जैसे आसमान में घूमेंगी।

अपने नए कढ़े लबादे में घेरे लेकर उड़ेंगी। एकदम आज़ाद पंछी। साड़ी फेंक कर चाल को उलझाने वाली परतें फिंक गयीं और सीधे उड़ने पर आ गयीं। सीधा सिलवट-रहित

लबादा उर्फ़ मैक्सी उर्फ़ कफ्तान उर्फ़ अबा उर्फ़ अबाया उर्फ़ तम्बू के भीतर बदन खुल के कलाबाज़ियाँ लगाता है, जो किसी को पता भी न लगे, न चाहो तो। पुरानी बेल्जियन लेस और बीते पारसी बॉर्डेरों या नरम सी कढ़ाई से फबते ये मस्ती-पसन्द लिबास रज़ा टेलर मास्टर रोज़ी के मार्फ़त भेज देते और रोज़ी कहती लो बाजी मस्त हो जाओ, फैला लो तो उड़ो, उठा लो तो खुजाओ, गिरा लो तो मसहरी बन जाए, रुका न जाता हो तो तम्बू बना के बैठ लो कहीं भी और हल्की हो लो। एक बार एक बुरक़ा था, रोज़ी ने सुनाया था और काम न करती बेटी के कानों तक आया था, जिसमें छिपी मोहतरमा भागती गाड़ियों के बीच तिपहिया से उतरीं और वहीं चलती सड़क किनारे बैठ गयीं, और किसी ने कुछ नहीं देखा, उनका तो चेहरा भी नहीं। साड़ी होती तो इधर टांग निकालो, उधर पल्लू सँभालो, मार हल्कट।

केके मजबूर दिखा कि उसकी गाड़ी के लौटने तक क्या करे। कॉफ़ी पियोगी? उसने कहा।

बेटी ने नहीं कहा कि सुबह मैं चाय पीती हूँ। बस कुछ आँखें बचाती आगे आयी और कॉफ़ी के लिए बैठ गयी। यों महसूस करती कि उसे बात करने के लिए किसी और भाषा में तर्जुमा करना होगा जो कैसे करे?

तर्जुमा कोई आसान चीज़ नहीं। दो घूंट अंग्रेज़ी के चढ़ा के सोच लो कि अब अंग्रेज़ी में तर्जुमा कर लोगे और बचपन में ब्रज सुनकर बिहारी सतसई समझ लोगे, तो ऐसे नहीं होता। तर्जुमा ऐसी खीर जो जलेबी से टेढ़ी। कथा में किसी चीज़ का वही भर मतलब नहीं जो ज़ाहिर है। अकादमिक में तकनीकी भाषा की तलाश मार दे। साहित्य में भाव और ध्वनि। बाज़ार में जाना है तो अनुवादक और लेखक प्रकाशक से पैसा माँगें कि तब मेहनत करें, नहीं तो क्यों? प्रकाशक क्या करे जब पैसा उसने वहाँ बंद कर दिया है जहाँ वो खुद नहीं पहुँच पाता। तो अनुवाद बलाओं में बला जहाँ मुस्कान माने चक्कू और खाओ का खिलाओ और आ गए का जाते क्यों नहीं और ज़रूर का बुरे फँसे और आदि का अनंत और अम्मा का बचपना और बेटी का सयाना और इससे भी ज़्यादा डरावना, तो कैसे भाषा गढ़े? उसने दु:ख से केके को देखा और गुस्सा उठा जैसे तर्जुमे में।

पसीने की महक आयी। बाई? या रोज़ी छोड़ गयी? बल्कि उसका जी हुआ कि ये महक केके से हो क्योंकि आजकल उसे ऐसी दैहिक महकें बुरी लगती हैं। वो अपने तन से घिन्ना के अलग हो जाती है। देह रूह हो रही है। केके हाथ बढ़ाता है तो रूह के बीच से धुएँ की तरह फिसल जाता है। तब केके ज़बरदस्ती बदन कहाँ गया तलाशता है, हाथापाई के अन्दाज़ में, जिस पर दोनों एक दूसरे से चिढ़ जाते हैं।

मगर केके अपने में था, शायद रूठा हुआ। बेटी मायूस हुई। उससे साझा करे तो कैसे? कहे कि घर बहुत आवाज़ करता है। तो क्या ताबूत चाहती है? नहीं मगर निरे जानवर घुसे आते हैं। नहीं रोज़ी बुआ को नहीं कह रही, वो तो अच्छी ही हैं, अम्मा की सेवा करती हैं, नि:शुल्क, अगर ऑड्ज एॅन्ड एॅन्ड्ज के नफ़े को न गिनें। पर धूपहवा के भेस में जंतु दौड़ते हैं। क्या बकवास करती हो? नहीं बकवास नहीं पर नए राग। राग में क्या बुरा? नहीं, समय ग़लत। माँ मूड से तय करती है क्या सुनेंगे और दोपहर में दरबारी और सुबह फादो

लगा देती है। प्ले बटन पर रोज़ी ने लाल बिंदी चिपका दी है कि आँख बंद करके भी माँ संगीत चालू कर दें और अम्मा सूफ़ी फादो ग़ज़ल बे-क्रम मूड से चलाती है। अब अम्मा की शिकायत? नहीं अलग ध्वनि की। पर बेटी कैसे कहे, ध्वनि का तर्जुमा सबसे मुश्किल। अरे बस देखो पूरा घर फड़क रहा है जैसे दीवारों खिड़कियों छत में गारा मिट्टी लकड़ी काँच नहीं बल्कि रगें स्नायु साँसें पपोटें।

पर अभी घर चुप है। माँ निकलीं और मच्छर मक्खी मकड़े सब सो गए।

बेटी कुछ नहीं बोल रही। चुप्पी भारी है।

कब आएँगी अम्मा, वो पूछती है। बाहर के बताएँगे उसके घरवालों के कार्यक्रम। केके ऐसे बैठा है जैसे उसका घर। वो चाभी उससे वापिस माँगने

का बहाना तलाश रही है। निडर घुस आता है चाभी बाहर से घुमा के। माँ

क्या सोचती होगी कि पहले भी, और कब, क्यों, आता था? रोज़ी वगैरह भी रसीले किस्से गढ़ते होंगे। भाभी को अपनी चबाऊ मण्डली के लिए मसाला मिल गया।

रोज़ी बुआ झील की तरफ़ ले गयी हैं, शनिवारी बाज़ार। हल्की चप्पलें लेने। हर रंग की मिलेंगी।

ये बात बेटी को बहुत भारी और एकदम काली लगी। झील कहाँ है, उसने घिरती मायूसी से सोचा। रोज़ एक नयी पैदाइश। मेरे घर में रिवायतों का अमल नहीं तो यहाँ नयी पैदाइशें आसान हैं। खूब इसका मज़ा ले रही है अम्मा। पर चप्पलें मैं दिला देती और झील वील के पार क्यों? सस्ते के चक्कर में। रोज़ी की सस्ती सोच।

सस्ता शाम तक होगा जब दुकानदारों को हाट समेटने की हड़बड़ी होगी। जेनेरेटर से लाइट जलाएंगे और पौल्युशन निकलेगा और अम्मा खों खों करती लौटेंगी, उसने कहा। वार्तालाप।

शाम तक क्यों आयेंगी? लंच तक आ जाएँगी। केके ने खिजाई आवाज़ में कहा। मैं निकल जाऊँगा।

बेटी की मायूसी बढ़ी और गुस्सा भी और हर निश्चय से बाहर होने का एहसास भी।

किसी को नहीं दिखा। क्योंकि कौन हर चीज़ देखने से समझ आती है? सामने से दृश्य गुज़र जाता है और देख कर भी कोई नहीं देखता, न प्रलय को आते, न प्यारे को जाते, न बिंदु को चौकोराते, न चीता को चींटीयाते, न लकवे को नृतियाते, न बहाव को थम जाते। कभी दीखता है तो हमारी कल्पना का गढ़ा। बाहर वही जो अन्दर है।

फिर चुप छा गया। बाई को ही डाँटे क्यों हॉल में डटी है, इतनी सफ़ाई रोज़ तो नहीं सूझती? देखा वो मूर्ति झाड़ रही थी। ये नीचे कब आ गयी? ठीक उसके सामने और उसके किये नहीं, उसके दिखे नहीं? क्या मुझे कुछ पता नहीं चलता मेरे घर में क्या आती है कब ऊपर जाती है कब नीचे उतरती है?

वो उठी और मेज़ पर लंच के लिए माँ की पसन्द अनुसार चटाई, हाथरसी डोंगे, लाल हैंडल के चम्मच, रंगीन प्लेटें करीने से लगाने लगी, कुछ करते रहने के सबब से। फ्रिज में देखा — आंवले-प्याज़ की गुलाबी चटनी, अदरख मिर्च कच्ची हल्दी की कतरनें, जामुन सिरका, मूली शलजम गोभी गाजर अचार, कांजी, भुकनू, क्या निकाले और किन बोल में

रखे? पहले की तरह यों ही रख देना फूहड़ चाल हो गयी है जिसके लिए वो बाई को लगा भी देती है। आप खुद ही अपनी चाल तज के औरों की चाल चल रहे हैं।

बेटी खाने की मेज़ पर बैठी हुई सामने तकती। इस तरह बैठ के तकने से वज़न बढ़ रहा है। तकने से हाथ गाजर हलुवा बेसन लड्डू को देखते हैं और जीभ भी देखने लगती है। फिर भिन्डी बैंगन गोभी गाँठ गोभी साग सूँघने से ही वज़न बढ़ने लगता है

मुटा रही हूँ। वो केके की तरफ़ चॉकलेट चिप बिस्कुट का टिन करती है।

बुढ़ा रही हो, केके क्रूरता से फेंकता है और निकल जाता है कि थोड़ी देर में आऊँगा, उसे अपने ढिलाते चौड़ाते बदन में बिछुड़ा छोड़।

पर सब तरह के बदन पीछे छूट जाते हैं जब माँ एक और बदन शगल छोड़ती हैं।

***बदन** के रहस्य डराते हैं। तन को हेय सोचने वाले नादान हैं। सूफ़ियों अक़्लमंदों ने कहा कि तन दर्पण है घर है भीनी चदरिया है सतरंगी है माटी है द्रव है नीलाम्बर है। सर्प है शेर है गौ मृग भी होगा। कि पूजो निहारो। हीरे की खान है, कोयले की खदान है। दप दप बिजलियाँ मारता है, सड़ाक पड़ाक अँधेरों के चाबुक चलाता है। तन मन है, मन तन से राह पाता है। जब तन रीत जाता है और अग्नि चील धूल के हवाले हो जाता है तो मन सहित सारा वजूद ब्रह्मांड में भ्रमण करेगा और स्मृति बनके घूमेगा। स्मृति वो रूह जो पृथ्वी पर घूमती है, कोई सिरा हाथ आते ही फिसलने को।*

इसलिए समझना है तन को तो पृथ्वी को बूझो। धरती तन में गुम्फन मन। ठोस में द्रव। तैरते बिम्बों का मनचला मन। उसकी गति, उसका चलन। बंद पड़ा, खोलो तो खुला, ढको तो बंद रहा। चटकने बहने का इमकान हर जगह। ज़रा सी दरार, ज़ुरा सा उदगार, कि मिट्टी खिसकती है और भीतर के द्रव, ज्वाला, पत्थर, टीला पलटा मारते हैं। ये क्या फेंका बाहर, वैज्ञानिक औज़ार लेकर दौड़े आते हैं कि बस अब जान जायेंगे। ठोस धरती के नीचे सब नर्म खलखल, खदकती आग, उबलता पानी। ईश्वर को याद करना है तो कर लो क्योंकि पृथ्वी शून्य में टंगी है और पृथ्वी के भीतर सब ज़लज़ला जलजला है। नहीं आयेंगे याद इश्वर तो चक्कर ज़रूर आ जाएगा कि हा, हम उड़ रहे हैं, गिर रहे हैं, सधे सीधे हैं, उलटे झूलते हैं, सुरक्षा, रक्षा...हा...हे...हो...कहीं रहस्यमय नालियों गलियों से कुछ फूट न जाए बाहर...हमारे मन का, हमारे तन से...

बस मनाओ कि छोटी लर्जिश हो, फिर शान्त। बड़ी कम्पन हुई तो भूचाल हो सकता है। साँसों की पटखनी मच गयी, भीतर डूब गया।

पाँव के नीचे दूर धरती में उठती गुर्राहट, कभी भी बाहर फूटने को अपनी ही बढ़त को आगे धकियाती, पहले भाप की लहरिल बन निकलती, फिर बादल, फिर गोली छूटे, या

रॉकेट। भपारा यों ज़ोरदार और उसमें लावा बहता है, चिंगारियाँ फुदकाता और बाकी सब काले पेट्रिफाईड फॉसिलाइज्ड अवशेष जिन्हें सदियों बाद तक क़सीदे पड़ें कि क्या कृतिश्री और डॉक्टर वैज्ञानिक भांपना चाहें वो कैसी भाप थी टांगों बीच फुफकारती जिसमें छिपी मंशाएँ खुले में आ गयीं।

सौ पत्थर। संगेमरमर। धुएँ से उठता। लिंगेमरमर।

अबके माँ गिरी नहीं, न खोई, पर जब उसने बाथरूम से आवाज़ लगायी तो बेटी डर के दौड़ पड़ी और धड़ाक से अन्दर, क्योंकि अम्मा दरवाज़ा लॉक नहीं करती थीं।

अम्मा कपड़ा उठाये, हाथ पैरों के बीच किये रंगे हाथों पकड़ी गयीं। हटो हटो।

क्यों बुलाया? बेटी असमंजस में।

पहले बाहर निकलो।

बाहर माँ ने कहा कि कुछ मोटा है। ज़ोर लगाने से बाहर निकलता है फिर अन्दर चला जाता है। छू कर देखा है। तन का अंग। ऐसा। माँ ने हवा में आकार बनाया। जैसे रबर में पानी भर के फँसा दिया हो। चमकदार है। सूजा है। इतना बड़ा, उसने हवा में दिखाया।

दिखाइए, बेटी ने कहा जिस पर माँ ने कहा पागल।

छुआइये, जिस पर माँ ने कहा कभी नहीं।

बेटी झेंपी, अस्पताल चलते हैं।

नहीं। रुक लें कुछ दिन।

कोई सँभाल के रखने वाली चीज़ है, बेटी ने मज़ाक सा किया, जो रुकें? माँ शरमाती हँसीं।

नहीं नहीं, अच्छा रोज़ी को आ जाने दो, माँ ने जब कहा तब बेटी ने ठाना कि एक पल न रुकेंगे। कैर कत्था ढाक चूना की पोटली बंधेगी, लेप लगेगा, और लेने के देने पड़ जाएँगे।

केके ने कहा फ़िज़ूल मत करो, ग्रोथ इज ग्रोथ, फ़ौरन अपॉइंटमेंट लो, हर पल कीमती है।

सिड ने ग्रैनी को अस्पताल ड्राइव किया। एक बार फिर पूरी पलटन घिर आई। डॉक्टर फिर टूट पड़े। अस्पताल का अस्पताली चलन फिर से। ओ टी के बाहर एक औरत स्ट्रैचर पे रोती हुई 'बच्ची मेरी बच्ची', नर्स ने झिड़का 'छिच्छी नहीं की, उतारो इसे', और ओटी के दरवाज़े पे फ़र्श पे ही बैड पैन पे बैठा दिया। माँ को व्हील चेयर में उधर से निकलते हुए बैड-पैन पे बैठी औरत ने देखा पर रोती रही 'बच्ची मेरी बच्ची'।

रोज़ी लापता थी। माँ ने कहा टेलर मास्टर की दुकान पास के बाज़ार में है, ख़बर कर दो। शायद वो डॉक्टरों के निश्चय के पहले रोज़ी इलाज आज़माने पे आमादा थी। मेरा तन

मेरे हवाले रहने दो। डरती हो कि वर्ना मामला कारखानों सा जहाँ इन्सान के हाथ और साँस नहीं, मशीनी रेल चलेगी जिस पर एक बार चढ़ गए तो उनके रोकने पे ही उतर सकूँगी। जैसे दूध कोको चीनी मिला, डब्बा छुक छुक बढ़ा, यंत्र ने हवा मारी, सुखाया, ठोंक लगायी, चपटाया, छापा पाटा, नाम दागा, पन्नी में लपेटा और दन दनादन ढेर करके लुढ़का दिया बाज़ार में।

माँ को एक सुपर डुपर कमरे में ले गए। कुर्सी पर सीटबेल्ट लगा के बाँध दिया, पाँव पेडल में फ़िक्स किये, उससे कहा अब तुम अकेली हो, हम निकलें तो कपड़ा कमर तक उठा लो, यहाँ कोई नहीं होगा और हाथ यहाँ हत्थे पे रख देना। कहीं रिमोट से कोई बटन दबा। कुर्सी में मशीनी जान आयी और वो ज़ूँऊँऊँ करती रेंगी। माँ के हाथों पर पट्टे कस गए। ज़ूँऊँऊँ उसकी गोद पे पर्दा झूल गया उसके निचले अंग को ढकता। ज़ूँऊँऊँ कुर्सी पलटी जैसे लेटने को और माँ का निचला हिस्सा परदे के उधर। जैसे ट्रे पर परोसा अंग। चिमटे ने पकड़ा, चमची में उठाया, छुरी से सपटाया। ज़ूँऊँ अचानक कुर्सी सीधी हो गयी, परदा उठ गया, कपड़े ने ढक लिया। डॉक्टरी हुजूम अन्दर आया। माँ को व्हील चेयर में डाल, वापिस उसके परिवार के पास डाल आया।

सब ठीक है डॉक्टर? सब ऐसे जैसे भगवान सामने। आस्था की बाढ़ टैस्टों की बाढ़ में गोते लगाने को तत्पर। टैस्ट बाई टैस्ट पता चलेगा क्या नहीं है और आखिर में जो है आ जाएगा। तब तय होगा क्या करना है जिस पर टैस्ट होंगे कि फेफड़े और बाकी अंग उपचार सह लेंगे कि नहीं। ग्रोथ गीदड़ है कि सिंह, डरी आँखों में?

डॉक्टर ने बताया इट इज अ सिस्ट। अबाउट टू इंच लॉन्ग।

श्श्श पास खड़े दूसरे डॉक्टर ने कॉरिडोर में खड़ी हेड नर्स को ऊँचा बोलने पे रोक लगाने को कहा। व्हाट इज दिस? शि श्श, इन ओपीडी?

तोड़ दो और जोड़ दो तो शिश्न!

श्श्शशि...माँ फुसफुसायी, बुढ़ापे में मेरा श्श्शी शिश्न उग रहा है।

हाँ और क्या ये गल्प है और ज़ाहिर है माँ ऐसे न बोलीं क्योंकि ऐसे कैसे बोल सकती थीं? पर सोचा हो शायद?

कैसे मालूम चला आंटी जी, लेडी डॉक्टर ने पूछा।

कब्ज़ है, प्रेशर लगता है, ज़ोर लगाया।

तो ये निकल आया?

हाँ, छींक पे निकल आता है, खांसने पे भी।

बात बात पे?

माँ ने बताया बेटी को कुछ कुछ शरमा के कि जब तुम गयी थी इंजेक्शन लाने तो नर्सें आई थीं और उन्होंने वहाँ के बाल साफ़ कर दिए, तब उस अजीब कुर्सी में बिठलाया।

फिर पूछा क्या ऑपरेशन करेंगे?

फिर ज़िद की रोज़ी को बुलाओ।

गंडा ताबीज़ का ये वक्त नहीं, तो बेटी ने अबके अम्मा की बात पे कोई तवज्जो न दी। घर-पलटन पहुँची तो ख़ुद फ्रेश होने घर को चली। पर जैसे सांप सांप करो तो सांप दिख जाता है, वैसे ही रोज़ी नहीं रोज़ी नहीं की गुहार मन करने लगे, तो वही मन की बात हो जाती है और

‘अरे रोज़ी बुआ’, बेटी के मुँह से फूटा जब उसने मद्रास कैफ़े पे गाड़ी पार्क की कि इडली ले ले, बाई आकर लौट गयी होगी और अम्मा ने बासी खाना फ्रिज में पड़ा रहने देने का चलन ख़त्म करा दिया था।

रोज़ी सड़क क्रॉस करने को तैयार खड़ी थी। उसने मुड़ कर देखा और एकदम अनदेखा कर आगे हो गयी।

सड़क पार दुकान में घुस गयी। न देखा हो, सोचती, बेटी गाड़ी से उतरी। पर सामने पड़ गयी तो अम्मा की मर्ज़ी कैसे टाल जाऊँ?

दर्ज़ी की दुकान थी। एक काउंटर के पीछे कोई खड़ा था पर्चियाँ काटने, पैसे का लेखा जोखा करने। अन्दर के कमरे से मशीनों के चलने की आवाज़ आ रही थी। डोरे कतरनें थान अपनी मुस्तैद नुमाइश में छितरे दिखे। कोरे कपड़े की बसांध थी, हैंगर्स पर टंगे सिले कपड़ों की कतारें। दर्ज़ी अपने कन्धे पर इंच-टेप लटकाए बाकियों को हिदायत दे रहा था।

अरे ये तो रोज़ी बुआ! अरे ये ही तो बाहर थी!

‘रोज़ी बुआ’, बेटी बेसाख्ता दरवाज़े से झाँक पड़ी।

देह मुड़ी। अजनबी आँखें।

अरे ये तो मर्द है! मरदाना पंजाबी सूट में। मैंने ध्यान दिया?

वही कद बुत। वही चेहरा। पर आँखें पाषाण, होंठ सिये। जेब से सिगरेट पैकेट झाँकता हुआ। कान पर छोटी सी पेंसिल खुंसी हुई। पाँव की उँगलियों पर बाल। सिर पर कढ़ी मुसलमानी टोपी। आँखों में सुरमा और ऐनक। गले में दोनों कन्धों से झूलता इंच टेप। हाथ में कैंची।

‘आपको किससे काम है’, नफ़ीस मगर ठंडी न-पहचानती आँखें।

बेटी हक्का बक्का। मरदाना देह से निकलती मरदाना आवाज़।

‘हैं मगर...’

मर्द ने चुप से देखा, फिर वापिस आगे फैले कपड़े पर खड़िया से लाइन खींचता गया। ‘देखो बीबी क्या बनवाना चाहती हैं’, काउंटर पे खड़े युवक को ऊँचे स्वर में हिदायत दी।

‘कुछ नहीं। मैं मिलना चाहती हूँ...वो...अम्मा...अस्पताल...बुआ...’

बर्फ़ीली बेपहचान आँखें।

‘बुआ मुझे जानती हैं।’ सफ़ाई सी दी।

‘जी?’

'रोज़ी बुआ से...को...' वो हकलाने लगी।
कि तभी कोई औरत धड़धड़ाती घुसी, 'टेलरमास्टर जी, मेरा सूट।'
मर्द मुड़ा, 'बना?' अन्दर से जवाब आया 'नहीं।'
'आपने कहा था बुधवार को।'
'वीरवार ले जाइये। कारीगर गाँव गया है। दो छुट्टी पड़ गयीं।'
'अरे मास्टर जी,' शिकवे शुरू हुए। 'और मेरा दुपट्टा?'
'अर्ज़ कम है मैंने बताया था। कपड़ा नहीं बचेगा।'
'दुकानदार कह रहा था...'
'वो दुकानदारी करता है, मैं टेलरिंग। हमें क्या मिलना है कपड़ा
बचा के? रुमाल बनाने हैं? रज़ा टेलर मास्टर कटपीस का काम नहीं करता।'
'मास्टर जी...'
'आप वीरवार पहुँचिये, अभी...,' मर्द शायद बेटी की तरफ़ मुड़ा, पर वो दुकान से बाहर हो चुकी थी। ये रज़ा टेलर मास्टर कि रोज़ी का जुड़वां
कि रोज़ी? यूँ ही दो दिशा में बहती नदी थी, वो काफी नहीं था? अब कितनी दिशाएँ बनेंगी?
अब माँ भी क्या दोनों तरफ़ रुख कर रही हैं?
गुस्से असमंजस से आँसू टपक जाते हैं। या इसलिए कि क्या कभी कुछ मेरे बस में नहीं होगा? या इसलिए कि क्या कभी कुछ पहले जैसा न होगा? या इसलिए कि कुछ समझ क्यों नहीं आ रहा?

घिरे खड़े थे। बेमेल जोड़ीदार, बड़े, बहू, बेटी, केके, कुछ और किसी के संगी साथी, सब आँख चुराते से पर एक अन्तरंग चिन्ता में लिप्त, एक अन्तरंग इंसान के अन्तरंग अंग से सम्बन्धित — माँ की योनि। या शिश्न।
हाँफती हुई घोड़ी की तरह दाखिल हुई रोज़ी बुआ। 'क्या बाजी, क्या बेबी, बताया क्यों नहीं? ये आदत न पालो बाजी।'
'बुढ़ापा कुछ न कुछ रंग दिखायेगा।' माँ उसे देखते ही खुश हो गयीं।
'ये बुढ़ापे का मर्ज़ नहीं है। फोड़ा फुंसी मुहांसे बच्चियों को होते हैं। ये आपकी जवानी वाला बुढ़ापा है।'
सब नज़रें इधर उधर करने लगे।
'कुछ नहीं इन्फेक्शन है' माँ फक्र से बोलीं। 'तुम कहाँ कलैक्टरी कर रही थीं,' झिड़का।

‘रियाज़ बाजी। चौंतीस नज़्मों का हर रोज़ रियाज़ करती हूँ, सत्तरह एक दिशा में देखकर, सत्तरह दूसरी। और आप ये क्या पहने यहाँ भीड़ भाड़ में हैं?’ रोज़ी ने माँ की कलाइयाँ दिखायीं।

अचरज से माँ ने उसे देखा। ‘दो ठो तो हैं’, माँ ने कहा।

‘बाजी ये हिन्दुस्तान है। जहाँ हगने वाले ज़ंजीर में बँधा तामलोट रेलगाड़ी से उड़ा लेते हैं। ये तो अस्पताल है जहाँ सबको नंगा दुंगा कर देते हैं।’

लोग फिर इधर उधर झाँकने लगे।

‘यहाँ रहने थोड़े आई हूँ’, माँ ने आँखें मूँदी। आँखें खोलीं और चूड़ियाँ उतार के बेटी का पास रखा हाथ उठाया। ‘तुम पहनो’।

‘चार लोगों से दूर रहो,’ रोज़ी ने अपनी बगलों के पसीने दिखाए, वही जूड़ा खोल, बाल लचका, वापस लपेट के। ‘वकील, दरोगा, डॉक्टर, कसाई। वो इसी फेर में कि किस पर कब केस और किस पर कब चाकू।’

‘मामूली सा पंक्चर करेंगे, कोई चाकू वाकू नहीं।’

‘मुझे सब पता है,’ रोज़ी बुआ ने वापस झिड़का। ‘अभी हेड नर्स से बात करके आ रही हूँ।’

‘अब आ गयी हूँ न,’ रोज़ी माँ पे झुकी, उँगली हिला के धमकी देती। ‘यहाँ बीमार को और बीमार करते हैं कि उनके पास लौटते रहो, बस मारते नहीं कि फिर कैसे लौटोगे। ऑपरेशन करेंगे! ऑपरेशन काहे का? फोड़ने का? ये डॉक्टर बड़े फोड़ेबाज़ हैं,’ तमतमाई। फिर हँस दी, ‘खासकर मर्द।’

तब से माँ ने नए जने का नामकरण कर डाला — फोड़ा। जो भीतर उग आया था, हर लचके झटके पे बाहर फिसल आने। खुशमिज़ाज लिंगम। जिसके विस्फोट की तिथि डॉक्टरों ने नत्थी कर दी कि आते हफ़्ते। तब तक चुपके से दुनिया पे झाँक आता, फिर वापस गुफ़ा में सो जाता।

या क्या शिव जी का दहकता लिंगम जिसे पार्वती ने अपने भीतर खींच लिया था कि शीतल जल में डुबो के उसकी जलन बुझा दें? श्शश शान्त शान्ति...योनि ने भभकते इरादों पर पानी फेर दिया, स्थिर रहें, निर्वाण, साधना, समाधि, जैसे हर शिव मन्दिर में देख लो।

योनि और योगी।

छोटी होती औरत मंत्र-मुग्ध थी। अपने तन की मिट्टी से हर दाग दाना जुम्बिश कराह को उसने भूले पड़े कंकड़ झंकाड़ कतरे कांटे की तरह बीन के धरती फिर उपजाऊ कर दी हो कि नयी फसल उगे। लिंगम उग आया है!

शायद माँ डरी हो। तन से पहचान का नशा है और नया नक्शा बनाने का भी पर कोई और दखलबाज़ी करे, जैसे डॉक्टर, उसमें मज़ा नहीं। मेरी मिट्टी मेरी। फुनगी पत्ती डंडी गुच्छी या शुभशुभम लिंगम या बस रसौली की छुट्टी करें तो करें, पर हम ही। ऑपरेशन शब्द के हवा में गिरते ही वार्ता अपने चरम पर आ जाती है। कोई सुन्न हो जाता है, कोई हार मान लेता है, कोई आगबबूला, कोई आस्थावान, कोई बेफ़िक्रा, कोई कामतमाम। किसी को लेक्चर सूझता है कि अरे सूई लगाना भी ऑपरेशन है, मत डरो। कोई ज्ञान बखानता है कि सूई भी नहीं, पिचकारी से सिस्ट का मवाद खींच लेंगे और वो खुद ही सिकुड़ के सूख के गिर जाएगा। कोई याद दिलाता है कि सफ़ाई करते हो तो खुरच खुरच जमी गन्दगी निकाल देते हो कि नहीं, वही बस। झाड़ू फेरो, ऑपरेशन नहीं। और पते की सूझ बहू की कि बेटे ने फ़ोन पे बताया कि खुरच काट नोच छोटी चीज़ है, उसके बाद पता चल जाएगा कि बिनाइन है कि मैलिगनेंट।

शायद माँ को गुस्सा आया। रोज़ी को साथ खड़ा पाकर और बलवान हुई। शायद दोनों आमने सामने बैठ कर फोड़े और फोड़े बाजों को इतना कोसें दे गयीं कि सर्जरी के ठीक दो दिन पहले अजूबा घटा — माँ की जांघ पर खून की धार बह आई, बच्ची की पहली अनजान माहवारी जैसे।

ये क्या? घबराकर बेटी ने रूई पर कपड़ा लपेट कर पैड बनाया, केके को बुलाया, भाभी को बताया, जो बड़े के संग आंधी की तरह पहुँचीं।

बड़े सब से चुप और सब से चिन्तित दीखते। एक तरफ़ तो ये कि अम्मा को जल्दी ठीक करें और ले जाएँ, दूसरी तरफ़ ये चिन्ता कि ऑपरेशन थिएटर में उनके जाने के पहले कुछ चैक और कुछ शेयर के कागजों और शहर से दूर वाली ज़मीन वाले पर भी, जिसकी आख़िरी किस्त देनी बाकी थी, साइन ले लें। अम्मा भी ये ही चाहेंगी। घर बन जाए, लॉन और धूप वाला, तो अम्मा भी खुश होंगी। पत्नी शहर का बीच नहीं छोड़ना चाहतीं। उनकी चलनी है तो बेच देंगे और बेटे जानें फिर कहाँ लगाना है। पर साइन रहे ताकि वक्त का हर्जा न हो, न दिमाग का मलीदा। एहतियातन एक दो ब्लैंक कागज़ पर भी हस्ताक्षर करा लें। मगर कौन से पल वो कागद आगे बढ़ाएँ और कितने। हारे हारे दीखते वो खड़े थे। जो ख़ैर बड़े बेटों का नसीब होता है।

तो बेटी के घर से तीसरी बार माँ को नीले गाउन में और व्हील चेयर में टेस्ट के लिए ले जाया गया और पूरा चिन्तित मजमा इधर उधर और अलग थलग पर आस पास मंडराया किये और डॉक्टर को आता देख उमड़ पड़ा कि क...क्या, क्य...या, क्या हुआ?

बधाई, डॉक्टरिनी ने कहा। नहीं, लड़का लड़की साइकिल नहीं कहा। कहा सिस्ट खुदै फूट गया जैसे कभी कभी हो जाता है और बस घाव ठीक रखने के लिए एक कोर्स एँटीबायोटिक देंगे और सब चंगू मंगू, रोज़ी ने कहा।

अबके सबकी रज़ामंदी से माँ बेटी के घर लौटीं। माहवारी जैसा ज़नाना मामला, बेटी से बेहतर कौन सँभालेगा? अगले कुछ रोज़ गाढ़ा रिसाव बहता रहा। बेटी ने सैनेटरी टॉवल ख़रीदे तो उसे लगा वो अपनी बेटी के लिए ले रही है और कागज़ के लिफ़ाफ़े और पुराने

अख़बार अम्मा के बाथरूम में रख दिए कि इसमें लपेट कर फेंक दीजिये, जैसे कभी माँ ने उसे सिखाया होगा।

मन ने फिर पूछा कि बेहतर न होता गर शादी कर ली होती? यानी करके टूटने की नौबत न आने दी होती। ढेरों बच्चे होते, घर में हर उम्र की आमदरफ़्त होती, और अपने भाई बहन और उसके भाई बहन और चाचे मामे और उनके गबलू बबलू और सास ससुर और सेवक कर्मचारी उत्तराधिकारी सब होते और शायद मकान दो तल्ले का होता और छत पर एक कमरा बतौर अपनी स्टडी बना लेती जहाँ कभी कभी दुबक लेती और कोई न कोई माँ के पास होता कि वो निश्चिन्त बैठे और किसी अचानक घड़ी का कोई डर न होता।

'अम्मा है क्या जो इतनी बास मार रहा है?' कागज़ का पैकेट फेंकने को वो दरवाज़े के बाहर के कूड़े दान पे झुकी बोली।

'इन्फेक्शन,' अम्मा फ़क्र से बोलीं, 'जिसे हमने मार दिया।'

खुदाया ख़त्म करे ये अजीब दिन, कहाँ से आन पड़े ये बुरे बुरे दिन।

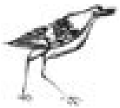

कहना नहीं चाहिए। सोचना भी नहीं। क्योंकि वक्त बड़ा होड़-बाज़ है।

जो कहो उसे मात बतलाने पे तुल आता है। कहो बुरे दिन हैं तो और बुरा कर देता है। और अच्छे तो सरकार के अलावा कोई कहेगा नहीं।

ऐसे ही कह दिया अजीब दिन थे वे, तो उन्हें और अजीब होने में देर नहीं लगी।

पहले तो रोज़ी, जो मिली नहीं और मिला रज़ा। उस पर बेटी तिलमिला गयी, तो जो आज तक नहीं दिखा था अब जब न तब दीखने लगा। पान की दुकान पर दिखा और फिर वही हुआ कि मुड़ा तो पहचाना नहीं। किमाम मुँह में और आँखों में हिम। फिर बड़ी सड़क के ढाबे पर ट्रक ड्राइवरों के संग चाय की चुस्कियाँ लेता और सिगरेट फूँकता मिला। एक बार तो साबूदाना खरीदते हुए जो बेटी पलटी कि ठीक बगल में कॉर्नफ़्लेक्स का पैकेट लेता हुआ। सिर हेलो में हिल गया। बेटी का। पर उसका नहीं हिला। आँखों से उसे बेधती नज़र कहती हो कि अनजान आदमी पे मुस्कराना, ये क्या है? और तो और अख़बार के ऑफ़िस में लिफ़्ट के बाहर खड़ा था। दोनों संग अन्दर घुसे और चुपचाप लिफ़्ट चली और एक ही माले पे दोनों उतरे। उसने बातमीज़ लिफ़्ट को खोले रखने का बटन दबाये रखा कि बेटी निकल जाए और फिर वो निकला। बेटी के थैंक्स पे हल्का सा सर हिलाया मगर सारा कुछ एक अजनबी से दूसरे अजनबी तक की बात।

रोज़ी की तो आदत पड़ चुकी थी कि आऊँगी कहीं से तो मेरे घर मिलेगी या सुबह नहा धो कर निकलूँगी तो हॉल में बैठी होगी। तो उस पर नहीं, पर अम्मा की आवाज़ पर बेटी चकराई। आवाज़ पर नहीं, संवाद पर।

उसके कानों में पड़ा दो इंच से कम नहीं।

हाय, बेटी शर्म गुस्से झिझक के घोल से तप उठी। ऐसी बातें रोज़ी से अम्मा कैसे कर सकती हैं? अब दोनों माँ के दो इंची लिंगम पे हँसती हुई?

वो सामने आई लाचार सामना करने।

तो दिल की खफ़गी खौफ़ बनके लहराई। सामने रज़ा टेलर मास्टर, न कि रोज़ी। उसके घर में। अम्मा के संग। दो इंची करते?

देखा यहाँ इंच टेप पेंसिल ऐनक और अम्मा का चोगा नापना चल रहा था।

दो इंच ज़्यादा हो जाएगा अम्मा जी।

नहीं नहीं, माँ ज़िद्दियाई। आपको नहीं मालूम कितनी जल्दी लथड़ने लगता है। मैं छोटी हो रही हूँ।

ऐसे कैसे अम्मा जी, मास्टर शाइस्तगी से मुस्कराए।

तो कपड़ा मुझ पर उगता होगा, पेड़ की तरह।

शुकर, शुकर, बात कुछ और है, जज़्बा उठा और मिट गया। खौफ़ अब लहर नहीं, नाग, फन उठाये, उसे देखता।

मेरी बेटी, अम्मा ने परिचय कराया। टेलर मास्टर, अम्मा ने बेटी को बताया।

नाग ने फन हिलाया। जीती रहिये बीबी। कोई फुफकार सी फुफकार थी।

डरूँ मैं। अपने घर में। बेटी ने जानबूझ के जवाब नहीं दिया। चोर निगाहों से देखती रही। लम्बे तड़ंगे। न, शायद रोज़ी इतनी पहलवान नहीं दिखती। वो ही तो? वोही बदन कैसे दो रुख ले सकता है? या हम सब एक से, बस कपड़ा, चाल, ढब, तनना या झुकना, पंगे पाँव चलना या सतर सिपहिया गश्त, हाथ नचाना कि ऊँचा खम्बा उठान, इसी में अलग नज़र आते हैं?

अपनी चाय के साथ वो दो चाय और लाकर रख गयी। रोज़ी — माफ़ी, रज़ा — बोले बीबी इसकी क्या ज़रूरत थी। मुस्कराए। मुँह खुल गया। दांत दिख गए। वही सामने के दांत, मामूली से, एक पर एक। जिन पर पड़ती लाइट अलग धूपछांव लहर मारती है। रोज़ी आये तो फिर गौर करूँगी। बेटी वहाँ से हट गयी।

ये रोज़ी है कि रोज़ी सा दीखता है? शक्ल सूरत मिलते भी हैं, नहीं भी। सभी कुछ डरौआ लगे।

डरना, हर समय डरना, बेटी का नया जीवन है। अकेले होना एक बात है। पर अकेले किसी और के संग होना जिसके पैरों के बीच धरती से उठती फुफकारती भाप है जो फट के लावा की तरह बह निकले और हर दिशा में बहते मेहमान उसके और तुम किस काम की जो तुमसे छोटी, गुड़िया सी बुढ़िया फ़र्श से नहीं उठती।

उसे कमज़ोरी लगने लगी। कोई हो उसे हाथ देकर उठाये तो केला या कुछ खा ले। पर मास्टर जाएँ तब उधर जाए। ये रोज़ी-रज़ा उसे देखते हैं तो लगता है वो नग्न। कपड़े वो जो हॉल में हर दिशा में बह रहे हैं और वहाँ वालों ने पहन रखे हैं। मैं नग्न घूम रही थी? पर अकेले थी तो कौन देखता पर अब तो सब देख रहे हैं। थरथरी सी छूटी।

बेटी परेशान रही।

और कोई परेशान नहीं। किस इतमीनान से कपड़ा फैलाकर उस पर खड़िया घुमायी जा रही है। और फिर बैल्कनी पे जाकर सिगरेट फूँकी जाने लगी है।

रोज़ी सिगरेट नहीं पीती। पान नहीं खाती। मर्द नहीं है।

गड़बड़झाला *पे गौर करते हैं कि हुआ क्या। पर हुआ क्यों से नहीं जुड़ता। ये जोड़ मनभुलाव मनबहलाव मनचले हैं। आस्था बनाओ वर्ना नैय्या डगमग-डोल। दो में दो चार के बंदी मत बनो। न गाँधी के तीन बन्दर बनो जो असल में मिज़ारू, किकाज़ारु, और इवाज़ारु थे जापान में निक्को के तोशोगू मन्दिर के निवासी। कि बुरा न देखेंगे, न सुनेंगे, न बोलेंगे। काश चुना होता कि जो देखेंगे सुनेंगे वो बोलेंगे। अंधे बहरे गूंगे होकर क्या हासिल किया — आले पर सजे रहे या जापानी मन्दिर की दीवार पे। जान न पाए कि गणित के निरे मोड़ हैं और दो और दो मनगढ़ंत गणना है। जोड़ कुछ भी हो सकता है, हर दिशा में बहता हुआ, रोज़ी की तरह। अन्तत: ये कि मैडनेस में शेक्सपियरियन मैथड है कि नहीं, शेक्सपियर ने पूछा तो, पर जवाब नहीं मिला, न मिलेगा असल में। न गल्प में।*

कहानी गल्प स्वप्न होती है जो चलते चलते अपने मतलब बनाती है। बोर्हेस ऐसा याद दिलाते रहते हैं। सब माया है, भी। जो, जैसे सब कुछ भारत से ईजाद हुआ है, यहाँ उनके पहले से कहा गया है। स्वप्न पेड़ की तरह है जहाँ हर डाल पात टहनी फुनगी अपनी अलग कथा सुनगुन करती है, विशाल बांहें उठाके और नन्ही मुन्नी भी, एक दूसरे की उँगली थाम के और अलग निकल के भी। कहानी जुड़ती है और जो छिटकती है वो हवा से मिट्टी से रेत से उठके नए तानेबाने रचती है। नहीं रचा है तो रचेगी।

कोशिकाएँ मिलती हैं। वजूद तैयार होता है। एक इन्सान का, एक समूह का, एक अंग का, अंग प्रत्यंग का। और जो आधा इन्सान और आधा पेड़ मिल जाएँ तो वो भी समग्र वजूद। या बड़े और कौवा। अम्मा और छड़ी। रोज़ी और नदी। बेटी और पड़ी।

तभी मिथ्या नहीं कि नरसिंह नरभेड़िया मत्स्यकन्या कीड़ादिमाग तितलीहृदय कछुआमन रंगीलापतन चीरहरण सीमावतन सब जोड़ बेजोड़ व्यक्तित्व हैं, चाहे पूरे या अधूरे। और सब अनंत हैं, चाहे बुलबुले।

गार्ड भी परेशान नहीं। इण्टरकॉम बजाकर सुना देते हैं कि रज़ा टेलर मास्टर आपके घर पहुँच रहे हैं।

क्या गार्ड की आवाज़ में कुछ व्यंग है? क्या वो भी सोचता है ये रोज़ी चली आ रही है रज़ा लिबास में? या वाकई सोचते हैं एक आती है माता जी की नर्सगीरी वास्ते, दूसरा आता है माँ के कपड़ों की तुरपाई सिलाई करने और सोसाइटी वालों के भी आर्डर लेने। एक नीचे उतार थोड़ी सैर करा देती है और मज़ार पे कुछ देर बिठा लाती है जहाँ मोर बोलते हैं और जब लौटती हैं तो दोनों के हाथ में मोरपंखियाँ होती हैं जो माताजी अपनी सुनहली छड़ी पर ऐसे डुलाती हैं कि अब तितलियों के मोर बनने के दिन हैं। दूसरा कपड़ों की दिखाई सुनवाई के बाद बैल्कनी पे एक सिगरेट सुलगाता है जो केके तभी आ जाए तो साथ फूँकने लगता है।

केके कम आता है पर आ जाता है। ऑफ़िस के पहले या बाद। चैलेंज कर रहा है कि देखें कब हिम्मत करोगी चाभी वापिस माँगने की!

सबसे अधिक ऐतराज़ बेटी को ये हो रहा है कि उसे पूर्वसूचना किसी भी चीज़ की क्यों नहीं मिलती? आती आवाजें भी उसको धोखा देती हैं। वो सोचती है बुआ हैं तो मास्टर मिलते हैं, रज़ा होंगे, तो रोज़ी। एक आवाज़ है? कि सबकी एक होती है, तन के हिसाब से ज़नाना और मरदाना लगती है? कुछ ज़नानापन है, कुछ मर्दानापन है।

यहाँ भी मिलावट। यहाँ भी दोनों दिशा में बहती नदी।

केके भी हर दिशा में बहता है। माँ रोज़ी और वो बैठे मिलते हैं। माँ रज़ा और वो भी। रोज़ी दवा वाली, रज़ा दारू वाले। ड्राई डे पे भी ले आये और केके ने थैंक्यू के साथ एक पेग पिला दी। ब्रैंडी नीम्बू शहद का सेवन करने वाली माँ ने भी ली। सिड के बिना भी।

बेटी को बुलाते हैं पर वो व्यस्त रहती है। सबसे छंटे फिरने की आदत हो गयी है।

उसकी मंशाओं से नावाक़िफ़, देर तक पार्टी चलती है।

रुक जाओ। अम्मा ने केके से कहा, किसी शाम अस्पताली दिनों के बाद। बिना सोचे कि वो कहाँ सोयेगा, अब जबकि वो बड़े कमरे में अकेली सोती हैं और मेहमान कमरे में बेटी रहती है। या क्या उनका मतलब था पहले की तरह...?

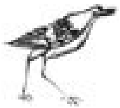

***अपने** आप से त्रस्त होना हर त्रस्त होने से आगे। महान में महानतम।*

दूसरे हुए दूसरे। दूर हो लो, हमेशा को या दो घड़ी को। पत्नी पति से त्रस्त तो फूट लो सहेलियों के पास। घर छोड़ा और साँस आने लगी। फाटक से बाहर तो चलने लगी। सड़क पर आ गए तो दौड़ने लगी। अब उड़ो सँभलो गिरो नसीबोंवाली हो। निकलना नामुमकिन, तो मन से निकाल दो। वो नामुमकिन तो मन में बैरी की पैरवी कर डालो और उन्हें पटक, खुद को चोटी पे आसीन कर लो। दूसरे को नीचा कर दिया तो हो ही ऊँचे जाओगे। गर्वित

हो लो जो बादल बन त्रस्त को ढक दे। आत्मभ्रमित हो लो जो खुद को आत्मतुष्ट कर दे। और सबसे बड़ी बात कि कर सको तो हर नाकाबिले-बर्दाश्त को ठट्ठा बना के मुँह से उड़ा दो। हाहाहा होहोहो।

हँसी ऐसी अलामत जो इन्सान ने सीखी और सिखाई। कभी रहा होगा कि नहीं आता हँसना। न बच्चे के जन्म पर ख़ुशी उठती, न प्यारे की फ़ौत पे दु:ख। तब दोनों को अलग छानना पड़ा कि सुख का सुख मिले और दु:ख मिटाने का नुस्खा। तभी इन्सान रोकर भी खुश हो जाता है और हँसकर तो खुश है ही। जानवर भी ये गुर उनके संग सीख गए। पालतू कुत्ते की पूँछ ही नहीं, मुँह भी हँसना शुरू कर देता है, जबकि सड़क वाला कुछ बिगड़ा सा मुँह बनाये रहता है। बिल्ली घर की हुई नहीं वर्ना वो भी ठहाके लगाती। ऐलिस की बिल्ली मुस्कान तक पहुँच गयी थी। सब आत्मविश्वास की बात है जो हँसी से फूटती है। ये अलग बात है कि जैसे हर चीज़ का दुरुपयोग किया जाता है मुस्कान का भी हो रहा है और आज सड़कों पर मुस्कान घूम रही है पर लम्पट दुष्कर्मी दुराचारी दुष्ट चपत लगाती चपेट में लेती चोट पहुँचाती और हँसी रह गयी है, उसकी दया गायब है।

पर बेटी की मुस्कान वुस्कान हल्कान हो चुकी थी और सब गायब था, केवल त्रास रह गया था जो खुद पर था। क्योंकि दाल को लहसुन मिर्चा का बघार देते हुए उसके मन के होंठों पर आ गया ये मैं हूँ? तो मैं कौन हूँ? तो मैं कब मैं हुई? जब इस घर में रहने आई थी? ये कौन थी या वो कौन थी? जो सुचारु रूप से घर को चलाने में मुब्तिला और अपनी सन्तान, नहीं माँ, की सहूलतें जुटाने में लगी है, फिर केके के चुम्मों पे गिजगिजाने में, फिर ख़ुदपर खिजाने में। जो नेपथ्य से रोज़ी रज़ा अम्मा के संवादों को सुनती है, और रिश्तेदारों को सारे दराज़ अलमारियाँ खोल के नैपकिन गिलास कागज़ कलम निकालते हुए अन्दर पड़ी चीज़ों को जांचते हिसाबते बिन ऐतराज़ देखती है, और बाइयों पड़ोसियों गार्डों मालियों को अम्मा की हिदायतें अब उसी के मुँह से झरती हैं। सिड और उसकी पलटन के लिए पकौड़ी तलती है, पापड़ बेलती है, तो क्या है वो?

तो मैं मैं कब हुई? या मैं मैं कि चुहिया? फ़र्नीचर के पीछे, घर में दुबकी फिरती।

अपने को चुहिया सोचो तो कौन अपने संग खुश हो सकता है? अपने से अलग भागा भी नहीं जाता। बकौल बोर्हेस अफ़सोस, दुनिया असल है; अफ़सोस, मैं बोर्हेस हूँ। या जैसा कंफ्यूशस कह गए कि कहीं चले जाओ, वहाँ होगे तुम। यानी जहाँ तुम जाओगी, वहीं चुहिया पाओगी!

बेटी काम के बहाने अपनी किताबों में बैठती और कलम उठाती तो कलाई पे चूड़ियाँ बज जातीं, जो अम्मा ने पहना दी थीं, जिस पर सवाल ताज़ा बजता कि मैं कब मैं हुई और मैं मैं कि माँ हुई?

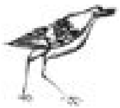

सीटियाँ और घंटियाँ। ये ऐसी हस्तियाँ। जो हवा को ही नहीं, दिल को चीरती हैं और तन को टक्कर मारती हैं। जो घरों में रहते हैं वो ही समझते हैं इस बात को क्योंकि उनका हाथ कुछ लिखते हुए हिल जाता है, उनकी काया कुछ करते हुए लचक जाती है। कुछ तो घर से भाग जाते हैं। बहुतेरे, अधिकतर जो मर्द हैं, कान में रुई डाल के अपने अन्दर घुस जाते हैं। जो इनमें से कुछ नहीं कर पाते वो सीटीघंटी से बचते हुए चलने का गुर सीखते हैं। या दो टूक कहें तो सीखती हैं। राजी सेठ ने रिल्के का अनुवाद किया तो पंक्तियों के बीच में घंटीसीटी दबा के नया पंकचुएशन बना दिया। शीला रोहेकर ने लेखन के बीच कुकर की सीटी गिनीं तो पंक्तियों के इर्द गिर्द नया हिसाब निखर गया। मैत्रेयी पुष्पा ने एक और रास्ता निकाला कि गंवारू कहलाने वाली स्त्रियों की टोली लगा दी कि राह में आतों को तुम दायें बायें कर दो। नतीजतन घंटीसीटी बजीं तो गंवारों से टकरा के वही डगमगा गयीं। डगमगाती घंटीसीटी की अलग थरथराती ध्वनि बजी और मैत्रेयी के हाथों के लिखे और पकौड़े दोनों मारक हो गए।

इसे घंटी सीटी लेखन कहते हैं जिसकी नयी कलात्मक ध्वनियाँ हैं। ये बीच बीच में काम करने वालों का गुर है। जो एक दिन में नहीं आता और जिसे नहीं आता नहीं आता, पर जिसे आ जाए तो ऐसे कि सीटीघंटी के साथ अलग रुनझुन बजा ले और सबको पानी पिला दे। एक आखिरी मिसाल डाल दें तो वो होगी सिड की आगे चलकर आने वाली पत्नी की, जो इस गाथा में नहीं आएगी क्योंकि इसकी वो किरदार नहीं, मगर उसने तो बखूबी किया घंटीसीटी पंकचुएशन, कम्पनी में ऊँचा चढ़ने के बीच और एक प्यारी बिटिया के साथ और सिड के सहयोग के बीच, जिस अन्तिम बात को पूरे अंक न देना कंजूसी होगी।

कुछ इस तरह भी जूझे कि अपने सामाजिक कर्तव्य, जैसे विवाह रचाना, सन्तान जनना, ससुराल सेवा करना, की भरपाई कर रीबॉक पहन पड़े कि इसकी सैनिक-चाल सीटीघंटी की लचक मचक चीख पे हथौड़े सी पड़े।

और कुछ कुछ न सीख पाए। हर बजने पर कूदे तो शब्द अधूरा, वाक्य लंगड़ा, वे खुद लूले हो गए। कुकर दरवाज़ा फ़ोन केतली मशीन अवन लम्बी पीं टीं करें और घर को नचायें। उनकी ध्वनि ऐसी ज़ोरदार है कि अगर अभी तक आदत न पड़ी हो तो ऐसे हिलोगी जैसे किसी भारी चीज़ से टकरायी। जैसे बेटी टकराती है।

दूसरे उठ के सीटी बंद करते हैं, यहाँ सीटी बेटी को बंद करे दे रही है। उसके काम का पंकचुएशन नहीं बनी है। काम काम की कोशिश बन गया है। उसके बीच, आने जाने वालों पर, किताबों के पीछे से झाँक लेना। रोज़ आने वाली रोज़ी पर। जो सच नहीं है पर सच लगने से होता है, होने से नहीं।

रोज़ी कहीं जाने के ज़िक्रों में थी। जाती रहती है। कभी जंघई कभी व्यारा। बक्सर से माँ को फ़ोन कर चुकी थी। मेवात करनाल भोंडसी बम्बई से भी। फंक्शन कराती है, चैरिटी सेल लगाती है, पैसा बनाती है।

कान किताबों से उठ लेते हैं और बेटी सुनती है अब्रॉड जाने की बातें। पाकिस्तान की बात। पासपोर्ट की बात।

वो बड़े से करवा देंगे। अम्मा की आवाज़ है।

भाई मानेंगे? कैसा लगेगा ऐसा पासपोर्ट बनवाने में? फ़ीमेल रोज़ी या क्या, बेटी मुस्कराती है।

बुकशेल्फ़ से किताब हटा कर दरार बना के झाँकती है तो रोज़ी नहीं रज़ा है। मानो उसके व्यंग पर बदला लेने को रज़ा टेलर मास्टर बन गयी है। दोनों की ये धौंसपट्टी उसे सुखाये दे रही है।

टेलर मास्टर पासपोर्ट चाह रहे हैं? इनके पासपोर्ट में तो 'मेल' ही

लिखा जाएगा।

किताबों के बीच से रोज़ी, नहीं रज़ा, की एक आँख दीख रही है। दूसरी उसने बंद कर दी हो कल्पना करो, बेटी मन में स्केच बनाती है, जैसे आँख मारने, तो अपने शाइस्ता अंदाजों के पीछे कितना काईयाँ लगता होगा। धूर्त नज़र से अम्मा को देखता।

ये रोज़ी की धूर्तता है कि रज़ा मास्टर की? और ये नया फ़ितूर कि पासपोर्ट बनेगा।

पासपोर्ट केके भाई बनवा देंगे, उसने उन्हें कहते सुना। अब केके उनका जिगरी है।

केके की रति-रत आँखें उसके जी में झपकती हैं। जबकि अब वो उसकी तरफ़ देखता भी नहीं। वर्ना हम दोनों बात करते कि ये रोज़ी को रज़ा क्यों होना पड़ा? एक ही हैं न? कि दो? एक का सीना सपाट, एक की जांघों के बीच सपाट। या एक में दो, जेकिल और हाइड। कौन जेकिल, कौन हाइड? कौन कौन?

उसने माँ से एक दिन पूछा। ऐसे नहीं। ऐसे। कि सिगरेट की महक अब घर में आने लगी है। माँ चुप रहीं। मास्टर जी सिगरेट कैसे पीते हैं? माँ चुप रहीं। उनका भी एक पर एक दांत है रोज़ी जैसा। कोई चुप पे चुप रहे तो असहज हो जाओगे। उनका धर्म क्या है? किनका, माँ ने तब पूछा? रोज़ी बुआ और रज़ा मास्टर जी का?

माँ हँसने लगी तुम धर्म धर्म कर रही हो?

और बेटी चुप हो गयी। जैसे माँ ने जता दिया कि ज़्यादा कुरेदो मत, वो जो हैं उन्हें रहने दो। एक धर्म कि दो। एक जन कि दो। भूल जाओ।

OceanofPDF.com

भूलना ऐसी क्रिया। जो भूलना चाहो भूल सकते हो। ये भी कि उसे भूलना चाहते थे। एक बॉर्डर खिंच जाता है उस याद के चारों ओर, और कोई साधन नहीं बचता अब उस याद तक पहुँचने का, बशर्ते कि बॉर्डर के पार लुढ़क नहीं गए। जतन से या बेप्रयत्न। लुढ़क भी गए तो वो पहली वाली याद नहीं रही, पुनराविष्कार है। कुछ वैसे ही जैसे कहते हैं कि भ्रूण बनने के पहले तुम कोई और थे जो पुनर्जीवित हुआ, पर अब तो इस जीवन व्यक्तित्व दिनचर्या से नये हुये। पुर्वजन्म में जो था, तुम वो नहीं, कुछ और हो। उससे याद से जुड़े, अगर याद आ जाए। तो भूली और नयी दोनों पर मुँह खुला का खुला और आँखें फटी की फटी। क्योंकि बॉर्डर के पार नया जग है, चाहे पीछे जाओ, चाहे आगे। जैसे जब इस कथा की दो औरतें ख़ैबर पहुँचीं तो वो ख़ैबर वही था जो पहले भी था पर एकदम नया नया और ख़तरे भी नए, जबकि खतरनाक पहले भी कहते थे था।

बातें उलझ कर आती हैं जैसे संवाद, अगर वो सेमिनार की पेशकश नहीं। वक़्त और क्रम सब गडमडा जाते हैं, साँसें और दृश्य और बासें और स्वाद और चक्कर घनचक्कर और गद्य और पद्य भी।

इसीलिए हवा भड़भड़ करती है, क्योंकि हर चीज़ से टकराती है, फिर चोट खा के पीछे जाती है और वहाँ भी हवा से टकराती है।

हवा स्मृति है, सवाल है। स्मृति ज़रूर करनी चाहिए। सवाल भी ज़रूर। क्यों है? कैसे? वो जो था। वैसे। तो फिर? दीवारों में सवाल और स्मृति। शब्दों में। दीदारों में। दरक रहे हैं, फिसल गए हैं, फिर उठ लिए हैं। मेरा क्या, मैं कौन, गाँव किधर? क्या देखते हो बिटिर बिटिर। सवाल वो नहीं जिनके जवाब रट के परीक्षा का परचा खोलते हो, लिखते हो, अंक बटोरते हो। सवालों के जवाब नहीं होते। हमारा भारत कहाँ है, जिसकी रट लगती है, पर वो भी कहाँ जानते हैं जिन्होंने रटवाया।

बात ये कि सवाल महान को लेकर नहीं है। विशाल महान बड़ा फैला। सवाल ज़रा को लेकर है। थोड़ा छोटा तफ़सील। बल्कि सवाल है ही नहीं। देखना है, नोटिस करना, गौर करना, टिकना। नोटिस डिटेल को करना है। पूरे जंगल में अलग तना एक वृक्ष। भरे मजमे में झलक मारता इक चेहरा। हमदर्द चेहरे पर पल भर उभरी डाह की स्मित। एलेवेटर के शीशे में मेक-अप पुताई के बीच से झाँकती नन्ही झाईं। बाकी कहा छिपाने को, डीटेल का कवर।

तभी अंधे की आँख दूर देखती रह जाती है। दूर जो है वो वहीं छिपा है। पास देखो अगर देखना है, वो ही दृष्टि को दूर तक ले जाएगा — चींटी दीवार पर सरकती, दरार में गयी, अपनी साँस से सुरंग खोदती, उधर निकल गयी, सीमापार, ख़ैबर पास पास करके, एक और जग में। पास से पास।

पास से देखते तो औरों के मंसूबे देखे होते। अपने मतलबों में न रहे होते तो बहुत से ब्यौरे नोट करते। उन पर सवाल उठते या उठाते। अपनी खुंदक में रहे कि वहाँ कभी न लौटें जहाँ अकड़ है कि घूमफिर के लौटना तो यहीं है, तो क्यों कुछ दिखेगा? क्यों सुनाई पड़ेगा जब एक दिन माँ कहेगी मुझे जाना है?

बेटी गिर पड़ी।

ढलती धूप है और अम्मा कुर्सी उसके दायरे में खींच कर ऐसे बैठी हुई थीं जैसे कबूतरी पंख फैला कर अंडे सेती हो। छड़ी से अपने पौधों को संवार रही थीं तो तितलियाँ भी उड़ने लगीं।

बेटी को केके की आवाज़ आई थी। अपनी दूरबीन यानी बुकशेल्फ में दरार से झाँका तो मास्टर जी के साथ धुएँ के छल्ले फेंक रहा था।

वो अन्दर आया, प्लेट में तली मूंगफली पर प्याज़, हरी मिर्च, धनिया पत्ती, काले नमक की छींट लिए। उसके पास मेज़ पर रख गया। न इसने आँख उठाई, न उसने कुछ कहा।

चिढ़ी हुई आँखें गीली आँखें थीं। किताबों पे झुके रहने में माहिर। माँ ने आवाज़ दी तो 'अभी' कह कर वो बैठी रही।

बेटी की तन्द्रा तब टूटी जब अम्मा ने फिर आवाज़ दी। महफ़िल उठने

को थी। आवाजें अभी भी उठ रही थीं पर वो अब किसी को नहीं पहचानती। वो उठी, थोडा हड़बड़ा के, दरवाज़े के बंद होने पर, कि केके बिना बोले निकल गया? वो उठी और सोया पैर चिलक गया और वो गिर पड़ी। अपने कागजों को बचाती उसने मेज़ पे ढुलकते तन को मोड़ा तो कागज़ बच गए, और कुछ नहीं। ढेरों शब्द हुए और फूटे और उधर माँ चिल्लायीं क्या हुआ और रज़ा मास्टर दौड़े आये।

उसे सँभालते हुए उठाया और वो लंगड़ाते हुए उन पर झूल गयी।

पीछे पीछे अम्मा, ख़ासी तेज़ चलती, आयीं।

बस ये न पूछें, न पूछें, बेटी की दबी सिसकी बोली। क्या हुआ, अम्मा ने घबरा के पूछा और उसकी सुबक निकल गयी। रज़ा मास्टर ने लगभग उठा के उसे हॉल में सैटी पर बिठलाया, पीछे तकिये लगाये, और पाँव के नीचे भी और जहाँ उसका पैर मुड़ा था हल्के से दबाया। पीड़ाता है? यहाँ? यहाँ?

अम्मा के कहने पर रज़ा मास्टर ने फ्रिज से बर्फ़ निकाली और बेटी से पूछा छोटी तौलिया बीबी बता दें कहाँ है, नहीं मुझे बताइए, और दराज़ से निकाल के बर्फ़ उसमें लपेट के बेटी के टखनों पर नरमी से दबा दी।

देर तक रज़ा मास्टर कुछ फर्स्ट-एड करते रहे। अम्मा ने कहा ओहो अभी तो तुम बिलकुल नहीं उठोगी जब तक पैर एकदम सही न हो जाए। देखो बैंगनी हो गया है।

फटा नहीं है माता जी, मगर अन्दर खिंच गया है। खून जम गया है।

केके तो एअरपोर्ट निकल गया होगा। कल लौटेगा। क्या करें? तुम नहीं हिलोगी। माँ ने बेटी को डाँटा। चैक करती हूँ सिद्धार्थ घर पे है।

माँ जी आप बैठिये। फ़िक्र क्यों करती हैं? कोई रह जाएगा आज रात। कल केके भाई आ जाएँगे।

ये तो बाथरूम भी नहीं जा सकती। माँ अशान्त रहीं।

मैं ठीक हूँ, बेटी ने कहा। दर्द कम है।

उधर जा सकता हूँ? रज़ा मास्टरजी ने पूछा। गेस्ट रूम की तरफ़ इशारा करके। अपना बैग, जिसमें वो सिलाई के कपड़े लाये थे, उठाया और अन्दर गए।

निकले तो रोज़ी निकली, गुलाबी बॉर्डर के कसे सलेटी शलवार सूट में। जूड़ा जूतियाँ हैंडबैग जयपुरी कड़े, जो उसने जल्दी से उतारे जैसे उतारने को पहने थे और बेटी का पाँव जांचने लगी और पल भर में हर बात का ज़िम्मा ले लिया।

मामूली सूजन है बाजी, अभी चंगू मंगू हुआ जाता है।

बेटी की आँखों में किसी ने पिचकारी दबायी हो, ऐसे एक धार पिच्च निकली। जैसे कहती हो मेरा तन तो मेरी नहीं मानता। खड़ा करूँ तो गिर जाता है। उसे नहीं आता कुछ भी बन लेना और कुछ भी कर लेना और कोई रोक टोक न मानना और जीने के हों रंग हज़ार।

दर्द हो रहा है, रोज़ी बुआ ने पूछा? उसके हाथों की छुअन मास्टर जी से अलग थी। उनकी मज़बूत मगर सावधान, कि दूर दूर से, इसकी मलहम नरम कि सब जगह के राज़ से वाक़िफ़। मालिश नहीं, बस पट्टी बाँधूँगी। झोले में से जड़ी बूटी निकाली, हल्दी गरम करके लेप तैयार किया और चूना भी लगाया। हल्के से मल कर क्रेप की पट्टी बाँधी। दूध में हल्दी डालकर बेटी को पिलाया और बेटी को नींद आ गयी। वाकई!

अगले दिन केके आ गया और रोज़ी चली गयी।

शाम को रज़ा टेलर मास्टर बेटी को देखने आये।

सब चंगू मंगू बेबी, रज़ा मास्टर ने उसके मन की पीड़ा हरने को रोज़ी बनके कहा। हड्डी सलामत है, फ़ाइन हैं आप बीबी, वापस रज़ा बन गए। बेटी ने अनुग्रह से देखा और हाथ जोड़ दिए। भिन्न भिन्न प्रकार से उसके उपचार, देखभाल पे।

मास्टर जी ने उसके माथे पर हाथ रखा। बाल बिखर गए थे, उन्हें हाथों से पीछे फेरा। ये जो आपके माथे पर बालों का त्रिकोण बनता है न, ये खूबसूरती की निशानी है। इसे छिपाइए

मत।

मुझसे मिला है, अम्मा ने अपना माथा हँस कर छुआ।

जहाँ बालों की लाइन ख़त्म होती, वहाँ बीचों बीच नुकीला तिकोन नाक की तरफ़ डाइव मारता।

आप तो हैं आंटी खूबसूरत, बेहद। केके ने कहा।

माता जी तो माता जी। रज़ा मास्टर भी मुस्करा दिए। पर बीबी आप मस्त रहिये, जल्दी से ठीक हो जाइए और प्यारी प्यारी रहिये।

बेटी का जी सिराया। चाहा कि पूरा तन खोल के अंगड़ाई ले और अम्मा की तरह खूब आवाज़ करे। मास्टर जी का माथे पे हाथ अच्छा लगा। मज़ाक सूझा, स्कूल के दिन याद आये। बोली हम स्कूल में इसे विडोज़ पीक कहते थे। इस तिकोन को और कहते जिसके ये होता है उसका पति दो शादियाँ करेगा।

तुम्हारे ने तो की। केके हँस दिया।

मेरे ने भी की होगी। अम्मा ने कहा।

ओ माता जी? रज़ा मास्टर ने संजीदगी से देखा।

बेटी और केके साथ हँसे कि ऐसे ही बकवास की तरफ़ बातें चली जाती हैं। माँ भी हँसीं, शर्मीली सी हँसी जैसे बदन उघड़ गया हो, हँसी ने ढक दिया।

बरसात *चुपाती है तो ब्लैकबर्ड का गाना और बुलंद सुनाई पड़ता है।*

पागल धुन जो दूर सुदूर किसी यूरोपीय गाँव में बजती है जहाँ बैठा डेरेक मन नाम का अंग्रेज़ जो लिखता फ्रांसीसी में है उसे सुनता है। डेरेक मन का मन डोल जाता है और वह दो पल को इस द्विदिशात्व को दुलराती गाथा में बाज़ाबिता चला आता है और कलम उठा अपने उपन्यास में काली चिड़िया का गीत दर्ज करते हुए लिखता है :

'ब्लैक बर्ड जब जहाँ भी गाती है, वो यहाँ है और अभी। वो पल बरस दर बरस आता है और फिर फिर वही जोड़ बनाता है। गुज़रता वक्त उसमें थम जाता है, ऐसा एक पल, अनूठा, यादगार, जो भुल जाता है अपने लौटने तक, पल जिसकी परिधि नहीं, इसी जगह का, इसी पेड़ से, जो औरों से कुछ अलग सा है, उसका तना उस झाड़ी से प्रकट होता, जैसे कहीं नहीं से, एक टुकड़ा जो इस उपजाऊ मिट्टी को फोड़ता है, जिसमें वो न अपने घर में है, न बेज़ार है,...। दायें से बलखाता हुआ, बायें जाता। कितने डग? बच्चे के लिए बहुतेरे, बालिग के लिए दो चार...झाड़ के बांयी ओर एक और झाड़, कभी सारे झाड़ मन में झंकाड़ बना देते हैं, और दांयी तरफ़ एक और वृक्ष बुलाता कि आओ कूदो मुझ पर, कुछ महत्त्वहीन नहीं है, हर ज़र्रा पूरा है, उस पहली नज़र की तरह, उस पहली बसन्त के उजास में। शाम है। बच्चे की

शाम, घड़ीमुक्त, बहुत देर नहीं, वो अकेला, ये उसकी खास जगह है। उसकी खास उम्र। वो क्या कर रहा है? अब कोई सुराग नहीं...अभी भी टटोल रहा है वो बेचैनियाँ अपने भीतर जो उसे अलग संसार में लुभा ले गयीं, पर धीरे धीरे वो लौट रहा है, शान्त हो रहा है, हो गया है। जब ब्लैकबर्ड गाना शुरू करती है वो तन्मय होकर उसे सुन सकता है।

पहली बार उसे मौसम का आना समझ आता है, पहली बार सब भुला के सुनता है। सारे उद्गार लाँघ जाता है, खुद अनुपस्थित सा हो जाता है, जानता हुआ कि नहीं जानता। ये इल्हाम है। सुर नशीला, उसमें बहता, एहसास कि कोई आरम्भ है जो अन्त का है, उसे सुनाई पड़ता है सुख, क्रोध, अफ़सोस, बयान, ललकार, ईष्र्या, ललक, चेतावनी, भय, प्रीत, खलबली, कटाक्ष, धैर्य, संग, फटकार, हौसला, गंभीरी, विनोद, चुप। कोई भाषा जो उसकी भाषा को प्रोत्साहित कर रही है। कुछ नहीं और सब कुछ समझ रहा है वो।

लौटता है दूर जहाँ वो है।

आजीवन ब्लैक बर्ड उससे बोलेगी, नित बार वो उसी पहली बसन्त पे लौटेगा। जहाँ भी वो होगा, वो यहीं होगा, इसी पेड़ के आगे, इस झाड़, इस रौशनी में, और इसी पल में।'

कहती है वहाँ लाल मुँह वाला बन्दर नहीं है।

वो भी ले जाना है? माँ हँसती है।

कहती है सिर्फ़ चिरौंजी और आप। रोज़ी।

कहती हैं देएखो। अम्मा।

कहती है मुझे पासपोर्ट से क्या? न होने के फ़ायदे हैं। हमारी गिनती न मुस्लमीन किरस्तान में न यहूदी पारसी हिन्दू में न आदमी औरत में, हमारा नाम नहीं लेना, हमें पहचानना नहीं। हमें असल क्या, तसव्वुर से ही गायब रखना चाहते हैं। तो हम तो कहीं भी घुस लें।

भूत। अम्मा हँसीं।

भूत भी पूजोगे, कभी परलोक का पता जानने बुलाओगे, झाडू मारने सताओगे, भूत तो बहुप्रतिभाशाली, अमर अजर अन्तर्यामी। हम भूत नहीं, हम छूत।

क्या क्या बकती हो रोज़ी? अम्मा। बहलाती हुई।

हम विकृति, बाजी। दूर रखो। देखा तो घूँसा लगा दिया। मरी कि बच गयी ये भी पलट के न देखा। नहीं देखा तो नहीं देखा। गायब रहें, गायब हैं हम, ये गुलिस्ताँ हमारा हमारा!

ऐसे लोग आसानी से गुम हो जाते हैं। किसे पड़ी इन समाज के नाकारों की।

बाजी, निथारी वाले बच्चे। उनके संग हुआ पर किसे पड़ी? क्या मालूम उस शख्स में दानव इसी इल्हाम से जागा कि किसे पड़ी? अकेला रहता था, अकेलापन लगता होगा, घर

बियाबान होगा, निकल के फाटक पर खड़ा हो गया होगा कि सड़क पर चलतों को देखे, हरकत मिले, हरकत की हरारत मिले। बच्ची मिस्कीन, मारी मारी दिन भर फिरे। उधर से गुज़र रही हो। अकेलेपन को देखा हो। उसी ने कह दिया हो अंकल टॉफ़ी। या पेन। या बच्चा रहा हो। अंकल को सिगरेट फूँकते देखा हो। फिर फेंकते। भाग के उठा लिया हो कि दो कश खींच ले। दूसरे दिन कह दिया हो फेंको नहीं। या कह दिया हो अंकल सिगरेट।

या अकेले आदमी को चना फांकते देखा हो। कड़ी बनते देर नहीं लगती। पहले दिन कुछ न दिया लिया हो। अगले दिन नाहक की पहचान हो गयी होगी। फिर चना सिगरेट पेन टॉफ़ी। किसी उदारता में नहीं। बस। नाहक। दिल कहीं, हाथ कहीं। दिल नहीं तो दिमाग कहीं और हाथ इधर। 'थान्कू' बच्चे ने मुस्कान मार दी हो। जिसकी भी किसे पड़ी? पर कड़ी तो पड़ी।

अगले दिन आदमी मुस्का दिया हो। नाहक। ख़ाली पीली। कड़ी बढ़ी। आदमी को अपनी ताकत का भूला सा एहसास हो चला। हरकत है ये। मैं मुस्काया। किसी को नहीं पता। किसी को नहीं पता मैंने टॉफ़ी दी। किसी को कुछ नहीं पता, न पड़ी। बस कड़ी। कुछ करूँ, किसे पड़ी? कोई जवाबदेही नहीं। ये बच्चे, किसे पड़ी? इनसे जुड़ी की किसे पड़ी?

भागो, उसने कहा हो और बच्चा भागा हो। ताकत, अकेला मुस्कराया हो। अगली बार बच्चे ने देखा हो, भागो कहेगा कि देगा? मुझसे डरा। ताकत! आओ, उसने बुलाया हो। मूंगफली दी हो। या सिगरेट रही हो और बच्ची। तो कहा हो आओ और घर की तरफ़ मुड़ गया हो। बच्ची पल भर अपलक। फिर फाटक के नीचे से बिल्ली पिल्ले की तरह निकल अन्दर और अकेले के पीछे पीछे। अकेले मुड़ा। बच्ची रुक गयी। अकेले बढ़ा। बच्ची चलने लगी। ताकत! अन्दर आदमी ने कुछ खाने को दे दिया।

एक दिन बच्चा कि बच्ची खुद गेट खोलके आ गयी। एक दिन पेड़ के नीचे पड़ी कुर्सी पर बैठ के खाने लगी। एक दिन दरवाज़े के बाहर बरामदे में सोती मिली। कोई पूछने ढूँढ़ने वाले नहीं उसको।

वाह साहेब, इन बच्चों के न कोई आगे न कोई पीछे। ऐ! उन्होंने दांत दिखाए। बच्ची घबरा के उठी, गिर पड़ी। वो हँस दिए। वो भी। खेल। ताकत! दुनिया के बीच हैं और न उसे कोई देख रहा है न मुझे, कुछ हो, कुछ करो, कुछ भी करूँ।

क्या करूँ? ताकत! ताकत का संचार, दानव का संचार। अपनी ताकत का स्वाद लेने वो बच्चे का स्वाद लेने लगा। खाया, नाली में फेंका, जी इससे भी ऊब गया, तो नौकर से कहा आओ, मसाले पीसो, बनाओ, साथ बैठो...

हमारी किसे पड़ी, रोज़ी अम्मा से कहती गयी। हम तो उनके बाज़ार में भी नहीं कि हमें लुभाने के इश्तेहार बनायें, हमारे लिए दुकान खोलें और

नफ़ा कमायें। लोभी पंसारी को भी हमारी ग्राहिकी नहीं चाहिए, तो सोच

लो हम कितने निकृष्ट अदृश्य परिशिष्ट। न मेरे लिए फ़िल्म, न साहित्य, न कला, न कपड़े। जो आप उतार दें, उस उतरन में हम उतर लें। अपनी कहीं गिनती नहीं। झील में बाजी डाल आओ तो किसी को पता नहीं चलेगा कि एक कम है।

हमारी किसे पड़ी, हम हैं ही नहीं, और हैं नहीं तो अपने हक हुकूक क्या, और हैं नहीं तो पासपोर्ट क्यूँ, ऐसे ही बॉर्डर पार और आर।

दानव हुए कोई, पर ये समाज ये दुनिया जिन्हें न ख़बर, न पड़ी, कि

बच्चे गुम कम हो रहे हैं, वो क्या देव? अजी कातिल, रोज़ी ने परिभाषित किया।

उसने चोटी बनायी थी और गुलाबी परांदा झुला मटका के बोली। उसका सलवार सूट नेवी था और उस पर गुलाबी गुलाब की बेल बूटी थी। चुन्नी रानी रंग की और हरी पत्तियों में लहलहाती। जितना रज़ा मास्टर शाइस्ता ज़बान और सादा लिबास, उतनी रोज़ी भड़काऊ पहनावा और चोटीपोटी अदायें। वो गुम हो जाए तो संसार में कुछ लटके झटके कम हो जाएँ। चाहे किसी को पड़ी हो या नहीं कि वो कहाँ लापता पड़ गयी!

झील। अम्मा ने चुप्पी तोड़ी और बैठे से उठ गयी।

झील, अम्मा बदहवास निकली, छड़ी खींचती और बेटी संग में।

दोनों झील किनारे खड़े हो गए। जीपीएस से खोजते, इसलिये खोते, पहुँचे थे। इस शहर में झील है कहाँ और उसमें पानी कहाँ से होगा जब जमुना जी तक पपड़ी थीं?

शहर से दूर बर्फ़ की चादर बिछी थी जो बर्फ़ नहीं, झील थी जिसमें कुछ रोज़ बाद आग लगने वाली है।

उसमें सफ़ेद बादल उठ रहे हैं जो बेहद बदबूदार हैं जिसके नीचे झील काली मटियाली कीचट झाँकती है। चारों तरफ़ के शहरों के नाले उसमें खुलते हैं और फैक्ट्री और सूएज, नालों में। तेल और फोस्फोरस का ज़हरीला मिश्रण आग बनना चाहता है और बनेगा। बारह बारह फ़ीट तक लपटें उछलेंगी और एक और क़यामत घटेगी। दूर से जो बर्फ़ की चादर लग रही थी, पास से सफ़ेद झाग है जिसमें ढलते सूरज के लाचार टुकड़े कुचैले पड़े हैं। कभी कछार की गीली मिट्टी फ़िल्टर का काम करती थी पर अब वहाँ सीमेंट की इमारतें भर गयी हैं। ज़हरीली लिसड़ती चादर उनसे सटी बिछी है और अम्मा शान्त खड़ी है पर ऐसे देखती कि जैसे उसकी नज़र चाकू की तरह झील को काट देगी जो करते ही रोज़ी जहाँ छिपी है वहाँ से ऊपर तैर आएगी, मछली की तरह।

खम्बे पर लटके नोटिस की कील निकल गयी थी और वो टेढ़ा लटका टन टन बज रहा था, वीरानी बढ़ाता। टेढ़े हो जाओ तो उस पर लिखे नियम पढ़ सकते थे। बेटी टेढ़ी हुई। पार्कों में क्रिकेट खेलना शराब जुआ सिगरेट कुत्ते मना। झाड़ों में छिपना मना। फूल पौधे तोड़ना मना। लड़ाई करना मना। पेशाब करना मना। साइकिल चलाना मना। पर पार्क कहीं दिख नहीं रहा था। झील की तरह वो भी किसी ज़हर को ओढ़े गायब था।

कोई शायद बीड़ी फूंकेगा और फेन जल उठेगा। दूर दुनिया के देश तीसरी दुनिया के इस करिश्मे पे दहल जाएँगे। अख़बारों चैनलों पर सुर्खियाँ सुर्ख होंगी।

मगर कहीं ये ख़बर नहीं होगी कि रोज़ी गायब है।

बुआ जाती तो रहती हैं। बेटी ने माँ की बेचैनी पे कहा।

पर फ़ोन करती है।

आके करेंगी।

वहाँ से भी करती है।

कनैक्टिविटी नहीं होगी।

घंटी जा रही है। उठाती नहीं।

कहीं विदेश गयी होंगी। वहाँ यहाँ का फ़ोन थोड़े उठाएंगी। पासपोर्ट पासपोर्ट कर रही थीं।

वो मेरे लिए कर रही थी।

बेटी गड़बड़ाई।

मुझे साथ ले जाना चाहती थी।

कहाँ, बेटी घबरायी?

वहाँ लाल मुँह के बन्दर नहीं हैं।

जैसे वो कमी पूरी करने, बेटी की उलझन बढ़ती गयी।

वो पासपोर्ट के बिना चली जाती थी।

तो चली गयी होगी, बेटी को ये ही लगा कि किस बात का बवाल।

लेकिन चिरौंजी मेरे पास रह गयी है।

बेटी को न समझ पाने की आदत हो गयी है। जो अम्मा कहती हैं उनका मन रखने को कर देती है। जहाँ बोलीं फ़ोन मिला दिए। टेलर मास्टर के यहाँ सन्देश छोड़ दिया और कंठे राम से पूछा रोज़ी दिखी थी? उसने कहा कभी कभी दीखती है। मास्टर के यहाँ फ़ोन बजता रहा।

दोनों एक संग गायब हो गए? अम्मा ने गूढ़ता से पूछा, जिस पर बेटी ने मूढ़ता से सिर नहीं में हिला दिया।

मुझे समझ नहीं आता, बेटी ने हार कर कहा।

ये ही, अम्मा ने छड़ी नचाई। न मुझे। जैसे दोनों सहमत हैं।

और झील पर ले आई जो जलेगी किसी के बीड़ी सिगरेट सुलगा के उसमें तीली फेंक देने से।

भड़क उठेगी झील तो क्या रोज़ी निकलेगी लॉखनैस मॉन्स्टर की तरह?

अँधेरा होने वाला है, बेटी ने अम्मा के कन्धे घेरे। अब चलिए यहाँ से।

पता है यहीं...? अम्मा पता नहीं खुद से या उससे बोलीं।

हाँ, आप हफ़्ता-बाज़ार आयीं थीं, चप्पल लेने।

...उसने घर ख़रीदा था। अम्मा ने वाक्य पूरा किया।

यहाँ रहती थी, शहर से दूर? मैं समझती थी...पर बेटी उलझ गयी कि बात रोज़ी की है कि रज़ा की? पर लगता था कि दोनों ही कहीं पास से ही आते थे। दुकान भी पास थी। और बड़े के अफ़सरी दिनों में रोज़ी आस पास दीखती।

किराया लेती थी। अम्मा की छड़ी ऐसे चली जैसे उन्हीं का अंग। शिफ़्ट करने की बात कर रही थी।

तभ्भी बेटी को जवाब मिल गया, शिफ़्टिंग के दौरान कौन फ़ोन करता है? उसमें फ़ोन तो बजता ही रहता है।

झुरझुरी आई। दो युवक ढलान पर आ बैठे थे और मोबाइल देख रहे थे और बहुत चुप थे। पॉर्न फ़िल्म और धुत्त हो सकते हैं। दूर तक केवल वे दो और उधर गैस के बादलों के पार धुन्धलाये मकान। चलिए।

हाँ चलो। अम्मा बोलीं।

उनका मतलब था कि उधर, बिल्डिंगों की ओर। जिधर वो ज़हरीले बादल उड़ के जा रहे थे, झील के ऊपर से जिसमें कुछ दिन बाद आग भड़केगी। सोचिये कि झील में आग लगेगी।

एक के बाद एक इमारत। भूसे में सुई खोजने चले।

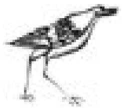

एजेंसीज हैं जहाँ से रजिस्टर्ड सेविकाएँ मिलती हैं। दिन भर को आ जाए, अम्मा को चाय गुसल नाश्ता करा दे, सर की मालिश, बाल को सुलझा दे, नीचे बगिया में, पास मज़ार तक घुमा लाये, बेटी ने कहा।

उसकी आवाज़ नहीं पहुँची। अम्मा केके के संग अपनी तलाश में व्यस्त थीं। कि उसका पता पता करो। कोई खोली, जो मस्जिद के पीछे कब्रिस्तान से लगे मोहल्ले में थी, वहाँ वो ही अम्मा को ले गया। जहाँ पता चला वह सीमापार, बोली थी, जाएगी, पर उसके पहले अपने झील वाले फ़्लैट में सामान रख आई थी।

कहा था न मैंने, विदेश गयी है तो फ़ोन नहीं कर पायी होगी, बेटी ने दिलासा दी कि अपनी आला सूझ सुझायी?

पर अम्मा अपने में खोयी रहीं। खोयी रहतीं और अचानक फिर जैसे पेटी कस ली, तस्में बाँध लिए, चल देतीं नसीबा से निपटने।

अजीब चिन्ता है, बड़े चिन्ता से कहेंगे। पत्नी नून मिर्च बुरकने में व्यस्त हो जाएँगी। कंठेराम कुछ मुस्करा दिया कि माताजी इतना परेशान मत हों, उसका तो जीवन ही है इधर उधर फिरते रहना। पर खुल कर कोई माँ को उसके इस फ़ितूर पर नहीं लताड़ सकता था। और ये तो किसी के बस की बात न थी कि कहें आपका ही कुछ हिल गया है जो उसे ढूँढ़ने

को ऐसी बेताब जिसके घर का पता नहीं, लिंग का पता नहीं, नौकर कहें क्या कहें सो पता नहीं, और आपकी उम्र बूढ़ों की है, न कि कब्रिस्तानों के अभद्र माहौल में जाने की, अपने वक्त और जान को थकाने की।

अबके रोज़ी का फ़ोन बजा तो उठ गया।

कौन? रोज़ी? अम्मा की आवाज़ सुन केके पलटा और बेटी डेस्क छोड़कर उठ आई। सिड वहीं था और मैं उसे ड्राइव करके लाया था तो हाँ, मैं भी। और एक और अपना यार। जो पहले कथा में नहीं आया। उसके बारे में कुछ नहीं कहा जाएगा। वो इस कथा में मुझसे भी ज़्यादा गैरज़रूरी है, मौकाए वारदात पे मुझसे भी ज़्यादा इत्तेफ़ाकन मौजूद, पर न भी होता तो और हैं गवाही देने। उसका नाम राहील है। पर नाम की भी क्या ज़रूरत?

शीला। कि शकीला? माँ डूबी आवाज़ में बोली। फ़ोन के बाद।

अब और कितने रूप रोज़ी धारण कर रही है, बेटी ने सोचा।

झील वाले घर में चलो।

सब चले।

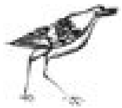

लगा दरवाज़ा खुला नहीं, टूट गया। हमारे उसे पीटने पे।

हक्का बक्का वो। उसने किसी और के लिए दरवाज़ा खोला था। शीला कि शकीला ने।

रोज़ी? सिड की ग्रैनी की नज़र उसके पीछे दौड़ी।

शीला। या शकीला। आप कौन?

रोज़ी कहाँ है? केके ने पूछा।

आंट और सिड इस औरत की बगल से अन्दर हो गए।

गयी है, वो बोली। अन्दर देखती और दरवाज़े पे खड़ों को कि समझ न पाती हो किनसे बात करे?

उसके फ़ोन पर तुम थी, तुम्हारे पास कैसे?

छोड़ गयी है। शीला कि शकीला बोली।

तुम कौन हो वो कहाँ है कब आयेगी?

अचानक शीला शकीला के मुँह से वाक्य ताबड़तोड़ निकलने लगे। बदतमीज़ तो नहीं पर हकबकायी सी। किरायेदार हूँ। कब से इस घर में। अपने घर गयी है। मेरा घरवाला आएगा। हम अभी निकलने वाले हैं। हमें कहीं जाना है। बाहर हमारा स्कूटर है। कपड़े टांगने की जगह नहीं है तो उस पर डाल दिए। इधर मशीन चलती है, घर में कारखाना खोल लिया है। प्लास्टिक के ढक्कन बनाते हैं। एकदम कलेजे पे चलता है। सर फट रहा है।

बोलते बोलते फट गयी। गुस्सा फूटा। आप कौन हैं? कौन होते हैं आप कुछ पूछने वाले? मुझे क्या पता। कोई बता के जाती है? हमारा न कोई अपनापा न बहनापा। उससे बहनापा कैसा? मुझे नहीं पता कब आयेगी। फ़ोन भूल गयी। बीमार थी।

बीमार थी तो गयी कैसे?

अस्पताल गयी होगी।

कोई ले गया?

खुद गयी या कोई ले गया मैंने ध्यान नहीं दिया। मैं क्यों ले जाऊँ? मेरी क्या लगती है? हम किराया देते हैं। हर साल बढ़ाती है। कि महँगाई आसमान छू रही है।

अपना फ़ोन क्यों छोड़ गयी?

उसके फ़ोन की मुझे क्या पड़ी। छोड़ गयी, दूसरा ले गयी होगी। चलता है, नहीं चलता है, वो जाने। बजा, उठा लिया। अनजाने में उठा लिया होगा। मुझे बुखार है। आप डिस्टर्ब कर रहे हैं। मुझसे इतनी जवाब तलबी क्यों? वो एकदम लड़ाका अन्दाज़ में खड़ी हो गयी। उसके बाल लाल थे और लटें खुली, जैसे सो रही थी। आँखों के घेरे काले थे और वो लडख़ड़ाई और उसका सर ऐसे आगे को झूल गया जैसे फाँसी का फंदा कस गया।

हमें जाना है, आप जाइए, तंग गले से भौंकी।

ग्रैनी मुड़ीं, चलो।

सब बोले कि भीतर पैर रखते ही मन अजीब हुआ।

अचार की बासी महक थी, सिड ने कहा।

दो कमरे का फ़्लैट था। पीछे छोटा सा बरामदा जिसमें अटरपटर सामान एक पर एक पड़ा था।

वहाँ मैंने उसका गुलाबी परांदा देखा। बेटी ने कहा।

माँ छड़ी ठकठकाते पूरे घर में घूम गयीं थीं। शीला शकीला साथ वलवलाते चली। एक कमरा बड़ी सी तखत नुमा मेज़ में गायब था, दूसरा बड़े से डबलबेड में।

केके का कहना था वो डरा।

सब ने पीठ से देखा दीवार पर पान के छींटे जो खून से लग सकते थे।

रोज़ी पान खाती थी? रज़ा को पान खाते तो देखा था।

डबलबेड के नीचे, किसी को याद था। उसके पीछे, किसी को।

ये कैसे मान लें कि ये पीक लगता खून है?

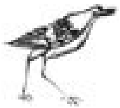

ज़माने की फ़ितरत जानो। लोग ऊब जाते हैं। हर वक्त कुछ घटना चाहिए, नाटकबाजी चले, नहीं तो लगता है कुछ हो नहीं रहा, जीवन रुक गया है। ज़िन्दगी अगर एक रफ़्तार, एक ढर्रे

पे चले तो बेहरकत लगती है। उस ढर्रे में दूर अपनी किताबों कंप्यूटर के पीछे बैठे रहो तो अपने को मरा मरा महसूस करोगे। स्थिरता डराती है। शान्त बैठना पथराना तो नहीं, ये ख़याल डराता है। दिन हिले डुले, पाँव के नीचे पृथ्वी उलटे, रूटीन उखड़े, दिल फेफड़े इच्छाएँ उछलें, बवंडर मचे कि क्या टूटा क्या बचा और हर सुबह फिर निकलना पड़े जीवन से हाथापाई करने।

इसीलिए शान्ति से ज़्यादा क्रांति मगन करती है, शील से अधिक अश्लील, आराधना से ज़्यादा दहाड़ना, बनाने से ज़्यादा बिगाड़ना, धीर से ज़्यादा अधीर, चुपचाप से ज़्यादा मारधाप। तभी टॉलस्टॉय की कहानी में बीवी अपने नेक शान्त डॉक्टर मियाँ से ऊब गयी और निकम्मे अय्याश उड़नछू प्रेमी के पीछे गयी। तभी कभी बर्बादी में जी उठे लोग। तभी भरोसेमंद को छोड़, दिल धुकधुकाये रखने वाली चंचला रास आ गयी।

आज की चाल कि पंजों पर रहो, वैसे ही चलो और कभी भी भाग लो। एड़ियाँ ज़मीन से जुड़ना भूल जाती हैं। पंजे भार कब तक सँभालें और ये देखो, धड़ाम, हम तो गिर गए।

बस हिसाब में गड़बड़ हो जाती है। उसी ज़मीन पर अम्मा भी खड़ी थी और बेटी भी। और धड़ाम हुई तो सभी गिर पड़े और बाकी जो गिरे सो गिरे, रोज़ी गिरी तो मर ही गयी।

रोज़ी मर गयी।

रोज़ी मर गयी।

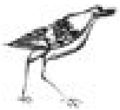

झील में आग लग गयी।

वो बहरूपिया? दरोगा सिड और बेटी की तरफ़ देख कर हँसने लगा। उसे कुछ नहीं होता। घूमता फिरता रहता है और कभी यहाँ आ जाता है।

इधर सब उसे पहचानते हैं। वैसे उसकी कोई पहचान नहीं। सारे रूप नकली। चाय लाओ।

फिर दरोगा अम्मा की तरफ़ मुड़ा। क्या अम्मा जी, किसके फेर में आप पड़ रही हैं? आप भोली हैं। शरीफ़ लोग सबकी चिन्ता करते हैं। आप बुज़ुर्ग हैं, तभी परेशान होती रहती हैं। मेरी दादी ऐसी ही। हमारे संग रहती हैं। सुबह से चालू हो जाती हैं वो हरिया आया, हमारा नौकर, रात बहुत हवा चली, आँगन में झाड़ू लगवा दो, छे बज गया पानी, पंप, माँ जी, चला

दो, अरे भौंदे नहीं लौटा, भौंदे, मेरा घर का नाम, दरोगा अम्मा को भौंदी हँसी हँस कर बताता गया, पांच बज गया, जबकि घंटाघर की घड़ी अभी घंटा बजा ही रही होगी, थाने फ़ोन लगाओ, चिन्ता चिन्ता, कि भौंदे का काम उचक्कों बदमाशों को सीधा करना, ख़तरा ही ख़तरा, हमारी प्यारी दादी।

फिर दरोगा भौंदे ने जम्हाइयों पान तमाखू कत्था चूना गले की खंखारों का घोल मुँह में तैयार किया और ऐश से बीच बीच में निगलते हुए कहता गया, ये लोग गुम वुम नहीं होते, ऐसे ही आते हैं, जाते हैं। पहले यहाँ नहीं आता था पर एक मकान खरीद लिया, न जाने कहाँ से पैसा पा गया। अपने धंधों में ये लोग क्या नहीं करते, खूब धन कमाते हैं, हम और आप जो नहीं खरीद सकते इनके बूते का है। पर जिसने बेचा उसने इसको कैसे बेच दिया, मालूम नहीं? आजकल कीमत मिले तो लोग स्याह सफ़ेद सब भूल जाते हैं। या न मालूम हो ये कौन था। कोई पहचान पत्र तो दिखा कर खरीदार नहीं बना होगा। देखिये, घोल में सयानफ़ घुसी, इनकी तो साफ़ पहचान भी नहीं, जो चाहें अपने को कह दें और इसी के फ़ायदे लेते हैं, कोई कागद नहीं, तो बच के निकल जाते हैं।

भौंदे दुखी हो गया। ये लोग सबके बीच आकर रहने लगे तो समझिये प्रलय आ गयी। ख़ैर, उसने फ़्लैट किराये पर उठा दिया था। हँसने लगा, एक बार तीन चार कुत्ते अचानक उस पर टूट पड़े, एक दम खड़ा है, अगले दम चारों खाने चित्त। कुत्तों को भी पहचान है कि ये बेपहचान वाले! बच्चे पीछे दौड़ते, पत्थर मारते, हमलोग उन्हें डाँट देते जो ख़ैर करना ही था, किसी को मत मारो। ख़ैर, कभी कभी आता था। अच्छी रकम मिलती होगी। ये महँगी जगह है। पहले गाँव था अब खाते पीते लोग यहाँ मकान बना रहे हैं। खुला है। झील है। बसें हैं। मेट्रो भी इधर आ जाएगी। आग बुझ जाएगी। कुछ नहीं, फालतू का शोर है, सरकार की जाँच टीम आई थी। किसी ने बीड़ी का टुकड़ा उस पर फेंक दिया, सूखा कूड़ा कहीं भी आग पकड़ लेता है। पानी पर उसकी तह जमी थी। नीचे प्लास्टिक कूड़ा था सो पानी कचरे पे नहीं चढ़ पाया, बस, इतनी सी बात। मगर हमारा काम तो बढ़ गया। सर पर सवार है, निपटा दें। आप आराम से जाइए। देख लीजियेगा, वो खुद ही इस बीच टपक पड़ेगा।

मैं तो बिजी रहता हूँ, दरोगा भौंदे ने पास झुक कर सिड से कहा। मैं भी सुन रहा था क्योंकि मैं भी सिड के संग था, उस बार भी। पर मेरी रहने दें। पर मोहल्ले वाले कहते हैं आजकल मरदाना कपड़ों में आता है। तब कुत्तों बच्चों ने बख्श दिया होगा। ठिलठिल हँसी निकली। सच्ची। कभी देखना, बन्दर लंगूर भी मर्द से दूरी रखते हैं, औरत को घुड़की देंगे, पर्स चश्मा मोबाइल भी छीन लेंगे। केला ब्रेड भाजी तो यों सफ़ाई से उड़ा जाते हैं। इधर बन्दर हैं नहीं, लंगूर भी नहीं आते, कभी कभी झील पर, मगर बिरले, भटक आये। पर मन्दिरों पे देखें। संकटमोचन में तो जी, कतारबद्ध खड़े रहते हैं, या बैठे, कि भक्त उन्हीं को बांटने परशाद लेकर निकलता है। क्यों नहीं, हनुमान हैं, हम पूजते हैं। मैं हनुमान भक्त हूँ। रोज़ हनुमान चालीसा का पाठ करता हूँ, शनिचर को मन्दिर जा के लड्डू चढ़ाता हूँ। कसरत करता हूँ, जय बजरंगबली के कारण, पुलिस में भरती तो बाद में हुआ। हमारे परिवार में श्री हनुमान प्रिय भगवान हैं। सब सुख शान्ति है, भाइयों में झगड़ा नहीं, हम तो अपनी बीवियों से भी नहीं झगड़ते, हँसी मुँह के घोल में बुलबुलों सी फूटी, हनुमान बाल ब्रह्मचारी पर भक्तों

को गृहस्थ जीवन की आशीष देते हैं। और दिल, हमारे दिल की तो पूछोई मत, सब टनटनाटन। न जाने ये क्या मर्ज़ है हार्ट अटैक, जो देखो वही, साब हारट का अटैक हुआ और गए। हनुमान चालीसा पढ़िए, माताजी, हार्ट को अटैक छू के न देगा। ये देखिये, दरोगा ने अपने मोबाइल में बटन दबाया, पिताजी हर समय पाठ करते हैं। पिताजी की आवाज़ आयी जय हनुमान ज्ञान गुन सागर जय कपीस तिहुँ लोक उजागर। उनका दिल तो मुझसे भी चंगा, आप अम्माजी हर समय चालीसा पढ़िए, दिन अच्छे कटेंगे, जीवन भी।

अम्मा ने छड़ी चलायी। आप गुमशुदाई का केस करिए। अम्मा को उस शीला शकीला से मिलने के बाद से कोई चैन न था। वो हमें पुलिस थाने ले आई थी। वो वाला पुलिस स्टेशन नहीं जहाँ अम्मा लापता होने के बाद मिली थी। ये उस मोहल्ले में था जो झील से लगा था। जिसने आग पकड़ ली थी और धुएं के बादल उगाल रही थी।

भौंदे दारोगा रूठे। आपलोग क्या समझ रहे हैं? ये ही नहीं पता कि कोई गुम है, क्या केस है? कोई बालिग जहाँ चाहे जाए, कहाँ से कह दें कोई गुम हो गए, और उसको किसी को बताना थोड़े था कि कहाँ आता जाता, उसका कोई नहीं था कि जवाब देना हो, और आप अम्मा उसकी क्या हैं, किन पचड़ों में पड़ती हैं, आपकी उम्र पे ये थाने कोर्ट कचहरी की चक्करें? जम्हाई खराश पान तमाखू कत्था चूना डकार वकार का घोल मुँह में चलाता बोला कि आप जानती हैं न वो क्या था, किसके चक्करों में पड़ रही हैं, नाचते गाते भीख माँगते और न जाने क्या क्या पेशा करते, सारे में फिरते हैं ये लोग, शादी ब्याह चोरी चकारी और जो मैं आपसे कह नहीं पाऊँगा, सब करते हैं, हम तो जानते हैं, कोड़े लगाते हैं पकड़ के, फिर छोड़ देते हैं, कोई अपना थाना थोड़े गन्दा करना है और कहाँ से उनके लिए अलग सेल बनवाएँ, यहाँ इतने उचक्के कि उनके लिए जगह नहीं है, और ग़दर मच जाए अगर ऐसों को भी वहीं डाल दें, तो हम तो डंडा करके — हँसी का झाग किसी पास खड़े सिपाही के मुँह में फुदका — छोड़ देते हैं। अम्मा जी कोई मामला हो तो लिखें पर जिसका कोई पता नहीं वो क्या लापता? भौंदे जी बुज़ुर्ग लगने लगे।

और आप जानते हैं झील में आग लगी है, वो ज़रा गुस्साए।

आग के शोर में गुल और गुल रहे। मुल्क पर बन आई थी। एनजीओ, रिपोर्टर, देशी विदेशी, जनता, जनार्दन, और सरकार तो थी ही, सब भिड़ गए। एक तरफ़ वो जो आग में दुनिया को भस्म होते देख रहे थे, दूसरी तरफ़ सरकार कि ये महज़ बीड़ी-हादसा है। पहलों का कहना कि ये पर्यावरण में खतरनाक दखल के नताइज हैं जो रसायन पानी पे जल रहे हैं, दूसरों का कि सूखा पड़ा था बरसात में जो झील के किनारों पे जमा हो गया और अनपढ़ गाँववाले ने बीड़ी लगा दी। कि ये फ़साद फैलाने वाली नज़र का घोलघाल

है जो किनारे की आग से झील-बीच तक उड़ते धुएँ को अलग नहीं कर

पा रहे।

तो पुलिस ने झील को घेराबंद कर दिया था और बिना परमिट कोई पास न फटकने पाए उसकी ड्यूटी रात दिन की लग गयी थी। सैलानियों की भीड़ इधर उमड़ती, बादल और आग उधर घुमड़ घुमड़।

पर अम्मा भी माँ, केके को लेकर फिर आ गयीं।

हमारी नींद हराम और आप फिर पहुँच गए पूछने कि उस बहरूपिया को खोद निकाला? आप ये बताइए कि जिसका ये ही नहीं पता कि क्या उसमें असली क्या नकली उसका क्या ढूँढ़ें साहब? इन्सान है कि जिन्न?

मज़ाक का अन्दाज़ था मगर अबकी दफे दारोगा भौंदे थके लग रहे थे। हनुमान चालीसा की आजकल फ़ुर्सत न मिलती हो ऐसे। झील ने जो जल कर रौला पेल दिया था, इसलिए।

वो मुँह में फिर सारे रस मिला के घोल तैयार करने लगे कि केके के प्रेस कार्ड ने अटैक किया उनके हार्ट को। प्रेस की गिरफ़्त से अभी पुलिस पूरी निकल न पायी थी। मुँह में घुला रस घूंट गए। और एक टुकड़ी झील-ड्यूटी से हटाकर रोज़ी के नए फ़्लैट भेजी गयी।

दिलदारों को प्यार पसन्द है, कठमुल्लों को हथियार, तितलियों को छड़ी पसन्द है, बलछल को सरकार, हमको तुमको बर्फ़ी लड्डू, अख़बारों को झार। इसलिए देखोगे कि उनके पन्ने क्राइम से सराबोर हैं और दुकानें ज़ुल्मी रंगों से ग्राहकखोर हैं। चोरी डकैती निठारी दिसम्बर 16 लाल जेसिका हवाला हर्षद मेहता नीना तंदूर शोभराज चीट और जीनत अमान की पिटाई व कपूर शपूर की रुखाई। हक अधिकार की दुनिया में अख़बारों को ये हक अधिकार भी कि किसानों की आत्महत्या नापसन्द हो और अनदेखी के लायक, न जंगल वासियों की मारपिटाई पसन्द हो कि आँखें उधर फोड़ें। तो जिसका जैसा जलवा, वैसा उसका पेज। कोई सबसे ऊपर अभिनन्दन की तरह बिछा, कोई कहीं कोने में मकोड़ा सा दुबका। बकरी की न्यायलय में पेशी हो गयी कि वो दूसरी बकरी के चरागाह में घास चरने घुस ली और एक केस ये हो गया कि राष्ट्रवाद के उठान के ज़माने में अपाहिज व्हील चेयर में जन गण मन दौरान बैठा रहा। आज़ाद प्रेस ने चुना कि किसको कहाँ जगह मिले और किसको तस्वीरों से नवाजें। केके ने तय किया कि रोज़ी वारदात को वो लिखे दिखे में अंजाम दे तो एक सफ़े पे उसे भी जगह मिल गयी। ग़नीमत।

जिसने वहाँ नज़र डाल दी उसे पता चला कि एक थी रोज़ी, हिजड़ा, जिसने पूंजी बटोरी और अपनों की चैरिटी संस्था बनायी। अंजुमन-ए-इस्लाम के यतीमखाने से वो लंगर खाने गुरुद्वारे भाग जाती और वहाँ से किसी ईसाई मिशनरी के पास पहुँच गयी जिसने उसे थोड़ा पढ़ा लिखा दिया और बड़ी होकर वह अपनी रोज़ीरोटी की मालिक हो पायी। सिलाई, कढ़ाई, तरह तरह के हेंडीक्राफ्ट बनाना, जैम जेली चटनी अचार बनाना, काम करने वालों के लिए टिफ़िन भेजना, ऐसे काम करवाती थी। उसने झील पे फ़्लैट ख़रीदा और किराये पे उठाया था।

दरोगा वहाँ पहुँचे तो ताला मिला और दो दिन बाद फिर ताला मिला तो तोड़ के घुस गए। शीला या शकीला नाम वाली और चिकने चपटे काले बालों वाला उसका प्रेमी घर के बाहर पकड़े गए, कहीं छुट्टी पर लम्बे निकलने की तैयारी में, और रोज़ी अन्दर के अन्दर मिली, बॉक्स-बेड के बॉक्स में ठुँसी।

अख़बार में था कि रोज़ी किरायेदार को हटाकर खुद वहाँ आना चाहती थी, इस पर बहस हुई। पहले तो शीला/शकीला ने समय माँगा, फिर किराया बढ़ा देने को कहा, फिर खरीदने की ख्वाहिश रखी, फिर प्रेमी को बुलाया, फिर तूतूमैंमैं हुई, और किरायेदार दम्पत्ति ने वही कहा जो भौंदे ने कहा था।

कि किसकी बातों में आप आ गए हैं, उसके न कोई सही पेपर न कुछ, धोखा हमारे साथ हुआ, हम जान ही नहीं पाए कि वो नकली है, पहले औरत बनकर आई, फिर आदमी बनकर आने लगा।

जब चोर पुलिस दोनों एकमत कि नकली का बीचबचाव क्या, तो मामला कुछ दिन रद्दफद्द रहा।

हम शरीफ़ लोग हैं, शरीफ़ों का ये मोहल्ला है, किसी से भी पूछ लीजिये, जो कभी कोई फ़साद किया हो, इस घर में हमने नल लगवाया, वो दीवार हमने बनायी, पड़ोसी से पूछ के, बहुत अच्छे लोग हैं, लड़का बिजली की दुकान में काम करता है, उनकी अम्मा हमें धनिया पुदीना मिर्ची देती हैं, गमलों में उगाये हैं, एक बार बैंगन भी निकले। दीवार से थोड़ी आड़ मिल गयी नहीं तो सब भीतर झाँक सकते थे, ये ठेके पे निकल जाता, मैं अकेली क्यों चाहूँगी आते जाते सब ताकें? छत भी चू रही थी, हमने हजारों रुपया लगाया, वॉटर-प्रूफ पेंट करवाया। उसने तो कुछ नहीं किया। हमने उससे कहा जो भी हो अब हम क़ानूनी गैर-क़ानूनी में तुम्हे नहीं घसीटेंगे, वर्ना तो इम्पौस्टरिंग के जुर्म में हम तुम्हें अन्दर करा दें। तुम औरों जैसी नहीं हो, ताली बजाना, फूहड़ नाच गाने मचाना, ये सब नहीं करती, हमने तुमसे घर लिया है, वही मानेंगे। कभी कभी आती हो, हमारे संग रह जाना। वो देखिये, बरामदे को घेर के हमने जगह कर दी थी। हमारे संग रह सकती है, हमने इजाज़त दे दी, नहीं तो कौन चाहेगा वो यहाँ रहे, बालबच्चों वाले घर हैं। हम पैसा दे चुके हैं, हमसे तो ये ही कहा कि अपने वतन जा रही है, लम्बा, तभी नहीं मिल रही होगी।

पर वो मिली। बक्से में। रसोई से लोहे के इमामदस्ते में वो मूसल मिला जिस पर वही खून था जो दीवार पर पान की पीक बन गया। कुछ टुकड़ों और चकनाचूर खोपड़ी समेत ठुंसी और सड़ती।

बहुरूपिया का एक और रूप, भौंदे ने नहीं कहा।

अख़बार ने कहा वो नेक हिजड़ा था जिसके किरायेदार उससे पेपर साइन कराने में लगे थे कि घर के वे मालिक हैं, इस वादे पर कि उसके मरने के बाद ही जगह उनकी होगी और इस उम्मीद पर कि शायद वो जाए और खुद ही न लौटे। पर रोज़ी को न कागद बनवाना था, न चले जाना था, न मरने की जल्दी थी, इसलिए उन्हें मूसल उठाना पड़ा और मूसल पड़ा तो जो हुआ सो हुआ।

केके ने समान मानव अधिकार के जो शब्द, संविधान में सबके बराबर हक में आदमी और औरत के अलावा कोई लिंग के न होने पे लिखे थे, और ये कि अब न्यायलय ने इजाज़त दी है कि आप अपने को तीसरा लिंग घोषित करके पहचान पायें पर अमल में कम होता है और सामाजिक स्वीकार्य और कम, उनको एडिटर ने पाठक दिलचस्पी के लिहाज़ से बेकार माना और कहा लम्बा लेख अकादमिक पत्रिका में लिखो। जितना उसने अख़बार में डाला वहाँ तक आकर पाठक इस ख़बर से ऊब चुकता। सो बस, जिसने पढ़ा, जितना पढ़ा, मामला रफ़ा दफ़ा।

कहीं दर्ज नहीं कि शिनाख्त के लिए बुलाया, या अम्मा ने अपना जुमला दोहराया, 'चलो चलें'।

शवगृह में। रोज़ी की लाश। चादर से सिर ढका, दो पाँव बाहर निकले हुए। बे-आकार पुतला जिसकी पाँव की उँगली में सुतली से बंधी चिप्पी थी, जिस पर मुर्दे का नम्बर लिखा था।

प्राइस-टैग। सस्ता।

बेटी की आँखों के आगे कोहरा छा गया। दुनिया भर में जितनी हसरतें, जितने बिछोह, जितनी स्मृतियाँ, जितने आक्रोश, जितनी महरूमियाँ, जितने कल्लोल, सब लेटे पड़े शख्स से चुपचाप उठ के हवा में धुआँते हों। बेटी की आँखें भीगने लगीं जैसे सामने पड़ा शव रोज़ी का नहीं खुद उसका है। हम ऐसे पड़े होंगे, ऐसे जायेंगे, ऐसे दीखेंगे, हमारी खूबसूरती का क्या होगा और हमारी क्या कीमत लगेगी?

रोज़ी के पैर उस शाम की झील जैसे हरे, चकत्तेदार, चादर से बाहर निकले थे। चादर में मोटे टांकों से सिली रोज़ी थी और चादर फूली फूली सी जैसे भीतर कुछ फूला सा।

पेट क्या फट गया था, सूजा, विकृत, रिसता फल ढके कपड़े पर फैलता? सारे अंगों में खून मवाद हो गया हो और बाढ़ की तरह पसलियों को फाड़ता निकलता हो।

अम्मा चेहरा देखना चाहती थीं।

सर कहेंगे तब, अटेंडेंट बोला।

माँ ने बिना परवाह किये चादर हटाई। रोज़ी के हाथ सिये रखे थे। पैरों की तरह सड़े पेड़ की सड़ी डालें। छुओ मत, बेटी ने रोकना चाहा। दबे चुकंदर की तरह टपकने न लगे।

सर को आने दीजिये, अटेंडेंट ने आलस्य से कहा पर सख्ती से।

अम्मा ने हाथ हल्के से छुए। केके ने उनके हाथ पर अपना हल्के से रखा, न जाने रोकने या साथ देने।

चादर तिरछी हो गयी थी। बेटी पंजों पर खड़ी थी जैसे भागने वाली है।

रोज़ी पुरानी हो चुकी थी। मौत की महक को फोर्मलीडिहाइड की तेज़ाबी महक ढकने में जुटी थी। तन के भीतर जो पाचन द्रव्य खाना दाना को गलाते थे, अब कुछ न पाने पर रोज़ी को गला रहे थे, उसी के लुकमे पचा रहे थे। रोज़ी की आँतों में उनका भोज-उत्सव चल रहा है।

दिल ने पम्प करना थाम दिया था। खून लटके हिस्सों में जम गया और हिस्से सड़े सूजे कुरूप हो गये। त्वचा को फोड़ कर पीब बाहर रिसने लगी। जैसे बैंगन को भरता बनाने के लिए भूना हो।

सर आ गए, केके के कार्ड के दबाव में। चेहरा ढको, अटेंडेंट से घुड़क कर कहा।

उन वीभत्स पपोटों को पीछे धकिया दो, बेटी ने आँखें भींचीं।

रोज़ी, माँ ने शान्त स्वर में कहा, जैसे पहचान पुख्ता करने।

खोलो उस मुँह को जो चुप हो गया है, बेटी ने चाहा। रोज़ी की नाक से निकले जमे रिसाव की एक झलक देख के, जो खून था या कीड़ियाँ जो जी न पायीं और जम गयीं।

अस्पतालों और मुर्दाघरों को ऐसी, बिन आगा पीछा वाली, बिन पहचान वाली लावारिस लाश से जान जल्दी छुड़ाने की पड़ी होती है। बशर्ते केके और माँ की नज़र न लगी हो। अम्मा ने डाँटा कि रोज़ी को नहलाया क्यों नहीं है?

चादर ठीक करो। सर ने दोबारा घुड़का।

अटेंडेंट ने ठीक करने को चादर झटकी तो वो और हट गयी और रोज़ी पूरी निकल आई।

महक उड़ी थी और रोज़ी की नंगी देह, जिस पर मोम की पतली सी पर्त सिकुड़ के चटखने लगी थी, गाढ़े हरे नीले कत्थई टाँकों छपड़ियों और धब्बों से भरी थी। जहाँ जहाँ उसकी फाँकों को मसाला भर के सिया था।

चित्रकारी। कि विचित्रकारी। कि विकृतकारी।

और वो? स्तन कि फोड़े? और वो लिंग था खड़ा सा?

राइगर मोर्टिस कहते हैं, बीते शरीर का इस तरह अकड़ जाना। अन्डकोशों के पास लिंग कठिया जाता है। फोड़े उग आते हैं।

शरीर निर्वस्त्र क्यों है? अम्मा ने घुड़का और केके की आँखों में अरज से देखा।

सर कुछ सकपकाए।

रिसते रसायनों खून पपड़ी चोट टांकें और बासी के रंगों और आकारों से ढका शरीर कुछ पहने हुए लग रहा था।

जैसे किसी औपनिवेशिक बड़े साहब के घर, बड़े दिन के बड़े जश्न में बड़ी सी मेज़ पर बड़े से जानवर को साबुत भूना हो और तरमाल से 'ड्रेस' किया हो — चटनी में मल कर, मक्खन की पर्त लगाकर, रंग बिरंग मेवा फल भर के, लहसुन अदरख फूल पत्ती बुरक के, सजाभजा के रखा हो। मसालों, लेपों का पहनावा। कांटे छुरी पास नैपकिन पे करीने से।

रोज़ी ने अपना दिवंगत शरीर मेडिकल रिसर्च के लिए अस्पताल को दान किया है, माँ का कथन किसी क़ानूनी वसीयत से कम नहीं था।

उसका दाह संस्कार यों हुआ। धर्म संस्कार यों गायब रहा।

छड़ी गरज बरज के स्तब्ध हो जाती है। साँस उठ गिर के रुक जाती है।

आँखें अवाक् होकर सूख जाती हैं। मरता एक है, बेजान दूसरा हो जाता है। बिजली रुकती है तो पेड़ भुसा होता है। आंधी थमती है तो छप्पर टूटा होता है। गाना खोता है तो गले में खांसी बस जाती है।

सुर बहुत अहम है। इश्क प्रेम सखा पागलपन हों, न हों, गले में सुर होना चाहिए जो जीवन में बजे। इसीलिए सारा राय की कहानी में पी सुन्दरम के हाल बेहाल होते चले जब सुर उनकी पकड़ के बाहर हो गया।

इतिहास लौटा। माँ बेजान पड़ी, खांसने लगी, सुर खोया, अबके बेटी के घर में।

हवा किन कीटाणुओं में वहाँ बजबजा रही थी, ख़बर है? जिन्हें कोई लेने नहीं आता, वो वहाँ पड़े होते हैं, बड़े के डॉक्टर ने कहा। माँ जी को ऐसी जगह कौन ले गया? लगनी ही थी कोई एलर्जी।

गले में सुर की जगह खांसी ने ली। माँ बोलना भूल गयी। हल्का सा हिलती, रात हो या दिन, और रूखी सूखी खों खों शरीर को झुकाने में लग जाती। एकदम खाली दुनिया बजती हो जैसे। खालीपन है, खांसी समझते हो, ऐसे। खड़ताली गला तन को दोहरा कर देता और हर बार जब बेटी की मदद से माँ थोड़ी सीधी उठती तो ज़रा और छोटी हो गयी होती है। छोटी छोटी इतनी छोटी, कि जैसे इस इरादे से कि किसी भी बॉर्डर में छोटी सी झिरी करके निकल जाएगी, पार।

काली चिड़िया के पास बेटी उसे सुबह बिठला देती तो दोनों नाप माप में समान लगतीं, क्योंकि नाप का माप से सम्बन्ध नहीं रहता। बरगद बेला की झाड़ जितना हो तो छोटा लगता है, तितली कौवा बराबर हो तो बड़ी लगती है। माँ विक्षिप्त बैठ जाती और चिड़िया सारे परिवार को तरस में डूबा देख तरस खाती। झुकी हुई, अपने से भी छोटी, विक्षिप्त औरत को देखकर वो पेड़ की डाली पर आ बैठती और गाना गाती फिर रुक के फिर गाती जैसे याद दिलाती हो माँ अपना सुर पहचानो, ये है। माँ उड़ी हुई, खोयी हुई, किन कहानियों से बनी हुई, जो आपस में ठेलमेल, रेलपेल, में पड़ी हों। बेटी मुँह में जो डालती माँ निगल जाती, हर बार और खांसने लगती जैसे कुछ उड़ेगा बाहर, समाधि तोड़ के।

हल्की सी खुनस हवा में थी और बेटी बैल्कनी में बैठी अम्मा को हल्की सी शॉल एहतियातन ओढ़ा देती कि सुबहों में ठंडक है हवा में। बेटी का सारा प्यार, सारा श्रवणकुमारपन बाढ़ोंबाढ़ उमड़ा कि रोज़ी भी नहीं अब अम्मा को नीचे तक टहला लाने के लिए। कितनी ट्रैजिक लग रहीं हैं माँ और मैं न सोचूँ तो उन्हें ख़बर ही नहीं कि अब खा लें, अब पहन लें। उनको रोज़ी और बाकियों के संग मस्त व्यस्त देखकर जो वो एक कोने में सिकुड़ गयी थी, उनकी ज़रूरत बनकर वहाँ से निकल आई है। रोज़ी के साथ वो कीड़ा मर

गया, जो वो बन गयी थी। अब वो मखमली धूप की दोहर जैसी अम्मा पर फैल लेती है कि उन्हें आती ठंडक से बचा ले, नर्म सेंक दे।

धूप बनके वो बलवान महसूस करने लगी और एक दिन तो केके पर भी तरसने लगी और उसके लिए। इतना कि जब दोनों किसी सबमिशन के लिए साथ निकले थे तो लौटते में अपने एक पुराने खँडहर पे निकल गए, जहाँ लोग नहीं आते थे क्योंकि जंगल किसी को नहीं पसन्द, अगर पास में मैकडौनल्ड या हल्दीराम न हो। अँधेरे में ज़मीन तक बिछी आम की डाल पर दोनों ने पुराना रोमांस सुलगाया। ख़तरा हो सकता था और जैसा प्रचलित हो चला है, सांप शेर से नहीं, आदमी से, पर बेटी को नयी ताक़त का एहसास था और इस बाइस जोखिम ले उठी।

बाकियों का प्यार भी दया में तराबोर उमड़ा हुआ। और बेटी के घर का दरवाज़ा पहले से भी ज़्यादा खुल गया। कोई चंगा होके बीमार पड़ जाए तो सगे सम्बन्धियों की जान और भी अधिक साँसत में। ऐसे धमकते आते कि साँस कैसे लें जब तक उनकी न देख लें? फ़र्श पर चाय दालमोठ के बूंदों चूरे के पीछे चींटी और चींटों के काफ़िले दिखाई पड़ने लगे। सिड और बाकी परिवार, नौकर, दोस्त बिरादर की पलटन, बेटी के घर यों प्रकटने लगे कि ये नुस्खा लगाओ, ये ही ठीक करेगा। दूर परदेश से भी नुस्खे आने लगे बड़े की पत्नी के मार्फ़त कि कैमोमाइल चाय पिलाओ, शान्त करती है, और गैस से भी सब गड़बड़ होता है, मिंट दो, पेट सेटल होगा तो खांसी भी, और आधी गोली नींद की उनकी उम्र पे ठीक है, ठीक सोने से सही हो जाएँगी। गार्ड की बहू कहीं पहाड़ों से थी, कोई तेल लायी कि इसे लाइए मैं सिर में लगा दूँ, अन्दर जो ज़हर है खींच लेगा। शीशी में हरे रंग का तेल था और उसमें कनखजूरा सा दीखता डंठल। जो उसने बताया कीड़ा ही है, जो वहीं पाया जाता है और ज़िन्दा तेल में डाल देते हैं और उसका अर्क रिसता रहता है जो रामबाण है। डॉक्टर अस्पताल में टैस्ट करना चाहते थे कि पहले देख लें सारे पैरामीटर अपनी जगह पे हैं, फिर दूसरी जांच सोचेंगे। उनका कहना था कि बरफ़ में चिरकाल से अनोखे वाइरस सो रहे हैं, जो बरफ़ के पिघलने पर दुनिया में घुस रहे हैं और ये कि खांसी दस्त कमज़ोरी पहले वाले आसान मर्ज़ नहीं रहे कि खुद ठीक हो जाएँ, इनका तो इलाज ही मुश्किल हो गया है, अस्पताल में भरती करके ऑब्जरवेशन में रख कर उपचार आज़मायेंगे। इसके पीछे है ग्लोबल वॉर्मिंग।

अस्पताल फिर ले जाएँ, इसके लिए फ़िलहाल परिवार राज़ी न था। जैसे रोज़ी गयी पर अपना मत छोड़ गयी। सिड ने कहा हॉउस डॉक्टर को लिवा लायें, पर अभी उसकी भी न चली कि कोई दर्द, कोई चक्कर, कोई हांफना, कोई पसीना नहीं हो रहा, खांसी भी ठीक हो रही है, और जीपी रहे नहीं कि सारा कुछ अन्दाज़ करें, देख तो चुके हैं कि हर डॉक्टर को दूसरे की ज़रूरत है और हरेक अपना अलग टेस्ट कराके ये नहीं है, ये नहीं है, करके, क्या है तक ले जायेगा। रोज़ी कहती, नहीं, कोई नहीं ले जाएगा बाजी को, अस्पताल मारते हैं जिलाने के बजाय और मरने भी नहीं देते कि उनका रिकार्ड ख़राब हो जाएगा। मुझे ख़बर करो, दौड़ी आऊँगी इलाज कर देने। मुझे आने को पासपोर्ट नहीं चाहिए।

मगर रोज़ी तो गयी तो अपनी जान से ही चली गयी थी। और अम्मा चुप बैठ गयी थी या खांसती। और परिवार आगे पीछे उनका बिछौना बना, कम्बल बना, उड़नखटोला बना,

छड़ी बना।

परिवार अनंत काल से सब समझता है। पहले भी समझे बैठा था कि पति के जाने पे माँ चली गयी है और उसे वापस खींचने में लगा था और अब फिर वापस खींचने में लगे थे कि चली गयी है माँ फिर।

ये कोई न कहता कि रोज़ी के जाने पे। बड़े और पत्नी मानते कि उनके पास से जाने पे वो फिर ख़तम सी हो गयी है और बेटी मानती कि जो देखरेख उसने दूसरों को सौंप दी उसमें ये हुआ है। परिवार अपनी चाल नहीं छोड़ता और अपने को ढाल मानना भी नहीं। उसकी पुरानी मोहब्बत है अधमरी चिड़िया। वो हो जाओ तो अपार प्यार और जिन्होंने उसे ये बनाया उन पर गुस्सा-वार। अब चिड़िया के मरगिल्ले पंखों में हवा फूँको, हमारी टेक ले के लो थोड़ा थोड़ा उड़ लो, बस बस ज़्यादा नहीं, नहीं नहीं, हमारी मदद बगैर क़तई नहीं, गिर पड़ोगी, मसली जाओगी।

उन्हें क्या पता था कि परिवारों में ये भी विधान लागू हो जाता है, कि सब फ़िकरमंद हो के जुट जाओ कि जो वो कहे कर दो, उम्र के उसके इस पड़ाव पर उसे खुश करो, उसका मन लगे, और वो वो वो करा ले, जिसकी उन्होंने कल्पना नहीं की कभी।

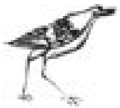

खुले दरवाज़े पर आहट सुन बेटी खड़ी हुई और आहत हुई। भाई सामने।

बहन आमने। दोनों की आँखें फँस उलझ जैसे हम और तुम और कोई नहीं। धरती दृष्टि हवा मन तन ऐसे हिल गए जैसे द्रव में सब छलछल बलबल।

बड़े ने अपना तानाशाह लबादा चेहरे पर परदे की तरह डाटा। वही तरीका था पसीना पोंछने का बेचैनी हटाने का। कपड़ा से कॉस्टयूम रज़ा मास्टर बनाते हैं, यहाँ रंग-ढंग से।

अम्मा बैल्कनी पर सन्नाटा ओढ़े बैठी थीं। बड़े सीधे वहाँ गए। चलिए, हुक्माया, बाहर रहेंगी तो तबियत बिगड़ेगी ही।

माँ ने सिर धीरे से उठाया। बड़े को देखा, उनके पीछे आई पत्नी को देखा, उनके पीछे खड़ी बेटी को देखा, उसके पीछे खुले दरवाज़े को देखा, उधर पड़ोसी का झबरेदार कुत्ता भौंक पड़ा, उनसे आँखें मिलाने की ख़ुशी में।

छोड़ दिया मुझे। अम्मा बोलीं।

बहू ने झुककर पाँव छुए। कैसी बातें करती हैं अम्मा, आपने हमें छोड़ दिया। अब बस बहुत हुआ, चलिए। अब जाएँगे।

अब जाएँगे, अम्मा ने विक्षिप्त स्वर में स्वीकारा।

हो गयी सैर-टहल। देख लिया माँ ने अजब रंग ढंग। अब लौटे आराम में। बहू ने कहा जो हमारे यहाँ उन्हें मिलता है वो और कहीं कहाँ, आना तो उन्हें यहाँ है ही। दूर से फ़ोन भी

आया कि अपना ध्यान रखिये, अपने को नेगलेक्ट मत करियेगा, कोई नर्स रख लीजिये और उसे ग्रैनी की सब ज़रूरतें बता दीजिये, कि उसे कब्ज़ हो जाता है तो ईसबगोल हर खाने के संग आधी चमची घोल के देदे और सुबह नेबिकार्ड, और अंजीर मैं यहाँ से भेज रहा हूँ एक कॉलीग के हाथ और आपके लिए फ़ुट मसाजर जो ग्रैनी को भी इस्तेमाल कराइएगा, ठीक?

जिस पर जिन्होंने पढ़ा हो पॉल ज़करिया की कहानी याद कर सकते थे। कि कितनी छोटी छोटी चीज़ों का दूर बैठे बेटे को खयाल था कि अकेली पड़ी उसकी बूढ़ी माँ का ध्यान रखा जाए। जिस लेडी ने नर्स की पोस्ट के लिए इश्तिहार का जवाब दिया था, उसे पॉल के पात्र ने पत्र में सब समझाया। सुविधाएँ तनख़्वाह आदि बताने के बाद। और ये बताने के बाद कि बाकी भाई बहन अपने ठिकानों पे आसीन हैं, प्यारी अम्मा की ज़िम्मेदारी मैं उठाता हूँ और दो वर्ष में एक बार उनके पास सपरिवार आता हूँ। तो नर्स, तुम साथ रहोगी। नौ बजे माँ को धीमे स्वर से उठाओगी। उन्हें हिला के नहीं। हल्के से हथेलियाँ सहला के, और पेशानी। वो उठ के तुम्हें पहचान लें तब भीना मुस्कराना, न पहचानें तो मुस्करा के अपनी याद दिलाना। फिर बेड का सिरहाना उठा के उन्हें तकिये का सहारा देकर बिठलाना, उनके धड़ को ज़रा आगे करते, पीठ और कन्धों को नरमी से पर पूरी तरह मलते। फिर उसे सोसम्मा — जो कहानी में एक और पात्र है — की मदद से कमोड पे बिठाना। पर पूरे वक्त मुस्कराना क्योंकि अम्मा को उठने पर ख़ुशहाली और प्यार का एहसास मिलना चाहिए, ये उसकी सेहत, मानसिक शारीरिक दोनों, के लिए मुफ़ीद है। माँ जब कमोड पर हों तो नर्स उनके दोनों हाथ थपथपाती रहे या एक हाथ से उनकी पीठ। नौ बीस पे माँ को स्पंज करे। उस दौरान याद से माँ से बात करती रहे। कुछ मधुर विषयों पर। नर्स के जीवन के सुखी अनुभवों से साझा कराये। या हम बच्चों के बारे में, यानी माँ के बच्चों, या हमारे बच्चों के बारे में मीठी बातें करती रहे।

गरज़ ये कि माँ के सोने पे, जागने पे, बिस्तर में, पॉटी पे, व्हीलचेयर में, सब जगह, पल पल के लिए निर्देश हैं, भावी नर्स के लिए। ऐसे बारीक़ खयाल भी कि शाम को जब सूरज डूबने लगे तो उनकी व्हीलचेयर बैल्कनी में कर दो और उनका मुँह क्षितिज की ओर और पहिये लॉक कर दो और बार लगा दो कि आगे को ढुलक न जाएँ और फिर उन्हें अकेला छोड़ दो। उन्हें एकांत का आनंद लेने दो।

छोटी छोटी चीज़ों के प्रति सचेत, सात समुन्दर पार हो तो क्या, और जहाँ पॉल ने लिखा कि कहानी के बेटे किरदार ने निर्देश दिया कि रात साढ़े नौ पे माँ को लिटाओ और उनकी आँखों में झाँक कर कहो गुडनाइट, स्वीट ड्रीम्स, और देखो वो मुस्कराती हैं कि नहीं, और प्यारा बोसा उनके सर पे, एक गाल पे, एक होंठों पे हम छओं उनके पुत्र पुत्रियों की तरफ़ से देना और कहना माइ डियर अम्माची, तो लगा कि वाक़ई नर्स तो मीडियम है, प्यार तो बच्चे कर रहे हैं।

इन सारी शर्तों को रखकर बेटे ने कहानी में अपना पत्र पूरा किया कि ये मंज़ूर हैं तो हम अपनी माँ की तीमारदारी के लिए तुम्हे इंटरव्यू करेंगे।

पर इस परिवार में किसी ने ज़करिया को नहीं पढ़ा था। लेकिन बेटे तो बेटे, कहानी में और कहानी के बाहर, सो बड़े की पत्नी बोलीं कि देखो कितना ग्रैनी का खयाल है वहाँ से भी और मेरा भी कि मेरा जीवन बस उनकी और घर की देखरेख में सर्फ़ न हो जाए और अपना काम बीच में छोडकर भी दो दिन में एक बार फ़ोन ज़रूर कर लेता है, वहाँ से भी वही सब कर रहा है, कभी मुझे लगता ही नहीं कि मैं अकेले पड़ गयी हूँ।

इनका सामान पैक कर दो, सदियों बाद बड़े बहन से बोले तो आदेश देते।

बेटी को बुरा लगना ही था। तबियत सँभलने दीजिये।

जाऊँगी। माँ ने बेटी को देखा और धीमा कहा।

क्यों अम्माएँ मरने के लिए बेटों का घर याद करती हैं? कृष्णा सोबती ने 'ऐ लड़की' में कह दिखाया।

माँ खांसने लगी छड़ी फ़र्श पर टेके, उस पर झुकी।

अन्दर चलिए बेटी बोली।

माँ ने खांसते खांसते कांपते कांपते छड़ी उठाई। और सर। छड़ी कांपती हुई उठी तो जैसे लम्बी सी माचिस की तीली थी, जो लाल पड़ते सूरज से चिंगारी लेकर पास के पेड़ में पत्तों की ओट में लटकी कंदीलों को जलाने लगी। जगह जगह लाल लौ झूल गयी। माँ ने छड़ी डाली पर टिका दी, जैसे वो भी डाली उसी पेड़ की। इस खुशफ़हमी में काली चिड़िया फुदकती आई। सूरज उग रहा था और माँ के सामने की छड़ी-डाल पर बैठ के वो और काली हो गयी और उसकी आँखें लाल। अपनी लम्बी चूं चूं चूंचूंचूं चूंचूं करती वो माँ के गले का सुर लौटाने में जुट गयी।

सीमापार, अम्मा बोलीं।

सब न जाने क्यों चुप हो गए कि सुन लें अम्मा पक्षी का गाना। सीटियों वाला। विरह क्रन्दन, मिलन उच्छास, वाला।

काली चिड़िया सीटी बजाती है। एक छोटी सी औरत के आगे।

जहाँ भी वो है वो यहीं है, इसी पेड़ के आगे, इस झाड़ के, इस रौशनी में, और अभी।

फिर चिरइया उड़ गयी।

एकदम से अम्मा सीटी बजाने लगी, जैसे आबाद शहर के भड़क्के वाले घर में नहीं, बियाबान सहरा में, जहाँ सीटी खालीपन में गूँजती जाती है और धीरे धीरे मर जाती है।

धम्म से आँसू गिरता है जैसे पत्थर। बरसात की बूँद।

न जाने कितना है जिसकी सुझाई नहीं पर कोई विश्वास नहीं करता। ये दुनिया हुए के कारण की मारी है। एक ही तन के अलग अलग जीवन हैं। नहीं तो ठोस पत्थर का भारी

भरकम ताज महल फाये की तरह हवा में तैर सकता?

पत्थर कागज़ की तरह उड़ता हुआ। बूँद पत्थर की तरह गिरती हुई। पत्थर पत्थर है जब तलक वो पत्थर है। भारी कठोर अडिग अडोल। एक साँस उठती है और वो काँपता है। तब कागद बन बहता है। कागद फडफ़ड़ाता है और उस पर कहानी उड़ती है, ताज़ातरीन।

सीमान्त पे लालियाँ छिटकती हैं जैसे कलम से निकले हर्फ़।

सीमान्त, जो सीमा है, अलग सीमा की, अलग सीमा पे, सीमापार।

सीमा पे रेत होती है। जैसे रेगिस्तान में। रेत इंतज़ार करती है। रुकी हुई है। रेत का इंतज़ार, रुके का रेगिस्तान। वही है सीमा। कुछ एक तरफ़, बाकी दूसरी तरफ़। आ-पार कि जा-पार। व्यापार अपार।

नाटकीय। पर इसकी सुझाई है। जवाब हैं। जो जहाँ वो मैं, जो उधर वो तू। उधर तू मैं और इधर मैं तू। इनका मिलन इंतज़ार। हो जाए तो रति मिलन। तन धन रेती में गिर जाते हैं, उसी में डूबते, समाते।

छोटी होती औरत सीटी ऐसे ही बजाती है जैसे रेगिस्तान में हवा बहती है, बिना कहीं टकराए और धीमे धीमे रेत की परतें उड़ती हैं, समाधिस्थ आकार उभरते हैं।

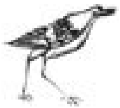

जैसे खेल। कि बचे दौड़ते आ रहे थे छलांग लगाने और वो ऐन पल कूदी 'पासपोर्ट' और उनकी लय गिरने गिरने की हो गयी।

माँ बड़े से पासपोर्ट माँग रही है। बड़े के पास नहीं जाना, कहीं और घूमने का मंसूबा बना रही है? सब दंग।

खुद को समझाया, चलो, आखिरी उम्र है, कर लें शौक पूरा। अच्छा है कुछ मन तो किया। वर्ना हम तो डर गए थे एकदम पड़ गयी, पिछली बार की तरह। घुमा लायेंगे।

पाकिस्तान। अम्मा ने कहा तो सबको यक़ीन हुआ ठीक सुना नहीं और किसी ने ध्यान ही नहीं दिया।

इस उम्र पर भी लालसा तो लालसा है और जो नहीं देखा उसकी मसोस लेकर क्यों मरे कोई? कश्मीर, गोवा, केरल जाते हैं। फॉरेन चाह रही हैं तो चलो सिंगापुर, शंघाई। सिड के आयोजन के टाइम वो ले जाएगा। उसकी अपार दोस्त मंडली और कब काम आएगी? चाहें तो श्री लंका या मॉरिशस का इंतज़ाम कर दें। वहाँ झुम्मन गया था, उसके होटल की दीवारें शीशा थीं और हर तरफ़ से समुद्र लोटें मारता। हाँ इच्छा तो लन्दन पेरिस न्यू यॉर्क की हो सकती है, जहाँ सब अब कोई न कोई बच्चा पढ़ाने ब्याहने पहुँच गए हैं। पर उम्र देखकर यात्रा करनी होती है। मन बिलकुल न माने तो चलो हिम्मत करके ऑस्ट्रेलिया। फ़ोन तो करता

रहता है अपनी मॉम को कि तुम्हे यहाँ घुमाऊँगा। ले जाएँ उसकी मॉम अपनी सास को साथ, वो भी घूम लें। फ़ॉरेन हो आयें।

क्योंकि पाकिस्तान। पाकिस्तान? पाकिस्तान! कृष्णा सोबती के गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान में जो नारे बुलंद हैं उनमें झोंकें माँ को? अम्मा को?

पाकिस्तान कितनी दूर है।

जिस पर अम्मा कुछ चिढ़ गयी — वो वहीं है जहाँ है। हम दूर हैं।

अरे फिर भी, उतनी दूर का कलेजा है तो ऑस्ट्रेलिया क्यों नहीं, घर भी होगा? पर पाकिस्तान? पाकिस्तान कौन जाता है?

रोज़ी। अम्मा का जवाब।

रोज़ी से क्या मतलब, सब चीखे और एक दूसरे की चीख पर चौंक कर कूदे।

इसे कहते हैं भूत सवार होना।

'उसको जाना था।'

'वो गयी।'

'चिरौंजी नहीं ले गयी।'

'तो क्या?'

'मैं ले जाऊँगी।'

बड़े पत्नी किचलू ताया डॉक्टर मिरासी केके बेटी सब कूदे हुंकारे और चुप होकर सोचने लगे, करें तो क्या?

बड़े ने किसी से कह कर पासपोर्ट बनवा दिया। पत्नी ने कहा उनका जी रख लो, कभी कभी प्लान करना काफी होता है, जाने की नौबत नहीं आती।

बेटी ने दयावान मन और खुले विचारों से आँका कि साथ तो दिया रोज़ी ने और अम्मा चाहती है उसके किसी को चिरौंजी पहुँचाना तो मैं खुल्लम खुल्ला साथ दूँगी। इस एलजीबीटी ज़माने में मैं पिछड़ों के गुट में नहीं।

मैं चलूँ? केके ने धीमे से बेटी को धमक्का दिया। क्या बुरा अगर आंटी के बहाने एक चक्कर हम भी लगा आयें, अमन वालों के संग कब से इरादा कर रहे हैं, केके ने कहा।

अम्मा बैठी थीं पर जैसे सबसे बेज़ार अनजान अनखाई भी। उनके जन्मदिन के जश्न में केके और बड़े भी पास पास बैठे थे और एक दूसरे से कह देते, हैव अनदर ड्रिंक, व्हाट कैन आई गैट यू?

हैव अनदर ड्रिंक, बड़े ने केके से कहा, अम्मा की अस्सीवीं सालगिरह मनाने ऑफ़िसर्स क्लब में।

आंटी, ब्रैन्डी? केके ने उन्हें बुझा बुझा देख कर कहा, तो बेटी ने इशारे से उसे चुप करने को कहा।

तुम, माँ ने छड़ी उठा कर बेटी की तरफ़ की, साथ होगी। आदेश था।

अब चलेंगे, वो लगभग पार्टी के बीच उठ गयी और सबकी ओर से मुँह फेर लिया। आते जाड़ों में हल्की सी झुरझुरी से उसका तन लरज़ा पर उसने बड़े की पत्नी का ओढ़ाया शॉल बेक़द्री से गिरने दिया।

जैसे एक एक करके सारे ओढ़ने उतार दिए हों, बीवी अम्मा चाची बुआ ऐन शैन के और आखिरकार बस वोही है, उघड़ी, अजनबी, अपनी, किसी और के खयाल या फिकर से अछूती।

अस्सी साल पे माँ स्वार्थी हो गयी।

बार बार ये होता है कि जो तैयारियाँ लगती हैं अनंतकाल तक चल रही हैं उनका अंजाम लगता है जैसे शुरू होने के पहले ही ख़त्म हो गया। जैसे इम्तेहान, जैसे भाषण-मंचन, जैसे जीवन, जैसे खाना, जैसे बचपन, जैसे माँ का फिर से पड़ जाना, फिर उठना तो सबके समझने के विपरीत किसी और ही धुन में उठना। कभी पति के पार निकलना, कभी रोज़ी के पार और एक नए बॉर्डर पार।

इंडिया पाकिस्तान खेलते हैं। एक कहता है क्रिकेट है आने दो, दूसरा कहता है उनका गायक है मत गाने दो। ये बोला हमारे मछुवारे उधर मछली पकड़ बैठे डुबा डालो, वो बोला आर्मी में था अब मुखबिरी करता है छील डालो। इन वार मार बारियों के बीच वीज़े मिल जाते हैं या नहीं मिलते। दूतालय ऐसे देवालय जहाँ तैयारी के बिना कभी खेल पूरा हो लेता है और कभी छक्के मारते रहे फिर भी हार गए।

पत्नी राष्ट्रपति भवन के किसी डिनर के लिए खास सज के आयीं थीं। देश विदेश के राजदूत मौजूद थे तो फॉर्मल काली पैन्ट और क्रीम टॉप और काला जैकेट फ्रॉम ऑस्ट्रेलिया। रीबॉक नहीं पर ऊँची एड़ीयाँ क्रिस्तियान लोबोतां से, जो फ्रांस से इम्पोर्टेड जूतों की दुकान थी। मोतियों का हार, हीरों की झलकें मारता ब्रूच और कलाई में कामदार चमकदार चूड़ी में घड़ी। आज वो कुछ भी कर सकती हैं, कुछ भी करवा सकती हैं। और वो देखो, बड़े से बोलीं, वो मेरी योगा स्टूडेंट थी, पाकिस्तानी राजदूत की बेटी है।

आपका हमारे मुल्क में इस्तकबाल है, जब कहिये, एम्बेसडर ने कहा। आप ने हमारी दुख़्तर को सिखाया है।

देखा, बहू अपने पहनावे पे फ़िदा हो गयीं।

अगले ही दिन सिड दूतावास फॉर्म आदि लेने गया और उल्टा-सीधा फॉर्म भरा और 'आप ही साइन कर दीजिये,' वहाँ के ओफ़िशिअल ने कहा, तो ग्रैनी का साइन सिड ने कर दिया और अपना भी और आंट का भी। कहाँ जाएँगे में जो याद आया लिख दिया, लाहौर कराची इस्लामाबाद और क्या।

देश बँटे तो दुश्मनी निभती है दोस्ती के साथ, और वीज़ा और बॉर्डर मूडपेडिपेंड रहता है — कभी घावित, कभी प्लावित, कभी समाधिस्त।

वाघा तक साथ आये बड़े बँटी-बँटी नज़र से अम्मा को बहन के साथ देखते हुए, खुद कोई बॉर्डर हों जैसे — कभी घावित, कभी प्लावित, कभी समाधिस्त।

OceanofPDF.com

हद–सरहद

OceanofPDF.com

वाघा आ गए तो गाथा ड्रामा और कथा पार्टीशन।

छोटी होती औरत का ये कारनामा है कि हर कहानी होती ही है पार्टीशन स्टोरी — प्यार मोहब्बत हसरत हौसला दर्द बिछोह खौफ़ कटाई? ज़ाहिर में हाज़िर नहीं तो फ़ज़ा में रूहें हैं फिरतीं। या बैठतीं क्योंकि एक लाइन में लेखकगण आ बैठते हैं और जैसे फॉर्मल डिनरों पर हर शख्स के आगे उसके नाम का कार्ड रखा होता, यहाँ भी लगे हैं। भीष्म साहनी। बलवंत सिंह। जोगिन्दर पॉल। मंटो। राही मासूम रज़ा। शानी। इंतज़ार हुसैन। कृष्णा सोबती। खुशवंत सिंह। रामानंद सागर। मंज़ूर एहतेशाम। राज़िन्दर सिंह बेदी। इतने कि गिनते रह जाओ। अगल बगल से ए◌ॉक्टर उन पर नट नटिनी की तरह अपने जिस्म बलखाते झुकाते सामने पड़ती लाइनों को पढ़ देते हैं।

मोहन राकेश का गनी अपने मलबे पर बैठता है।

उधर इंतज़ार साहब बैठे हैं बस्ती लिखते। मन में रंज भरे कि हम जवान ख़ून तो हिजरत पे निकले थे कि हमारे लिए नया क्षितिज खुल गया है, हम चुने हुए लोग हैं, कोई अपना वतन छोड़ देने को थोड़े, कि डिबई को हमेशा के लिए पीठ दिखा दो? क्या हम जानते थे कि अब नज़र उधर की तो इधर से फिर गयी और हमारे लौटने के रास्ते बंद। मौलाना, ए◌ॉक्टर उनके पन्नों से पढ़ता है, ज़ुल्म तो हम पर सब ही ने किए हैं, गैरों ने भी किये और अपनों ने भी किये।

मैं अन्दर से खाली खाली बाहर से बेज़ार शहर में भटकता फिरता हूँ, कोई अदाकारा पन्ना खोल के पढ़ती है। इंतज़ार साहब उसे पलट के देखते हैं तो उनके काँधे पे थप थप करके उनके लिखे शब्द उन्हें सुनाती जाती है जैसे उसके हैं और इंतज़ार साहब पाठक हैं। गलियाँ, चिड़ियाँ और पेड़ न पहचानें तो दुःख होता है, पहचान लें तो तबियत उदास होती है। तू नीम के पेड़ को तलाश करता फिरता है, इंतज़ार साब उदासी से कहते हैं, यहाँ सूरत यह है कि नीम, इमली, आम, पीपल, सब मुझे देखकर अनजाने बन जाते हैं।

उस तरफ़ ज़िंदगीनामा के पन्ने फड़फ़ड़ आवाज़ करते हैं और एक ए◌ॉक्टर रुक के देखने लगती है। प्याज़ी रंग का सितारों वाला घेरदार गरारा और कुरता पहने, उस पर गरम बंडी और सर पर चितराली टोपी में बिन्दास दीखती कृष्णा सोबती उसमें से निकलती हैं पर खुला कलम अभी भी उनके हाथ में है और स्याही सूखी नहीं है। वो उसको चलाती हुई ज़िन्दगीनामा से गुजरात हिन्दुस्तान से गुजरात पाकिस्तान तक रेखा खींचती हैं और आगे भी बनाती जाती हैं जैसे नए बॉर्डर बनाती हों जो लाँघती जाएँगी और इसलिए कभी बंद नहीं होता न होगा। एक किरदार विस्मृत होके उनके संग संग चलती है और बिलकुल धीमी सौम्य आवाज़ में कहती है, किताब खोल के, 'हिन्द राव के बेटे थे चार, सियो, तियो, धियो,

चौथे का नाम क्यों लें, वह दलित का कचरा उठाने को रहे। इस्लामुद्दीन के भी बेटे थे चार, अरब पठान तुर्क मुग़ल।'

दूसरे किरदार सुनकर इधर उधर से घिरे आते हैं जैसे ये किसी खेल की आवाजें हैं, जिसमें तरह तरह से शब्दों को जोड़ा बांटा जा सकता है। एक संग, अलग, एक पर एक, दूर दो खेमों में, अजीब नाटकीय ढंग से उठते नाचते मचलते ठहरते नारे हैं, मानो आज़मा रहे हैं हम किस जोड़ जमाव में सबसे हसीन तरीन?

'आवाज़ आयी—

तुम्हारी आवाज़ ही क्यों?

मेरी क्यों नहीं।

अगर मेरी नहीं तो तेरी नहीं।

तेरी नहीं तो किसी की नहीं।'

कृष्णा सोबती कलम से रेखा खींच रही हैं, याद से पंक्तियाँ जोड़ती हैं। 'सभी एक दूसरे के शोर को फोड़ने लगे। गलों से अपनी अपनी आवाज़ को गोटने लगे'।

नया बॉर्डर नयी लाँघ।

तभी टोबा टेक सिंह का बिशन कलाबाज़ी लगाता आता है और हर कलाबाज़ी पर सटासट कोई सेक्युरिटी गार्ड उस पर छर्रा बरसाता है और लाल रंग की पतली सी धार उसके तन से फूटती है और उसके चकराते चक्करों के साथ मंच पर लाल वृत्तों के हवाई फ़ौवारे बनाती जाती है। कोई हँस पड़ता है कोई डर के थरथर कांपने लगता है। बिशन सिंह को उनका उसे यों देखना रास आता है और वो शो-ऑफ के अन्दाज़ में हवा में और पैंतरे लगाता है जिस पर छर्रे उसमें से और लाल वृत्त फुटाते हैं और वो सुनाने लगता है औपड़ दि गड़ गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मुंग दि दाल ऑफ दी लालटेन।

ए्क्टर्स खुश होकर उसके साथ बोलियाँ लगाते हैं औपड़ दि गड़ गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मुंग दि दाल ऑफ दी पाकिस्तान गवर्नमेंट।

औपड़ दि गड़ गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मुंग दि दाल ऑफ वाहे गुरू जी दा ख़ालसा ए्न्ड वाहे गुरु जी दि फ़तह।

इस पर मजमा में लाल फुहारों के साथ हँसी फुहारें भी भँवराती हैं।

तभी घोषणा होती है ये वाघा है, शोर बंद। सब ठिठक जाते हैं। शान्ति से बैठ जाइये। लेखक अपनी कुर्सी पर बुत बन जाते हैं और ए्क्टर्स जिस ढब में थे उसी में पथरा जाते हैं। बिशन सिंह भी एक हाथ कान पर लगाए, दूसरा आँख पर, आवाज़ को गौर से सुनने देखने की मुद्रा में आ जाता है। फिर संजीदगी से पूछता है फ़ज़लदीन, टोबा टेक सिंह कहाँ है?

मंटो धीमे स्वर में कहते हैं कहाँ है? वहीं है, जहाँ था।

बिशन सिंह उछलता है। पर आवाज़ संजीदा हो जाती है और हवा में गूंजते ये वाघा है में दब जाती है।

अचानक खूब सारे लोग, कुछ सजे धजे, कुछ गाँव वाले, और बहुतेरे मिलिट्री लिबास में सामने दौड़े आते हैं। लेखकों के नीचे से कुर्सियाँ खींच देते हैं और उनके कलम जेब में

रखकर बन्दूक या तलवार उछाल के आगे तान लेते हैं। लेखक देर में समझ पाते हैं कि उनके नीचे से कुर्सी खिसक गयी है, इसलिए कुछ देर उसी तरह बैठे रहते हैं जैसे कुर्सी पे।

असल में ये ड्रामा वर्तमान वालों और गुज़रा हुआ कृष्ण बलदेव वैद ज़माना वालों दोनों का है। कोई कहेगा दो ड्रामे अगल बगल। कोई कहेगा दो ड्रामे गड्डमड्ड। एक सबको दीखता, वही दानवी जवानों का, फाटक के इस तरफ़ खाकी वर्दी में, फाटक के उस तरफ़ काली वर्दी में, दोनों तरफ़ पग्गड़ पे ऊँचे कल्ले फहराते, जैसे मुर्गे हों, काले और लाल, जिससे लम्बाई छ फुट से उछल कर सात हो गयी है, जयहिन्द-वन्देमातरम-पाकिस्तान-ज़िन्दाबाद-क़ायदेआज़म-ज़िन्दाबाद नृत्य-नाटिका। दूसरा सबको नहीं दीखता, जिसमें ये लेखकगण हैं जो आज भी हैं और हमेशा रहेंगे वाघा के जाने के बाद भी, जिनकी कुर्सियाँ आये दिन खींच ली जाती हैं और वो बिसरी नज़रों से ताकते रहते हैं।

इसलिए भी कि वो कभी समझ नहीं पाए हैं कि उन्हें इस पार जाना है या उस पार और आरपार है कहाँ? तो गर्दनें मात खायी कभी इधर घूमती हैं, कभी उधर, और आँखें सवालिया रहती हैं और वे खुद खोये से कभी उधर बढ़ते हैं, फिर जैसे हवा के उलटवार पर इधर लडखड़ चलते हैं। जिसे सब सीमा कहते हैं उस पर दोनों तरफ़ फैले आसमान में देखती उनकी नज़रें कहीं सीमा देख ही नहीं पातीं और इसी से या तो वो ग़लतफ़हमी में हैं या फिर वही वे लोग हैं जो सीमा लाँघ रहे हैं।

तो बैठे थे ये गर्भित भरमित पथिक चकित लेखक एक दूसरे से कहते कि सुन मेरे साथी, 'मेरे अन्दर ज़माने और ज़मीनें अस्त-व्यस्त हैं। कभी कभी बिलकुल पता नहीं चलता कि कहाँ किस जुग में हूँ।'

वे अपने सुनसान जंगल में सुनसान हालों में कि उन्हें तो ये तक नहीं पता चलता कि उनकी कुर्सियाँ खींच के नए आये श्रोतागण आ डटे थे। इतनी भीड़ थी और इतना देशप्रेम कि कुर्सियों की कमी होना रोज़ की बात थी।

पर उस दिन टोबा टेक सिंह के बिशन को ग़दर सूझी क्या? और दिन उसका चकराता नाटक दूसरा नाटक रहता, आज उसने सरहदी नृत्य-नाटिका को चकमा देने को जैसे पूरी बोतल चढ़ा ली। अब इसका क्या कहा जाए कि क्यों रोज़ दोनों नाटक अगल बगल पर अलग अलग अपनी राह पकड़ते हैं और एक दिन सूझती है कि एक दूसरे से टक्कर लें? बस शुरू हो गया बिशन और किसी को कुछ दिखा तो नहीं पर ये दिखा कि कोई बवंडर उड़ रहा है और लाल बौछारें डिज़ाइन बनाती वाघा मंचन को गड़बड़ा रही हैं। ऊपर से आदेश आये कि फ़ौरन उपद्रवी को गिरफ़्तार करो, मगर दिखे तब न, और जब तब न पकड़ पाए, अब पकड़ेंगे?

सब ने कर्कश हुक्म ज़रूर सुने जो स्वर कृष्णा सोबती को आज तक फूटी आँख न सुहाया है। वो एक जगह तन कर खड़ी हो गयीं और ऐसी कि उनकी तरफ़ बढ़ते सुरक्षाबल वाले निर्बल होके ठिठक जाते। सोबती ने खतरनाक उँगली हिलाई यू सर दैट इज़ इनफ़। जैसे कहती हों टोबा टेक सिंह से टक्कर?

उधर ऊँचे कल्ले वाले दोनों मुंछंदड़ दोनों फाटक के आर और पार कुछ अव्यवस्थित होने लगे। इन लाल बौछारों में लहीमाना शहीमाना क़द कैसे तो बनायें रखें? पड़ रही है नाक

पर कान पर पर हाथ उठा के खुजा नहीं सकते, सर टेढ़ा करके बच नहीं सकते।

कुछ देर अफरा तफरी। फिर एक और घोषणा गूँजती है। सूरज डूबने को है। शुरू करो। दो मुल्कों के विशाल फाटक चिंघाड़ते खुलते हैं और जल्दी जल्दी भीड़ हिन्दुस्तान पाकिस्तान के फाटक के इस पार उस पार बैठ जाती है और ऊँची सजावट वाले सैनिक ऊँचे बूट में, ऊँचे कल्ले परचमाते सामने उतर आते हैं।

लेखक अब तक खड़े हो चुके हैं मगर पशोपेश में फिर रहे हैं कि जाना कहाँ है और भीष्म जी तो फाटक पर खड़े हैरत से दूसरी तरफ़ तकते गिर ही पड़ते हैं। अरे जरनैल की खोपड़ी फोड़ दी वो दु:ख से कहते हैं। एक अदाकारा उनके पीछे से पढ़ती है। 'छड़ी कहाँ गयी, और फटी हुई मूँगिया पगड़ी कहाँ गयी और फटी हुई चप्पलें कहाँ गईं...' वो चुप हो जाती है और भीष्म जी अपनी किताब उसके हाथ से ले लेते हैं। तुम, वो कहते हैं। मैं, वो कहती है। ये ही जानना चाहती हो न कि यहाँ पर क्या कुछ हुआ है? सुनो, वो और दुखी होकर लिखते हुए पढ़ते हैं, सुनाओ या न सुनाओ, कोई खास फ़र्क़ नहीं पड़ता।

मगर खुशवंत सिंह शेर सा गुर्राते न आव देखते हैं न ताव और नो मैन्स लैंड में उछल के खड़े हो जाते हैं और उनकी पगड़ी तीसरे झंडे की तरह खुल के हवा में फड़ फड़ करती दीखती है। इस पर बिशन सिंह झटके से सिर आसमान की तरफ़ फेंकता है कि ए पंछी कित्थे उड़दा और अपनी गूँज वर्तमान में गुंजाता है।

उसे देखा कि नहीं किसी ने पर लाखों अरबों परिंदों के पर सबके कानों में पड़ते हैं और जो जहाँ है वहाँ रुक के दो पल ऊपर ताकता है कि कहाँ हैं परिंदे और उनके पर? पर सो तो कहीं नहीं दीखते। अखबार में ये रहस्य की तरह दर्ज है उस दिन के नाटक के बारे में और ये कि पता नहीं चला कि परिंदे थे कि यूएफओ या कत्ले-आम के माज़ी से लौटे स्वर?

दोनों मूँछ भाई भी अनायास सर पीछे फेंकते हैं फिर झटके से सीधे होते हैं कि आज तो दोनों को इसी पर पड़ेगी और इस चिन्ता की साझेदारी में अपने शो के पहले ही आँखें मिलाते हैं। मगर ये हमदर्दी में, हमसफ़र से। शो में तो शत्रुता का आँख-मटक्का होगा।

जो भी हो नाटक तो रुकना नहीं। देशभक्ति का माहौल है, भीड़ बैठ चुकी है और केवल बेवकूफ़ लेखक ठस खड़े हैं जिन्हें मिलिट्री वर्दी डाटे औरतें जो देख पा रही हैं पर पहचान नहीं, डाँट रही हैं, खेते हुए, जैसे गोचर को, मगर बाइज़्ज़त, और जनता के बीच बिठला देती हैं।

बस टोबा टेक सिंह का सिंह किसी की पकड़ में नहीं आता। परिंदों के परों की आवाज़ भी बीचमबीच आ जाती है।

तो भीड़ बैठ गयी है और लेखक विमूढ़ हैं और उन्हें छोड़ हर किसी के हाथ में मोबाइल है जिसे उन्होंने ऊपर तान रखा है, और सूरज की आखिरी लौ हर मोबाइल पर ऐसे सिमट आई है कि जैसे सब जलती मोमबत्तियाँ पकड़े हों। सिजदा तो नहीं, लेखक पूछने वाले हैं पर सबकी इन्द्रियाँ दोनों तरफ़ के भीमकाय गार्डों में उलझ जाती हैं जो बूट ठोंकते बैठी भीड़ के बीच सड़क पर कूद पड़े हैं।

जो दहाड़ बैठों के देशप्रेम से उठती है उससे साफ़ हो जाता है ये मोमबत्तियों का नाटक नहीं है।

राही मासूम रज़ा लिखते हैं ये सड़क चुप है किसी से नहीं पूछा इसने कौन हो किसलिए आये थे कहाँ जाते हो।

एक एॅक्टर पंक्ति दोबारा पढ़ जाता है ये सड़क चुप है किसी से नहीं पूछा इसने कौन हो किसलिए आये थे कहाँ जाते हो, जिस पर राही मासूम रज़ा आँख उसकी तरफ़ करते हैं। सलाम वो करता है। सलाम वो करते हैं। नीक रहिलन ना वो पूछता है। अबहीं रहे के होई? वो मुँह फेर लेते हैं।

भीड़ ने ज़ोरों का नाद किया। कब से इंतज़ार था, एक दूसरे से उत्साह से बोले।

अपने नाम पर शराफ़त से खड़े हो गए इंतज़ार साहब। बंद गले के कोट में सबको अनदेखते। दुखी उनकी आवाज़ अब हमें मर जाना चाहिए। बहुत ज़माना देख लिया। जो न देखना था, वह भी देख लिया। आगे देखने की ताब नहीं है। नाउम्मीदी के आलम में बोलते गए और सबके बीच से उठ गए। नेकबख्त होश में इस वेले है कौन? लोगों ने आधा मुल्क खो दिया और होश में नहीं आये।

उन्हें कौन देख सुन रहा था? जनता के पास फ़ालतू का वक्त और पैसा कि वाघा पहुँचे हैं, तब से रुके हैं और खेला न देखें?

फिर ज़बरदस्त मंचन होता है। ऐसा चुस्त दुरुस्त मार्शल डांस जिसका दोनों टुकड़ियों ने खूब रिहर्सल किया होगा। रिहर्सल करते में कोई दुश्मन नहीं हो सकता। हँसी ठट्ठा चला होगा। कि तुम इतना ऊँचा पैर मारोगे, जैसे अपने सिर को किक मारने तो हम ऐसे मारंगे जैसे अपने सिर को फोड़ देने। कि तुम ऐसे घूरोगे जैसे हमें कच्चा चबा जाना है तो हम ऐसी ज्वाला अंखियों से फेंकेंगे कि बम गोले तुम पर बरस जाएँ। मगर अब शो में दुश्मनी के पैंतरे। तलवार हवा को सन्न से काटती। बन्दूक कड़क तड़क कसरत करती, और बन्दर घुड़कियाँ एक दूसरे से आँख मिलाकर। हवा में मुक्के उछालने पे कल्ले अलग थरथराते। बेहतरीन नाटक की तरह ये नहीं पता चलता भाव असल है कि नकल?

लड़ाई है कि खेला, कुछ लोग ऐसे तकते हैं। लेखक भी। मंटो तो सिर नीचा कर लेते हैं जैसे सो गए या रो दिए।

कृष्णा सोबती ज़रूर अभी भी बीच बीच में उँगली गुस्से से हिला के सर दैट इज़ इनफ कहती हैं।

लेकिन टोबा टेक सिंह का सिंह तो मूड में। लाल सलाम से गार्डों के दांव पेंच मुश्किल में डालने में लगा ही है, अब और खुराफ़ाती हो रहा है। अब तक मामला फिर भी सँभला रहा चूँकि राष्ट्रभक्ति ऐसी पुख्ता, मगर सिंह नए नए हथकंडे अपनाता है। गगन तक उठते राष्ट्रीयता के अन्तर्नाद को अचानक कहीं छिपे से लपक कर पटखनी देने पे तुला हुआ है। तो नारे हिल जाते हैं और सारी कड़क मुस्तैदी के पीछे एक त्रस्त तन्नाई सुगबुगाहट भर रही है कि चौकन्ने रहो, पकड़ो, खेल ढेर न हो जाए। क्योंकि कभी भी परिंदे या जो भी फड़ फड़ करते हैं और कभी भी लाल धारें उड़ती हैं और कभी भी क्रिकेट मैच में उठती बोलियों से ऊँची हिन्दुस्तान ज़िन्दाबाद पाकिस्तान ज़िन्दाबाद क़ायदेआज़म ज़िन्दाबाद भारतमाता जयजयकार को काटती आवाज़ गूंज जाती है औपड़ दि गड़ गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मुंग दि दाल ऑफ दी पाकिस्तान एॅन्ड हिन्दुस्तान ऑफ दि दुर फिटे मुँह।

लगता है प्लेन कपड़ों में जासूस टुकड़ी लगा दी है जिनकी आँखें रोबोट की माफ़िक हर तरफ़ नाच रही हैं मगर बिशन पकड़ में नहीं आता। वो सादी वर्दी वाले और वर्दी वर्दी वाले सैनिकों की आँख से बच के अचानक कहीं भी जनता के बीच खड़ा हो जाता है और चिल्ला देता है। दोनों फाटक के दोनों तरफ़ उचकफांद मचाने से भी उसे कोई नहीं रोक पा रहा।

एक बार पाकिस्तान ज़िन्दाबाद मंडली के बीच से वो चिल्ला पड़ा हरहर महादेव और सिपाही उसे पकड़ने दौड़े तो जाने उड़ के या गेट के नीचे से फिसल के वो परली तरफ़ आ गया और वहाँ चिल्लाया आबे ज़मज़म रुतबा शाह। किसी जोशीले, खुद को तुर्रेखां उस्ताद समझने वाले ने उस पर मुक्का जमाया तो धुएँ की तरह मुक्के से फिसल गया।

मुक्का आईडिया सिंह को भा गया। दोनों तरफ़ के दैत्यों की जाँघों पे जमा के गायब कि खूँखार जाँघें लचक गयीं और वर्दियाँ हिल गयीं। अपने को गिरने से सँभाल तो गयीं मगर साँसें उखड़ती सी। सर घुमा के देख नहीं सकते ये किसके वार हैं तो वो कभी भी फिर, कहीं से भी फिर आ न गिराये। बाकी भी देखते रह गए ये बन्दर लगा गया कि कौन शैतान और फिर कहाँ भूत की तरह ओझल?

बिशन सिंह को अचानक प्रकट होना अचानक रूह हो जाना आज बहुत पच रहा था। अबके एक कल्ले नचाते गार्ड की कमर पर गुदगुदी कर दी कि वो लचक गयी पर बन्दा समझदार था, झट दूसरी तरफ़ भी लचक मार पड़ा जैसे ये इस मार्शल डांस का एक स्टैप है। दूसरे साइड वाले ने मुक़ाबले में पीछे न होने को खुद ही दोनों ओर ज़ोरदार लचक दे मारी।

अब क्या करूँ? तो बिशन सिंह लेखकों और एॅक्टरों से किताबें मनमर्जी उठा के खोल के कुछ चिल्ला के पढ़ देता। सही नारों के ऐन बीच ग़लतसलत लेखकीय लाइनें जो गूंजीं तो जनता तो जनता लेखक एकदम कन्फ्यूज हो गए। वैसे ही कुछ समझ नहीं पा रहे, अपनी लिखी सुनकर कन्फ्यूज़न में खड़े होकर अभिवादन कर देते मानो उन्हें बताना है जी ये मेरी बेचारी लाइनें हैं। मसलन सूखा बरगद उठा के जब हवा में गुंजान हुई कि घर तो फ़साद में जलाए जाने के बाद भी घर ही कहलाता है, तो मंज़ूर एहतेशाम अकबका के मुड़े और फिर खड़े हो गए जैसे इकबाले जुर्म करते हों, फिर और कंफ्यूज हुए और अपनी ऊँची काया को झुका के ऐसे झुक गए कि इस तरह और भी अदृश्य हो जाएँगे और दबे पाँव वहाँ से जाने लगे।

किन्तु जो अरसों बरसों से दो मुल्कों के पागलपन पे पगलाया बैठा था आज ज़रा भी रियायत के मूड में न था। इस रोज़ के मंचन में अगला जो घटता है वो तो हद है, हद की इन्तहा है, हद के पार है।

सूरज उतर रहा था और दोनों ओर के राष्ट्रीय झंडों को उतारने का पल आ गया। कल्ले-पोश जल्दी छिपाए जल्दी से अपना एॅक्ट सही सही निपटाने की जल्दी में थे। कुछ अतिरिक्त मुस्तैदी से एक दूसरे से हाथ भी मिला चुके थे कि बंधू आज हम तुम साथ, दुश्मन कोई तीजा है। नाच की आखिरी मुद्रा बची थी। दोनों तरफ़ के झंडों को ऊपर से नीचे लाना है।

यों नारे उठे कि वो ही हाथ पाँव हैं जो सारे के सारे बन्दर की सी तेज़ी से पोल पर चढ़ गए और अब परचम नीचे लायेंगे। ड्रामे के शोर के बराबर बाहर का शोर हो जाए तो दृश्य अश्लील लगने लगता है सो लगने लगा था। कि तभी कुछ हुआ। खुराफ़ाती उछला ज्यों बन्दर। पागल भी जैसे। और इस पोल से उस पोल किसी सर्कस वाले की तरह कूदता दोनों तरफ़ के झंडों की गिरन राह में अटकाने लगा। गार्ड परेशान। दोनों तरफ़। कहीं कस के झटका दें तो डोर टूट न जाए। मगर डोर खिंच क्यों नहीं रही? वो बेबसी से एक दूसरे से आँख मिलाते कि भय्या हमारे संग उठो गिरो, लाज रख लो, साथ दे दो। मन ही मन डर था ही कि ऊपरवाले हमें ही दोषी ठहरायेंगे, नौकरी तो खटाई में पड़ी जानो। लेकिन झन्डा आज आज़ाद। नीचे खींचें, ऊपर जाए, झटका दें, अटका जाए। दोनों तरफ़।

फिर तो ऐसे हवास हुए होश सारों के। तमाशबीन अपनी बुलंद पुकारें भूल कर सदमे से देखने लगे। हर तरफ़ चुप्पी छा गयी। दोनों तरफ़ कुछ फ़ोन हुए, कोई हरकारा दौड़ाया गया और झपक भर में आर्मी के आला अफ़सर मार्च करते आये। सीधे गेटों पर, दबी मगर हड़काती आवाज़ों में हुक्म मारते कि झंडा नीचे आना है।

घोराकृतियों के चेहरों का रौब मानो नाटक के एॅक्टरों का मेकअप था जिसे धूप पिघलाती चली गयी हो और अब वहाँ रंग ज़र्द। लम्बे तड़ंगे मेमने हुए। थुक्का फजीहत।

सब अपने अपने झंडों को टकटकी लगाये। झंडे बन्दर नाच में। गार्डों के बूते का कुछ नहीं। झंडे की एवज में उनका रंग उतरता गया और फिर सिर्फ़ वर्दी रह गयी और वो दीखना बंद हो गए।

तभी फिर परिंदे फडफ़ड़ाये और अगला जो देखा तो दोनों झंडे फडफ़ड़ाते नीचे आये और नीचे पहुँचे नहीं कि हवा में उछाल लगायी जैसे किसी अदृश्य हाथ ने उछाला और इधर का उधर, उधर का इधर। वहाँ तिरंगा, यहाँ चंदा।

ओ ओ ओ चीत्कार कि फुत्कार भीड़ से उठती हुई।

जल्दी गेट बंद करो हुक्म सुनाई पड़ता है जैसे झंडों की असलियत बंद हो जाएगी। लोहे की चिंघाड़ती आवाज़ होती है और दोनों तरफ़ लोगों के कैमरे, यानी मोबाइल भी, और दोनों तरफ़ के पत्रकारों को पुलिस जिस फुर्ती से लपेट में ले लेती है, वो ज़रूर क़ाबिले-तारीफ़ कहा जाएगा।

इसीलिए आज तक इस फियास्को नाटक की किसी अख़बार, कोई रिसाले में ख़बर नहीं कि वाघा पे झंडे धराशायी हुए थे और किस ओर के हैं भूल गए थे। फ़ोटो तो कहीं नहीं। किसी पुलिस आर्मी वाले ने अपनी जिज्ञासा या दिलचस्पी में चुपकी मार ले ली हो और सदियों बाद कोई रिसर्चर या डिसेंडेंट उसे भूले से निकाले और पीछे जाए तो शायद कुछ निकले। मगर अभी के लिए तो शोर, फिर सन्नाटे में सब अनदेखा रह गया।

इन होते खोते नाटकों में छोटे लोगों को कौन देखता? उनकी कतार में किसी को भी दिलचस्पी नहीं थी सिवाय खुद उनके और उनमें भी ज़्यादा बहुत ठीक समझने वाले होते नहीं, क्योंकि वे पुराने वक़्त और नए को, अपनी जवानी और बुढ़ापे को, भूल से एकमेक करने की भूल करते रहते हैं।

उन्हीं में छोटी सी औरत अपनी बड़ी होती बेटी के संग चली आ रही है।

गाड़ी में बेटे के संग बैठी माँ न मानी और उतर गयी थी कि आगे पैदल चलेगी। जैसे वो नहीं, उसकी वो गुज़र गयी साथिन चलती हो जिसको उस पार जाने का शौक चर्राया था चिरौंजी की पुड़िया लेकर।

रूह की राह चलना रूहानी रफ़्तार माँगता है, धीमे धीमे ज़र्रा ज़र्रा चाल माँ चली।

अटारी पहुँचती सड़क पर एक मील के पत्थर ने इन छोटे लोगों को रोक लिया, जैसे लूव्र में मोना लीज़ा रोकती है। उस पर लाहौर की दूरी लिखी थी — तीस किलोमीटर। सड़क दोनों पार।

औरत ऐसे चल रही है जैसे हर कदम में एक सदी पार करती। बेटी का हाथ हाथ में, छड़ी टेकटेक। बेटा दूर से देखता हुआ कुछ हलबलाया बौखलाया कि अब क्या बचता है सिवाय पलट के गाड़ी में बैठ अमृतसर की तरफ़ रुख करने के।

क्योंकि सूरज में गर्मी थी, साए में ठंडक आयी।

बड़े बड़े खुले सहन, जैसे कारखानों में।

ये कैसे कारखाने हैं, पहले थे? कोई छोटा लोग बोला।

सड़क किनारे प्लास्टिक की कुर्सियाँ जिन पर वर्दीवाले बैठे चौकन्ने रहकर सुस्ता रहे थे। ऐसे पक्षी होते हैं जो लम्बी उड़ानों पर आधी नींद और आधी सतर्क चेतना में उड़ते हैं, उनसे ट्रेनिंग ली हो।

ये पहले थे, किसी छोटी लोग ने पूछा?

औरत-पुलिस ने औरतों को परखा। हैंडबैग में क्या? इस पुड़िया में क्या?

छोटों की भीड़ बड़े बड़े हॉलों से गुज़री। जाँच पर पड़ताल। नए चमचमाते इमिग्रेशन हॉल। यहाँ कोई किसी का नहीं। जो अपने थे वो कब के बिसर गए। हॉल का नाप बड़ा बड़ा। लोग छोटे। कतार लम्बी। मिस्कीन गरीब। चमाचम अमीर। सिर पर पोटली। चेहरे पर बेनूरी। पोलियो की गोली? जी, ले चुके, देखिये सर्टिफिकेट। पासपोर्ट वीज़ा है, नहीं है? अफ़सरों की आँखों में शक, दायें बाएँ घूम घूम घूर घूर।

कर्मचारी सर खुजाएँ, क्या क्या जांचना परखना है? फ़ोटो के बंडल। कोई संवेदनशील फ़ोटो तो नहीं? हमारे परमाणु घेरे, पार्लियामेंट, आर्मी एरिया? ख़तों का पुलिंदा। अमां ये तो बरसों पुराना है, जाओ ले जाओ। पेड़ों की तस्वीरें? ये क्या माजरा? भई समझाओ ये पेड़ क्यों ले जा रहे हो? क्या दूसरी तरफ़ पेड़ नहीं हैं? बात पल्ले नहीं पड़ रही कि रिश्तेदारों, पेड़ों, पत्थरों, सभी को कोई देखना चाहता है, कोई दिखाना चाहता है? पत्थर खुरचा, पेड़ उलट पुलट देखा, क्या छिपा हो पत्तों में या परतों में?

कुछ मिल नहीं रहा। जो उन्हें देखना आता है, वो यहाँ नहीं। जो यहाँ है, उन्हें देखना नहीं आता।

गोबर ले जा रहा है, क्या करें?

सूखा है कि गीला?

सूखा?

ठीक से पैक होना चाहिए।

प्लास्टिक में ठीक से डालो। ले जाने दें कि फिकवा दें?

अरे खुद भी कुछ तै कर लो।

जाओ भैया। ये शौक अपना साथ ले जाओ।

चिरौंजी के दाने। तस्करी? ड्रग? दोनों औरतें इन संभावनाओं के परे लगती हैं।

और ये?

मूर्ति? बेटी की आँखें फटती हैं। ये कब माँ ने रख ली? डरी कि हमारी गैरहाजिरी में बड़े न ले जाएँ? मेरे घर थोड़े घुस जाते। ये मूर्ति स्वयंभू हुई जाती है, अपने आप जब जी आया जहाँ जी आया प्रकटती हुई। दास्तान में अपना कोना ढूँढ़ती है? जाँच अफ़सर उठा के उलटपुलट रहा है। बेटी चेहरा सपाट करती है। अफ़सर युवक है, मूर्ति बूढ़ी है, अस्सीसाला औरत के पास। जैसे हड्डी के आखिरी ढांचे पे मढ़ी आखिरी छाल। आँखें एकदम धंसी हुईं। पसलियाँ गिनने लायक। युवक गिनने लगता है फिर थक जाता है, अभी बहुत काम है, खिलवाड़ का समय नहीं।

जाइये बैठिये।

बस में बैठने दिया।

फाटक आ गए। यानी दोनों तरफ़ फाटक। फाटक हिन्दुस्तान से फाटक पाकिस्तान।

लोहे के फाटक चिंघाड़ते खुल गए। कोई धीरे चलता रहा, कोई दौड़ पड़े। बस रुक गयी।

कुछ पैदल चलते रहे। तेज़ सूरज की सन्न सफ़ेदी से सूखती साँस लडख़ड़ खींचते चलते रहे। रुक रहे। फिर चल रहे।

माँ उतरी तो उसकी भी आँखों में सब तरफ़ फैले चेहरों की गफ़लत आ गयी। कहाँ की सरहद? हम इधर के कि उधर के?

फूलों की क्यारियाँ थीं और माँ ने झुककर कुछ को पोंछा। उसके हाथ में मिट्टी लग गयी।

कुछ लोग सिर्फ़ मिलने आये हैं। इधर की बूढ़ी उधर की बच्ची को दौड़कर सीने से लगाती है कि मेरी नातिन मेरी नातिन। बूढ़ी के रोने पे बच्ची हँसती है, ये कहाँ हैं हम, आँखें मटकाती है, वो क्या जाने।

छोटे कुरते, लम्बे कुरते। सादे कुरते, कढ़े कुरते। कोई शलवार पजामे जैसी। कोई पजामा शलवार जैसा।

एक तो कसेट लेने आया है। बेबे चल नहीं पाती। आवाज़ भेजी है। दो मुझे, दे दो। रोज़ सुनूंगा।

कुक्कू, जो शामली देवी का छोटा भैया परमजीत था, मौजा कोट खलीफा की तरफ़ से आया है, करीमुल्ला की शक्ल और अपनी झुर्रियों में। शामली का बेटा जिसने मामा को कभी

नहीं देखा है अपनी तरफ़ आती देखती आँखों पे उछल कर कहता है ओ आ गए जी। ज़ीरो लाइन पर खड़े भाई बहन जिज्ञासा या तोहमत से एक ही सवाल एक दूसरे से पूछते हैं और चौंक कर देखते हैं कि मेरे शब्द दोहरा दिए तूने, कि इतने साल तुम कहाँ थे? पर बार बार दोहराने से जवाब नहीं मिल जाता। नहीं पता तो नहीं पता।

सरबजीत कौर भी आई है। बुर्का पीछे फेंक कर ढूँढ़ती हुई मेरी बच्ची कहाँ है? कौन है तुम्हारी बच्ची? चार साल की अमृत कौर। एक सरदार जी उस पार बस में बैठे थे। पास बैठी सकीना की बिटिया मासूमा ने उन्हें कहा मामू और छू दिया। ये क्या हुआ? मामू ने देखा और जान गए सकीना तो अमृत कौर है। घर गाँव गए जहाँ एक माँ रोज़ सितारों को ताकती कि कौन सी मेरी बच्ची। एक सितारा गिरता और उसे उठा के जुगनू की तरह हथेली पर रख लेती। ये ही सरबजीत कौर। ये ही मेरी बच्ची। ये मेरी बच्ची की बच्ची।

हरे सफ़ेद फाटक चिंघाड़ते हुए बंद होते हैं। लोग जैसे मवेशी हों उन्हें कुछ इधर कुछ उधर करके।

वो छोटी सी औरत अपनी बेटी के साथ बस से उतरी है।

पाकिस्तानी एम्बेसडर ने उसे लाहौर लिवा लाने गाड़ी भेजी है। राहत साहब उनका स्वागत करते हैं।

जिसे कहते हैं बॉर्डर उसके पार खड़ी औरत पृथ्वी की तरह धीमे धीमे चकरा रही है, इधर जाना है कि किधर? आज ही के लिए जैसे उसने दर्वेशाना पोशाक पहनी थी। पोशाक भी चकरा रही है। बेटी उसका चक्कर रोक के सामने को घुमा देती है। लाहौर को जाती सड़क पे। जिस सड़क पे वे हैं उसे ग्रैंड ट्रंक रोड कहते हैं जो इधर भी जाती है, उधर भी।

औरत तेज़ तेज़ चल पड़ती है जैसे उसकी सड़क से होड़ हो।

स्वामी ने एक चिड़िया बना दी। दोस्त ने पूछा, तो चिड़िया क्यों है?

कहीं देख लिया होगा, स्वामी ने बेध्यानी में कह दिया। चट्टान पर क्यों बैठी है? मिल गयी होगी उसे वो जगह, स्वामी ने फिर उसी तरह कह दिया। फिर सारी दुनिया ने सारे पठारों को देख लिया और चिड़िया उन पर ले आये। फिर सारी दुनिया में जगह जगह दिखाई पड़ने लगी बड़ी सी चट्टान और उस पर ज़रा सी बिंदु कि तितली कि फूल सी बैठी चिड़िया। इतने हल्के से टिकी कि देखते देखते लुढ़क सकती है पर नहीं लुढ़कती। न लुढ़केगी। ठोस, सलामत, छोटी से भी छोटी चिड़िया, जिसे कोई देखता नहीं गर स्वामी ने कहीं देख न लिया होता और ब्रश फहरा न दिया होता और दुनिया मंच न होती।

इसी तरह शुरू होता है खेला। चिड़िया और चट्टान। बड़ी चट्टान। ज़रा सी चिड़िया। लुढ़कने को तैयार चट्टान और तितली सी उड़ईया। अब क्या होगा ओहो क्या ओह आह?

पत्थर गिरेगा। चिड़िया मरेगी। न न न। पत्थर उठेगा, चिड़िया आह भरेगी, पकड़ेगी मछली। पत्थर पिघलेगा, चिड़िया तैरेगी। अआहा।

फिर क्यों न हो जाएँ स्वामी जल मछली? जो हुए।

एक दिन उठे। सूझ आया कि आज कोई अलग रंग चुनूँ। कैनवस फ़र्श पर बिछा दिया कि अच्छा लगता है पानी फैले और पक्षी तैरे। रंग के ट्यूब उठाये। कौन सा दबाऊँ, कोबाल्ट नीला कि लैटर बॉक्स लाल? हाथ में थीं उँगलियाँ पाँच जैसे अक्सर होती हैं। जिन्होंने आज़माया है रंग दबा के निकालना। पर स्वामी हैं, यंत्र नहीं। इन्सान हैं, स्वामी सही। उँगली है, कोई बटन नहीं कि इस स्पीड पर, इस ज़ोर से, एकदम निर्दिष्ट। दबाने में दब गयी ज़्यादा।

बच्चों की किलकारी सा रंग मंजन बना बह चला उस खास दिन और कैनवैस पर अपनी अनोखी ख़ुशी से फैलने लगा। अम्माओं की तरह स्वामी ने झट आँचल की तरह धोती झटकी और उफनते दूध की तरह फेनिल रंग की फिच्च को सोखने को की। मगर नरम सी नरमी से कि मछली की साँस न घोंट दें।

हैंडलूम की धोती, रंग सफ़ेद, पतली सी काली किनारी, मृगनयनी भोपाल से। आते सारे कालों के लिए उसने कैनवैस पे छापा लगाया और उसी पल एक और जग जी उठा जहाँ एक और कहानी भर गयी। जीवन शुरू जिसमें पत्थर होगा और चिड़िया और मछली और जल और खादी के ठप्पे पे निरे और भ्रमण।

गाथा निर्बाध। माँ नाबाद। औरतों का आगाज़।

उस सड़क ने देखा। दो औरतें उस पर उतरीं। चलीं।

सड़क ने कहानियाँ देखी हैं उस पर से गुज़रती। कुछ रौंदती, कुछ कुदकती।

इस सड़क ने नदी की तरह बलखाते मंडराते, इस मुल्क से उस मुल्क में घूमते, सदियाँ पार की थीं। लोगों की हँसी जानी, उनकी जल्दबाज़ी समझी और खौफ़ के तो इतने मंज़र देखे कि वो खून की तरह उसकी रगों में भर गए। उसे बुरा लगा होगा जो इतनी धूल उड़ने लगी है कि उसकी किनारियाँ सजाते पेड़ों का रंग भूरे-सलेटी की तहों से झाँकता हरा हो गया है और पास बहती नहर जिसमें गर्मियों की रातों में जुगनू मिचमिचाते थे, के पानी में लाल रंग, उगते डूबते सूरज का नहीं, गुज़रे ज़माने के लहू का मिल गया है।

एक बार उस सड़क पर जो काफ़िले उस गुज़रे ज़माने में गुज़रते थे, उन पर दंगाई टूट पड़े। दंगाइयों का ये है कि वो मार काट चीख चिल्लाहट त्यौहार की तरह मनाते हैं जिसे त्यौहार मचाना कहते हैं। (इसी तरह एक हैं गुजरात में जिनसे आप पूछ सकते हो हाँ तो आज किधर का प्रोग्राम है और वो कुछ ऐसा जवाब देंगे कि चलो आज साबरमती किनारे

चलते हैं और गाड़ी से हम उधर जाएँगे और उनकी मछुआरा आँखें जल्दी ही किसी अश्लील हरकत करती जोड़ी को मछली की तरह कांटे पर उठा लेंगी, फिर उन दोनों की बोलती घिग्घी में बदल देंगे और हमारी मौज हो जाएगी और वो भी मन के इशारे पे चला दंगा है।) सड़क के देखते न देखते इतने बलवाई वहाँ पिल पड़े कि कौन मारने भाग रहा है, कौन मरने से, रुलमिल गया और धमकी और विनती और ज़िन्दा और मुर्दा भी। जैसे उसे मारने आते तलवार कुल्हाड़ी भाले देख एक मानुष ने सड़क से मरे पड़े एक बच्चे को गोद में उठा लिया और घुमा घुमा के उसे कवच की तरह सामने कर देता, जिससे वो बचता गया।

ये सब इसलिए भी साफ़ नहीं था कि भागते पाँव और पहियों और खुर ने धूल फेंकना शुरू कर दिया और दृश्य बवंडर में तैरने लगा। अंधड़ के अँधेरे में बाप ने अपनी ही बेटी का सिर कलम कर दिया और पति ने अपनी ही पत्नी के सिर पे रखे बर्तन भांडे में से मूसल खींच बीवी को दे मारा। सब तरफ़ धोखे थे और बड़े संदूक ख़ाली थे, छोटी पोटलियाँ हीरे मोती छिपाए थीं।

सड़क ने अचरज से देखा कि एक टोली ने ज़ेवर पैसे सोने के चमकते टनटनाते बटन और बिस्कुट पोटली में बाँधे और बैलगाड़ी में बैठे कुछ बच्चों को थमाए और फुसफुसाए जाकर उस पेड़ पर बैठ जाओ और वहीं रहना।

दो बच्चे थे। झुककर निकले और पेड़ पर चढ़ गए। इस पेड़ पर। शायद इस डाल पर। शायद तब पत्ते ज़्यादा थे। इतने सूखे, धूल के रंग के नहीं हुए थे।

सड़क में ममता होगी। वो बाकियों को भूल उन दो बच्चों को ही देखती गयी। एक बच्चा भूले से एक दफ़े डाली से नीचे गिर भी पड़ा और सड़क और दूसरे बच्चे की चीख एक संग निकली पर शुकर से अंधड़ की मची में छिपी रही। बच्चा उछला और बिना धूल झाड़े वापिस पेड़ पर, जैसे भालू उसके पीछे।

या जान डाल पर भूल गया। जान वापिस अपने में डाल कर ज़रूर बच्चे के नटखटपने को हँसी आ गयी। आई भी क्या, उसे बहलाने के लिए उसके बड़े भाई ने इशारा किया कि वो देखो मत रो हा हा हा देखा?

दो आदमी एक बेहद बूढ़ी औरत को एक मोटे डंडे पर कपड़े में बाँधे उल्टा लटकाए भाग रहे थे, जैसे उसके लिए झूला बनाया हो कि वो कस कस के झूलती चले। या जैसे लकड़बग्घे को गाँववाले मार के डंडे पे लटका के गाँव ले आते हैं। बच्चे माफ़ी योग्य हैं क्योंकि उनकी बाली उमर हँसने खेलने वाली ही थी।

लेकिन जब डंडे पर लटकाई औरत को सड़क पर लगभग फेंक कर, उसे अब तक सँभालते झुलाते डुलाते भागते दोनों आदमी दौड़ गए, तब बच्चे

नहीं हँसे।

बड़ी ही देर तक बच्चे उसी, यानी इसी, पेड़ पर दुबके रहे, एक दूसरे को सँभाले। सड़क पर मची को न जाने समझते कि बस भोली नज़रों से सहमते देखते।

सड़क तो सड़क। उसने कौन होनी का निर्देशन करना है। मूक पड़ी रही पर उसकी भी रगें हैं, उम्र है, खुशियों सिसकियों का जज़्बा है। दूर दूर तक उसकी बलखाती काया है पर है तो उसी की — मीलों दूर की थपकी की अनुगूंज यहाँ आती है। क्योंकि वो सड़क रूपी नदी

है। ज़िन्दगी की नदी, कोई अँगरेज़ लेखक उसे नवाज़ गया है। नदी की तरह उसका न सिर है न पैर, कहाँ वो शुरू, कहाँ वो ख़तम, ये सिलसिला भी खुशगवार है। इस छोर खड़े हो तो ये ही शुरू, कहीं और हो तो वहाँ से। और कौन रोकने वाला उसकी बढ़त को।

पर ये बात बम के वक्तों के पहले की है। कम से कम तब ये ही लगता था कि वो छोटी से लम्बी होती रहेगी, घूमती भंवराती चलती रहेगी। घोड़े, ऊँट, खच्चर, पैदल, जो उस पर चलें उनकी रौनकें उसे पूरे में लग जाती हैं। किनारों पे सायेदार पेड़ हैं और पानी के हौज़ हैं। कितनी सराय हैं कि देशविदेश से आकर सुस्ता लो वहाँ। गाना बजाना हो ले, नींद ले लें, पेट भर लें।

मगर इस किस्म का धौलधप्पा खूनखराबा, हाय बंद करो। हम पे चढ़ के मारोगे तो चोट हमें भी लग सकती है, लगती है। वो दो बच्चे भी कब तक पेड़ पर टंगे रहेंगे?

मगर आवाजें थीं कि बंद हो के न दें। इधर भागें उधर भागें एक दूसरे पे कूदें।

सारी मार काट के बीच सड़क पे एक बेहद बूढ़ा आदमी हाथ प्रार्थना में जोड़े चुपचाप बैठा रहा। सड़क के साथ दुआ करता कि बंद करो हाय। या शायद वो मरा बैठा था दुआ में हाथ उठाये।

तभी दोबारा से छोटा बच्चा पेड़ से गिर पड़ा। अबके किसी की उस पर नज़र पड़ गई और वो पेड़ की तरफ़ हथियार उठाये दौड़ा। 'भागो' पेड़ चिल्लाया और बच्चा बड़ी सफ़ाई से दायें बायें होकर जो भागने लगा कि गोलियाँ दनदन आयीं पर उसे एक न लगी। मगर उसकी जान अब उसकी, ऐसे उसका बड़ा पेड़ से कूदा और पीछे पीछे, 'छोड़ दो मेरे भाई को छोड़ दो' चिल्लाता भागा। अबके जो गोली चली कि छोटा भैया ढेर। बगल पहुँच गए दूसरे बलवाई ने चाकू बड़े पर उठाया, तब तक गोली से छोटे को मारने वाला बलवाई पहुँच गया।

इसे छोड़ दो, वो बोला।

क्यों, चाकूवाले ने पूछा?

मैं इसे ले जाऊँगा, बन्दूक वाले ने कहा।

ले गया, कहाँ गया, क्या हुआ, कौन जाने? मगर सड़क राहत साहब को पहचान गयी जब बहुत अरसे बाद वो आये और उस पेड़ के नीचे लुढ़क गए। गोलियाँ बंद हो चुकीं थीं पर सड़क में घुसा उनका चेहरा उसमें धँस गया था। साँसें और सुबकियाँ सड़क सुनती रही।

पता नहीं औरतों ने देखा? कि सड़क ने उन्हें देखा? राहत साहब के साथ सैर करने आते।

राहत साहब को सड़क पसन्द थी। कहते चलिए नहर किनारे सड़क पे घूम लें। मौसम सुहाना है, ताज़ादम हो जाइयेगा।

माँ को भी सड़क रास आ गई। पेड़ों तले घूमना और नहर पे जुगनुओं के कभी टिमटिमाने की कहना।

बेटी को हँसी आ गयी कि अम्मा खूब सीख कर आई हैं रोज़ी से, कहाँ क्या टिमटिमाता है। इतनी दिलचस्पी उनकी उम्र पे जवानी को हवा देती है। बेटी ने हँस के सोचा केके से कहेगी तुम्हे नहीं लगता कि जवानी ग़लत समय पे आती है? जब हम नादान होते हैं, कुछ जिया नहीं होता। आती है और निकल जाती है, हमें पता नहीं चलता। बुढ़ापे में आनी चाहिए। पूरमपूर अनुभवी होने के बाद। तब ललकने का मतलब खुलता है। जवानी की बारीकियाँ मज़ा देती हैं। समझ आता है।

राहत साहब आगे चल रहे थे माँ के साथ, जब उन्होंने झुककर सड़क को हाथ से छुआ। माँ इतनी छोटी थी कि सड़क एकदम करीब से मानो खुद उठ आई कि लो तुम भी छू लो और उसने एक उँगली उस पर रख दी।

पुरानी शिला सिर्फ़ पत्थर नहीं होती। गए वक़्तों, पुरखों की आत्मा उसमें सोती है। आदिपुरुष ने उसपे हाथ धरा था, ये एहसास उस पर छुली आपकी उँगली में थरथराता है। आपको भी परमात्मा का पहला लाल बना जाता है।

औरतें चुप हो गयीं। पल भर रुक गयीं। छोटी औरत ने दरख़्त के झुक आये पत्तों के चेहरे पोंछे।

अब वो थकी नहीं लग रही थी। बल्कि बेटी को संदेह था कि वो अपने में रोज़ी को उतार रही हैं, अपनी उस गुज़री सखा/सेविका की मनपूर्ति करके कोई कर्ज़ा उतारने। उसमें रोज़ी-ऊर्जा भरने लगी है।

राहत साहब ने कनखी से देखा। मुस्कराए। आप थकी तो लग ही नहीं रहीं। इन पेड़ों के नीचे आपकी चाल फुदकती हुई है।

किलक लिए, उनका मतलब था।

क्या मैं मैना गौरय्या हो रही हूँ जो फुदक रही है? छोटी औरत हँसी।

रोज़ी, बड़ी के मन में उभरा। जो आपको यहाँ ले आई है। बड़ी औरत परेशान हुई थी। ये रोज़ी ने अम्मा को क्या सुझा दिया कि मर गयी पर जीती रहे? उसीके अतिरेक से माँ अन-माँ-यी हो रही है। चंचला। सबसे मुश्किल मुल्क घूमने की धुन सवार हुई है। कितनी अकेली हो गयी हूँ मैं।

नाव आपा नाव, आप नाव हो रही हैं। इधर उधर तैरती, जैसे सड़क नहीं पानी हो ये। डुग डुग। वैसे किपलिंग ने किम में इसे रिवर ऑफ़ लाइफ़ करार दिया।

बुढ़ापे की डगमग को आप दूसरे बयानों में डालने लगे, और कुछ नहीं।

तभी सड़क लचकी। या बलखाई। माँ डोल गयी।

तभी सड़क उचकी। माँ उचक गयी।

अरेरेरे बेटी ने पकड़ा। कैसे चल रही हैं आप? छड़ी भी ठीक से नहीं पकड़े हैं।

मल्लिका की तरह, राहत साहब ने हँसी की भीनी फुहार के संग कहा। सड़केआज़म पर। शाह राहेआज़म।

बहुत पुरानी सड़क है। बड़ी हुई औरत ने कहने को कहा।

बहुत। चन्द्रगुप्त मौर्य ने मरम्मत की, शेरशाह सूरी ने लम्बाई बढ़ाई।

वाह, सैरसपाटे में पूरा इतिहास घुस आये, बेटी ने कहने को कहा।

राहत साहब की आँखें संजीदा रहीं। ये सड़क दो हज़ार पाँच सौ किलोमीटर तक बिछी है। आगे भी देखती, पीछे भी।

संजीदा आँखों की तरह, जो आगे भी देखती हैं और पीछे भी, किसी ने नहीं कहा।

मुल्कों को देखती, जो थे, जो नहीं थे। काफ़िलों को। ताँगे, बैलगाड़ियाँ, ट्रकें...

खून, धुआँ, काँच, कनक, मवाद, बलवे, पनाहगीर, मेवे।

राहत साहब की आँखें आगे को भी देखतीं, पीछे को भी। वो एक पेड़ पे रुक गए। विशाल साए वाला। उतनी चिड़ियों से भरा जितने दोनों मुल्क

में बाशिंदे। सुबह की छनती धूप में पत्तियों डालियों का जाल। जाल के

ऊपर लाहौरी आसमान। संजीदगी से देखें जैसे आज़माते हों जाल किधर फेंकें?

लाहौर का उगता सूरज उनकी आँखों में झलका।

उन्होंने बेटी के सिर पर हाथ रखा। आप मुख़्तलिफ़ पीढ़ी हैं।

माँ राहत साहब को कुछ नाम और पतों की कहने लगी।

रोज़ी बंदोबस्त कर गयी पूरा, बेटी ने अपने को अलग करके या पाकर सोचा। पास कोस मीनार पर लिखा पढ़ने लगी। लाहौर-दिल्ली रोड।

सड़क पे कोई पाबंदी नहीं, इधर जाओ या उधर, वीज़े की मशक़्क़त नहीं करनी है। राहत साहब बोले।

सब हँसने लगे। और क्या करते!

और अम्मा को लाहौर घूमने की जल्दी थी। अंदरून शहर देखेंगे जब माँ ने कहा तो बेटी के मन में फिर उठा कि रोज़ी ने खूब सिखा पढ़ा के भेजा है।

दिन में भी अब हल्की सी खुनस थी। माँ ने अपने कढ़े अबा के ऊपर हल्की शॉल डाल ली थी। फ़लैटी के लॉन पे अच्छे से चाय नाश्ता करके तीनों निकले थे, शहर देखेंगे, फिर जो पते माँ लायी है वहाँ भी चिरौंजी-डाकिया बनके जायेंगे।

राहत साहब लाहौर की सैर कराते हुए जगहों के बारे में बताते गए। जहाँ जहाँ आपलोग कहेंगी वहाँ चलेंगे, गाड़ी अपनी, लाहौर अपना।

उसे भाया माँ का जगह जगह रुककर उत्सुक सैलानियों की तरह माँग करना कि यह देखेंगे, ऐसा करेंगे। वज़ीर खान की मस्जिद की मीनार से चढ़ के नज़ारा देखेंगे। हांफती, रुकती, अम्मा ऊपर चढ़ीं और लाहौर को बिछा देखा करीं।

वो देखती थी, याद में गुम बोलीं।

मर गयी बेचारी, बेटी ने भी रोज़ी को याद किया। मोबाइल से तस्वीर ली।

लाहौर का किला देखेंगे, उसे वहाँ घूमना पसन्द था, माँ ने कहा। वो देखा। बादशाही मस्जिद देखेंगे, वो देखा। रावी चलेंगे। वहाँ गये। कितनी सूख गयी हैं, माँ बोलीं, जैसे पुराने परिचित के बारे में। लाहौर हरा है पर पानी कहाँ गया बोलीं। कितना आती थी वो यहाँ, याद करती बोलीं।

बुढ़ापे की दोस्ती की ये ही कैफ़ियत होगी। जिससे भी हो जाए, आदमी या जिन्न से या जानवर से, फिर उसका साथ ही भाता है और जब नहीं रहता तो भी निभाता है। यों बेटी अपना तीसमारखाँ मनोविज्ञान अपने मन में झाड़ती रही। अच्छा तो मेरे घर की बैल्कनी पर और सामने मज़ार पे बैठ के रोज़ी के संग ये चर्चे चलते। पाकिस्तानी खिचड़ा पकता। रोज़ी अपनी जानकारी बघारती और माँ को ललचाती कि ले चलूँगी तो यह देखिएगा, वो दिखाऊँगी। माँ मेरे घर आकर नए नए सपने देखने लगी कि हाँ चलूँगी पाकिस्तान। अब रोज़ी नहीं रही तो मैं उसे लाऊँ, रोज़ी जो दिखाती, मैं दिखाऊँ। पर खूब होमवर्क करे रखे हैं हमारी अम्मा, पूरी लिस्ट रट लायी हैं कि क्या क्या देखना है।

अम्मा ने कहा मॉन्टगॉमरी हॉल चलेंगे। पता चला वो लाइब्रेरी हो गयी है और नाम है क़ायद-ए-आज़म।

फिर कहें लॉरेंस गार्डन किधर है? और टोलिनटन मार्किट?

फिर कहें मोची दरवाज़ा चलेंगे और मोची बाग।

फिर कहें अरे ये कैसा सूखा है?

रोज़ी ने हरा भरा बताया होगा।

यहाँ सियासी लीडरान अपने स्पीच देते हैं और बच्चे क्रिकेट खेलते हैं, पर कुछ कोशिश है फिर पार्क बने, राहत साहब बोले।

दुकानें भी माँ ऐसे देखें जैसे दुकानों की भी रोज़ी-लिस्ट है जिनमें जाना है। मंज़र वही जो अपनी तरफ़ और माल भी वही, मेवा प्लास्टिक बकवास डब्बे शीशियाँ मसाले खाने सब जो करोल बाग में या चांदनी चौक में। पर माँ में रोज़ी है और उनकी चार हुई आँखों से सब नया, अनोखा।

फिर कहें उस दुकान से खताईयाँ लेंगे, बहुत बढ़िया बनाते हैं।

रोज़ी के अनुभवों से कदमताल मिलातीं। हर ख़्वाहिश, हर उमंग में रोज़ी फूट रही है। हर कदम उसकी पीछे रह गयी इच्छा पूरी कर रहा है।

अब बेटी कुतूहल से देखती है कि इस इरादे ने माँ को जैसे रोज़ी ही बना दिया जो हमको, राहत साहब को भी, शहर लाहौर दिखा रही है! अब माँ आगे चल रही हैं, वे दोनों उनकी छड़ी के ठक ठक के पीछे। रोज़ी माँ के कान में फूँकती हो कि अब दायें मुड़ो, अब बायें, और वो मुड़ जातीं।

साइकिलें, स्कूटर, भिखमंगों का आना जाना भी और सबके बीच माँ की सरदारी में बेटी और राहत साहब।

अनारकली में कहती हैं कि बानो बाज़ार से वो सब खरीदती थी। वहाँ पहुँच कर कहती हैं ठीक से याद नहीं।

सुनी सुनाई कितना कोई याद रखे? कोई बात नहीं, बेटी ने सांत्वना दी। चलिए।

हाँ चलो। अम्मा उसकी मान के बोलीं। उसी ढाबे में चाय पीने। पुरानी अनारकली के कोने के किसी ढाबे में चाय पीनी है। वो पीती थी कहती हैं। बल डाल कर याद करती हों कि रोज़ी ने क्या बताया था, इस तरह इलाक़े का जायज़ा लेतीं।

वो ढाबा, इशारा करती हैं। पहचान गयीं या मान लिया वो ही रहा होगा।

राहत साहब और उनमें बातें होती है। कागज़ पर लिखे नाम और पते फिर निकलते हैं। बेटी अनारकली की चमक धमक देख रही है, एक दो दुकान खुद देख आई है, एक जोड़ी जूतियाँ ले ली हैं और कुछ गहने, शनील का सूट पीस, केके के लिए ऐशट्रे, मोमबत्ती के लिए नक्काशीदार होल्डर और चाभी टांगने का नक्काशीदार हुक। उसके कान में पड़ता है दिल्ली गेट। सुरजन सिंह गली।

रोज़ी भी नसीबवाली! चाहा किसी को चिरौंजी देना, न दे पायी, दयालु माँ ने अपने कन्धों पर ले लिया। और मैंने माँ को अपने पर। चलो इतना भी मुश्किल नहीं। भले ही रोज़ी इसमें भी है पर अब करा मैं रही हूँ।

तुस्सी उस पार तौं आये हो? ढाबे का मालिक पूछता है। मुफ़्त पकौड़े खिलाता है।

जब सुरजन सिंह गली पहुँचे तब बेटी ने देखा माँ की आँखें भिंची हुई हैं।

दिल्ली गेट पे ठिठकी खड़ी। मन में खुबे नक्शे को पढ़ने आँखें बंद करनी होती है। अपने भीतर चलती चली आई आत्मा से पूछने के लिए भी। रोज़ी से बातें करती है, लगता है अपने से ही कह रही है। 'बाईं तरफ़ क्या? शाही हम्माम। आगे बाज़ार। गली में चीनी मिट्टी की प्यालियों में चाय चुस्कियाते आदमी। धीरे धीरे आगे को चलो। टूटते पुराने घर, उनसे लटकते नंगे तार। ऊपर उनका उलझाव, नीचे गलियों का। कबूतर उड़े। बिल्ली दिखी।' बोलती जाती है मानो रूह को सुना रही हो कहाँ है, क्या है, चित्रखचित। रूह हामी भर दे तो अगला कदम।

पूरा अबाउट टर्न। धीरे धीरे गली में बढ़ती, रोज़ी के संग फुसफुस करती। गली वाले क्या सोचते होंगे, अपने से बातें करने वाली उस पार से आई औरत।

बेटी टोक देती पर राहत साहब ने इशारा किया कि चुप चलें। जैसे सामान्य है पार आकर किसी भूत से बतियाना। एक से दो हो जाना।

'पतंग की दुकान', माँ कहती है और इशारा करती है जैसे मुझे सब पता है। 'पेड़ कहाँ है?'

पेड़, कैसा पेड़, इन संकरी गलियों में? जहाँ एक लाइन से चलना भी मुश्किल है। कहीं कोहनी लगती है, कहीं पाँव नाली में जाता है।

‘पेड़? अम्मा?’

‘पेड़ जिस पर सिंदूर लगा है।’

रोज़ी रोज़ी, बेटी गुस्साना चाहती है, पर मरों पे क्या ज़ाया होना? मगर क्या पढ़ाती रही है अम्मा को? सिंदूर की ढुँढ़ाई, यहाँ?

इससे पूछा, उससे पूछा, माँ पूछ रही है। राहत साहब धीरज नहीं खोते, सीमा पार से आई हैं, मेहमान हैं।

किसी ने कहा वो शिआओं का? नौचंदी जुम्मेरात वाला?

वाक़ई पेड़ था जिस पर लाल टीके लगे थे। तो क्या रोज़ी शिआ थी, आज तक बेटी पता नहीं कर पायी है?

माँ वहाँ खड़ी पगलेट सी दायें बायें देखे। फिर बोली ‘नहीं मिल रहा, फिर चलो दिल्ली दरवाज़े पे।’

क्या नहीं मिल रहा? रोज़ी के दिए पते? वो तो लिखे हैं, किसी को दिखा के पहुँचा जाए है। या अभी कोई और टूरिस्ट स्पॉट है? सब देखने का चाव चढ़ा है? पर इस तरह लाठी से टटोलते?

राहत साहब वापिस दिल्ली दरवाज़े ले आये। माँ फिर चारों ओर जाँचती सी खड़ी हो गयी और तब बोली ‘उधर से नहीं इधर से चलो उस पेड़ वाली गली की तरफ़।’ फिर कुछ पाँव नापते टापते बढ़ी, ‘देखो ये, फिर ये’, अपने से या रोज़ी से कहते।

वो इंजन, डब्बे पीछे।

अबके माँ आँखें बंद किये चलने लगी। जैसे तब साफ़ दिखेगा।

अरे ऐसे भी कोई चलता है? बेटी के मुँह से निकला ‘अम्मा’। राहत साहब ने उसे पीछे खींचा।

बंद आँखों वाली माँ आगे, बायें, कोई फेरा लेकर फिर बायें। वे दोनों पीछे पीछे।

आज को बंद करके, याद खोल के।

किसी नाली पर माँ रुक गईं। उसमें पानी बह रहा था। गन्दा नहीं लग रहा था पर था तो नाली का ही। यहाँ माँ ने आँखें खोलीं और देर तक पानी को देखती रहीं। फिर उसका हाथ उसके तन पर फिरता नीचे गया और उसके पैरों के बीच रुक गया। धीमे से बुदबुदाई, ‘इसी नाली पे वो छिच्छी कर देती जब छोटी थी और रुका नहीं जाता।’

एक औरत, मर्दों के बीच, हाथ पैरों के बीच दबाये, गाफ़िल खड़ी, लाहौर के आसमान तले, उस पार से आई।

बेटी के कान की लवें गरम। ये रोज़ी कैसी बातें माँ को बताती थी? उसने माँ के हाथ सही करे।

माँ ने हाथ छुड़ाये और नए सिरे से गलियों को दूर तक देखने लगीं जैसे दूर तक उन्हें दिख रहा है। कुछ अनिश्चित, जैसे रोज़ी की तरह वो दो-चित्ता नदी बन गयी हैं जो इधर बह सकती है और उधर। ये वो पल जहाँ दोनों धारा मिलती हों। एकदम स्थिर रुका पल। बॉर्डर बनाता।

तय किया कि उसमें चलेंगी। सबसे पतली गली में। दोनों तरफ़ की दीवारों ने आप ही उनकी कोहनियाँ थाम लीं। फिर क्या ज़रूरत कि छड़ी पकड़ें? माँ ने छड़ी बेटी को दे दी। न ज़रूरत कि आँखें खोले रहें। तो आँखें फिर बंद कीं। और बंद रखीं।

रुकी खड़ी। पीछे वाले भी रुके। हाथों से दीवार को छुआ, जैसे रोज़ी ने जो खुरदरी छुअन बतलाई हो वही है न, आश्वस्त होने। वही दीवार, हाँ?

बंद आँखों से और गली की दीवार से हाथ सटाए माँ चलने लगी। कि गली के हवाले, वो हाथ पकड़ के जिधर ले जाए।

गली उसे लेती चली। आगे दीवार बहुत पुरानी हो गयी। उसमें एक छोटी खिड़की की नाप का छेद था। माँ का हाथ उसमें गया तो उसने अपना सर भी उसमें डाला। ठिठक कर। बिना आँखें खोले। उस तरफ़ छत में भी छेद था कि ऊपर से लुढ़क जाओ तो गिरो नहीं, अटक जाओ, आधे ऊपर, आधे लटके। उस पर तिरपाल पड़ी थी जो माँ ने पलकें अधखोल देख ली। 'अभी तक?' छत के छेद से कहा।

और जल्दी से पलकें पूरी गिरा लीं कि सब जो दिख रहा है बुझ न जाए।

दो पल रुकी रही जैसे सपने में लौटने को। पर अचानक जो चलीं तो उनके कदम चलना भूल गए, ऐसे बौराए। कि एक पहले, फिर दूसरा रखें, ये न कर, एक संग दोनों उठ गए, एक संग आगे बढ़ने। डर हो कि एक पीछे न छूट जाये। प्रण हो कि आपस का साथ न टूटे पल भर को भी और जो एक जाने वो दूसरा भी तो जाने। जैसे दो जिस्म एक जान।

कूदती कि दौड़ती माँ आगे। जहाँ दीवार पूरी हो गयी और कुछ सीढ़ियाँ और छोटा सा लाल चबूतरा था।

अम्मा, बेटी ने लपक के लोकना चाहा कि ठोकर की तैयारी है पर अबके राहत साहब ने बाक़ायदा उसके दोनों कन्धों को कुछ अतिरिक्त सख्ती से दबोचा और उसे पीछे को घसीटा कि वो अचरज से बिटर बिटिर।

माँ सीढ़ी पर कूदी, उसी तरह एक संग दोनों पैर गफ़लत में उठाते, और लाल चबूतरा लाँघ के दरवाज़े पर।

हरे रंग का मोटा पुराना दरवाज़ा, दरारों की नक्काशी से संवरा, भारी सी लोहे की सांकल वाला।

'ये तो उसका नानका', माँ फुसफुसाई मगर चिल्लाती सी फुसफुस।

दरवाज़े पर नाम की पट्टी नहीं दिखी, एक बोर्ड दिखा जिस पर उर्दू में लिखा था यहाँ क्रिकेट का सामान मिलता है। माँ ने पढ़ा यहाँ क्रिकेट का सामान मिलता है और कुंडा खड़का दिया।

सांकल इधर खड़की, बुड्ढा उधर से निकला, गली की दूसरी तरफ़ की मकनिया से। सौ साल के बुज़ुर्ग उठ आये। लम्बी दाढ़ी, मकडज़ाल आँखें। 'डाक्टरियाने दा पिंड', दरवाज़े की सांकल पकड़ी औरत को देख के बोले। 'डाक्टरियाने दे आ गए', गली को पुकारा और दो सीढ़ी चढ़, लाल चबूतरे पे खड़ी माँ के सिर पर हाथ रख दिया।

जिससे उसके जूड़े का पिन नीचे गिरा और बाल लरज़ा पड़े और उन्हें एक एक करके सँभाल के उठाने हर तरफ़ से गली में लोग निकलने लगे।

बहुत साल पहले एक था भूपेन खक्खर। वो ब्रश से कहानी कहता था। औरतों की, जबकि उसे आदमी पसन्द थे। उन्हें औरताना लिबास और भाव देकर। उसे मालूम था कि कहानी को बक्सबंद कैनवसबंद नज़रबंद नहीं किया जा सकता। तो उसने कभी ऐसी कोशिश नहीं की। इसके बरक्स वो तो हर बार कोई खुली ख़ाली जगह छोड़ दिया करता कि कहानी बढ़ ले, अपनी चाह से किसी और राह हो ले।

कहानी क्योंकि कभी पूरी नहीं होती। कूद जाती है खिड़की, दरार, कुछ खुला पाकर, नहीं तो धरती हिलाकर, बनाकर। भूपेन की छोड़ी अनकही अनलिखी अनभरी जगह से। कहाँ गयी, फ़ौरन दिखता भी नहीं। गायब। अंदेशों की ऐसी तैसी। रिवायतें कर हवा के हवाले। सरहदों को लाँघती। जैसे माँ। जैसे बार बार। फिर बेटी के संग। सरहद लाँघकर। समाधि से उठी।

कट्टरतंत्र और शासनतंत्र को समाधियाँ रास नहीं आतीं, न कहानियाँ, न भूपेन खक्खर। उन्हें बंद करना रास आता है। फ़ाइल, डब्बा, बक्सा। कोई नहीं कह रहा कि सिर्फ़ घूस पे या बेईमानियों पे। कहानियों पे भी और खासकर औरताना हों तो। ये न हिलें तो ठीक। कब्र बना दो, वो भी ऐसी कि कभी न फटे। औरतों को खासकर वहाँ उतार दो जहाँ उनकी चमक मिटती जाए, रंग फिकाता जाए, खाल झरती जाए, हड्डी गलती जाए। खुशबू उड़ा जाए।

कट्टर ढक्कन नहीं खिसकाते क्योंकि खुशबू का इत्रा-ना उन्हें स्वीकार नहीं।

मगर भगवान तो नहीं वे, शुकर शुकर! वैसे पॉल ज़करिया की एक और कहानी में गॉड जो सब कर सकते हैं वो भी संगीत कला साहित्य के दिग्गज बबुका के आगे पटखनी खाते हैं और जा बैठते हैं बबुका के आगे कि सिखा दो मुझे भी अपने गीत। ये कला की है जीत जो संगीत में कहानी में और भगवान से आगे।

तो ढक्कनों पे भी ठोकर लग सकती है। खुशबू इत्रा-ती है और उठती लहर अक्स उठाती है और कहानी नयी राह चल निकलती है। जलमंथन से जैसे उठे थे युरोपा और हिमालय, वैसे उठती है कहानी रेतमंथन से। पुराने रेत चिन्हों पर नए रेत चिन्ह गोदती है। रेत में आकार बनते हैं। रेत से सरहदें मिट जाती हैं।

हवाएँ आवारा हैं कहानी की तरह। उन्हें कोई नहीं रोक सकता। ढक्कन से दबा और बॉक्स में बंद नहीं कर सकता। हवा वीज़ा फीज़ा नहीं मानती। कहानी की तरह उसमें लोच लचीली। हवा है कि आग? कि धुआँ? कि खुशबू? उसके अंग ऐसे नहीं कि टुकड़े करके रोज़ी की तरह बॉक्स बेड में ठूंस दो।

और रोज़ी भी बंद रही? उठ आई है निकल के माँ के आगे आगे और बेटी के पीछे।

तो कहानी तो बस तो।

तो एक था राजा एक थी रानी दोनों मर गए ख़तम कहानी?

बच्चा खिलखिलाता है।

और एक था राजा एक थी रानी तो तो तो।

बच्ची हँसती है, अभी कहानी बाकी है।

एक थी रोज़ी एक थी बाजी।

ब्रश उठाया। ब्रश रंग भरता है। फिर सारे भूपेन रुक जाते हैं। एक हिस्सा अधूरा, रंग घिचपिच फैला, कैसे फैलेगा, क्या और करेगा, अभी चुप है। कूद पड़ेगा, लाँघ जाएगा, कहानी ख़त्म नहीं होती।

पर रोज़ी कहाँ, अभी बाजी ही बाजी, और हमने हारी बाज़ी।

कुछ देखते चलो और उलट हो तो गुस्सा आ जाता है। जैसे हमारी ही पहचानने की सलाहियत पर प्रश्नचिन्ह लग गया हो। जहाँ जहाँ रोज़ी को हम देख रहे थे वहाँ वहाँ माँ है। रोज़ी का भूत हमीं ने बनाया और उसे ही देख लिया। जब कि वो वहाँ थी ही नहीं, माँ थी। वज़ीर खान की बुर्ज पर, रावी किनारे, बानो बाज़ार में, नाली पे, हरे दरवाज़े में, लाल चबूतरे पे।

ज़िन्दगी का नाप तोल बिगड़ जाता है। इन आँखों पे पट्टी किसने बाँध दी, इस मति को किसने बहकाया, कौन है ये औरत? उर्दू पढ़ती है और कहती है हमारे लाहौर स्टेशन का नाम उर्दू, गुरमुखी, हिन्दी, अंग्रेज़ी, चार लिपियों में लिखा था।

अम्मा तुमने झूठ कहा। फ़लैटी के कमरे में बेटी।

नहीं।

तुमने कहा ये सब उसका...

उसी का तो।

रोज़ी का...

उसका, जो यहाँ से चली गयी। मैं थी वो।

हरा दरवाज़ा खोलने वाले शख्स को अनदेखा करती माँ घर में घुस गयी और बोली ड्योढ़ी और बोली होड़ा चंगी तरह लगा दे और बूढ़े बुज़ुर्ग के संग नज़रों से घर के लम्बे लम्बे घूंट भरने लगी। स्लो मोशन की झपकियों में आँखें एक अरसे को बंद होतीं एक अरसे को खुलतीं। गली से एक एक करके निकल आये लोग उसके और सौ साल के बुज़ुर्ग के पीछे

जमा हो गये। इतने कि पता ही नहीं चला इस घर के अन्दर से कौन निकला और बाहर से कौन आया।

वो ऊपर देख रही थी। पूरा मजमा ऊपर देख रहा था।

‘हौ,’ उसने मुँह फाड़ के हाथ से ढका। ‘मंज़िलें गिर गयीं?’

लोग ताकते रहे।

‘पहले पाँच मंज़िल थीं, उसने बताया, फिर छत। वो देखो दूसरी मंज़िल भी टूटी हुई।’

‘नहीं कुछ कमरे हैं वहाँ।’ जिस लड़के ने कहा, बाहर से आया था कि अन्दर का था?

‘सीढ़ी चढ़ के एक और ड्योढ़ी। इधर वो कमरा जिसमें लोहे के बक्स,’ वो बोली। ‘ट्रंक वाला कमरा। उनमें रज़ाइयाँ गद्दे कम्बल चद्दरें। थालियाँ डोंगे परात। कॉपियाँ फ़ोटो दूरबीन।’

‘ये नानू का कमरा। वो उन्हें ताया कहती। यहाँ कैरम खेलते। घसीटा-मार उसे सब कहते।’

‘यहाँ नहान घर। बस एक नल। ये गीज़र नहीं। ये शॉवर नहीं।’

‘ऊपर अगली मंजिल।’ माँ चढ़ने लगी और गली वाले, घर वाले, पीछे पीछे। दीवारों पर बिजली के लटके तारों से बचते जिनमें पुराने जाले उलझ गए थे।

‘ऊपर बैठक।’ माँ अन्दर दाखिल होकर बोली, ‘ये। हरे रंग की लकड़ी का काम।’ दिखाया हरा कमरा। ‘खिड़कियों पर लाल नीले पीले शीशे ये ही थे। रंगीला कमरा वो कहते।’

‘यहाँ से कौसर दिख जाती। उसकी क्लासमेट। तब वो उतरती और उसके संग टमटम लेके निकल जाती। दिलरुबा सीखने। साइकल भी वो चलातीं। रैले साइकल। साथ पढने जातीं।’

‘ये खम्भों वाला कमरा।’ माँ गाइड। ‘यहाँ पाठ होता। खम्भे टूट गए,’ उसने दिखाया।

‘सामने मामे का कमरा। टूट गया’ उसने बताया।

‘ऊपर। सोने का कमरा। टट्टर नहीं बचा। वहीं से वो देखती कि कौन घर आया? कौसर अकेली कि भाई भी साथ?’

‘ऊपर से छिक्का फेंका, खरीद की, फल सब्ज़ी। अंडा एक आने में बारह। दो दो बड़ी ब्रेड एक आने में। चार आने सेर मच्छी। चार आने सेर गोश्त। कच्चा। छे आने में पक्का। पाई रसगुल्ला किन्ने का? माई एक आने का।’

‘छत पर भी कमरा था। उड़ गया?’ अबके इलज़ाम सा लगाती माँ ने घिरी जनता से पूछा। ‘वहीं तो वो पढ़ती थी। कौसर के साथ, अनवर के साथ। उनके बाप अंग्रेज़ी के प्रोफेसर।’

‘छत पर निकल आते, बातें करने की उम्र।’

‘फुल्के बन रहे थे। ताया ने छत पर भगा दिया। चूल्हा जला, रोटी तवे पर। शोर हुआ। नाने ने कहा कूद जाना निकल जाओ। दरवाज़े गिरे, सीढियाँ धड़धड़ायीं। नाने ने कहा निकल जाओ। घर फुँके।’

‘ये बच गया।’ माँ इतमीनान से बोली। ‘बताऊँगी आग बुझ गयी।’

‘चलो नीचे।’

सब नीचे उतरने लगे। वहाँ जहाँ क्रिकेट का सामान लाइन से लगा था। प्लास्टिक लपेट में बल्ले गेंद पैड विकेट टोपियाँ। बिकाऊ।

‘मामू का दवाखाना। उधर वो आँख का नम्बर देखते थे।’

‘उसके मामे।’ माँ ने जनता को बताया। ‘आँख के डॉक्टर। खाकी पैन्ट, पीली चारखाने की कमीज़। उनका कम्पाउण्डर। पठानी शलवार, पगड़ी, तुल्ला।’

किसी ने माँ के लिए आराम कुर्सी खींच दी। वो बैठ गयी।

‘वो उनके साथ यहाँ बैठ जाती। सोलह बरस की। ट्रिब्यून पढ़ रही थी। मामा ने अनवर की आँखें देखीं। पाँच रुपया लगता। लाइन पढ़ो। लाहौर वो पढ़ गया। पर न चार दिखे, न छह। ऐनक तो लानी ही पैनी है। ऐसा चश्मा कि आजीवन टूटे नहीं। मोटा शीशा, काला फ्रेम, कान पर गोल कमान फिट। कैरम में वो जीतने लगता तो वो और कौसर चिढ़ातीं ऐ की खोपे लगा लेने तू, उससे डबल देखता है। चीटिंग। वो ऐनक जेब में डाल के फिर गोटी मारता।’

माँ के लिए चाय आई।

लकड़ी का हरा दरवाज़ा खुला था। बच्चे बूढ़े जवान जमा हो गए थे। दरवाज़े पर लिखा था क्रिकेट का सामान और अन्दर भरा था क्रिकेट का सामान। बड़े मियाँ वहीं बैठ गए थे और जो बातें हो रही थीं उसे कोई समझ पाता तो लिखे। लम्बे उलझे अनालाप। कभी एक शब्द, न अग्गड़ न पिच्छड़। हरे काठ के उस लाहौरी घर में जमा लोगों की तरह शब्द भी पता नहीं कौन अन्दर के कौन बाहर से?

गुरदासपुर...होशियारपुर...लायलपुर...डुसका...डुसका लाहौर से 100 किलोमीटर पे...हम मौजा कोट खलीफा में...बहन राजपुरा पटियाला में...हाँ हाँ शेखूपुरा खूब याद है...गुजरांवाला रोज़ फोन पे बात...शकरगढ़ तबाह...ये जी सूतरमंडी में बैठता है जी...जीते रहो पुत्तर...सबीहा की न पूछो ये कमीज़ उसी की भेजी है इसी में मरूँगा...कटरा मुंशियाँ लुधियाने चले गए...भय्याजी ख़ालू मामू डाक्टर चाचा गए...हमारे घर आओ तुम्हारा घर है रहो रब्ब राखे ये तुम्हारी धिया...आओ।

बेटी के सर पे हाथ धरे फिरे ठहरे।

अब जो जहाँ है। सौ साला बोले।

माँ हँसते हुए पूछने लगी तुम लोग रो क्यों रहे हो?

जी उनकी बेटी को गुस्सा आ गया था।

किस पर?

फ़ोन पर बात हो रही थी राहत साहब और दिल्ली में आसीन पाकिस्तानी सफ़ीर में। एक तरफ़ से तार पर ख़तरनाक ज्वालायें फुरफुराती आ रही थीं, दूसरी तरफ़ आकर मरी मरी रिरियाहट में फुस्स फूट रही थीं।

चिरौंजी पर।

मैं आपसे क्या पूछ रहा हूँ आप चिरौंजी चबा रहे हैं।

जी नहीं, वो तो हिजड़े खायेंगे।

हैं? तार से जो बिजलियाँ फूटीं कि राहत साहब को करेंट लगते लगते रह गया।

वो किसी हिजड़ों की मजलिस के लिए लायी थीं।

हिजड़े? अब हमारे सरकारी महकमों में ये बातें होंगी?

जी, उन दोनों में ये बात हो रही थी। कि अब चलिए।

हिजड़ों के पास?

जी नहीं, घर। उन्हें घर जाना था।

तो ये कहिये कि वे लौट गयीं।

जी नहीं। बेटी ने कहा घर चलेंगे वो बोलीं हाँ घर चलेंगे। बस इतना मुझे पता है।

तो इधर आ गयीं यही मतलब हुआ न? सफ़ीर जनाब इधर बैठे थे इसलिए उधर को इधर बोले।

जी नहीं वो इधर अपने घर जाने की बोल रही थीं। राहत साहब ने समझाया।

ये क्या फ़िज़ूल की बकवास लगा रखी है? उनका घर मैं जानता हूँ।

जी उनके शौहर का घर।

उनके शौहर का घर यहाँ है।

जी कहती हैं यहाँ है।

आपका दिमाग गुम हो गया है?

जी नहीं, हिन्दुस्तान से आयीं दोनों औरतें गुम हो गयी हैं।

आपको ज़िम्मा सौंपा था, आप थे कहाँ, एम्बेसेडर गरजे। मैं क्या जवाब दूँगा?

जनाब मैंने कराची की बुकिंग करायी थी, फ़्लाइट पे जाकर बिठाया। वहाँ मेरे आदमी ने उन्हें होटल पहुँचाया। फिर...

फिर? फ़ोन का तार थर्राया जैसे दिल।

जनाब मोहट्टानगर की कोई बात हुई ऐसा पता चला है। चीनी कारखाने में कोई चीफ़ इन्जिनीयर के पास जाने की बात।

कहेंगे कुछ आगे? तार तमतमाया।

हिंगलाज की भी बात हुई। कि वहाँ सागर है और सहरा।

आप अब हमें पाकिस्तान का जियौगराफ़िया सिखायेंगे।

नहीं जनाब अर्ज़ कर रहा हूँ कि...

क्या?

जनाब वीज़ा नहीं था तो हमारे आदमी ने उन्हें न जाने का मशविरा दिया। कहा रुक जाएँ वे मुझसे बात करके वीज़ा लगवा देंगे। मगर वो नहीं रुकीं।

बिना वीज़े के? तार ध्वस्त। आप जानते हैं आप क्या कह रहे हैं?

बेगम साहिबा ने कहा वो यहीं की हैं, वीज़े की बंदिश नहीं मानतीं।

आप भी नहीं मानते? तार से बिजलियाँ छूटीं।

जी नहीं ऐसा हर्गिज़ नहीं, तार मरियल झूल पड़ा। पर वे नहीं मानीं।

आपका दिमाग़ दुरुस्त है?

जी मुझे डर है आपा का कुछ...

आप सारे में ख़बर करिए तलाशिये सिन्ध का ज़र्रा ज़र्रा छानिये। मगर हंगामा न हो, ज़रा चुप कर के। आप जानते हैं यहाँ हुकूमतों की आपसी लड़ाईयों को। उन्हें ख़बर हो गयी तो बात का बतंगड़ बन जाएगा। अपने साथ साथ हमें भी डुबायेंगे। हमारे मेहमान हैं, एहतियात बरतिये। ज़रा होशियारी से ख़बर करिए और दोनों मोहतरमाओं का हुलिया भेजिए और उन्हें ढूँढ़ निकालिए पहले कि दोनों मुल्कों में बात आग पकड़े कि वो बिना वीज़ा घूम रही हैं।

जी जी जनाब मैं खुद देखूँगा, किसी को पता न चले, हमें पता चल जाए, कहाँ गयीं वो, सहरा में, दरिया में, किस मुल्क में।

क्या बकते हैं आप? आप जानते हैं यही इन दोनों मुल्कों की परेशानी है कि दोनों आज तक नहीं जान पाए हैं कि किसको कहाँ रहने का हक़ है, कौन कहाँ का है, और कानून किसकी तरफ़ है?

किसी ने कहा मिठी में देखी गयीं। किसी ने कि मीरपुर ख़ास में झलक मिली। मगर औरतें गायब रहीं।

होते होते ये एॅलर्ट जारी हुआ और शायद बात उतनी छिपी न रही जितना चाहा गया था, कि थर में सीमापार की दो औरतें, एक छोटी, एक बड़ी, का कोई सुराग़ मिले तो सबसे नज़दीकी पुलिस स्टेशन में इत्तिला दी जाए।

सबसे ठोस ख़बर जो आई वो थी कि किसी प्राइवेट गड्डी का पंक्चर यहाँ ठीक कराया था और दो औरतें गाड़ी से उतर दूर हिलती दो सायों सी खड़ी हुईं और कुछ तक़रार में मुब्तिला थीं।

पर मुझे क्या पता था इनकी तलाश हो रही है, गराज वाले लौंडे ने कहा। चेहरे पे लिखा थोड़े था कि गैरमुल्की हैं। मेरी बड़ी फूफी की तरह लग भी रही थीं।

दोनों?

नहीं, तीनों।

तीन कहाँ से आ गयीं?

दोनों हिन्दुस्तानी और मेरी फूफी, तीन हुईं कि नहीं?

गधा कहीं का, फूफी फूफी नहीं लगेंगी?
तीनों फूफी लग रही थीं, ये ही तो मैं बता रहा हूँ।
बता दिया। अब ये बताओ क्या बात कर रही थीं?
मुझे क्या मालूम जनाब। और लड़का अपने मैले कुचैले कपड़े झाड़ कर रूठ के चुप हो गया। एक तो गवाही दे रहा हूँ, ऊपर से डाँट। तभी सरकार वालों से सब कतराते हैं।
पास खड़े मिस्त्री ने कहा आप उन्हें तलाश रहे हैं? मैंने सुना उन्हें बात करते।
तुमने कैसे सुना?
जनाब मैं वहाँ झाड़ी में ज़रूरत से गया था।
जिधर वो जाकर खड़ी हो गयीं?
जी मैं पहले से वहीं था। बीच में तो आ नहीं सकता था, वहीं बैठा रहा।
ठीक, बताओ क्या सुना।
जी, वो ऊनी चादर ओढ़े थीं। ठंड थी। माँ बेटी लग रही थीं। मैंने देखा कि...
क्या सुना पूछ रहा हूँ, क्या देखा नहीं।
हुज़ूर। जी वो किसी को तलाश रही थीं। कुछ नाम ले रही थीं। नन्हे। या छोटे। कौसर। शौहर। अनवर। बहस कर रही थीं।
बहस? जासूसी करने आये ने पूछा।
मिस्त्री जीन्स पहने था, एक पाँयचा घुटने तक मोड़ के खासा हीरो लग रहा था। पता चला था भी फ़िल्मों का ज़बरदस्त शौक़ीन और अमिताभ बच्चन का मुरीद।
हुज़ूर मुझे तो उठने की पड़ी थी तो ये सब कब सोच पाया कि इनके कहे पर खास तवज्जो दूँ? अन्दाज़ होता कि आप पूछेंगे तो लिख लेता। ये देखिये जेब में कॉपी रखता हूँ। जी, उसने दांत निपोरे, फ़िल्मी नग़मों के बोल उतारता हूँ और गुनगुना लेता हूँ, तभी सब कहते हैं इम्तिआज़ ख़ुशमिज़ाज बंदा है। पन्ना खोला और शुरू किया कि ये है अमिताभ बच्चन का साला मैं तो साहब बन गया।
दिलीप कुमार।
जी?
ये किसने गाया है?
गाया तो शायद रफ़ी या किशोर, कुछ अनिश्चित हो गया मिस्त्री।
दिलीप कुमार ने।
वो गाते थे?
फ़िल्म में, किसी ने समझाया।
ओ, वो समझा। ओ, सिर खुजाया। ओ हाँ, मुँह से ग़लत निकल गया जी। मेरा मतलब था खइ के पान बनारस वाला।
बड़े अधिकारी ने अपने मातहत को जिन आँखों से घूरा वो जल्दी से तना और मिस्त्री से कड़ाई से बोला कि हम यहाँ उनके मुल्क की फ़िल्मों पे सबक सीखने नहीं आये हैं, उनकी खवातीन को पकड़ने आये हैं। वो तो नहीं गा रही थीं ये गाने? तो फिर?
नहीं जी। वो गुस्से में थीं।

मायने?

वो गुस्सा कर रही थीं हम कब तक ऐसे दर दर या शायद थर थर या क्या डर डर भटकेंगे? और चिल्लायीं, शायद बेटी अपनी अम्मी पर, कि आप तो ये ही भूल गयीं कि आप शत्रौंजी या कलौंजी या चिरौंजी देने आई हैं। जी जनाब ज़ाहिर है वो कुछ देने आई थीं। वो दे चुकी, राहत भिजवा चुके छोटी सी अम्मी ने कहा। मिस्त्री ने ज़रा ऊँची आवाज़ करके माँ का जवाब अभिनय करके सुनाया।

और? अफ़सरान अटकलें लगा रहे थे।

बस यही। मिस्त्री को फ़िल्मों से भी कुछ याद नहीं आया जो यहाँ चला दे। कि आप भूल रही हैं? मुझे याद है। आप ग़लत कह रही हैं। नहीं, ठीक कह रहीं हूँ। फिर दोनों गाड़ी में बैठ कर चली गयीं। गाड़ी का नम्बर नहीं पढ़ा, माफ़ करना, साहब, मैं निकलने की जल्दी में था।

पूछपरख को आये जन को मिस्त्री और उसकी झाड़ी में दिलचस्पी नहीं थी। वो निकल पाया या उसी में रह गया उन्हें नहीं जानना था। उन्हें दो विदेशी औरतें जो लगतीं यहीं की थीं को खोज निकालना था और बिना शोरगुल के।

पर धुआँ तो ज़रा सी आगी भी फेंकती है। कुछ महकमों में धुआँ पहुँच गया और ऐसी चल गयी कि दो औरतें किसी सरवर अनवर शौहर कौसर छोटे बड़े को खोजने के बहाने बिना वीज़ा हमारे मुल्क में घुस आई हैं और आजकल मासूम दीखती लड़कियाँ बच्चियाँ और बुढ्ढियाँ ही मुखबिरी और दहशतगर्दी को अंजाम देती हैं। ये रोज़ी, ये शत्रौंजी-कलौंजी, ये दर थर, कोड हो सकते हैं, किसी खतरनाक सियासी ऑपरेशन के।

आगे कुछ नहीं मिला। बस थर और सन्नाटा।

थर जो रेगिस्तान है। सन्नाटा जो उसका स्वर है। शोर और भीड़ से खाली, गूँज से भरा। खाली माने निजात। रेगिस्तान माने रेत। रात यूँ दिल में फ़ैज़ के ख़याल आया। जैसे सहराओं में हौले से चले बाद-ए-नसीम, जैसे वीराने में चुपके से बहार आ जाए, जैसे बीमार को बेवजह क़रार आ जाए।

रात थी। पूरा चाँद भी। चांदनी में चमकती रेत। रेत कभी समुन्दर था। रेत पर कांटेदार झाड़ों के साए थे। रेत पर ऊँचे ऊँचे रेतीले टीले थे। कोई कोई चार सौ कि पाँच सौ फुट ऊँचे। टीले खिसकते थे। झाड़ों की जड़ें और उलझी डंडियाँ रेत से बाहर झाँकती जैसे चांदनी में लोटने को आतुर।

खूबसूरत नज़ारा, चुपचाप समां, दो औरतें अपनी दुनिया में और कोई गवाह नहीं, इतिहासकार नहीं, कि देखें और दर्ज करें क्या हो रहा है।

पर।

ये दर्ज होने की बात। जब रेत में ऐसी सोहबतें हों तो इतिहासकार और गवाह की दरकार नहीं होती। तितली उड़ आती है कहानी सुनने। रेत कण जोड़ती है, नसीम चलती है हौले हौले, चाँद सीसे पे चांदनी की तरह जलता बुझता है, औरत रुकने को कहती है और गाड़ी से उतरकर रेतीला साया बनके बैठ जाती है।

वो छड़ी पे दोनों हाथ बाँध के रेगिस्तान में बैठी है और छड़ी पे बनी एक तितली, देखो, धीरे से उड़ के ऊपर मूठ पर बैठ गयी है। हल्के से, औरत की उँगलियों के बीच, इतनी हल्की कि वहम सी उसकी छुअन।

तितली काली है, उसके फैले पंख पर सफ़ेद बिंदियों की छींट है, छींट को छितराती सफ़ेद धारियों का फेरा है। चुप फर फर खोले वो औरत को तकती है और उसकी कहानी सुनती है।

औरत सपाट स्वर में सुनाती है। तितली सुनती है जैसे कान नहीं जान की ज़रूरत होती है सुनने को और इसलिए हर बीच में पर फर फर कर देती है।

आँख से नहीं दीखता कि हर फर फर पे रेत का ज़र्रा उड़ता है।

एकदम निश्चल बैठी औरत के मुँह से निकलते शब्द। छड़ी की मूठ पर उसकी उँगलियाँ। उनके बीच एक तितली। चारों ओर थर।

तितली चुपचाप सुन रही है औरत की कहानी।

वो सुनाती है। फिर रोक के फिर सुनाती है।

पहली कहानी — 'कहानियाँ'।

फुल्का तवे पर, चूल्हा जलता। वो छत पर। धड़धड़। उसका पीछा करते पैर। ताया ताया। वो नाने को ताया बोलती। पट्टा बाँधे मर्द। उसे दबोचा। पकड़ लिया। खींचा। ताया। फुल्का। रसोई से धुआँ। घर जलेगा...

वो जैसे बोरी। नकाबपोश पट्टाधारी उसे घसीटता हुआ। घसीट घसीट। ठक ठक गली में घसिटती। घर छूटता।

मोहल्ले में आग। धुआँ। खांसी। गली में। घसीट घसीट। एक जूती टूट गयी। नयी थी जूती। अँगूठे पे दबती। रोज़ पहनो। ढीली हो जाए। एक घंटे। दो। अँगूठे का नाख़ून मांस में घुसकर बढ़ता हुआ। काटने का इरादा था, मांस से धीरे से बाहर खींच कर।

आसमान। चक्कर। परिंदे।

खाने का डब्बा सड़क पर खुला फैला। सालन में वो सनती गयी। मिर्च मसाला ज़ख़्मी नाख़ून में।

घर लपटों के पीछे। काले साए आग में नाचते। बाहर कूदते। कोई निकला। उठा के वापस झोंक दिया। तंदूर में आलू।

फुप्फी। फुप्फी फुप्फी। जद्दन फुप्फी की दुकान। सबकी जद्दन फुप्फी। बचाओ फुप्फी, फुल्का छोड़ आई। हाय मैं घर जला आई। राख। फुप्फी। ताया ताया। चिल्लाई। खांसी। आँखें मिचमिचाती।

बाल फँस गए। नुकीला। खोपड़ी उखड़े। नकाबपोश ने झटका। खींचा। खून।

कुत्ता। दुम दबाये। किंकियाता।

जले कटे तनों से टकराती। मुर्दे। या ज़िन्दा गठरियाँ।

अनवर अनवर। अनवर लायलपुर सिटी गए थे। घर देखने। फिर उसे ले जाना था। तब तक उसे उसके नानके छोड़ गए।

शादी के पहले भी लायलपुर। एक बार। कॉलेज से। टेंट में सिनेमा। स्टूल, बेंच। माया की नगरी। फ़िल्म।

मारो मारो मारो। निक्कियाँ जिन्दान।

आवाजें।

हाय भाबो जी, हाय भापाजी।

जूते चप्पल हांफते भागते।

उलटाया तांगा। घोड़ा था?

किसी की बाली क्या? ऐनक। गमला। खोपड़ी। जैसे तरबूज दीवार पे दे मारा हो। भेजा और एक आँख स्प्रिंग पे उछल के बाहर।

घिसटती गयी।

उठाया। पटका। ट्रक। या क्या। एक कि दो और पट्टाधारी। ट्रक में लड़कियाँ। उसी जैसी। सोलह। सत्रह। उन्नीस। रोती। बिसूरती। एक पर एक। भेड़ बकरियाँ। कीड़ियाँ। उसने हाथ काटा। पट्टाधारी ने चांटा लगाया। आँखें डरावनी। डोरे लाल। माथे पर गूमड़। आग में उसे घसीटते लाने में जल गया हो, ऐसा भुसा रंग।

अँधेरा। ऊपर टाट डाल दिया। उन्हें नीचे गाड़ दिया। लड़कियाँ चीखतीं। नोचतीं। टाट में धँसीं। अँधेरा। टाट पर भारी सामान लद्द फद्द गिरे। लड़कियाँ नीचे। घुटतीं, दबतीं। मरतीं। बेहोश। कोई रो रही। कोई चुप। अंधी पड़ीं। वो भी।

शोर। कि चुप।

याद। कि अन्दाज़।

गाड़ी रुकी। पट्टे वालों की कूद फांद। लड़कियों को खींच खींच नीचे। रोती। चुप। मैंने कुछ नहीं किया। छोड़ दो। रब्बा। कहाँ ले जा रहे हो मुझे। अम्मा। बाप्पा। भाईजान? आप? ख़ाला आपकी माफ़ नहीं करेगी।

कब्रिस्तान। एक कब्र खुली हुई। नयी। या टूटी। वो गिर पड़ी। लेट रही। भाग जाएगी। गूमड़-धारी पीछे कूदा। खींचा। फेंका। दर्द। याद नहीं।

हाँ दर्द। याद आया। पाँव का नाख़ून। कहाँ काट पायी। अन्दर को उगता हुआ। मांस को काटता। कैसे निकालती? पकने लगा।

लात मारी। दरवाज़ा खुला। कोठरी। कब्रिस्तान में। लड़कियाँ ठुँसीं। चुप। धमकाया। खचाखच। जैसे मवेशी। दरवाज़ा बंद। अँधेरा। रोना। चुप रहना। आँसू। खून। पसीना। पेशाब। बदबू। रही होगी, याद नहीं।

दिन कि रात? कितने दिन कितनी रात? किसे शऊर?

अबके खुली ट्रक में लादा। वो खड़ी हुई। ख़ाली सड़क। कहीं कुआँ

नहीं कि कूद जाये। पट्टा बाँधे दो मर्द पीछे। नीचे, उसे ठोंक के बिठला दिया। गिर पड़ी। कहाँ ले जाएँगे? क्या करेंगे हमारे साथ? अनवर। कहाँ ढूँढ़ोगे? वीराना।

सूरज सफ़ेद। कुआँ कुआँ, उसके दिल की हूक। मरना चाह से नहीं आता। बता के भी नहीं।

दो शलवार पहनो। लड़कियों को मैम की हिदायत थी। डबल शलवार छूट गयी। घर में।

जब घर में घुस आये तो क्या एक क्या दो शलवार?

फुल्का जल गया। घर में आग। मैं लगा आई। वो रोई। कुआँ कहीं नहीं।

कितने दिन? कितनी रात? कहीं बंद। फिर ट्रक में लदे। कहीं बंद। फिर ट्रक में लदे। वही ट्रक या दूसरा। पता नहीं। वही लड़कियाँ पता नहीं। कितनी? ढेरों।

एक बार वो तांगे पर। गूमड़ वाले और तांगेवाले के पाँव के नीचे दबी, उस पर कुछ ढका। और लड़कियां? पता नहीं।

आधा टोस्ट खाया। कुछ दाना पानी कभी। कभी सिर्फ़ दाना। कभी सिर्फ़ पानी। कुछ खजूर। कुछ चना। चार आने का कीमा, एक आने की रोटी। ज़हर मिल जाए।

बलवों की सुनी। पनाहगीर की सुनी। सोचना बंद। बोलना बंद। अनवर। ताया। कुआँ दिखे तो दौड़ जाऊँगी।

लड़कियाँ चुप रहने लगीं। कोई बोली हमसे धंधा करवाएँगे। कोई बोली हमें दबोचेंगे। फिर चुप। हाथ पकड़ के बैठी रहें। कभी अलग अलग पड़ी रहें।

गाड़ी बदल दी। मिलिट्री ट्रक, केंकड़ा। उसमें। ठुंसे। शायद नयी लड़कियाँ भी। सब लड़कियाँ। लड़कियाँ ही क्यों? लड़कियों का खोटा नसीब।

गाय भैंस के बाड़े में। जानवरों के संग। भूसा। गोबर। रम्भाना।

एक बार किसी पुराने किले खँडहर में। कहीं ऊँचे से कूद के जान दे दूँ।

कस के ब्रेक लगा। लड़कियाँ एक पर एक गिरीं। ट्रक रुकी। सबको लाइन से उतारा। अन्दर। और लड़कियाँ। सब बंद। बंदी। कोई कॉन्वेंट। उजड़ा। बाथरूम। पहली बार। डपटा। साबुन कपड़े दिए। नहाओ। नहायीं।

हलाल के लिए बकरों की ख़ातिरदारी। ज़हर क्यों नहीं देते? हे भगवान। हाय रब्बा। लड़कियाँ हाथ पकड़े, घेरा बनाये, चुप पड़ी हुई।

उसने पुराने कुरते की बांह फाड़ी। पट्टी बना के अँगूठे के घाव पे बाँधा। लंगड़ाती।

पहली बार बड़ी जगह। बड़ा क़ैदखाना। वो उजड़े कमरों में फिरती। लंगड़ाती। एक कमरे में मूर्ति। ऐसी तो अजायबघर में देखी। अनवर के संग। हूबहू। मेरा अनवर। अनवर ने रख दी हो। कि हौसला रखो। अनवर की निशानी। छोटी। पांच इंची। या कम। वही बूढ़े बुद्ध। अनवर। कहाँ हो? तुम्हे कैसे पता चलेगा मैं यहाँ?

उसने मूर्ति उठा ली। सीने से चिपका ली। सोते जागते उसे लिये। मरने की क्या ज़रूरत? मर चुकी है। पर मूर्ति थामे। हम दोनों का क्रियाकर्म साथ। अब मैं जहाँ वहाँ ये। ये कोई साइन। ये अनवर। ये मेरे मरे दिल का सुकून। ये मेरे दयालु पत्थरदिल।

औरत रुक गयी थी। तितली वापस छड़ी में सरक गयी। कराची से चलने बाद से गाड़ी वाले पूछते खोजते चलते रहे। रेगिस्तान देख कर औरत ने फिर गाड़ी रुकवा दी। उसी तरह बैठ गयी। मूठ पे उँगलियाँ लपेटे। उसका मूड देखकर तितली सरकती आई और उसकी दो उँगलियों के बीच वहम सी बैठ गयी। पर अबके तितली कत्थई थी और काली धारियों में रंग फैलाये। उसके दोनों तरफ़ दो बिंदु आँख की तरह खुले और उसके पंखों के उठान कान की तरह खड़े।

औरत दूसरी कहानी कहने लगी और दूसरी तितली आँख खोले, कान उठाये, उसके आगे। सुने, देखे।

दूसरी कहानी — 'मूर्ति और वो लड़की'।

कहीं पर गोलियाँ चलीं। किसी भारी गाड़ी की आवाज़ आई। ट्रक। पदचाप। बहस। ऊँचे स्वर। पीछे का फाटक शोर से खुला। लड़कियाँ दुबक गयीं। एक दूसरे का हाथ पकड़ के दीवार से सट कर बैठ गयीं। उसने मूर्ति को दुपट्टे में छिपाया, सीने से चिपकाया। अनवर अनवर हौका उठा।

कौन थे? बहसते, सारी हिन्दुआनियाँ आपकी? ये तो हम पर ज़ुल्म। ठहाके फूटे। दो चार इधर करो, मेहरबानों। और ठहाके लगे। यारों बड़ी फ़ुर्सत की जगह पा गए हो। अमां कुछ लम्हें हमें भी गुज़ारने दो। ठट्ठा।

फिर चुप। फिर फाटक बंद होने का शोर। फिर ट्रक के टायर बरजते। ट्रक चली गयी।

क्या होगा? क्या हो रहा है? हम मर गए हैं। नहीं, ये मूर्ति सँभाल गयी है। ये इशारा है। पहले पहल अनवर के संग ऐसी मूर्ति देखी थी। अनवर को एहसास हो जाएगा। हम बच जाएँगे।

वो रोई कि दूसरी लड़कियाँ? हाथ बाँध के एक लाइन से हम बैठी
रहतीं।

वो खुल्लमखुल्ला मूर्ति चिपकाने लगी। घर याद आता तो बुद्ध को माथे लगाती। मौत का सन्नाटा लगता तो बुद्ध को नमन करती।

कब तक। पता नहीं कब तक। घड़ी रेडियो कुछ नहीं।

बहस ठहाकों के बाद उस पुरानी इमारत से हटा दिया। हवस इतनी कि इस बँटवारे के लिए राज़ी नहीं। हरम में पटकेंगे। किसी रईस को बेचेंगे।

ले जा रहे हैं वहीं।

शहर से दूर। ऐसी फज़ा कि कभी आबादी न जानी हो।

जंगल में रोका। वहाँ चूल्हा जलाया, लड़कियों को आटा दिया कि रोटी बनाओ। जो कहें करो नहीं तो जान से जाओगी।

जान बचानी है कि आन, दिल बियाबान।

चिमटा तवा कुछ नहीं, आटे की लोइयाँ आग में फेंकीं, जलने के पहले टहनी से बाहर लुढ़काईं, बलवाई दरिंदों ने भी वही खायीं।

दो थे कि तीन? माथे पे गूमड़ वाला था।

आपस में फुसफुसाते। आग। काफ़िलों पर हमले। कराची पिंडी

लाहौर। टंडोजाम उमरकोट मुनाबाओ। थरपारकर खिपरो टंडो अल्हयार

खदरी। कहाँ ले जा रहे हैं हमें? बाज़ार में खड़ा करने। मूर्ति। मेरी मूर्ति। मेरे पत्थरदिल।

पहिया फँस गया। गाड़ी बढ़ नहीं रही।

स्टीयरिंग जल्दी जल्दी घुमाओ। एक चिल्लाया।

तुम हटो, कुछ खलबली मची। थर में गड्डी चलाना सबके बस की बात नहीं।

थर में। किधर ले जा रहे हैं हमें?

हवा। झन्नाटेदार। तारपोलिन फडफ़ड़ फड़ के नीचे लड़कियाँ। लड़कियाँ अब रोती बिसूरती भी तो लगता आदतन। सब मरी हुई। हाथ थामे बैठी। पर मेरी मूर्ति मेरे पास।

हवा खाल छीलती। तारपोलिन उड़ता तो हम गिरने गिरने को।

इंजन का शोर और हवा।

ट्रक फिर रुक गयी। टायर में कांटा चुभ गया। पंक्चर। लम्बा वक्फ़ा। हवा भरी जा रही है। जल्दी भरो यार, मग़रिब हो रही है।

उसने उन्हें नमाज़ पढ़ते देखा। दो ही थे शायद। या क्या तीन? उनके दोहर का शोर हवा में और वे बुत बने नमाज़ में।

एक लड़की को दस्त लग गए थे। मिलकर सबने ट्रक पे हाथ पीटे। तारपोलिन के नीचे से। जारी रखा। चिल्लायीं। खोलो। हाय। खोलो। पेट।

तारपोलिन खोला तो हमले की तरह हवा अन्दर घुसी। रेगिस्तान की हवा। बहुत सी गिर पड़ीं।

दिन था। धूप थी। हवा खतरनाक। सीधा खड़ा न हुआ जाए। एक दूसरे को कस के थामे कि गिरें नहीं। हवा रेत को हमारे बदन में किरिचों की माफ़िक चुभाती। आँखों में कंकड़ की बौछार। खरोंचों से खून की धार। रेत की रगड़। फडफ़ड़ाती लड़कियाँ। तूफ़ानी हवा। रेत रेत रेत।

फिर ट्रक दौड़ी। फिर उतारी गयीं। कोई स्टेशन। खोखरापार? 1870 में बना, लिखा हुआ। छोटा सा। ख़ाली। रेल की पटरी। प्लेटफार्म में सबको उतार के बैठा दिया। किसी ट्रेन का इंतज़ार। उसमें बैठ के किस हाट में भेजने की तैयारी? लड़की सोचे तो क्या सोचे अगर सोचे? उसके पास क्या बचता है सोचने को?

मैं। मेरी मूर्ति।

दो थे कि तीन? आगे पीछे हमारे। चील निगाह। कि कोई बोटी निकल न भागे।

कितनी देर गठरियाँ बनीं हम बैठीं। घड़ी कहाँ कि देखें? हर चीज़ बेमानी। हर चीज़ रुकी हुई। रोना चीखना चुप रहना बोलना सब बेमानी। चूहा दौड़ा, चीख निकली, कोई हँस पड़ी, कोई उस पर।

दूर ऊँटों का क़ाफ़िला दिखा।

एक पट्टावाला हाँफता आया — निकलो, उन्हें पता चल गया है।

अफ़रातफ़री।

इधर आ रहे हैं। भागो भागो।

लड़कियों ने कहा कि पट्टेवालों ने? गूमड़ ने। ट्रेन रोकेंगे। निकलो यहाँ से।

दूर से आता शोर। हवा। दिल।

बिना समझे सब भागने लगे। ये भी नहीं मन में आया कि इनसे भागना चाहिए या जो आ रहे हैं उनसे? बस भागे।

एक लॉरी कहीं खड़ी मिली। खदेड़ के उन्हें उस पर लादा गया। उठा के फेंका उस पर। वो बुरी तरह घबरायी। उठी कि कूदे। मेरी मूर्ति? कहाँ गिर गयी? किसी ने कस के वापिस लॉरी पे फेंक दिया। मूर्ति? ऐसा हौला मन से उठा कि अब तो सच गयी।

लॉरी। फ़ुल स्पीड। तारपोलिन नहीं। हड़बड़ाई हवा। इतनी तेज़, इतना चीखती, गिराती पड़ाती। मैं, मूर्ति के बिना, भागती ट्रक पे, हवा से नहीं दिल की धड़धड़ से चीखती गिरती पड़ती।

किसी का हाथ उसके हाथ में। डर के मारे। छोटी लड़की। ग्यारह। बारह साल की। चेहरा भयभीत।

झटके से लॉरी रुकी। उतरो उतरो। कूद जाओ।

चीख पुकार पैर हाथ मार।

ये लो ये लो ये लो। पट्टेवाले सीटियाँ बाँटने लगे। जैसी गुब्बारे वाले के पास मिलती हैं। इन्हें बजाना।

भागो। भागीं। कोई इधर, कोई उधर।

इधर नहीं। उधर। धक्का दिया। रेत की तरफ़।

अलग अलग भागो। साथ दिख जाओगी, पकड़ी जाओगी। सीटी बजाना। एक दूसरे की ख़बर पाने। कि खो न जाओ।

जाओ। जल्दी। अब हम कुछ नहीं कर सकते। सीटी बजाना कि भटक न जाओ। उधर पहुँच जाओ तब साथ हो जाना। ख़ैर से जाओ।

वो लम्हा ऐसा नहीं कि हम समझते ये हमारे संग क्या कर रहे हैं।

एक पट्टे वाला उसकी तरफ़ आया। पट्टा नहीं था। गूमड़ था। चेहरा नहीं याद। उसके हाथ में मूर्ति। मेरी।

लो बाजी। लोग पागल हो गए हैं। अभी भाग जाओ। फिर लौट आना। जल्दी। अपने घर।

बाजी, छोटी लड़की सिसकी। जो उसका हाथ पकड़े थी। जैसे कभी नहीं छोड़ेगी। दूसरे हाथ में मेरी मूर्ति। बच्ची को खींचती हुई मैं रेत पर भागी। वो बच्ची रोज़ी थी।

न जाने कब ढेरों तितलियाँ छड़ी पे हाथ टिकाये कहानी कहती औरत की उँगलियों पे चढ़ आई थीं। जिन्हें जगह नहीं मिली, वे रेत पर उसके चारों तरफ़ पंख उठाये तल्लीन बैठ गयीं। बोलना ज़रूरी नहीं था — उनके परों की फरफर कह रही थी ओहो ऐसे बुरे वक्त के अच्छे लोग, लड़कियों को अपनी नस्ल के वहशियों से बचाते। सुशान्त फरफर में उनमें से कुछ एक दूसरे के परों पे पर छुआ देतीं कि देखो कभी भी, कितना भी बुरा वक्त क्यों न हो, अच्छाई की उम्मीद मत छोड़ो। उसी को अपने पंखों में रचाओ बसाओ, उसी से अपने पंखों में उड़ान भरो।

तितलियाँ जानती थीं वो चंद दिनों की मेहमान हैं, रेत पर चांदनी की तरह बिखरी। छह सात दिन में पूरी हो जाएँगी। हद से हद कोई कर गयी तो बारह पार कर लेगी।

पर वो ये भी जानती थीं कि दुनिया में भरोसा-संदेस उन्हीं के द्वारा फैलता है और पीढ़ी दर पीढ़ी फैलता है। जैसे वो फूलों का पराग लेते हुए पुष्प-रेणु उठा लेती हैं कि दूसरी जगहों में उनके मार्फ़त पहुँचे, वहाँ भी अंकुराए और वो फूल वहाँ भी खिले और उसकी सुगंध फैले, ठीक वही वो कहानियाँ सुनके करती हैं — उसका रस लेते हुए उसके रेणु उठा लेती हैं और उन्हें रेत में छितराती हैं कि उनके जाने के बाद भी वो उठें खिलें सुगंध फैलाएँ। हम खुद मर गयीं तो क्या, हमारा हरकारा-पन कभी न मरेगा।

एक तितली काफ़ी है दूर फूल खिलाने को, यहाँ तो सारी आ बैठी थीं। अब कहानियाँ दबी नहीं रह सकती थीं।

तो फिर? वे घेरे में बैठी रहीं, औरत को प्रश्नसूचक परों से निहारतीं।

तीसरी कहानी — 'रेत समुंदर'।

इतनी तेज़ हवा कि जैसे तूफ़ानी समुन्दर में जहाज़ और उस पर चढ़े लोग कभी इधर को फिसलते जाएँ, कभी उधर को लुढ़कते आयें। हम इधर गिरें उधर गिरें।

अलग अलग भागो।

हम इधर कूदे उधर कूदे। जैसे डूबती नाव से। पानी नहीं, रेत के संमदर में। जो सामने से बढ़ा आ रहा था और जिसकी तरफ़ हम जान बचाने दौड़ रहे थे। रेत बवंडर।

हम अलग अलग। बच्ची और उसका हाथ थामे मैं। हमारे पास सीटियाँ कि बजाओ और एक दूजे को अपने कहीं करीब होने का ढाढ़स दो। हाथ पाँव मार रहे थे तैर रहे थे रेत समन्दर में। सीटियाँ बजा देते। सीटियाँ जैसे हवा में खोखली गूँजती पुकार। या कोई रेत का परिंदा। या हमारा भ्रम।

हवा थी और रेत की किरचें ऐसे बरसती हुई जैसे ज़ोरों की बारिश।

कभी न सोच सकोगे जिसने न देखा होगा, दूर सामने से आसमान तक उठता रेत बवंडर, जैसे समुद्र में बढ़ता त्सुनामी। हमारी तरफ़ आता हुआ। ऊँची पीली काली दीवार

हमपर टूटने वाली है। लहर जो विकराल होती जा रही है, ऊँची चौड़ी विशाल गरजती हमारी तरफ़ लपकती।

पलट के भागें। मगर कैसे? उधर से पगलाई भीड़ आ रही है। जिसे ख़बर मिल गयी है कि उसके अपने कुछ बन्दों ने जगह जगह से लड़कियों को निकाल कर छिपा दिया है कि वे उनके वहशी हाथों में न पड़ें। वे आग बबूला हैं। इधर ही आ रहे हैं।

पीछे आग। सामने बवंडर। उसमें सच्चे या झुट्ठे आकार। रेत में दौड़ते खूंख़ार जीवों के अक्स। पूरी फ़ौज। हमारी तरफ़ चौकड़ियाँ लगाती आ

रही है। निगल लेगी। सरपट दौड़ते जानवर। गरजते हुंकारते धुआँ उगलते चिंघाड़ते।

इतनी हवा। इतनी रेत। हम उसमें तैर रही थीं। हाथ पैर मारतीं, किसी तरह अपने को डूबने से निकाले रखने में लगीं। बच्ची न छूट जाए, मूर्ति न बह जाए, मैं न डूब जाऊँ। रेतीली लहरों को पानी की तरह काटते बाज़ू। पानी ज़लज़ला।

तैरना नहीं आता था। साँस फूल रही थी। रेत फेफड़ों को काट रही थी। दम घुट रहा था। हम रेत रेत। हम डूब डूब। नाक में रेत मुँह में रेत। आँख में कान में रेत। साँस रोक के तैरीं। मुँह फक से खुल गया। साँस टूटती हुई, रेत भरती हुई, गला रेतता हुआ, साँस चोटों की तरह निकल पड़ती। बस किसी तरह हाथ पाँव चलाती रहो, हाथ में बच्ची का हाथ खींचती रहो, ये मान के, मना के, कि बच्ची है अभी तक उस हाथ से लगी, और मूर्ति, है मेरी मूर्ति, है न साथ, चिपकी, उसे मत गिरने, बहने, छिटक जाने दो, आँखें बंद कर लो, आगे, बस आगे हो, दूसरी लड़कियाँ कहाँ हैं, सीटी बजा दी, मुझे नहीं सुनाई पड़ रही, लहरों के नाद में, बलवाई न सुन लें, ये शोर, हा, उनका तो नहीं, ये सीटी बजी, ओह, किसका जिस्म फहर गया सामने, जैसे पानी में लाश फिर गयी और गायब, ऐसे वे बढ़ीं, मैं भी।

सामने से उन्हें निगलने आती दैत्य लहर। उसमें जबड़े फाड़े जानवरों का समूह। हम भागते हुए, उसी की तरफ़।

और फिर हम टकराए। भीषण टक्कर। पीली आंधी की दीवार हमपर टूट गयी। पूरा सूरज ढक गया। ब्रह्मांड-फाड़ शोर हुआ। समुन्दर समुन्दर हर तरफ़।

उस भीमकाय लहर में हम फूट गए। हमारे फूटे टुकड़े भंवराने लगे। सूरज गायब। रेत और अँधेरा मिल गए। हम लड़कियों के हाथ पाँव पानी में परेशान मछलियों पत्तियों टहनियों की तरह उभरते मिटते। जैसे समुद्र के तल में अक्स। अधखाया तन किसी का। या क्या? कुछ लहराया। अलग हुई बाँह किसी की। या सांप। हाय, आँतें तल पर बह आई हैं? और ये कोई ऋषि समाधि में बैठा? मेरी मूर्ति की तरह। पर ऋषि का शीष कटा हुआ। धड़-समाधि।

सब लड़कियाँ कहाँ हैं? हम अकेली रह गयीं क्या? सीटी। इस गर्जन में। फिर भी बजाओ। कोई है? सुनती हो? मुँह में रेत। फिर भी बजायी।

शायद उधर से, बाजी। बच्ची बोली। सच सुनाई पड़ी। सीटी के जवाब में सीटी।

शायद तूफ़ान कम तूफ़ानी हो गया। शायद सीटियाँ बज रही थीं। लड़कियाँ डूबने से बचने को सीटी बजा रहीं थीं। सीटी। फिर एक सीटी। एक दूसरे का साथ टोहने। एक दूसरे को पास बुलाने।

फीईईई फीईईई...।

फिर सीटी धीमी हो जातीं। और धीमी। जैसे कोई मरती बजा रही है, मर रही है, मरती जाती है, बजती जाती है। हर सीटी पे साँस डूबी, और डूबी, डूब गयी।

रेत समुद्र में लड़कियाँ तैरती रहीं। पीली रेतीली लहरों में गिरती सँभलती। रुक रुक के सीटी बजातीं। धीरे धीरे उनके तन जवाब देते गए। एक एक करके वे डूबने लगीं। एक एक कर के सीटी बंद होने लगी। एक एक करके साये डूब गए, सीटी बंद हो गयी। चुप।

बेआवाज़ हवा। तितलियाँ फिर छड़ी में लौट चलीं और माँ की उँगलियों के बीच बैठी एक तितली-वहम भी सो रही। कुछ सोते में सुनने के लिए छोड़। स्वप्न, दु:स्वप्न, लोक की उसाँसें, जो कहानी को उठा देती हैं और फिर वो शान्त की तरह तितली के चारों ओर बिछ जाती है।

तितली सो रही थी और कहानी उसके नीचे बिछी उसके मन में फर फर फैलने लगी।

चौथी कहानी — ‘डूबों का होना।’

होश आया तो वे एक कंटीली झाड़ में उलझे पड़े थे। वो, बच्ची, मूर्ति। झाड़ ने अटका न लिया होता तो ठीक सामने एक टोबा था, उसमें गिर पड़े होते और रेत नहीं पानी में डूब चुके होते।

सूरज मर गया था। अँधेरे के पहले की बेला थी। पास कुछ झोपड़ियाँ, कनक के खेत। ऐसा उसे याद आ रहा है। दूर दूर तक कोई नहीं।

माँ और रोज़ी ने झुटपुटे के ताल को देखा तो उन्हें बहुत डर लगा और प्यास। माँ बड़ी थीं, रोज़ी सहमी चिपकी।

देखा। दूर तक कोई नहीं। देखा सीटी कहीं डूब गयी है। देखा मूर्ति साथ। वो सलामत वे सलामत।

माँ बच्ची के संग छिपती हुई आगे को घिसटती गयीं। लहु सूखा लुहान। खेत में पनाह ली। कनक, उन्हें सूझा, पर क्या मालूम किसी और अनाज की बाली हो? दोनों ने कच्ची बालियाँ चबायीं।

मूर्ति के संग बच्ची को खेत में बिठा के माँ टोबे पे पानी लेने गयीं। अँधेरा कुछ गहराया। लें तो कैसे, बस चुल्लू अपने साथ और चुन्नी? माँ ने चुन्नी पानी में डाल दी। बच्ची के मुँह में बूँद-घूंट टपकाए।

निकलना ज़रूरी था। किस गाँव में थे? हमलावरों के हाथ पड़ गए तो? निकल लें। जहाँ लड़कियाँ मिल जाएँ। या अकेले हो लें।

हाय रब्बा, माँ ने मूरत को देखा। हाय वो गूमड़ वाला। भय्या।

मगर चलें तो किधर? किधर से वो आई थीं? क्या पीछे था, क्या आगे? शायद उधर आसमान में ज़रा सी चमक बाकी है, तूफ़ान आगे था, सूरज पीछे, तो इस तरफ़ बढ़ना चाहिए। सयानी लड़की ने कयास लगाया। मूर्ति कांख में दबा के वो चल दीं।

चलती रहीं। चुपचाप। हवा अब थमी हुई। रेत नरम, उनके पैरों के नीचे नरमी से दबती। नंगे पैर। हाथ थामे वो चलती गयीं। जैसे मज़ा आ रहा है ठंडी रेत पे रात पार करते हुए।

क्या सोचती होंगी? क्या सोचने को था।

चारों ओर रेत। उसमें से झाँकती जड़ें और डंडियाँ। टूटे झाड़। चलती रहीं बढ़ते सन्नाटे में। कि तभी एक सीटी सुनाई पड़ी, पहले धीरे से, फिर थोड़ी बेताब। फ़ीईईईई। फींईईई।

बाजी सीटी, छोटी लड़की बोली। उसने कहीं से सीटी निकाल के माँ को दी। उसकी सीटी बच गयी थी।

माँ ने सीटी बजायी। फीईईई।

बच्ची को दी, तुम बजाओ। उसने बजाई फ़ीईईई।

दूर कहीं से जवाबी सीटी आई। रेगिस्तान के शान्त पर लहरायी।

बजाओ।

थोड़े थोड़े अन्तराल पर बच्ची सीटी बजाती। गुब्बारे वाले की खिलौना सीटी। वो इधर बजाती, कहीं से उसकी गूँज लौटती।

दोनों देखतीं। किधर? उधर से। उधर चलें।

शायद वे खुश हुईं। शायद नहीं जानती थीं किधर जा रही हैं पर हौसला बना।

रेत मुँह में भर गयी थी। भीतर भर गयी थी। वे खांस रही थीं। खांसी बढ़ रही थी।

कितना वक्त, पता नहीं। कितने दिन चलते गए थकते गए भूखे रहे बचते रहे। सूरज तेज़ तो झाड़ी के पास बैठ जाते। आँख भी लग जाती।

कोई नहीं दूर तक।

अँधेरे में उखड़े बाज़ू, कटे सिर, टूटी उँगली, रेत पर साये डोलते। या हवा में।

बहुत ही धीमे से हवा भी सीटी की तरह बजने लगी। जैसे उनका दिलासा बढ़ाने।

हो सकता है हवा ही बज रही थी। सीटी बजा दी। जवाबी सीटी सुन ली।

दो अकेली चली जा रही हैं, चली जा रही हैं। छोटी लड़की वो, बाजी मैं।

एक बार कोई घास चूसी। बच्ची के सफ़ेद पपड़ाये होंठ।

फिर कोई ताकत नहीं बची। बच्ची ने चुप स्वर में बाजी से पूछा बाजी हमने क्या ग़लत किया?

मैंने उसे गोद में लिटाया। झाड़ी की आड़ मैं उसे थपथपाया। कहानी सुनाई। एक राजा था एक नाई। नाई को हुक्म मिला कि राजा की हजामत करो। नाई पहुँचा तो राजा सिर साफ़े में लपेटे बैठा था। नाई ने साफ़ा खोला। देखा राजा के कान तो बकरी के। किसी से कहा तो मार दिए जाओगे, राजा ने घुड़का। नाई लौट आया, डर से चुप। मगर पेट में दर्द। बढ़ता गया। इतना कि नाई बीमार पड़ गया। अब क्या करे? निकला। दूर तक रेगिस्तान, कोई नहीं, कोई नहीं। फिर उसे एक पेड़ दिख गया। वो भागा। पेड़ से बोला सुनो। पेड़ को उसने राजा के कान की बताई। और चंगा हो गया। मगर पेड़ के हाल बुरे हो गए। उसे किसी

ने काट के सारंगी बना दिया। नाई ने सुना कोई सारंगी बजाता है और सारंगी गाती है राजा बकरकना राजा बकरकना। बच्ची हँसने लगी। बकरकना बकरकना वो गाती सी बोली और सो गयी।

मैं जागी तो किसी छावनी के अस्पताल में थी। बुखार। हरा बलगम। खांसी। पूरा तन घावों का डेरा। अब नहीं बचूंगी।

बच्ची नहीं थी। मूर्ति बगल में मेज़ पर।

बाद में पता चला एक सरहद खिंच गयी है और मैं बच गयी, मुझे अब कोई ख़तरा नहीं।

मुलायम *रेत हवा मुलायम।*

रेत हवा में उड़ती है।

हवा रेत को हिलाती है। हवा रेत में भरती है जैसे कम्बल में।

कम्बल फडफ़ड़ाता है।

रेत मुलायम है। हवा में धीमी धीमी उछलती है।

कम्बल में खरगोश घुस गए हैं। कम्बल के नीचे खरगोश दौड़ जाते हैं। कम्बल साथ साथ भागता है। वो देखो रेगिस्तान पर दौड़ता कम्बल, उसमें कुदकते खरगोश, क्षितिज का पीछा करते।

कहानी ख़त्म नहीं होती। नयी कहानी कहती है। संवेदनशील औरत की आँखें गहरी होती हैं। लड़की की दोनों चुटियाँ अलग रंग के फीते से बंधी हैं। सबसे ऊँची फुनगी पर तितली जा बैठी है। रेगिस्तान में एक अकेली चिड़िया उड़ी।

कहाँ जाती है वो? वह ढूँढ़ती है कोई ठिकाना। सुस्ताती है। चारों ओर देखती है। कुछ उठाती है। दिल में स्पंदन होता है।

स्वामी आँख बंद करते हैं। दूर आवाज़ देखते हैं। उसमें चुप सुनते हैं। कोई स्वर कोई धुन कोई झपक दूर रेत के टीले पर जा बैठी है।

क्या दिखा? पत्थर हिला। हवा ने काया बदली। तितली उड़ी। पेड़ ने माथा चूमा। हँसी आई।

तो हँसो।

आँखें खोलो। कुछ दिखा? कुछ नहीं? तो भी हँसो।

क्योंकि इंतज़ार हुसैन कह गए हैं ज़मीन पकड़ती है रूठती है वृक्ष पहचानते हैं मिट्टी पलटवार करती है।

भूपेन के चित्र में ब्रश चला, कहानी दौड़ी। कभी खिलाड़ियों की सी चुस्ती फुर्ती से, एक लम्बी कूद, सर के बल, तल ऊपर। कभी एक पेंग लगायी, हर पेंग पे कोई याद उड़ी, हर

याद में कोई नया जोड़ और मोड़।

फिर खक्खर रुक गया। रोक दिया। रंग गीले मुचे छोड़ दिए। सब यहीं नहीं। सब अभी नहीं। उठेगी जब उठेगी, एक और छलांग।

वो खिड़की। जहाँ से माँ कूद गयी और रेगिस्तान में पहुँच गयी कहानी बनाने। फिर कहाँ गयी फ़िलहाल पता नहीं चला। कि ज़िन्दा कि रामप्यारी कि क़त्ल से या खुद से और उसकी बेटी, सब सवाल।

आखिरी बात कही गयी कि एक बस में पेशावर के पास दिखीं। बस किसी भूपेन ने बनायी थी, वोही साधारण लोगों के अरमानों की रंगीन नुमाइश।

मगर नाटक बना। ख़ैबर में हुआ।

OceanofPDF.com

तफ़्तीश की आये दिन वही घुमाइयाँ चलती हैं जो ख़ैबर को चक्कर में डाल रही हैं। एक कुर्सी पर इंटेरोगेटर। उसके सामने मेज़ जिस पर फ़ाइलें, पासपोर्ट, चश्मा। इस तरफ़ माँ के लिए कुर्सी और वो जब मन बैठी, जब मन खड़ी। पास कुर्सी पे बेटी। बेटी का सिर ढका। माँ का नंगा। बेटी त्रस्त, जाँच-अधिकारी पस्त। माँ मस्त।

वो नाम पूछते हैं कहती है चंदा। वो शौहर पूछते हैं कहती है अनवर। वो घर पूछते हैं तो मिट्टी उठाती है।

ये कौन है? पास बैठी बेटी की तरफ़ इशारा करते हैं।

मेरी माँ, वो कह के हँसती है। और तुम मेरे दादा। याखुदा बेटे तुम्हे दिख नहीं रहा वो मेरी बेटी है?

मोहतरमा आप वाज़े जवाब दें।

पुत्तर तुम वाज़े सवाल करो।

आपका नाम क्या है?

रोज़ पूछोगे तो कोई और नाम बता दूँगी?

आपका पासपोर्ट कहता है, वो कोशिश करता है पर उससे उच्चारण नहीं होता।

पढ़ना आता है? माँ पूछती है।

आपका घर कहाँ है?

इस मिट्टी में।

बराय मेहरबानी इस मिट्टी की छोड़ें।

बेटा मिट्टी का संग छोड़ने की बात मत करो, मिट्टी रूठ जाती है। और वो खड़ी होकर सुनाती है जैसे पढ़ती हो, तुम्हारी ज़मीन ने तुम्हे बददुआ दी है। प्यारे मियाँ, ज़मीन भी कोसती है। अरे, पाकिस्तान में आबाद होने के शौक में हमें तो न उजाड़ते और खानदान का खेल-बिखरवा तो नहीं करते।

बैठ जाइये, बैठ जाइए, वो घबरायी घुड़क लगाते हैं।

पढ़े हो, वो भी नहीं पढ़े हो? करते क्या हो? इंतज़ार हुसैन। आगे समंदर है।

मोहतरमा, पूछगछ करने आया खड़ा हो जाता है। उसे समझ नहीं आता इनका क्या करे कैसे करे?

बताओ, वो खड़े खड़े पूछती हैं, इंतज़ार साब की ज़मीन कौन सी? बताओ पुत्तर, वो तुम्हारे कि हमारे? बैठ जाओ, बैठ के बताओ।

मोहतरमा, सवाल हम करेंगे।

जवाब भी तुम्ही दोगे।

आप, वो बिलबिलाता है। जितना वो परेशान होता है उतना उसका मुँह चोंच की तरह बाहर निकल आता है। लगता है चेहरे पर मुँह की जगह एक चिड़िया उगने लगी है। पहले ज़रा सी चोंच निकली, फिर मुँह और फूलता गया और अब पूरी चिड़िया खुंसी हुई है जो माँ, इस अजीब नयी औरत के हर लफ़्ज़ पर बेसब्री उचकती है। फुर्र कर गयी तो क्या होगा मुँह की जगह? उसके पास खड़े उसके मातहत चेहरे सपाट रखते हैं पर वो भी इस रोज़ की मगजपच्ची से उकता चुके हैं।

आपका पता क्या है?

ऐ बेटा यहाँ का पता नहीं जानता? अरे कोई इसे इस जगह का पता बता दो। लंडीकोतल। वीरान गेस्ट हाउस। चिड़िया का घर। दो ख़ाली कमरे। ज़रा सा बरामदा। ज़रा सा सहन। और ये ऊँची चारदीवार। जैसे चिड़िया का घर न होकर शानदार किला हो। दीवार के ऊपर मस्जिद की मीनार दिख जाती है और उस पर बालिश्त भर ख़ैबर का आसमान।

ख़ातून हम आपसे आपके घर का पता पूछ रहे हैं। ये क़ैद है।

क़ैद होगी तुम्हारे लिए। मैं यहाँ अपनी मर्ज़ी से पहुँची हूँ। हाँ सेटअप करने में वक़्त लग रहा है। तुमने तो दो खाली चारपाई डलवा दी, और मार धुएँ की महक — कितनी सिगरेट पीते हो तुम सब यहाँ — के गद्दे और दमघोंटू रज़ाई। गनीमत कि अपने से बड़ों की थोड़ी इज़्ज़त करते हो, जो चद्दरें, रज़ाई के गिलाफ़ मँगाये, वो ले आये। लंडीकोतल के बाज़ार का भला हो कि सब यहाँ मिलता है। बन्दूक पिस्तौल हवाई जहाज़ हशीश, जो ख़ैर हमें क्यों चाहिए। बाल्टी मग टूथब्रश पानी का जग और गिलास। ऐनक की कमानी भी जुड़वा लाये। और पर्दे तो चाहिए ही थे। हम पर्दा नहीं करतीं, मगर कमरे में पर्दे तो लटकने हैं। रात सोने को अँधेरा करना होता है। कभी दिन में सूरज बहुत तेज़ होता है। अच्छा है, गद्दों रज़ाई को धूप दिखा दी, भला हो इन ख़िदमतगारों का।

माँ चार कलैशनिकोव थामे, घोड़े पे उँगली रखे, उन पर तैनात गार्डों को इंगित करती हैं। वैसे इन बच्चों को भी धूप दिखा दो, फ़ालतू क़वायद में डाल दिया है। उनसे बड़ी और भारी बंदूकें उनके कन्धों को झुकाए जा रही हैं। करने को कुछ नहीं, बस मूछों पे ताव दो और बैठे रहो हमारी रखवाली को। ऐ बच्चों, मूछें तो हैं नहीं, क्या ताव दोगे? दाढ़ी है। असली है? लगती तो नहीं। इस बाली उम्र पे इतनी बड़ी दाढ़ी, क्यों छका रहे हो इस टूटी भज्झी बुढ़िया को?

छका ये बुढ़िया रही है इनटेरोगेटेर्ज़ को। किसी सवाल का सीधा जवाब नहीं, जहाँ जी में आये वहाँ एक लम्बा बखान। और हँसी। वर्ना गूँगी चुप।

देखिये ख़ातून, हम आपका पूरा ख्याल रख रहे हैं, आपके लिहाज़ में आपको लॉकअप में नहीं डाला। वर्ना।

वाह वाह, खूब बनायी! लॉकअप में डालते कैसे? तुम्हारी मशहूर पठानी मेहमाननवाज़ी, तुम्हारी मेलमस्तिया का क्या होता? पखतूनवली, जो दूर दूर तक बुलंद है, जिस पर इतना फक्र, उसे कहाँ पटक आते?

हम तो एहतरामन सब कर ही रहे हैं। आप भी तो करें। आपको कपड़ा खाना कहवा सब भिजवाते हैं। फल सब्ज़ी...

हाँ, मेरे कब्ज़ का इलाज ठीक ही ठाक है। पर हमारा सामान जो गायब कर दिया है? ये भी तुम्हारी मेहमाननवाज़ी? और बाथरूम में शीशा नहीं, कमरे में हीटर नहीं, लाइट तक इतनी कम कि पढ़ना चाहें तो न पढ़ सकें, कुछ पढ़ने को नहीं, क्या पढ़ने लिखने से कोई मतलब नहीं आप सब को?

आप पढ़ी लिखी हैं तो ऐसे बिना वीज़ा घूम क्यों रही हैं? डबल जुर्म है — बिना वीज़ा और ख़ैबर में, जो बॉर्डर इलाका, जहाँ हम ही इजाज़त बगैर नहीं आ सकते। तफ़्तीश करने वाला सफ़ाई देने लगता है। कर्रे सवाल करना है, भूल गया हो और बचकानी खीझाखीझी पर उतर आया हो। हमें अपना काम करना है, सामान आपको मिल जायेगा, हमें उसे क्लियर करना है। फिर उसे याद आता है किसे सफ़ाई देनी है और वो जल्दी से सवाल पूछता है, वही कोई एक, जो वो और उसके साथी, रोज़ आके पूछ रहे हैं। मोहतरमा, जो पूछा जाए चुपचाप उसका जवाब दें।

चुपचाप जवाब कैसे दिया जाता है, पुत्तर, माँ उस पर हँसती है।

वो फिर फिर खड़ी हो जाती है और लम्बा बयान देने लगती है और फिर डाँटती है।

आप बताइए आप यहाँ कैसे आयीं?

पुत्तर तुम्हारी याददाश्त बहुत खोटी है। कल ही बताया था जब तुरखम से लौट रहे थे तो पीछे से तुम्हारी ही कोई गाड़ी आई और घूम कर हमारी गाड़ी के आगे रास्ता रोक के रुक गयी। जिससे हमें रुक जाना पड़ा नहीं तो टक्कर हो जाती। और उसमें से ढेरों बन्दूकधारी बन्दे निकले जिन्होंने हमें घेर लिया। उस समय मैं ख़ैबर की पहाड़ियों को निहार रही थी। सलेटी भूरी, चाकू से काट के बनी और रेगमाल से तेज़ की गयी नुकीली धारों वाली। सड़क क्या घूमती चली चलती रही थी, कहीं तो इतनी संकरी कि एक इकल्ला ऊँट मुश्किल से निकले। आसमान फिरोज़ी। पहाड़ियों में गुफाएँ, कहीं जैसे ऋषि की बंद आँखें, कहीं चोर या सिपाही, क्या फ़र्क़, की चौकन्नी चमकती निगाहें, आखिरी धूप से लौ लिए। पहाड़ियाँ कहीं घोर काली, कहीं शोख़ गुलाबी हो रही थीं। मैं तो मुग्ध हो गयी।

सवालकर्ता हैरान। आप अपनी वालिदा से कहिये आपकी तरह कोऑपरेट करें। सीधे जवाब दें। सीधे से जवाब दें।

वो आते हैं, फिर चले जाते हैं। फिर आते हैं। उसे फिर सामने कुर्सी पर बिठलाते हैं। बेटी को पास में, पर चुप रहने की हिदायत देकर।

आप यहाँ कब आयीं?

जब आपके बन्दों ने हमें पकड़ लिया। देखिये, वो पैर पे पैर मोड़ के, अपनी छड़ी मिट्टी में गड़ा के लम्बी बयानबाज़ी के अन्दाज़ में शुरू करती हैं। हम तुरख़म पहुँच गए थे। थके भी नहीं थे। रास्ते भर किस मोहब्बत से सब मिले, अपने हुजरे में ले गए, गावतकिये पे टेक देके हम सुस्ताये, हमें मेवे खिलाये, कहवा पिलाया, ज़नाना हिस्से में जाकर ज़नानी ज़रूरतें निपटा आये। सब के इसरार थे यहीं रुकिए। इतनी मोहब्बत। वो उनके मिट्टी के किले, वो

लोहे के फाटक, अन्दर निरी गाड़ियाँ, दीवार में झिर्रियाँ कि अन्दर से सब देख लें, चाहें तो बन्दूक की नली उसमें लगा के छर्रे बरसा दें। पहले कभी देखने का सुअवसर नहीं मिला।

जो पूछा जाए बताइए। आप तुरखम क्यों गयीं?

अरे क्योंकि आपके स्पेशल ऑफ़िसर ऑन ड्यूटी, सुना था, वहाँ गए हैं। किसी नेकबन्दे ने हमें खिलाया पिलाया और हमारे संग अपना बेटा कर दिया। अफ़रीदी। मिचनी पोस्ट, तोरखम पोस्ट, सब जगह प्यारा बच्चा उतर के बता देता मेरे मेहमान हैं और हम आगे निकल पड़ते। उसे तो आपने गायब कर दिया। कहाँ है वो? उसे भी बंद कर दिया? उसे क्यों बंद किया है? वो तो खातिरदारी कर रहा था, पखतूनवली निभा रहा था? कहाँ है वो?

पूछना हमें है, आपको नहीं। आप जवाब दीजिये। अपनी वालिदा से कहिये सँभल जाएँ। हम, इंशाअल्लाह, सब जल्दी निपटाना चाहते हैं, आप अपना ही केस बिगाड़े दे रही हैं।

अम्मा जवाब दो। फिर हम यहाँ से चलें।

ये ही हम चाहते हैं, जल्दी से आपकी रुख़सती कराएँ।

मगर हम रुख़सत नहीं होना चाहते। हमें आपके स्पेशल ऑफ़िसर से मिलना है। हम उनसे मिलने आये हैं।

आप उनसे मिलने कैसे आई हैं?

देखो पुत्तर, माँ, उस औरत, ने फिर छड़ी ठकठकाई। तुम शब्दश: लिख लो तो बेहतर। भूलते बहुत हो। फिर सुनो। हम ऐसे आये। एक गाड़ी में। आगे एक बस थी। पेशावर से बस चली। उसमें पैर बाहर टांग के लोग बैठे थे। इतनी रंग बिरंगी बस। कोई रंग नहीं जो उस पर नहीं। चित्रकारी, पत्तीकारी से लदी। चीड़ के पेड़ बने थे। झील, हाउसबोट। फ़िल्मस्टार के मुखड़े, गोर चिट्टे। शम्मी कपूर को तो मैं ही पहचान गयी। मुर्ग़ी, हंस, बत्तख। हिरन, भालू, फूल, और दिल लाल लाल जिसमें इश्क का तीर चुभा है, चुप, बीच में न बोलो, याद करने दो। रंगबिरंगी झालरें, फूलों की, छोटी बत्तियों की, छोटे छोटे शीशे डिज़ाइन में जड़े कि झलकें मारें, देखते रहे, थकन नहीं चढ़ी। बड़ी खुशनुमा बस थी, ड्राइवर ने खूब रौनकें लगायी थीं। ऐसा नहीं जैसा आप लोगों ने बियाबान में हमें कमरा दिया है। एक लैंप लगवा दो, रौशनी कम है। और, उसने फिर इशारे से चुप कराया, भूल न जाऊँ, रास्ते भर लोग पीठ पर भारी भारी माल लादे जा रहे थे, टीवी सेट, स्टीरियो, फ्रिज, अंडशंड। यहीं तो लाये होंगे? क्या मुश्किल हमारे लिए टीवी रखवा दो। ख़बरें तो देख लें। दुनिया जहान से अच्छा काट के रख दिया है।

बी ख़ातून इसको ख़त्म करिए। फिर एक बार चलिए शुरू करें। वो कहता है जैसे एक मौका और दे रहा है। जबकि थका मांदा वो ही हो रहा है।

पसीने छुड़ा रही है माँ उसके। तफ़्तीश वाले के मुँह पर चिड़िया और बाहर होती जाती है और वो अपनी ज़बान उस पर फेरता है कि जैसे निगलने की फ़िराक में है।

लो साहब तय कर लो। कहते हो निपटाया जाए। उसी साँस में कहते हो चलिए फिर शुरू। माँ की छोटी सी हँसी ख़ैबर में अपनी गूंज उठाती है।

नाम? वो हाथ उठा के अनुशासन रखने का इशारा करता है और पूछता है।

क्या बताएँ, जब आपलोग न पढ़ पाते हैं, न सुन?

चंद्रप्रभा देवी, अपना नाम बताएँ, वो ज़रा ऊँचे लहजे में कहता है। मन ही मन अभ्यास करता रहा हो और अब उच्चारना जान गया हो।

नाम लेके कहते हो अपना नाम बताएं। वो हँसती हैं। सूरज अपना नाम बताओ। हे चंदा अपना नाम बताओ।

चंदा कौन है? कहाँ से आई? क्यों आई?

मैं चंदा। माँ उससे ऊँचा कहती हैं। च-न-दा। चंदा। यहाँ से, मिट्टी में हाथ गाड़ देती हैं। अपनी चाहत में आई।

आपके पासपोर्ट में ये नाम नहीं है।

पासपोर्ट के बिना चंदा को रवाना कर दिया था।

आप बिना वीज़ा के हैं।

चंदा को बिना वीज़ा भेज दिया था।

आपका पता भारत का है जो यहाँ से बहुत दूर है।

वो तो जहाँ है वहीं है, तुम दूर हो पुत्तर।

हम यहीं के हैं, आप यहाँ आई हैं।

नहीं पुत्तर, मैं आई नहीं, यहाँ से गयी हूँ। और वो आसमान की तरफ़ सिजदा सा कर के बोलती हैं 'वजह बेगानगी नहीं मालूम, तुम जहाँ के हो वां के हम भी हैं'।

बीबी, अपनी वालिदा से कहें सही जवाब दें।

सही जवाब वही क्यों जो आप जानते हो बेटे?

माँ जी, वो सर पकड़ के बोलता है। आप यहाँ क्यों आई हैं, हम सब की शामत बुलाने?

देखो, माँ फिर छड़ी टिका के लम्बे बयान के अन्दाज़ में आ जाती हैं। खड़ी हो गयी हैं। ख़ैबर है ये, है न? रुकती हैं। कोई जवाब नहीं मिलता तो आगे बोलती हैं। ख़ैबर तो ख़ैबर। सब यहाँ आते हैं। और गिनाने लगती हैं कि सदियों से कौन कौन यहाँ खिंचा आया। सिकंदर, तैमूर, बाबर, अहमद शाह, गोरी, ग़ज़नवी, रेशम, लोहा, सोना, सब इस पर क़ुर्बान। इसकी पथरीली ज़मीन की छटा देखो ज़रा। वाह वाह, कहीं अँगूठी कहीं लॉकेट कहीं कंगन तराश दिए हों जो ख़ैबर की वनस्पति ने प्यार से अपने अंगों पर चढ़ा लिए हैं। तो जादू तो है। किसी का भी आने को जी अकुलाएगा। सिर हिला हिला और साथ में छड़ी, बोलीं।

बड़ी बी, आप जानती हैं ये ख़तरों का गढ़ है? आपको कौन यहाँ लाया?

पर माँ उसे काट के कहती है, सूरज डूबता है तो ख़ैबर की पहाड़ियाँ गुलाबी झलकें मारती हैं। आसमान रंग जाता है। यहाँ कोई भी ग़ायब हो जाता है, उड़ जाता है, किसी को कुछ पता नहीं चलता। पर क्या करूँ, मासूम आवाज़ में बोलीं, जब यहाँ सुरक्षित रहने का एक ही तरीका है कि यहाँ न आओ तो ख़तरा उठाना पड़ेगा न?

हम चाहते हैं आप हिफ़ाज़त से जाएँ। पर हमें जो पूछना है आपको बताना पड़ेगा। आपको कौन यहाँ लाया?

मेरी चाहत।

नाम बताएँ।

चंदा।

आपका नहीं।

चलो पहचाने तो ये मेरा नाम है।

उनका जो आपको यहाँ लाये हैं।

अली अनवर।

ऐं? चिड़िया बेचैन फडफ़ड़ाएगी।

तुम्हारे स्पेशल ऑफ़िसर ऑन ड्यूटी का क्या नाम है?

अली अनवर, उसके मुँह से बेसाख्ता निकल पड़ता है। ऐं! अबके वो शायद अपने को लताड़ता है। कराची में जो आपके साथ थे और उसके बाद भी, उनके नाम बोलें, जल्दी से पूछता है। वो आपको लाये। बिना पेपर्स के। उनसे बात करनी है।

अली अनवर मुझे लाये। उनसे बात करनी है। उनको हमारा संदेसा भेजा?

बेगम साहिबा, हम आपकी सलामती चाहते हैं। जो पूछ रहे हैं बताएं।

जो मैं पूछ रही हूँ आप बताएँ।

मोहतरमा हमें तो तहक़ीक़ात करनी ही होगी। आप विदेशी हैं, ज़नाना हैं, उम्रदराज़ हैं, नहीं जानतीं, पर आपको यहाँ तक लाने वाले तो पाकिस्तानी हैं, उन्हें मालूम था वो ग़लत कर रहे हैं, उनकी पड़ताल हमें करनी है।

वैसे जैसे हमारे सामान की कर रहे हो? उसे गायब ही कर दिया है। सिर्फ़ छड़ी ठोंक पीट के वापिस की है। बाकी सामान बम स्क्वाड के पास भेज दिया है? और उन नेक बन्दों को वहाँ भिजवाने में तुम्हारी मदद करूँ? क़तई नहीं।

आपका सामान जल्द आ जाएगा। अब नाम बताइए। जैसे रिश्वत देता हो।

चंदा। अली अनवर। और किसी से तुम्हारा क्या वास्ता?

अगले रोज़ सामान आया। माँ उछली और उसने अपना बैग खोला। मेरी मूर्ति। मेरी मूर्ति कहाँ है?

उसकी परख हो रही है। वो बहुत पुरानी है। वो जहाँ की है वहीं रहेगी।

मैं भी बहुत पुरानी हूँ। जहाँ की हूँ वहीं रहूँगी। लड़कों, वो कलैशनिकोवधारियों से बोली, एक नेलकटर मँगा दो।

कौन है ये औरत? मैं इसे नहीं जानती। रोज़ एक नयी कहानी। क्या ऐसा हो सकता है? क्या उम्र के साथ इसका कुछ हिल गया है?

हिल मैं गयी हूँ। मैं नहीं देख सकती अपनी माँ का रोज़ एक अलग रूप। मैं नहीं झेल सकती उसके नित नए बदलते रंग। अब तो मैं जानती ही नहीं अगले पल ये अपने को क्या बताएगी। हर समय मैं संशय में रहती हूँ।

कैसे ऐसी हो गयी वो? कैसे कोई एक ही जीवन में इतनी चीज़ें होता है, इतनी दिशाओं में बहता है?

वो मेरी माँ थी। मैं उसके बुढ़ापे का सहारा थी। मैं उसका हाथ पकड़ के उसे इस पार तक ले आई। कब हुआ कि मैं ही उसके बहकते अबा के कोने से अटकी जहाँ वो चाहे वहाँ खिंचती फिंकती हो गयी? कहाँ ले आई है वो मुझे? किन किन से वो मिलती रही है और किसी न किसी को अपनी पगलैट खोज में लगा लेती है। कोई जो दोस्त है कराची में, वो तो अल्लाह को प्यारी हो गयी तो उसकी बेटी कहीं सिन्ध में, जहाँ से चल दी कि बेटी का ममेरा भाई पेशावर में तबादले पे और उस भाई से मिलना है। पेशावर में कि दौरे पे गया है तो ज़िद कि वक्त नहीं है, वहीं चलो। और हम उस रास्ते पर जहाँ के लिए सरकार कहती है कि हम आपकी किसी चीज़, मौत, कोई हादसा, किसी बात की ज़िम्मेवारी नहीं ले सकते। इस ख़ैबर नाम के ख़तरे में निश्शंक घुस आई है। जमरूद किले के बाद बाबेख़ैबर और बस हम कबीले पठानों के रहमोकरम पे। खून खराबा, तस्करी, डाका, यहाँ के दस्तूर।

मैं डर से पागल हो जाऊँगी। पर वो — कौन है वो — उसे डर छू के नहीं देता।

मेरा हाल अब कि कोई उम्मीद सी उम्मीद नहीं। मैं तो चली थी कि बूढ़ी माँ को कुछ छोटी मोटी ख़ुशी चलो दे दें इस आखिरी मुक़ाम पर। उसका आखिरी मुक़ाम, न कि मेरा ही।

धोखा हुआ है मेरे साथ। मैं समझ रही थी मैं रास्ता दिखा रही हूँ, मुँह की खायी। हर बार सोचा, बस एक ये, इतना सा और, चलो साथ दे दूँ, तो यहाँ तो अन्तहीन सिलसिला कि एक के बाद एक शगल में साथ देना पड़ेगा। जैसे पूछो कि कितनी दूर और, बस वो जी सामने, जवाब मिले। हर बार बस वो जी सामने। बार बार बस वो जी सामने।

और सामने आया क्या? ख़ैबर। सन्नाटा। ख़ैबर की हवा भी कहीं बाहर चलती है। यहाँ कुछ नहीं पहुँचता। चारों ओर ये ऊँची दीवार और उसमें चुनवाया गया एक लकड़ी का दरवाज़ा। जो हमेशा बंद रहता है। खाना या कहवा या इंटेरोगेटर आये तो खुलता है और ज़रा सा झोंका उनकी बगल से घुस लेता है।

और ये औरत? है कौन ये? बहुरूपिया जिसके अनेक नाम अनेक घर अनेक ज़बान। किस पर यक़ीन हो?

कहती है बस यहाँ और जाना है, बस आखिरी एक और शख्स से मिलना है। ये अन्त है।

कैसा अन्त? अब चल देंगे? तो चलती क्यों नहीं? क्यों ऐसा बवेला खड़ा करती है कि वो चाहें भी तो नहीं छोड़ सकते? आखिर उन्हें, दिखावे को ही सही, कोई क़ायदा तो फॉलो करना पड़ेगा।

वो औरत, कौन है वो, वो तो जाना ही नहीं चाहती जैसे। उसकी उम्र मैं देख रही हूँ और दिखा रही हूँ पर उसे मेरी उम्र का ख्याल है, ज़रा भी? मैं कौन हूँ, यहाँ कैसे आई, ये मेरा जीवन होना था? ये किसका जीवन है? मैं किसका जीवन जी रही हूँ? ये असल मैं और वो जो पीछे रह गयी?

अचानक मुझे केके बहुत याद आया। मैंने बता भी दिया कि मैं जर्नलिस्ट हूँ, और मेरे संगी साथी भी। परेशान हो रहे होंगे, खोजबीन कर रहे होंगे। कहा इज़्ज़त से, पर उम्मीद की कि शायद ये सब डरें। थोड़ा। मुझसे भी।

मगर डर कहाँ मेरे अलावा किसी में? न इस औरत में, न उनमें जो रोज़ आते हैं, कभी बॉर्डर पुलिस, कभी पाकिस्तानी सरकार, कभी आर्मी, कभी कबीले के लीडर, कभी क्या मालूम आतंकी। इन दो मुल्कों में डर और धमकी खेल हैं। किसी को भी उस खेल का प्यादा बना सकते हैं। दो मासूम औरतों को बीच में रखकर कोई सियासी सौदा कर सकते हैं। हमें छोड़ेंगे अगर भारत में उनके कैदियों को छोड़ोगे। हमारी जान की कीमत किसी खतरनाक जासूस, टेरोरिस्ट की रिहाई? हमारी सरकार मानेगी? हम दो औरतों की जान उनके लिए कुछ हो तब न।

मेरी जान मेरी माँ के लिए कुछ हो तब न। ये मेरी कहानी नहीं और उसकी कहानी में मैं नहीं। कौन है वो, क्या चाहती है, क्यों नहीं ऐसा करती कि वो रहम खा के हमें छोड़ दें? उलटे उन्हें उकसाती है।

मैं डर रही हूँ। सर ढक के रखती हूँ कि इनके रिवाज़ का मान करूँ तो शायद मुझे भी मान मिले। जो वो पूछते हैं, रोज़ रोज़ आकर पूछते हैं, बड़ी तमीज़ से बताती हूँ। आपका नाम। बताती हूँ। आपके वालिद वालिदा का नाम। बताती हूँ। आप यहाँ क्यों आयीं। माँ के साथ। बिना वीज़ा? जी, क्या कहें। आप पढ़ी लिखी हैं, आपको पता है ये ग़लत है। जी, पर हमारा कोई ग़लत इरादा नहीं है। हम बेक़सूर हैं। हमें जाने दीजिये। हमें कब तक यहाँ रखेंगे? हमारे घरवाले परेशान होंगे। आप देख रहे हैं माँ की उम्र।

केके को क्या पता? बड़े को क्या पता? वर्ना कुछ तो वो भी शुरू हो जाते। थोड़े दिन और हो जाएँगे तब उन्हें सूझेगी कि कहाँ है, कोई ख़बर नहीं, कब लौट रही हैं। तब तक ये चार गार्ड हमें छलनी कर चुके होंगे।

वो पहले दिन से इसी ताक में हैं। हर समय धड़का लगा रहता है कब हमें भून देंगे। हर समय वो चार हमारे सरों पर मंडराते। रात हम सोने जाते हैं तो दरवाज़े पर तैनात। कि ज़रा आँख लगी और वो उछल के हम पर गोली बरसाएं। हर गोली पे मैं दो सूत और नीचे लहराऊँगी। किस गोली पर जान से जाऊँगी? मेरा मरा मुँह कौन देखेगा? केके?

क्यों तुम इतने याद आने लगे हो? जब जो पास होता है तब वो याद क्यों नहीं आता? अगली दफे साथ चलूँगी तो जब मैं तुम्हारी तरफ़ देखूँगी हर पल तुम्हे वहाँ गैरमौजूद देखूँगी, जिससे कभी तुम्हे अलग करने, तुम्हारी कोई बात टालने की भूल न करूँ। बार बार छूऊँगी। वही तुम चाहते थे।

हम अलग अलग वक्त में क्यों एक दूसरे को छूना चाहते हैं?

और ये औरत जो अपने सिवा किसी की नहीं सोचती। माँ को दिखते नहीं मेरी आँखों के नीचे गड्ढे? शीशा भी मँगवा भेजी हैं कि मैं देख देख परेशान होऊँ। मेरे हाथ देखो कैसे रूखे भद्दे। और नाक से निकलता ये बाल, अब मैं कैंची नहीं माँग सकती कि काटूँ। इसे देखकर तुम चिढ़ जाते पर क्या करूँ? तुम्हारी कैंची कहाँ है केके, गेस्ट रूम में? केके तुम देखते मुझे

अभी तो सारी कशिश मिट जाती। भवें गोजर। मूँछ धुरंधर। यहाँ मैं आदमी में तब्दील हो रही हूँ। वो भी बुढ़ऊ। इस ढले, पिलाये मुरझाये बूढ़े से इश्क़ खाक करोगे!

उन्हें भी दीखती होंगी ये टूटी फूटी औरतें। मासूम, नादान। जासूस, कारतूस नहीं। पर ये दो देश, ये तो पागलपन के मुक़ाबलेबाज़ हैं। किसी भी वारदात को जवाबी, इन्तेकामी, सौदाई, बना सकते हैं।

और ये माँ जो हुआ करती थीं मेरी, कुछ आसान हो भी तो उलझाने में तुली हैं। बिना वीज़ा के। फिर मददगारों की पहचान न देना। मैं भी ख़ालू, मामू, भाई ही जानती, पर वैसे भी चाहकर भी माँ के ख़िलाफ़ मुखबिरी नहीं कर सकती। तिसपर ये मूर्ति जो इधर ही पायी गयी और लाहौर म्यूजियम में है एक। पुरानी मूर्ति, इस देश का खज़ाना, निजी संपत्ति बनाये घूम रही हैं। वो वापिस नहीं दे रहे और ये हैं कि उस पर मचल रही हैं। अरे भूल जाइये। अपनी और मेरी जान बचाइए। वापिस चलिए।

वापिस? मुझे ही सुना गयीं। वापिस ही तो आई हूँ। अली अनवर से मिलना ही है।

अली अनवर अली अनवर मैं सुनती हूँ और परेशान होकर ज़ेहन से फिसला देती हूँ। हुआ करें कोई। हमें बख्शें।

अरे ये क्या, गार्ड सो रहे हैं? छोटे बरामदे में दीवार से सटे। लुढ़के से। कलैशनिकोव अलग सरके पड़े। लापरवाही? या अब जान गए इन कैदियों का कोई डर नहीं, जो न भागने लायक, न पलट के मारने लायक?

मैं घूर रही हूँ। अभी वो मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। सोते पर जागा बलवान। लपक के उनसे बंदूकें छीन लूं? धांय धांय उन्हें ही निपटा दूँ? पर हम तो नहीं बचेंगे तब भी। पहले उन्हें ढेर कर दूँ फिर अम्मा को फिर अपने आप को।

आज तक जो न हुआ हो कम है। अभी हम माँ बेटी साथ हैं। पर उनका जो रवैय्या है क्या मालूम दबाव डालने को हमें अलग कर दें? या हाथ पैर तुड़वाने लगें? नहीं नहीं, वो हमें हाथ नहीं लगायेंगे। पर औरत पुलिस बुला लें?

बन्दूक की आवाज़। कहाँ? हाल बेहाल। मुझे मारा? नहीं, ये तो सो रहे हैं। अम्मा को। भागी आई हूँ सहन में। अम्मा को ढेर कर दिया। मेरा क्या होगा? अम्मा के बगैर इस दोज़ख़ में।

गार्ड जाग गए। एक बन्दूकधारी हँस दिया। मेरी हवन्नक आँखें देखकर। बाहर गोली चली, शादी होगी, उसने कहा।

अरे मुझे दिलासा दे रहा है मेरा ही ख़ूनी। क्या समझूँ? गार्ड छोटा है, कद में भी, उम्र में भी, काठी में भी। हथियार-लैस कोई गरीब बेकार। दाढ़ी है पर उसके पीछे कोई बच्चा। एक के तो दाढ़ी भी नहीं। शेव भी न करता होगा। इतनी बड़ी उसकी बन्दूक। चलाना भी जानता होगा? पर कलैशनिकोव असली है। इन दो बेहूदी सरकारों के बीच बन्दूकों को खुद चल जाने की आदत है।

ये मज़ाक है कि खतरनाक?

समझ न आने का अलग डर है। हमें कुछ नहीं होगा न? सरकारी तन्त्र में फँस गए तो क़ानूनी प्रोटोकॉल तो इन्हें निभाना होगा। कागज़ पर केस आ गया है, वहाँ कलम चलाना ही

पड़ेगा कि देख सुन के निपटारा कर रहे हैं। सामान जाँचना, हमसे सवाल पूछना, हमें बंद रखना उसी का हिस्सा है। कार्यवाई पूरी होने पर ही निकल सकते हैं।

माँ यों हैं जैसे ये सब अवकाश का समय है। बैठी हैं। कुर्सी धूप में रखवाकर। और उनके संग उन पर तैनात दो गार्ड हैं। हँस रहे हैं। मेरे कान बज रहे हैं क्या? ये शोएब अख़्तर से तेज़ गेंद डालता है, ये बता रहा है माँ को?

मैं धम्म से बैठ जाती हूँ, बरामदे में, बचे दो गार्ड के साथ जो सो रहे थे और जिनके मुझे भून देने के पहले मैं उन्हें भूनने वाली थी।

किसी को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता और तेज़ गेंदबाज़ हँस कर अपनी हांक रहा है।

सच्ची, पेशावर में मैंने क्लब-क्रिकेट खेली है। जावेद साब ने एक बार देख लिया नेट प्रैक्टिस के दौरान।

जावेद मियाँदाद, दूसरा गार्ड माँ को समझाता है।

बोले चलो बोल करो, मैं देखता हूँ। आ गए पैड बाँध के। रिटायर हो चुके थे पर थे तो जावेद मियाँदाद। मैंने हिम्मत की। पच्चीस कदम का इस्टार्ट गिनके मार्क लगाया।

आप क्या जानेंगी ये क्या बोल रहा है, अब तक सारे गार्ड माँ के गिर्द घिर आये थे।

नहीं जानती पर बोलो, जानती हूँ। सबको क्रिकेट देखते देखा है।

पाँच गेंदें की थीं और जावेद साब ने हार मान ली। बस मियाँ, कर लिया अपने आप को फ़ेल।

देख रही हैं बड़ी अम्मा, इसकी शेखी?

बड़ी अम्मा? बड़ी अम्मा!

अरे बच्चे, तो खिलाड़ी क्यों न बने? बन्दूक क्यों उठा ली? माँ छड़ी उठा के उसे बनावटी पिटाई से नवाज़ती हुई।

ग़ुरबत जहाँ ले जाए, बच्चा बोला।

आप बताइए, दूसरा बोला, हमारा इमरान बेहतर कि आपका कपिल देव?

मेरा तेरा मैं नहीं जानती, माँ ने कहा तो और हँसी हुई कि अम्मा दामन बचा रही हैं।

अम्मा! अम्मा?

ख़ैबर चुप रहता है। उसका रोज़ एक सा। उसी एकसा में रोज़ अलग।

जीवन रुका हुआ पर निकला जाता।

ख़ैबर का आसमान। ख़ैबर की बुत पहाड़ियाँ। उनके नुकीले सिर। उनकी शान्त पालथी। आसमान और बुतों से घिरा एक दरवाज़ा।

दरवाज़ा कहीं नहीं जाता। मिट्टी की ऊँची दीवारों के घेरे और उनमें जड़े दो कमरों को अपने से जोड़े हुए खड़ा है। कभी चलने की सोच ले तो सबको गाड़ी की माफ़िक खींचता ले जाएगा।

दरवाज़ा बाहर से बंद रहता है।

ऊपर से देखने पर ख़ैबर का सन्नाटा दीखता है। दूर सड़क पर चिंघाड़ते बेहद रंगीन लॉरी के टायर जिसे छेड़े बिना निकल जाते हैं। लॉरी के कारबुरेटर से निकला बेहद काला धुआँ मूक जानवर सा लपकता है और पहाड़ियों में गुम हो जाता है। बन्दूक की गोली की तरह। जो ख़ैबर में शादी ब्याह जनम मरण वैर मोहब्बत, हर मौके पे चल जाती है और कहीं दर्ज नहीं होती।

दरवाज़े के अंदर दो औरतें रहती हैं। माँ बेटी। बेटी को देख के लगता है वो क़ैद में है। पिंजरे में चुहिया की तरह छोटे से सहन में चक्कर काटती है। उसे हर चीज़ पर शुबहा होता है। उसे मौत हर हरकत में अपनी तरफ़ आती दिखती है। वही वही रोज़ होकर अपना हरकतपन खो बैठा है, मौतपन हो गया है। सब इतना निस्पंद है कि मौत ही उसमें उछल सकती है। एक पल से दूसरा फ़र्क़ नहीं, रात का दिन से फ़र्क़ नहीं, एक लम्बा अन्तहीन मौत का पल।

दरवाज़ा बंद रहता है पर बार बार खुलता है। चाय नाश्ता आता है, फल तरकारी आती है, दाल गोश्त आता है, रोटी नान आते हैं, एक कतरा हवा चोरी से आती है, चोर को पकड़ने पुलिस आर्मी सरकार आतंकी सीना तान के आते हैं। बेटी को और माँ को सामने बिठला कर उनसे सवाल करते हैं। माँ खेस सर से कन्धों पर फेंक ऊलजुलूल जवाब देती है और सवाल के बदले सवाल करती है, बेटी शॉल को बुर्के की तरह लपेट बड़ों बुज़ुर्गों की शान्त वाणी से माहौल को मसहरी पहनाती है। माँ के इस तरह सदियों के हिजाब एक एक करके फेंकने का मुआवजा भरने में उसके सिर का झुकना और ढकना अब ज़रूरी है। आजीवन झुका ढका। आजीवन का जीवन ख़ैबर के हवाले, तो भी। उसकी मौत जो अब आई अब आई, भी ख़ैबर का फ़ैसला।

सवाल उकता चुके हैं। वही सवाल वही जवाब ज़रा से सहन से उठकर ऊँची दीवार पे लहराते जाकर ऊपर टिके मुट्ठी भर आसमान में खो जाते हैं। कुछ कतरनें मस्जिद की इकलौती मीनार में फँस कर फडफ़ड़ा जाती हैं।

इन्टेरोगेटर दरवाज़े के बाहर जाता है। ताला नहीं लगाता। यों ही कुण्डी हल्की सी खड़क के लटक गयी है। बेटी डर जाती है। जानबूझकर खुला छोड़ दिया। कि हम भागें और भाग रहीं थीं के नाम पर एनकाउंटर को अंजाम मिले। इस ड्रामा से ऊब चुके हैं, ख़त्म करो।

तभी सब इतने सुकून से हो गए हैं? चारों गार्ड रोबोट की तरह बटन दबाने को तैयार थे, अब लुढ़के ढुलके पड़े रहते हैं, वे अलग और बन्दूक अलग। माँ से क्रिकेट और बम्बई फ़िल्मों पे बात करते हैं।

मुँह की जगह चिड़िया वाले से बेटी कहती है अब तो आप जान गए हैं हम बदमाश नहीं हैं हमें जाने दीजिये। एक आँसू ढुलक आता है। अरे आप क्यों परेशान हैं, आप तो हमारे मेहमान हैं।

क़ैद और मेहमान? चाल गहरा रही है। हम यहाँ और मेहमान नहीं होना चाहते। कब जा सकते हैं?

इंशाअल्लाह, वो कहता है, — ये इंशाअल्लाह इंशाअल्लाह क्या है, एक नयी धमकी? — चिड़िया को गोलगोल फुदकाता। वो भी हो जाएगा, हमें ऊपर से हुक्मनामे का इंतज़ार है।

ऊपर से हुक्मनामा? कौन ऊपरवाला क्या हुक्म करने वाला है? बहुत गहरी चाल।

और ये दिलीप कुमार मधुबाला, ये गावस्कर इमरान, ये दिलासा सांत्वनाएँ? क्या हैं? नयी चाल। कि बंदी बेपरवाह हो जाएँ? और तब इनकी छटनी कर दें?

बेटी बड़ी हो गयी है। कनपटी के बाल सफ़ेद हो गए हैं। साँसें रुकरुक के आने लगती हैं जैसे दमा का अटैक हो।

आपको जो ज़रूरत हो हमें बताइये, कोई शिकायत हो तो बताइए।

बेटी की साँसें फँसती जाती हैं। हम गए। ये बाक़ायदा सोचा समझा तरीका है। कि हमारे डिफेंसज़ फिसल पड़ें और कुछ ऐसा उगल दें कि बात निपटाई जा सके। बलि चढ़ेगी। तब तक खिलाओ पिलाओ फूल मालाएँ पहनाओ।

फूलों की तैयारी हो गयी है। दूसरी औरत की नित नयी फ़रमाइश में नयी। नवाज़ भाई से वो बोली है कि क्या सूखा रूखा माहौल बना दिया है, कुछ घास लगाओ, फूल खिलाओ और नवाज़ भाई कुछ पौधे खुरपी खाद फ़ौवारा ले आये हैं।

माँ नहीं समझ रही क्या? कि ये क़ैद है? क़ैद में इस तरह तुम्हारी मर्ज़ी पूरी करना। बहलाना। दिखावा। तुम्हे कमज़ोर करने का षड्यंत्र। तुम्हे निश्चिन्त करके क़लम करेंगे। वो इनके षड्यंत्र को अनजाने में सफल कर रही है।

वो बुद्धू है। छोटी गुड़िया लगती है, ढीला अबा पहने, छड़ी पर टिकी खड़ी। माचिस की डिबिया में क्यारी बना दी है। ख़ूनी बन्दों से क्रिकेट के कहकहे लगाते लगाते। घास फूस कंकड़ साफ़। हाथों से मिट्टी को पोली करती है। थपथपा के बराबर करती है। खुरपी से नन्ही जड़ें सँभालती हुई पौधे उठाती है, खुरपी से छोटा सा गड्ढा बना के उसमें बिठाती है और मिट्टी से ओढ़ाती है। बिना दाढ़ी वाला ख़ूनी फ़ौवारे में पानी लाता है और माँ नए लगे पौधे को सींचती है।

नवाज़ भाई गमले भी ले आये हैं। इन्ही पौधों के। मगर बड़े। फूल आ गए हैं। गेंदे के हैं।

बकरे को गेंदे की माला पहने बकरीद पे देखा है। क्यारी में फूल अभी नहीं, कब तक इंतज़ार करें, सो गमले में ले आये? सब इनकी मिली भगत, बेवकूफ माँ साथ देती हुई।

गुलऔरंग, नवाज़ भाई कहते हैं। ज़फरगुल, एक ख़ूनी कहता है। गुलफ़िशां, दूसरा कहता है। गुलहज़ारा, तीसरे का दावा है। गेंदा, माँ कहती हैं। फिर खुद कहती हैं नाम में क्या, एक तुम रख दो, एक हम, जो जैसे उसे बुलाये वो उसका नाम मान लिया।

ख़ैबर खामोश। शाम आते आते उस पर ऐसा चुप तारी होता है, जैसे रात की लपेटों का ये पहला लपेटन।

एक कौवा इस तरह फड़फ़ड़ाता उड़ा, कुछ कलाबाज़ी में पलटता हवा में, कि यक़ीनन गोली की जगह उसे ही बन्दूक से किसी ने दागा होगा। कांय कांय करता मस्जिद की मीनार पे झूल गया, फिर सँभल गया और हांफता बैठ गया।

नीचे क्यारी में कोहनियों तक हाथ गाड़े माँ ने उसे हह हह हांफते सुना तो आँखें ऊपर मिचियायीं, ऐं, क्या? कौवे ने उसे देखते देखा और हो न हो सोचा कि मिट्टी में गड़े उसके हाथ कीड़े ढूँढ़ते होंगे। बस इतने से बन गयी दोनों में और ठन भी गयी। वो दिन और आज का। कौवा सन्नाटे को चीरता कभी भी मीनार पर आ बैठता है और वहीं से कांव कांव कर देता है। जैसे रामराम।

माँ मिट्टी लपेटे बैठी दीखती है, बेटी चुन्नी लपेटे। माँ कौवे से बात करने लगी है, बेटी कोने कोटर से।

कौवा डरते डरते नीचे ऊँचे परकोटे पर फुदकता है, आँखें चौकन्नी, पंख तैयार कि घपला हुआ कि वो उड़ा। माँ उसे उँगली दिखाती है पर चेहरे पर मुस्कान है। अगली बार जो पलटती है तो कौवे मियाँ उसकी बगल में मिट्टी में। दो कदम पीछे फुदकता है, माँ की कड़क नज़रों को देखकर। सोचना भी मत, माँ कहती है, सोचना भी मत, इन कोमल पत्तों में चोंच लगाने की।

कुछ कलियाँ हैं। माँ उन्हें उँगलियों से सहारती है। धूप की फांकें उन पर फेरती है।

ठक ठक, कौवा अदब से मिट्टी में सर मारता है। कि नहीं, आपकी जड़ों पत्तों कलियों को मुझसे कोई ख़तरा नहीं। मुझे कीड़ों की दरकार है। या रोटी की। वो हसरत से माँ की कुर्सी के पास रखी रकाबी में टुकड़े देखता है और माँ उसे देखते देखती है।

चोंच बड़ी चल रही है महाराज की। चोरी का मंसूबा है? ये जेल है महाराज, यहाँ होश सँभालो। बिना वीज़ा तुम भी? ख़ैर मनाओ। तुम्हारी भी पेशी होगी अली अनवर के सामने।

अली अनवर दौरे पर निकले हैं, नवाज़ भाई ने बताया है। वही नवाज़ भाई जो माँ को अम्मा जी कहते हैं। वो भी दरवाज़ा भेड़ के छोड़ देते हैं, कुण्डी ताला दोनों नदारद।

अब जो बात होगी उन्हीं से होगी, माँ कौवे से कहती हैं, एक टुकड़ा नान का उसको देते हुए।

अब ये कौवे से बात करती हैं, बेटी सहन के कोने को सुनाती है। अब हम यों ही रहेंगे। आधे यहाँ आधे वहाँ। कब तक? क्यों? मुझे तुमसे मिलना है केके। एक बार तो। मरने के पहले। माफ़ी माँगने। कि तुम थे तो अनदेखा किया। नखरे किये। मुझे तो जाने दें, इन रहस्यमय अली अनवर से कहूँगी, जब वो आएँगे। अगर वो आएँगे।

ये माँ तो हिलेंगी नहीं जब तक वो न आ जाएँ। उसके बाद ये बन्दूकधारी हिल गए कहीं तो वैसे ही हमारा हिलना खलास। ओओ चुप, वो ज़रा झल्ला के कहती है। न जाने अपनी चुन्नी से कि कौवे से बतियाती माँ से। उनकी तरफ़ कान करती है। मुझसे नहीं कौवे से

हँसती बोलती हैं। ये जाएगा तो कुछ और ढूँढ़ लेंगी। बीरबहूटी उठा के ऐसे अपनी हथेली पर रख के उससे गप्पायेंगी। बस मैं कोई नहीं, मेरा जीवन कुछ नहीं।

इन ढलंग पड़े खूनियों तक से बोलती हैं। जिनकी बंदूकें उनके हाथ पाँव की तरह ढलंग पड़ी हैं। अब वे सिपाही कम, ढह गए खम्बे दीवार ज़्यादा लगते हैं। या माली। उनके कहे पर क्यारी की निराई करते हैं। हमारी आँख में धूल झोंकते हैं।

आओ आओ माँ कौवे से कर रही है।

या क्या कांव कांव?

कौवा उनके हाथ में चोंच डाल देता है।

माँ उसी से बात करती हैं। उसे छेड़ती हैं, ऐ भुक्कड़। फिर मनाती हैं, कोई नहीं, पुत्तर, लो, बस पौधे को मत छेड़ना। फिर कुछ फ़िल्मी हो जाती हैं, तुमने कभी किसी से प्यार किया है, प्यार भरा दिल किसी को दिया है? फिर फ़लसफ़ाती हैं, सच्चा प्यार क्या वही होता है जो खो जाए?

खोया प्यार सच्चा होता है। सच्चा खोया, खोया सच्चा।

मेरी कह रही हैं, बेटी चौंकती है? केके। तुम और मैं? तुम मेरे सच्चे खोये प्यार। उसे अपना भतीजा सिड याद आता है। वो गिटार उठा के इसे डिस्को तर्ज़ में डाल कुंघियाता — खोया या या या या, सच्चा चा चा चा चा। उसे केके दिखाई पड़ता है। वो हँसता, ताली पीटता, पंजे ठोंकता।

मैं कितनी अकेली हूँ, बेटी घबरा जाती है। मैं कहाँ हूँ? मैं हूँ? किसी की? अपनी? न केके की, न अपनी।

वो अकेली है। वो कौन है? बेटी उसे दूर कोने से देखती है। मैं कितनी अकेली हूँ। केके मैं तुमसे कैसे तो बात करूँ? वो अपने से क्या बुदबुदाती रहती है, कौवे से बोलना वो ही हुआ, बेटी उकता चुकी है। दूर कोने से वो बीच आ जाती है। अम्मा, ऊब से पुकारती है। पैर ज़रा कस के पटकती है।

भिड़े दरवाज़े से इनटेरोगेटर आते हैं, कौवे को देखकर लौट जाते हैं।

या थक चुके हैं। सब चाहते हैं जल्दी ये मामला रफ़ा दफ़ा हो और पागलपन की बातें इन्ही प्राचीरों में दफ़न हों।

पर वो भी खतरनाक मोड़। कहीं अनारकली गाने लग गयी जब प्यार किया तो डरना क्या!

या ऊपर से हुक्म के इंतज़ार में हैं कि प्यादे के संग क्या अगली चाल चलो? इस इंतज़ार में ढेर हो रहे हैं कि कब इन्हें ढेर करो? चलाओ कलैशनिकोव और निवृत्त हो जाओ।

कि चल जाती है कलैशनिकोव। नवाज़ भाई भिड़े दरवाज़े से टकराते सहन में ऐसे उछल के पड़ते हैं जैसे बन्दूक से गोली नहीं, अबके उन्हें दागा है।

बेटी फडफ़ड़ा के कोने पे खड़ी हो जाती है, कौवा उड़ के दीवार पे फुदक जाता है।

मुबारक हो, नवाज़ भाई छलछलाते हैं, बड़े साहब आ रहे हैं आपसे मिलने। वही, जिनसे आप मिलना चाहती हैं। वो समझ जाएँगे। आपकी रिहाई का हुक्मनामा आया समझिये।

बेटी दौड़ के सामने आ जाती है। नवाज़ भाई अब रुख़सत करवा दीजिये। अपना फ़ोन नम्बर दीजियेगा। मैं देश से आपको फ़ोन करूँगी। मुँह से बेसाख्ता वलवल होती चली जाती है।

तौबा तौबा, नवाज़ भाई हाथ जोड़ देते हैं। ऐसा भूल से न करियेगा। बस मनाइये कि दोनों मुल्कों में तमीज़ तौफ़ीक लौटे, सयानफ़ आये, और हम आज़ादी से आये जाएँ। वर्ना यों ही ढेरों बेमतलब क़ैद में पड़े रहेंगे। दोनों तरफ़। मेरे ख़ालू सत्रह साल से उधर हैं। उनकी आँख से एक आँसू ढुलक आता है।

खूनियों के नर्म गाल पर भी। बेटी चुन्नी में सिसक छिपाती है।

माँ के हाथ मिट्टी में लिपटे थे। वो धीरे धीरे उठी। पूरी खड़ी हुई। फिर धीरे धीरे मुड़ी जैसे गोल घूमती गुड़िया। नवाज़ भाई की आँख से आँसू ढुलक गया। चारों ख़ूनी के नर्म गालों पर भी।

ऐसा क्यों होता है? हमारे संग ये क्यों हुआ? हम क्यों नहीं मिल पाए? वो मिट्टी से आँख उठा के कौवे से पूछती है। उसकी आँखें चिंगारियाँ। तुम कहाँ थे, उदास स्वर में पूछती है। फिर हड़का के, डर गए?

कौवे का स्वर आया काँ काँ। कि हाँ हाँ।

या माँ माँ।

दफ़्तर लगा है। पर अफ़सर अली अनवर हैं कि माँ, ये देखने से ज़ाहिर नहीं।

सामने कुर्सी और मेज़। उस पर तैनात स्पेशल ऑफ़िसर ऑन ड्यूटी, अली अनवर।

छोटे से सहन में उनके पीछे हाथ बाँधे खड़े नवाज़ भाई, चार मासूम ख़ूनी, चिड़िया मुँह वाला, और भी दाढ़ी वाले, गाढ़े रंगों में, कलैशनिकोव, मीनार से दीवार पर उतरा कौवा, पास कोने में कुर्सी पे बैठी चुन्नी में आँखें झंकाती बेटी। मेज़ के सामने पर उससे सटी नहीं, एक कुर्सी। जो ख़ाली थी। क्योंकि माँ अपने पौधों में झुकी थीं।

वो खड़ी हुईं थीं और वही चूल पर जैसे गुड़िया, घूमती हुई सबकी तरफ़ मुड़ीं। धीरे से। उन्होंने नए आये अफ़सर से आँख मिलायी, नए अफ़सर ने फ़ौरन अपनी झुका दीं। मिट्टी भरे हाथ माँ ने ऊपर झटके और बन्दूक की चटाख सा ऐलान किया — अली अनवर उर्फ़ नन्हे मियाँ। मिट्टी का फ़ौवारा हवा में उछला।

नवाज़ भाई ने उनकी छड़ी उन्हें पकड़ाई और उसे बेंत की तरह झुलाती वो कुर्सी तक आयीं और बैठते हुए बोलीं बैठिये क्योंकि अली अनवर खड़े हो गए थे।

बेटी की आँखें फटी की फटी। रुका नहीं जाता और बोल मुँह से फूटने लगते हैं। पर कोई उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दे रहा। हाँ, कौवा एक दो बार फुदक फुदक उसकी तरफ़

दीवार तक आ गया है, मगर कौवों की तो अपनी धुन, सारे में फुदकते फिरते हैं कि कभी तो मिलेगा, कहीं तो मिलेगा, स्वादिष्ट एक ग्रास।

बेटी बेखुदी में रहती है, चहारदीवारी से बुदबुद करती। अभी भी। कि ये हैं अली अनवर? इसे अम्मा अपना शौहर बता रही थी? मैं कितना डरी हुई थी, अपने मन में उसकी ये बात आने नहीं देती। भूले से बात याद आती, उसका पुलिस स्टेशन में ग़लत नाम बताना, उसका माथे पे बालों की बनती नोक के मतलब सुनने पर अपना दिखाना, ऐसी यादें, उनकी हल्की सी आहट और मैं सतर्क हो जाती। आउट। गेट आउट। यों ही ज़िन्दगी उलझ गयी है। और उलझाने की इजाज़त नहीं देती। नहीं, मैंने कभी विश्वास नहीं किया। कोई न कोई घपला है इसके दिमाग़ का। पर बात सुनने में भी हलचल पैदा करती है, इसलिए आउट प्लीज कीप आउट। मगर आज तो सबूत है, इसका दिमाग़ सटक गया है। इसे अपना शौहर कहती रही है? अरे ये तो मेरी उम्र का होगा। या आसपास। थोड़ा बड़ा? या थोड़ा छोटा। कहीं से नाम सुन लिया होगा और कहीं अपने हिले दिमाग में उसे अटका लिया। बेचारी। शायद कुछ ज़्यादा ही हो गया उसके लिए। शायद सोच में कोहरा भर गया है। अम्मा। मेरी। मुझे तुम्हे सँभालना होगा। पर करूँ तो क्या करूँ? यहाँ मेरे बस में है क्या? खुदा करे, अल्लाह, भगवान, रब्ब, केके, बड़े, राहत साहब, मिस्टर एम्बेसडर, भाभी, जनाब इन्शाअल्लाह, कोई तो निस्तारो।

बेटी कुछ वैसी ही जैसे बड़े की पत्नी हर भगवान के आगे शीष नवाती, आरती घुमाती। आ गए संकटहर्ता। गॉड ऑलमाइटी। परवरदिगार।

अरे, हकबका के सामने आती है। जैसे अपनी क़ैद से खुद को छुड़ा के। आपका इंतज़ार था। आप आ गए। आपका सहारा है, आप पढ़े लिखे हैं, आप उन एम्बेसडर से पूछ लें जिन्होंने हमारा यहाँ आने का इंतेज़ाम करवाया, हमने कुछ नहीं किया है, आप हमें रिहा करें, वो सहन में बिखरती है।

चिड़िया-चोंच उसे बैठ जाने का इशारा करता है।

आपका नाम? अली अनवर पूछ रहे हैं। माँ से।

लो, तुम्हे ये नहीं बताया गया कि किससे मिलने जा रहे हो? माँ पूछती है।

अली अनवर नीचे मेज़ को देखते हैं, फिर ऊपर, मगर कभी माँ के बायें, कभी दायें। आप यहाँ कैसे आ गयीं?

तुम्हारी इस फ़ौज, माँ हाथ सबकी तरफ़ घुमाती है, जैसे झाडू फेरती हो, ने ये भी नहीं बताया? हाथ से अभी भी मिट्टी निकल रही है।

अली अनवर बहुत शाइस्तगी से बोलते हैं — ख़वातीन, आपने बहुत ग़लत किया है। बाहेर ख़तरा है, आपको इल्म नहीं।

फिर तो शुकर कि तुम्हारे लोग हमें यहाँ ले आये, माँ मुस्कराती है।

सही कह रही हैं, ख़ातून, आप यहाँ महफ़ूज़ हैं, बाहेर पता भी नहीं चलता कि कोई ग़ायब है, तालिबान के हाथों में पड़ गया कि इन्ही घाटियों में कहीं दफ़्न हो गया। हम चाहते हैं आपको सही सलामत वापस भेज दें।

वापस ही आई हूँ। माँ उसकी आँख में आँख डालती हैं। अली अनवर आँखें और नीची कर लेते हैं।

मोहतरमा, आप जानती हैं आप बिना वीज़ा के हैं।

वीज़ा मेरे लिए क्या? आज तक नहीं माना, अब इस उम्र पे मानूंगी? माँ कहती हैं जैसे सौ बरस की हैं। कि दो सौ की। कि सदियों से सदियों तक।

आप जानती हैं ये जुर्म है। आप सरहद पार करके आई हैं। अली अनवर की आवाज़ सूत भर ऊँची।

बेटी एक कदम माँ की तरफ़ लेती है और तीन कदम पीछे हो जाती है। कौवा जहाँ था वहीं रुक जाता है, गर्दन तिरछी करके कुछ इस अदा से बुत बना है कि एक पंख गौर से सुनने के लिए एक गाल पर रख लिया हो और अपलक सुन रहा हो।

क्योंकि माँ छड़ी मिट्टी में टिका के उठने लगी हैं। उठती जाती हैं। खड़ी होने को। उसके बाद भी उठती जाती हैं। जैसे छोटी नहीं, लम्बी होती जाएँ, ख़ैबर के आसमान से सिर सटाती। और अब वो ऊँची खड़ी हैं और सब आँख ऊपर किये एक हाथ गाल पर दिए सुन रहे हैं।

सरहद, माँ कहती हैं। सरहद? जानते हो सरहद क्या होती है? बॉर्डर। क्या होता है बॉर्डर? वजूद का घेरा होता है, किसी शख्सियत की टेक होता है। कितनी ही बड़ी, कितनी ही छोटी। रूमाल की किनारी, मेज़पोश का बॉर्डर, मेरी दोहर को समेटती कढ़ाई। आसमान की सरहद। इस बगिया की क्यारी। खेतों की मेड़। इस छत की मुंडेर। तस्वीर का फ्रेम। सरहद तो हर चीज़ की है।

अरे लेकिन सरहद निकालने के लिए नहीं होती। दोनों तरफ़ को और उजालने के लिए होती है।

तुमने मुझे निकाल दिया। मैं निकल जाऊँ? नहीं।

सरहद बंद नहीं करती, खोलती है। आकार बनाती है। किनारा सजाती है। किनारी का इस तरफ़ भी खिल जाता है और उस तरफ़ भी। नक्काशी कर लो, बेलबूटे टिमका दो, असली नगीने लगा दो। क्या है बॉर्डर? वजूद को उभारता। ताकत देता। न कि चीरता।

बॉर्डर पहचान बढ़ाता है। जहाँ दो तरफ़ मिलते हैं और दोनों तरफ़ खिलते हैं। बॉर्डर उनके मिलने को सजाता है।

हर अंग की सरहद होती है। इस दिल की भी। उसको घेरे मगर उसको बाहर के अंगों से पुल की तरह जोड़े। न कि तोड़ने, दिल के भीतर और दिल के बाहर। मनहूसों, दिल के बीच में सरहद खींच दोगे तो उसे बॉर्डर नहीं कहते, चोट कहते हैं। दिल की सरहद में दिल लॉक कर दोगे तो दिल टूट जाएगा।

गधों, सरहद कुछ नहीं रोकती। दो अंगों के बीच का पुल होती है। रात और दिन के बीच। ज़िंदगी मौत के। पाने खोने के। वो जुड़े हैं। उन्हें अलग नहीं कर सकते।

सरहद क्षितिज। जहाँ दो लोक मिलते हैं, गलबहियाँ करते हैं।

बॉर्डर इश्क है। इश्क जेल नहीं बनाता, हर रोक लांघने के लिए सितारे बिछाता है। बॉर्डर मिलन की रेखा है। इधर और उधर के जोड़ को अगल बगल लाकर खुशनुमा बनाने

को। दोनों की मुलक के लिए होता है। दोनों की मुलाक़ात के लिए होता है। संगम।

सरहद खेल है। बड़ा लज्ज़तदार। एक लाइन खींच दी। इखट दुखट खेलने लगे। ऐसे। कूद कूद। एक रस्सी बाँध दी। उस पर झूल पड़े। इधर भी उधर भी। ऐसे। फिसलो इधर भी उधर भी। ऐसे। नट की तरह चलो झूमो गिरो दोनों तरफ़। ऐसे। मुकाबले में हँसते हुए। एक खेल। हँस हँस के खेलो। हमारा पाला, तुम्हारा। गेंद उछालो, मारो, उड़ती जाए सरहद पार — छक्का! सरहद छुल जाए — चौका! सब राज़ी ख़ुशी।

सरहद पर मस्तियाँ। वहीं गाने बनाओ, वहीं नाचो, कविता कहो। बॉर्डर को आगे सुघड़ाते। बेइन्तेहाई में, बेख़ौफ़ होकर। हद पाओ। सरहद, किनारा। पर वहाँ ठुंक न जाओ। न ठोंक दो। बॉर्डर को आगे करो, आगे, और आगे, किसी प्यारी, संजीदा, निडर बनावट में। जैसे अदृश्य रस्सी को बल दे रहे हो। आगे और आगे। बिना सन्तुलन खोये बिना तोड़े बिना टूटे। उस पार निकल आओ।

सरहद, भलेमानस, पार करने की चीज़ है।

बॉर्डर माने कूदो। है ही कि लाँघो, लौटो, खेलो, मुस्करा के स्वागत करो, वहाँ मिलो रचो।

मज़ा है उसे लांघने में। सारा लेन देन वहीं होता है। सरहद अपने को दर्शाती है दूसरे से राब्ता करने। एक है तो दूसरा है। मोहब्बत में।

नफ़रत में हो गए तो जो खून ताक़त पहुँचाने इधर से उधर धमनियों से जाता है वो छिटक जाएगा और बहेगा, दोनों अंग तिलतिल मरेंगे। ये कौन बेवकूफ़ चाहेगा?

ये तुम बेवकूफ़ चाहते हो। तुमने सरहद को नफ़रत का बाइस बना दिया। दो वजूदों में मज़ीद निखार लाता खूबसूरत बॉर्डर नहीं, दोनों को मारता, रक्तनली को काटता हैवान। नादानों, ये सिर्फ़ तुम जैसी कच्ची बुद्धियाँ ही गुमान कर सकती हैं कि तुमको मारूंगा, मुझे कुछ नहीं होगा। बच्चों, खून से चलते बॉर्डर्स का एक ही हश्र मुमकिन है। खून नलियों को फाड़ के बहेगा और सारे अंग सूख के अकड़ जाएँगे और फिर करते रहना अल्लाह हो अकबर और हरे रामा हरे कृष्णा।

ये जो सरहद है, हमारे तुम्हारे ज़माने के फर्क की बात है। तब हम इस तरह नहीं डरते थे। हर चीज़ में बम नहीं छिपा था। इस छड़ी में, उस गमले में, मेरे नाख़ून में। कि सारा वक्त इसी में ज़ाया करो, बम स्क्वाड, सुंघाई, ठोंक ठोंक, जाँच जाँच। दुनिया ऐसी नहीं थी कि जहाँ देखो वहाँ हम अजनबी, हम विदेशी। हवा साफ़ थी और ज़र्रा ज़र्रा चमकता था। सीधे सरल दिन। धूल धूल थी न कि अदृश्य, अनजान, ज़हरीला रसायन। हमें अपने जज़्बात मालूम थे। शोहरत पैसा मुकाबला ताकत के डंक मारते बर्रे नहीं थे। आसमान ये आधी मु_ ◌ी नहीं था जो तुम कंजूसों ने ऊपर तान दिया है। ये दीवारें नहीं थीं जो घर को बंदीघर बना दें। हमारे दरवाज़े खुले रहते। उनमें आँख जितनी झिर्री नहीं थी और वो भी ऐसी बेहया नहीं कि उसमें आँख डाल के देखने के बजाय बंदूक की नली जा बैठे। सरहद जो होतीं उनका आर सुन्दर, उनका पार सुन्दर। सरहद पर प्यार और इज़्ज़त। सरहद पे बच्चों का स्लाइड कि हँसो और फिसल इधर फिसल उधर।

ये ही जान कर इंतज़ार हुसैन निकल पड़े कि इधर घर है और उधर एक नयी सरहद के पार कुछ नया लुत्फ़ है, क्यों न आज़माएँ? निकल पड़े ढेरों इन्तेज़ार कि चलो, फिर लौट आएँगे।

उन्हें क्या पता था तुम एक अलग क़ौम हो। कायनात का गला घोंटने में अपने को तोप समझते हो। तबाही की चीख पुकार को ज़िन्दगी के गुलज़ार होने का आग़ाज़ समझते हो।

नहीं लौट पाए सारे इंतज़ार। उनका डिबई छूट गया, वो हर तरफ़ बेगाने हो गए। और बॉर्डर? हो गया जुर्म और क़त्ल का भूखा कि धूप और हवा की जगह वहाँ घूमें निर्भय नरभक्षी। छलनी यादों के सिवा क्या हाथ लगा चाहे इस ओर या उस, और इंतज़ार साब रोते रहे कि मैं तो यादों का धुनिया हूँ, वही रह गया।

है कहाँ सरहद? मियाँ एक पेड़ पर पिछवा ने झंडा फहरा दिया, सरहद बन गयी। जोगिन्दर पाल के दीवाने मौलवी साहब तो कराची पहुँच गए पर उनके लिए सरहद नहीं बनी, वो मानते रह े कि वो अपने उसी पुराने लखनऊ में आबाद हैं। तुमने अपने मन में सरहद बना दी। नाम बदल दिए, जगह तो वही रही, लोग वही रहे।

अहमक न बनो। जो कहती हूँ करो। कंटीले बॉर्डर के बीच से हवा की तरह बहो। बिजली हो जाओ, अगर बिजली के तार हैं। खेलो अच्छे खेल, अच्छे होकर। अच्छे को रोकोगे तो बुरे को हथियाते कब देर लगी है? तुमने डर का खेल बना दिया है। कुत्तों की लड़ाई बना दी है। भौं भौं, ये मेरा इलाका, मूत के बॉर्डर बना दिया, अब जो आया तो भौं भौं, कच्चा चबा जाऊंगा।

सरहद लालचियों के हवाले न करो। उनके लिए खून और ज़ुल्म मुफ्त। और धूप, आसमान, हवा, तस्करी।

मत मानो बॉर्डर को। बॉर्डर से अपने टुकड़े मत करो।

हमीं हैं। हम नहीं मानेंगे तो ये दीवार नहीं रहेगी।

माँ ने छड़ी से एक लाइन बना दी। उसके आरपार होने लगी। कभी कूदती, कभी झूलती। हाथ और पाँव फेंक के खेलती, मिट्टी धमकती। उसकी आवाज़ ऊपर जाती, नीचे आती। उसकी आँखें कभी सुलगतीं, कभी हँसतीं। और कभी लाइन पर खड़ी वो गोल गोल घूमने लगती, छड़ी उठाके सबके सिरों पर धीरे धीरे नचाती कि उन्हें ही दायें बायें होना पड़ता।

नौओं रस छिटकते हैं।

सब खड़े हो गए हैं, रंगबिरंगे होकर। अली अनवर का मुँह लाल, दढ़ियलों का पीला, खूनियों का हक्का बक्का, नवाज़ भाई का मोमिल, बेटी का भयभीत, कौवे का गर्वीला। किसी के मुँह से न पीं न चूँ।

माँ चुप हो जाती है, धीरे धीरे बैठने लगती है जैसे अपने में गहरी उतरती जाती। बैठने के बाद भी उतरती जाती है, जैसे मिट्टी में दब जाने।

जाओ, वो सिर फेर लेती है, मेरा मन उदास है। बहुत लोग मर गए हैं।

जाने का पता नहीं पर फिर आने का पता है। अली अनवर के। क़ैदी माँ के बॉर्डर भाषण बाद। मगर एक दिन बाद कि दो दिन बाद, ये अनुमान किसी ने नहीं लगाया। बस ये हुआ कि खुला दरवाज़ा खुला और पूरी मंडली अन्दर आई और उसी रंग ढंग में, जिसमें पिछली दफ़ा आ गयी थी, फिर से टिक गयी। यानी सब सन्न, अली अनवर लाल, चिड़िया मुँह और इंशाअल्लाह और बाकी दढ़ियल पीले, खूनियों के होश हक्का बक्का, नवाज़ भाई का चेहरा मोमिल, बेटी का भयभीत, कौवे का गर्वीला, न पीं, न चूं। सब बुतमय खड़े। जैसे वो पिछला पल वहीं का वहीं रहा, कोई अन्तराल नहीं आया, और अब भी क्या आगे बढ़ेगा?

माँ पौधों से घिरी, धीरे से मुड़ी, छड़ी लेकर धीरे से कुर्सी तक आई, छड़ी उसकी पीठ पर टिका के अबके उसने खुद दोनों हाथ झाड़े और धूल झड़ी, और धीरे से बोली बैठो, बैठते हुए।

अली अनवर बैठ गए। और सब खड़े रहे। कौवे ने आदत के विपरीत बहुत बेआवाज़ उड़ान ली और ऊपर दीवार पर खड़ा हो गया। उसने पंख जैसे ही गाल पर रखा बाकियों को क्यू मिला और वे भी गाल हाथ में सुस्ताने की मुद्रा में ले आये।

अब सब चुप, मानो पता नहीं कि कौन सरदारी करेगा और बोलेगा, माँ या अली अनवर?

सब चुप।

जैसे भाँग खाए। इंतज़ार कि एक फूटे और सब बेसाख्ता फूट पड़ेंगे।

माँ का चुप, अपने में खोये हुए, हवा को असहनीय करता हुआ। पर तभी माँ ने हाथ से इशारा किया — आगे?

मोहतरमा चंद्रप्रभा देवी, अली अनवर ने नीची निगाहें रखीं।

मोहतरमा चन्द्रप्रभा देवी, माँ तंज़िया मुस्कान डुलाने लगीं।

बेटी की एक साँस उसकी पकड़ से छूटकर निकली और पटाखे की तरह नीचे गिरी।

मोहतरमा, अली अनवर ने सँभले स्वर में कहा। आप अपना सामान सँभालें। आपको सलामती से लाहौर हवाई अड्डे पहुँचा दिया जाएगा और वहाँ से...

माँ ने बीच में काटा, मेरी मूर्ति कहाँ है?

अली अनवर की आवाज़ ज़रा कांप गयी। वो, उन्होंने चुप समेटा, आपकी नहीं है।

और किसकी है भई, माँ ने फटकारा? वो मेरे संग रहती है।

वो यहाँ की है, यहीं रहेगी।

मैं भी फिर यहीं रहूंगी। उसके साथ।

वो आपके पास कैसे आई? म्यूजियम ने रिपोर्ट भेजी है। सिकरी, जिला मरदान, ख़ैबर पख्तूनवाला की है। ईसा से दो संेचुरी पहले की।

हूबहू वैसी ही लाहौर म्यूजियम में है। माँ ने सुनाया जैसे दोनों सहमत हैं और एक दूसरे की बात बढ़ाते हैं। वही पर्तदार पत्थर, वही गहरा रंग। हमने देखा था। तभी मैंने उठा लिया था।

वो चोरी हुई।

क्यों बेटे, एफआईआर दर्ज हुई है?

उसका हवाला किसी जगह नहीं है मगर असली है ये पता चल गया है।

मैं भी मेरे बच्चे, असली हूँ। हवाला किसी जगह हो न हो।

वो यहीं पायी गयी है। ये ही है उसका मुल्क।

मैं भी यहीं पायी गयी। बताओ मुझे, कौन सा है मेरा मुल्क? पूछो अपने बाप से।

अली अनवर का चेहरा कुछ तमतमाता सा, आप ऐसी वैसी बातें न करें।

पूछो अपने बाप से ये ऐसी वैसी बातें हैं?

उनसे आपका क्या लेना देना? आप अपनी कहिये, यहाँ की कहिये। बेहतर हो कि सीधी सीधी कहिये।

सीधी कहूँगी, उनसे कहूँगी, तुम्हारे वालिद मियाँ से। उनसे मिला दो।

उन्हें आप इन बातों में मत लाइये।

मत लाइये? वो इन बातों के बीचों बीच हैं।

क्यों बेसिरपैर की करती हैं मोहतरमा? ये सरकारी केस है, खेल नहीं।

सरकारी केस खेल ही होता है बेमतलब बेग़ैरत। बदनसीब बदगुमान। बेशऊर बेईमान।

प्लीज़ आप चुप हो जाइये।

वो चुप हो जाएँगे? उन्हें बुलाओ, देखें ज़रा।

उन्हें हम क्यों बुलाएँ? उनका इस सब से क्या वास्ता?

उतना ही जितना एक शौहर का अपनी बीवी से।

फिर क्या हुआ? सब एक तरफ़, माँ एक तरफ़। कोई उठा, कोई गिरा। किसी का दिल धड़का, किसी का सब्र चटक़ा, कुछ बवंडर सा उठा। अली अनवर ने सर पकड़ लिया। कलैशनिकोव ने खूनियों को मुश्किल से सम्भाला। इंशाअल्लाह के मुँह से निकला याखुदा। नवाज़ भाई ने एक कदम माँ की तरफ़ बढ़ाया और लडख़ड़ा गया। दूसरे दढ़ियल कभी बायें घूमें, कभी दायें, फिर अपना नाख़ून चबाने लगे। और चिड़िया मुँह का मुँह इतना खुला कि चिड़िया नीचे लुढ़क गयी और न जाने कब फुर्र हो गयी।

कौवा तक सफ़ेद हो गया।

बेटी एक कदम आगे हुई फिर तीन कदम पीछे और फिर रोने लगी और मिन्नतों से सहन को भरने लगी। वलवल वलवल उसके शब्द। माँ से, अम्मा, गज़ब न करो, छोड़ रहे हैं तो निकल चलो। नवाज़ भाई से, आप इन्हें समझाइये, इन्हें चुप रहना चाहिए। कौवे से, कुछ ऊपर हिल गया है क्या इनका, खुद भी जान से जाएँगी और मुझे भी डुबायेंगी। खूनियों से, मत मारो हमें, हम ऐसे ही मरी जा रही हैं, मुझसे उठा नहीं जा रहा, इन्हें मत बताना, कहेंगी खून में कमी है, कहेंगी चिकन सूप पिलाओ मुझे, कहेंगी यहाँ बाज़ार से मल्टी विटामिन ले आओ इसके लिए। दढ़ियलों से, बारी बारी एक एक से मुखातिब होकर, ये जेल है, हमने

कुछ नहीं किया, इनकी उम्र में दिमाग घूम जाता है, आपकी भी बूढ़ी माँ, बूढ़े बाप होंगे, कहेंगे ले चलो, मेरी है आखिरी तमन्ना तो आप भी वही करेंगे जो मैंने, ये भूलभाल गयी हैं, ये मुझे, अपनी बेटी को भी भूल गयी हैं, बेटे को भी, ये घर भूल गयी हैं और इसे ही घर सोच रही हैं, बगिया लगा दी है, फूल बो दिये हैं, पर ये तो क़ैद है, ये हमारा जीवन नहीं, ये मेरा जीवन नहीं, मैं अलग तरह की औरत हूँ, मैं अलग रहती हूँ, मैंने अलग तरह से जीने की ख्वाहिश की और सबसे अलग रही, मेरा वो घर...मेरी वो किताबें...संगीत... मेरी रात की नुई काल्म...दोस्त... केके...पुराने सिक्कों की लम्बी माला...हमेशा पहनती थी उसे...नहीं लायी कि जल्दी लौटना है यहाँ चेकिंग में हर बार उतारती ही रहूंगी...पता होता...कि ये...तो ले आती...वो मेरी शख्सियत का हिस्सा है...वो लंडीकोतल बाज़ार में नहीं मिलेगी। अली अनवर से, आप समझते क्यों नहीं, इनको पता नहीं ये क्या कह रही हैं, मैं भी पागल हो रही हूँ, मेरा दम घुट रहा है, अली अनवर जी, भाई, आप मेरे भाई हैं।

हाँ, माँ बोलीं, ये तुम्हारे भाई हैं। जाओ कह दो अनवर से अनवर तुम्हारी बीवी आ गयी।

कौवा सँभल चुका था। बोला वाह।

OceanofPDF.com

केके, मैं जा रही हूँ। हमेशा के लिए बिछड़ रही हूँ। तुम्हारा साथ मेरे लिए कितना अहम था, जाते जाते कह देना चाहती हूँ। तुम्हारे संग जीना जीना हो गया। हमारी लड़ाइयाँ भी हमारे रोम रोम को जिला गयीं।

शुक्रिया केके, मुझे वो लम्हे देने के लिए शुक्रिया। वही चाहती थी जो तुमने दिया। मगर अब मैं जानती हूँ कि हम जैसे जीना चाहते हैं और जिस तरह सो कर सुबह जागना चाहते हैं, नहीं होने वाला।

तुम्हे लिख रही हूँ, प्यार। हो सके तो महसूस करो और इस बिछोह को सहने का मुझे हौसला दो।

ये ख़ैबर है। यहाँ कहीं समुद्र होता तो मैं इस खत को एक शीशी में डालकर ढक्कन लगाकर चुपके से जाती उस दरवाज़े के पार और सागर में बहा आती। कि एक दिन ये तुम तक पहुँच जाए।

मगर ख़ैबर में सिर्फ़ ये पहाड़ियाँ हैं। यहाँ आना आसान है मगर निकलना नामुमकिन। हवा भी एक बार जो घुस ली तो यहीं दम तोड़ती है। हाँ एक कौवा है जो आजकल माँ का साथी बना है। जैसे पहले वो श्यामा चिड़िया, याद है? पर उसे कबूतर होना चाहिए था। तब उसकी गर्दन में इसे बाँध देती और मेरी आखिरी इच्छा के ज़ोर से वो आप ही तुम तक उड़ता पहुँच जाता। मैं तुम तक।

पर कौवा किस काम का? और खिजाता है मुझे। उनकी बकवास के आगे ऐसे चक्कर काटता रहता है जैसे दिल में बात उतर रही हो। उन्हें बढ़ावा मिलता है। उन्हें समझ नहीं आता कि वो रोटी बोटी के लालच में उनके चारों ओर फुदक रहा है।

हाँ मेरी बोटी शायद तुम तक पहुँचा दे। मेरा कोई टुकड़ा, हड्डी का टुकड़ा चबाता तुम्हारे आगे गिरा आये। तुम चौंको, अरे ये तो ह्यूमन है। हाथ हो मेरा, जिसकी छोटी उँगली बाकियों से बहुत छोटी है। तुम्हे याद आ जाए अरे ये तो मेरी जान का है जो गयी अपनी जान से। या पाँव का ढांचा ले जाए तो भी पहचान सकते हो, अँगूठा अलग, खासा लम्बा। अगर गौर किया है।

कहाँ सफ़र कर रहे थे, बस में कि ट्रेन में, किस आर्टिकल के लिए खोजबीन करते, जब तुमने मेरे पाँव को अपनी गोद में रखकर कहा था सुंदर नहीं हैं पर प्यारे हैं, मेरे लाडले हैं। तुम चिढ़ा रहे थे। याद है? कहाँ था? कब था?

तुम्हे कुछ याद है? मैं याद हूँ? या अम्मा की तरह सब भूल गए हो। अपने जीवन में आगे निकल गए हो?

फिर भी तुम्हे बताना चाहती हूँ, अब जब बचने की कोई चांस नहीं रही, कि केके तुम सोच नहीं सकते क्या हो रहा है मेरे साथ। कहाँ लाकर पटका है इसने, माँ हैं ये मेरी, मुझे। इतने अनरियल से ड्रामे में। जो उनको इतना रास आ रहा है कि वो तो उसे खेलते ही जाना चाहती हैं।

उनका क्या? वो अस्सी की हैं। उन्हें क्या डर? ख्वाब गढ़ते हुए जाएँ।

पर मैं, मैंने ये नहीं चाहा था कि नहीं?

कल मैं उनसे लड़ पड़ी। आप एक के बाद एक झूठ बनाये जा रही हैं।

पर उन्हें तो जैसे पता ही नहीं। कोई झूठ नहीं, वो मुझे ही डाँटने लगीं।

मुझे लगता है अपनी उबाऊ ज़िन्दगी को रंगीन बनाने की चाह में वो ये करने लगीं। शायद मुझे उन्हें अपने घर नहीं लाना चाहिए था। मेरे जीवन पर उन्हें रश्क आता था। कि अपनी मर्ज़ी की मालिक हूँ, दूसरों की ज़िम्मेदारियों से बरी। जब जहाँ चाहा चल दी, जब जिसे चाहा ले आयी। कोई रोकने टोकने वाला नहीं, कोई बंदिश नहीं। ज़िद हो गयी कि मुझसे रेस करें, मुझसे आगे निकलें। कपड़े उतार फेंके। बदन को ऐसा खोल दिया कि जहाँ हो वहाँ खुला पड़ा और वो हैं कि बेखबर मस्त गा रही हैं। उस रोज़ी के साथ। रोज़ी से दोस्ती की, जो कोई सही नहीं मानता। मेरे सिवा। मैंने कभी नहीं रोका। मैंने बढ़ावा दिया। रोज़ी रज़ा बहरूप चला तो वो भी मैंने चलने दिया। मेरे घर का, मेरे पूरे रहन सहन का नक्शा पलट दिया, उस पर भी मैंने साथ दिया। अपने बारे में अजीबोगरीब किस्से गढ़ने लगीं कि देखो मेरे भी विडोज़ पीक है। नाम भी मन-गढ़न्त सोच लिया। अनवर! उस नाम का पीछा करते करते यहाँ आ धमकीं। कल तक वो कहानी चल गयी तो धुन ये कि स्पेशल ऑफ़िसर से मिलना है, शौहर शौहर। वो बच्चा निकला तो अब बाप की तलब लग आई।

आपको ज़रा भी हमारा लिहाज़ नहीं हुआ? कितनी हमारी हँसी हो रही है, कितनी छीछालेदर सबके आगे। अपनी उम्र का ही लिहाज़ करिए। शादी शौहर प्यार मोहब्बत ये ही कहानियाँ आपको सूझ रही हैं? अपनों को और उनके हित को एकदम भूल गयी हैं? कैसी माँ हैं आप?

इस पर पता है क्या कहने लगीं? कि भूलना किसे कहते हैं सोचो। जो होता है सोच के होता है कि भूलकर? जो हुआ सोचने वालों ने किया कि सोच बंद कर देने वालों ने? भूलना मर जाना है। मैं मरी नहीं हूँ। मैं रेत में अपने पीछे सब दबा आई थी, आज उसी रेत पे फिर आ गयी हूँ। ऐसा कुछ।

मैं चिल्लाई कि आपकी ये रेत यादें हमें मौत के मुँह में ले आई हैं। आप सपने देखें, उन्हें यादें समझें, लें मज़ा अपने रचे खेल का, चलचलाव के आपके दिनों में।

नहीं इतनी बेशरमी मैं नहीं कर पायी कि आपका क्या, आपका जो होना था हो गया, अब असल में रहें या कहानी में। इतना कहा कि मैं, मुझे तो अभी और जीना था। मैंने ऐसे तो नहीं जीना था। मेरी साँसें यहाँ खो गयी हैं। अरे मुझे घर परिवार दूसरों के झमेलों में रहना था तो रह लेती कि नहीं उन औरों की तरह, दो चार बच्चे, घर बार नौकर, गाड़ी, कदम कदम पर कोई सँभालने वाला, अम्मा नानी रानी बेगम बनकर। रीबॉक भी पहन लेती कि लो ये भी

मेरे बस में। मुझे अपना जीना था। ज़रा जो आपका ख्याल कर लिया, ऐसी पटकनी मुझे लगा दी। साँस ही निकाल दी।

तुम चली जाना। पहली फ़ुर्सत पे। उन्होंने कह दिया जैसे हल ढूँढ़ दिया। मैं अनवर से कहूँगी।

अनवर, अनवर, ये नाम अब मेरे कानों में न जाने कहाँ कहाँ से बजता आ जाता है। पहली बार उन्होंने पुलिस स्टेशन में ये नाम लिया। शायद हम समझे नहीं वो पापा के बाद वाकई बीमार हो गयी थीं, बहुत डिप्रेस्ड। शायद दिमाग तभी गड़बड़ा गया। अकेला होना बर्दाश्त नहीं हो रहा था तो बीमार दिमाग ने एक शौहर रच दिया और खुद अपने गोरख टंटे में फँसकर, झूठ के सहारे जी उठने की महात्वाकांक्षा में, झूठ से झूठ जोड़ती चलीं, और यहाँ हम पहुँच गए। क़ैद।

कि पागलखाना।

बुढ़ापे में बच्चा हो जाना तो सुना है। मगर खुद को युवा समझने लगना? कितना भोंडा लगता है। और मुझे जवानी में बूढ़ा करके ख़ैबर में मरने ले आई हैं।

हाँ ख़ैबर ही होना था। इतने अनरियल नाटक के लिए ये ही सैटिंग बेस्ट। या टिम्बक्टू होता। या चन्द्रमा। या मार्ज़। दुनिया जहान से निराली जगह। अपने ही बनाये नाटक में माँ आनन्दित हैं। कि मर भी जाएँ तो फड़कती मौत होगी। क्या सोलिलोक्वी की अदाकारा बनी हुई हैं। सुनते तुम उस दिन बॉर्डर पे उनके संवाद और देखते हम दर्शकों के बेहाल।

कुछ तो अपने को समझाइये। अपनी उम्र देखिये। मेरी उम्र देखिये। अली अनवर पे आप सब निपटाने वाली थीं। वो न हुआ तो उनके पिता की ले बैठीं। अब हमारी ख़ैर नहीं। देखा था कितने गुस्से से वो गए? हमीं से कोई लेडी आकर बोलें मैं तुम्हारे बाप की वो हूँ तो हम चुपचाप सह लेंगे? मैंने समझाया।

अगर वो तुम्हारे बाप की वो है, तो तुम्हे सहना नहीं, स्वागत करना होगा। वो ढिठाई से बोलीं।

वो आपके कुछ कैसे हो सकते हैं? मैंने उन्हें फिर समझाया केके।

वो मेरे ‘कुछ’ नहीं, मेरे शौहर हैं।

केके मैंने उन्हें याद दिलाया, माँ उनका धर्म दूसरा, देश अलग। इन नासमझी वाली बातों से क्या हासिल होगा।

हासिल, वो इतनी जोर से बोलीं कि ख़ूनी अन्दर झाँकने लगे। ये ही वो लफ्ज़ जो धर्मों देशों को बरगलाता है, बांटता है। हासिल करो, अलग होकर, साथ तोड़कर। मुल्क बनाओ, मज़हब बचाओ। मुल्क बनता है कि टूटता है? मज़हब बढ़ता है कि सिकुड़ता है? हासिल? क्या होता है हासिल? मुझे मत बताओ। मैं कुछ हासिल करने नहीं आई हूँ। हिस्सा माँगने, एक और बँटवारा करवाने, ये मेरी दिलचस्पियाँ नहीं।

तो क्यों आई हैं, मैं चिल्लाई।

एक मच्छर पता नहीं कहाँ से आ गया है, कान में भन भन करने। याद आ रहा है केके तुम्हारा दांत पीस कर छोटे से बेचारे मच्छर के पीछे भागना कि इस गधे को नहीं छोडूँगा।

केके कहते रहना मच्छर को गधा, मेरी आत्मा को तृप्ति मिलेगी। पर सुनो अम्मा को न बताना। वर्ना अगला चरण ये ही होगा कि वो मच्छर को अपना राजदां बनाये हैं।

मच्छर गधे ने भुला दिया, कहाँ थी मैं? हाँ, मैंने भी चिढ़ कर पूछा तो क्यों यहाँ आई हैं?

अजीब बेबाकी से कहने लगीं अपने शौहर से मिलने।

आप हिन्दू हैं वो मुसलमान, आपके शौहर, आपकी शादी? मैंने उनके झूठ की पोल खोलनी चाही।

तो केके उन्होंने उसका भी तोड़ तैयार रखा था। पूरा एक भाषण पिला दिया। कि तुम क्या समझती हो रिश्ते नाते सब तुम्हीं लोगों के आने के बाद आये हैं? क्या दुनिया में पहले लोग नहीं थे, उनमें अरमान उमंग नहीं थे? हमने भी जीवन जिया। हम भी पढ़े, मिले, साथ घूमे। हमने भी फ़ैशन बनाये, बिगाड़े। पहले हम अपनाते, फिर दूसरी जगहों में उसकी नकल होती। हमने भी प्यार किया। और सुनो जी इंसानी रिश्तों की सरहदें न कभी थीं न कभी होंगी। रूढ़ियाँ तब भी होती थीं, उन्हें तोड़ कर आगे निकल जाने वाले तब भी होते थे। हमारी क्लास के ठीक सामने जाफ़री सर की क्लास थी। वो फ़ारसी पढ़ाते थे, हम आर्ट करते थे। हम मिलकर उनके यहाँ जाते हलीम खाने, गोश्त खाने। मामा कहते मत जाओ पर ताया कभी मना नहीं करते। चची ने कहा जब खाने आओ, रास्ते में कहो लाईलाहा इलल्लाह मुहम्मदुर रसूलल्लाह। अब मज़े से खाओ। खाकर अपने घर लौटने में कहो ओमभूर्वसस्वाहा। सब दुरुस्त। कौसर हमारे यहाँ आती तो हँस कर कहती ओम शान्ति शान्ति। हँसी खेल में रास्ते बन जाते हैं। प्यार को देर सबेर सब मान लेते हैं। कुछ दिन बहस शिकायत चली, फिर हमने शादी की। कहती हैं कि एक था स्पेशल मैरिज एक्ट, 1870 का, कोर्ट कानून कि धर्म से अलग दो जन शादी कर लें, अगर उनके बुज़ुर्ग रजामंद हैं, और उन्होंने की।

हो ही नहीं सकता, कहीं दर्ज होता कि आपने ऐसा किया, कहाँ दर्ज है, मैंने उन्हें कॉर्नर किया तो उन्होंने तो छड़ी मेरे कन्धे पर दे मारी, ठीक है बहुत ज़ोर से नहीं पर बहुत गुस्से से।

दर्ज पूछती हो? जिन्होंने सबको इधर से उधर किया उनसे पूछो क्या क्या दर्ज है? जो आगे भागे और पीछे आग थी वो दर्ज है? कौन सा किसका घर था और कौन से टुकड़े उसमें छूटे उसके जिगर के दर्ज है? उसका रुक्का नहीं खोजते? और ये कि हम दो जन ऐसे हुए जिन्हें नाने और चचा ने आशीष दी, उसका पेपर माँगते हो? ज़िक्र से निकाल दो, घर से निकाल दो, झूठ की सरहद बना दो और मान लो हम थे नहीं? इस दुनिया में कितना है जो दर्ज नहीं इतिहास के पन्नों में। हवा में बह रहा है। पहचान सको तो पहचानो। उसको फेंको नहीं, उसकी इज़्ज़त अफ़ज़ाई करो। जब तुम्हे सुविधा बिना पेपर के तो कहो कि ये मूर्ति हमारी, जब नहीं तो कहो आपका सब कुछ झूठ? इस मूर्ति का तो कहीं ज़िक्र नहीं, किसी दफ़्तर में नहीं, किसी म्यूज़ियम में नहीं, इसको देखकर अंदाजें लगा रहे हो। हम दोनों को भी देख लेना। हम खुद अपना दर्ज हुआ रुक्का हैं।

वो अपनी कहानी में और गहरी उतरती चली गयीं। जितना उलझा सकें उतना उन्हें अपना होना मज़ा दे रहा है। जितना मुझे मारती हैं उतना खुद जी रही हैं। अरे इसीलिए चुप

कर जाओ कि इन बातों से मेरा बेड़ा ग़र्क होता है, जग-हँसाई होती है, अब और क्या मिलेगा?

पर ये भी शायद उनकी डाह होगी। कि भले ही अपना जीवन अब न बचे, मुझे ज़रूर मेरे जीवन से विलग कर दें। तुमसे। केके, हमारे बीच बॉर्डर खींच दिया है। मुझे पता होता तो मैं कभी इस दीवार के पार आती? कि अब लौटना नहीं होगा?

तुम ठीक रहना, प्यारे केके, मच्छर को गधा कहते रहना। लेकिन फिर कहे देती हूँ वो जो चप्पल में बस आधा पंजा घुसा के सारे में घिसट घिसट चलते हो वो मतही करना, मुझे बहुत इरिटेट करता है। इतनी तो मान जाओ मेरी। या मेरी याद में। या उम्मीद में, झूठी सही, कि शायद दरवाज़ा खोलोगे और मैं खड़ी हूँगी।

तुम रुकोगे? क्यों रुकोगे? यहाँ आओगे? कैसे आओगे? कोई रुकता नहीं। किसी को कुछ पता है? कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। ऐसे ही चली जाऊँगी। तुम्हें नहीं मालूम चलेगा कि मैंने तुम्हें याद किया, तुम्हें ही याद किया। सच्चा प्यार, खोया प्यार।

तुम्हारी,
मिटी हुई

पुन: अभी अभी नवाज़ भाई आये। कि आपलोग तैयारी कर लें, गाड़ी आपको लिवा जाएगी और आपको अपने वतन लौटना होगा। इस जुम्मे छुट्टी है। फिर हफ़्ता और इतवार हैं। अगले रोज़, पीर को। और अम्मा जी, आप साहब के वालिद से नहीं मिल सकतीं। अरे नवाज़ क्यों नहीं मिल सकती, तुम उन्हें बताओगे, वो खुद आएँगे, ज़रूर आएँगे। वो नहीं आ सकते। उन्हें फ़ालिज है। वो उठ नहीं सकते।

मेरी कुछ समझ नहीं आ रहा। माँ नवाज़ भाई से खुसुर पुसुर कर रही हैं। नवाज़ भाई उनकी बाँह पर हाथ रखते हैं। कह रही हैं शिम्मी ने क्यों नहीं बताया। शिम्मी, वो लड़की, किसी कौसर की, जिसे ये अपनी सहेली बताती हैं। मिली थी जब बिना वीज़ा सिन्ध घुमा रही थीं। उसी ने इन्हें बताया था उसकी अम्मी नहीं रहीं और मामू कहाँ हैं।

माँ खड़ी है। अकेली। छोटी सी। नवाज़ भाई गये।

वो मुँह खोलती है कुछ कहने को। फाड़ देती है जैसे चिल्लाने को। टूट फूट जाता है जैसे रोने को। कोई आवाज़ नहीं निकलती। माँ खड़ी है। अकेली। मुँह खोले, फाड़े, मरोड़े, चुप।

दीवार पर उसकी परछाईं लम्बी हो रही है। जैसे उसकी नहीं। इतिहास की।

मैं थक गयी हूँ। नींद नहीं आती। सो जाऊँ। सोती रह जाऊँ।

मैं सोती रहूँगी। तुम आकर चूमना। तभी जागूँगी। नहीं तो नहीं।

कुछ अरसे बाद श्री लंका में एक क्रिकेट मैच के ठीक पहले पाकिस्तानी टीम के एस बल्लेबाज़ को हिचकियाँ आने लगीं और हिचकियाँ रुक के न दें। पानी पिलाया, साँस रुकवाई और सीना ठोंका, पीठ पर मुक्के मारे, पर हिचकियाँ ऐसी कि ड्रेसिंगरूम कूद कूद जाए। मार दोगे क्या, बल्लेबाज़ ने आंसुओं से तराबोर लाल हो गए चेहरे से कहा तो बड़ी संजीदगी से एक गेंदबाज़ बोला कि उसका पाला पड़ा था एक ख़ातून से जिनकी हिचकियाँ तभी जातीं जब उनकी पीठ पर कस के लात जमाओ। पूरी टीम हँस पड़ी। हिचकियों के बीच और आंसुओं के बीच बल्लेबाज़ ने कहा यार किक करने का शौक चर्राया है तो ऐसे ही किक कर लो। दूसरे खिलाड़ियों ने खिल्ली उड़ानी शुरू की कि बच्चे हम फुटबॉल नहीं क्रिकेट खेलने जा रहे हैं, कहते कि पीठ पर बल्ला जमाना है और छक्का लगाना है तो हम साथ दे देते।

मज़ाक नहीं कर रहा, उस गेंदबाज़ ने संजीदा होकर कहा। उन्हें मैं अम्मा जी कहता था।

खिलाड़ी मज़ा लेने लगे। और वो तुम्हे बेटा जी।

हाँ, मगर उनकी दुख़्तर मुझे ख़ूनी कहती थी।

क्यों बेटे, साथियों ने ठहाके लगाये। तुम्हे बल्ला उठाये देख लिया?

नहीं जी, मुझे कलैशनिकोव उठाये देखा, इसलिए।

फेंकी, यार ने ऐसी फेंकी!

पर क्रिकेटर सीरियस था। उसके हिसाब से वो उसके ख़ानदान पर अज़ाब के दिन थे। उसके अब्बा हुज़ूर किसी हादसे में फ़ौत हो गए और बहनों और वालिदा की ज़िम्मेदारी उसके कन्धों पर आ गयी। पढ़ाई छोड़नी पड़ी और ख़ालू के कहने पर फ़ौज में उसे ले लिया गया। लंडीकोतल भेज दिया, सियासी क़ैदियों पे पहरा देने।

उसने बताया दो औरतें थीं हिन्दुस्तान की। एक बूढ़ी और एक डरी। कोई ख़ास ज़रूरत नहीं थी कि हर वक्त उन पर बन्दूक ताने खड़े रहो पर अमला की मर्ज़ी या कानूनी ज़रूरत। उसने बताया कि बन्दूक हमने एक तरफ़ खड़ी कर दी और क्रिकेट पर बात करते। उन्होंने बताया उसने बताया कि एक बार वो गिर पड़ीं और उनके ख़ाविंद उन्हें उठाने उछले तो वो लड़ पड़ीं फ़र्श पर पड़े पड़े, हटो हटो इमरान का छक्का मिस हो जाएगा।

बिना वीज़ा के पकड़ी गयी थीं। उनके पाकिस्तानी मेज़बान उन्हें घुमाने लाये थे।

इस पर टीम के बहुतेरे बोल उठे, क्या यार इसमें क्या तुर्रम खान वाली बात है? किसी ने बताया कि वो अपने हिन्दुस्तानी दोस्त को पिछले हफ़्ते ही बिना वीज़ा मोहनजोदड़ो ले गया। बाकी भी खुल गए। किसने अपने रिश्तेदारों दोस्तों को कहाँ घुमाया, बताने लगे। ऑर्केस्ट्रा छिड़ गया हो। वीज़ा क्या करेगा, हाँ जी बस गाड़ी उठाई चल दिए। कराची। तक्षशिला। चितराल। कागां। मिंगोरा। दीर। गिलगिट। मरदान। इंडस। हज़ारा। हम तो स्वात और कश्मीर जाने वाले थे। मगर एक शाम पहले इस्लामाबाद से ख़ालू ने फ़ोन किया कि ये गज़ब न करना, यहाँ हर अथॉरिटी दूसरे को काटती है, तुमने ब्रिगेडियर से बात कर ली है मगर आई एस आई, बॉर्डर फ़ोर्स, ऐन शैन, किसी को ख़बर हो गयी तो मेहमान भी जाएँगे, तुम भी।

ये ही हुआ। आखिर ख़ैबर था। संजीदा नौजवान बोला।

ऑर्केस्ट्रा फिर छिड़ा कि हम हिन्दुस्तान गए थे तो हमारे पास दो जगह का वीज़ा था पर हमें वो जगह जगह ले गए। बिजनौर। करनाल। मोरादाबाद। बरिंदाबन। गुजरांवाला। अम्बाला। बनारस। अतरौली। भोपाल। खतौली। मालाबार हिल। पार्क स्ट्रीट। शिमला।

शकल से कौन पकड़ सकता है? पर ख़ैबर तो ख़ैबर, कुछ ज़्यादा शेर हो गयीं तुम्हारी ख़वातीन।

शेरनी। जिसको तख़ल्लुस ख़ूनी मिला था, बोला। बोलीं कि मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी और ज़िद में आ गयीं कि बड़े साहब के वालिद मियाँ से पुराने दिन की बातें करेंगी तभी हिलेंगी। क्या फ़ितूर उन पर सवार हुआ कि बड़े बड़ों की शामत आ गयी।

और फिर? यकीन हो न हो, क्रिकेटरों को किस्से में रस आने लगा।

उनको ज़बरदस्ती रुख़सत करने का मंसूबा तय हो गया। तब..., वो चुप हो गया।

तब? कुछ देर इंतज़ार करके कोई बोला।

तब उन्हें हिचकियाँ आने लगीं।

हिचकी? हाँ, उसे तो हम भूल ही गए। मगर अब कोई हँसा नहीं। किसी अजीब से तनाव में।

फिर जो उस खिलाड़ी ने बताया इतना अजीब था कि किसी को सूझी नहीं कि क्या प्रतिक्रिया दें। मज़ाकिया सी बात लग सकती थी पर पता नहीं क्यों उन्हें मज़ाक नहीं लग पा रहा था। दिलचस्प ये है कि बयान जो था उसमें पूरी तरह से ये था कि खूब हँसी होती उस हिचकी वारदात दौरान।

तो ये।

उस रात, क्रिकेटर जो गार्ड रह चुका था, बोला।

कि उनको हिचकियाँ आने लगीं और रुकती ही नहीं थीं। इतनी कि हमारा, हम चार थे उसने बताया, सोना मुश्किल हो गया। आखिर रहा न गया तो उन्होंने दोनों औरतों के कमरे पे दस्तक दी। सब ठीक है अम्मा जी? जब बड़े अफ़सरान न होते तो हम उन्हें अम्मा जी कहते। नवाज़ भाई भी। नवाज़ भाई कौन, किसी ने पूछा और उसने बताया। अन्दर से उनकी बेटी निकली कि माँ को हिचकियों का दौरा पड़ रहा है। गार्डों ने पानी दिया। उससे कुछ नहीं हो रहा। डॉक्टर को बुलाते हैं नवाज़ भाई से कहते हैं। इस पर अम्मा जी ने कहा नहीं अभी नहीं। बस मेरी पीठ पर घूंसा मारो। बेटी ने लगाया। और ज़ोर से वो बोलीं। एक दो बार में हिचकी थम गयी।

तो ठीक? क्रिकेटरों ने छाये चुप के बाद पूछा।

पता चला सुबह फिर शुरू हो गईं। अब सब गार्ड और नवाज़ भाई उन्हें सुझाने लगे कि क्या करो। पानी पियो मगर एकदम बूँद बूँद गले में उतारो। एक हाथ से नाक दबाओ, दूसरे से पानी पियो। गिलास के उलटे किनारे, यानी होंठ की तरफ़ वाले से नहीं, उसकी परली साइड से पानी पियो। साँस रोके रखिये, सौ गिनिये, फिर छोड़िये। डॉक्टर लाता हूँ, अफ़सर से कहता हूँ, चल ही रही थी कि उन्होंने फिर हिदायत दी कि पीठ पर मारो, और ज़ोर से, और फिर ठीक हो गयीं।

किस्सा पूरा? किस्सा सुनने वालों में कोई बोला।

नहीं, किस्सागो ने कहा। किस्सा अब शुरू।

कि हिचकी फिर आयी तो अम्मा जी ने एक गद्दा बाहर निकलवाया और बिछवाया। उसके आगे खड़ी हो गयीं। पीछे पड़ गयीं अपनी बेटी के कि वो दम लगाती आये और घूंसा नहीं लात जमाए, कस कर उनकी पीठ पर, पेट पर, बगल में, जो साइड सामने पड़े।

बेटी मान गयी? सुनने वाले हैरान।

हरगिज़ नहीं, कोई बेटी कैसे मानेगी?

तब?

तब वो मुझसे बोलीं कि ऐ तुम तो खिलाड़ी रह चुके हो, चलो अपना हुनर दिखाओ।

तब?

तब उनकी बेटी मान गयी।

हाँ, सबको समझ आयी, मारना है तो हम मारेंगे, बाहरी क्यों?

मगर फिर हमने भी मारी।

हैं, क्रिकेटर्स के जबड़े झूल गए?

अगले दिनों में ये तो खेल हो गया जो हम सब बड़े शौक से खेलते। और एक कौवा जिसे वो अपनी प्लेट से रोटी देतीं, वो दीवार पे बैठ कर खूब ग़दर मचाता जैसे कांव कांव करके तालियाँ पीटता हो। उन्हें हिचकी आती, हम भाग के गद्दा लगाते, दौड़ते आते और दन्न से लात उनके बदन पे। कौवा नीचे फुदक आता और हम सब के बीच उछल उछल काँव काँव। दिन पर दिन हमारी लात और वज़नदार। अम्मा जी टेढ़ी मेढ़ी गद्दे पर गिरतीं और कुछ राउंड प्रैक्टिस के बाद हिचकी बंद हो जाती। न रुकी हो तो कुछ देर गद्दे पर हांफती पड़ी रहतीं, फिर उठ के हुक्म चलातीं लगाओ। कौवा भी उकसाता। सबसे अच्छी लात मेरी ही थी और वो मुझसे ही कहने लगीं। दौड़ता आता और ऐसे हवा में उछल के किक जमाता।

एक बूढ़ी के संग तुम्हारा ये रवैया?

बस, उसने मजबूर आँखें उठायीं, कुछ ऐसा उनका ज़ोर, उनका इसरार, उनका प्यार, कि जो वो कहतीं हम करने लगे। बिलफेल मेरे मारने पर वो लदड़ फदड़ गिरतीं और फिर उचक आतीं। उसने दम लगाकर हवा में लहरा के किक जो घुमाई कि बाकी खिलाड़ियों के हाथ बरबस किसी अदृश्य औरत को बचाने लपके।

कमाल करते हो यार। लग जाती।

हम सबने यही कहा। इसलिए सुझाया कि गद्दा आपके सामने बिछाते हैं, अब मारेंगे तो उस पर गिरेंगी। चोट नहीं लगेगी।

हाँ, सो तो फिर भी ठीक।

मगर उनका तो कुछ और ही इरादा। ऐसी फुर्ती से उन्होंने गद्दा वापिस पीछे किया कि मानो हममें सबसे जवान वो हों। और ऐसे लताड़ा हमें कि फिर हममें से किसी की उनको कोई मश्वरा देने की ताकत न बची। चिल्लायीं, वो चिल्लाया, मुँह के बल गिराना चाहते हो? आगे को नहीं गिरूंगी। मैं पीछे गिरूंगी, ऊपर आसमान को देखती, मिट्टी पर लेटी। आगे से आये या पीछे से या कहीं से गोली।

यू मीन किक।

या हिचकी।

नहीं, गोली। उनका मतलब गोली ही था। बताने वाला संजीदा रंजीदा हो चुका था। बोलीं ये ख़ैबर है, दो पागल मुल्कों का मुजस्समा। यहाँ कुछ भी चल सकती है। गोली कि लात, कुछ हमारे बस में नहीं। पर आराम से गिरना तो है। मेरी उम्र पे, अपने बिस्तर में, मुझे शान से लेट जाना है, टूटे फूटे खिलौने के पंजर नहीं होना।

फिर, किसी ने पूछा, थूक निगलते।

फिर हम लात लगाते रहे और अम्मा जी ऐसी चुस्त उछाल मार के अपनी छड़ी हवा में खट खट खट बंद करते हुए गद्दे पर लेट जातीं, आसमान की तरफ़ हँसते हुए, कि हम हँसने लगते थे।

बना रहे हो, किसी ने हिम्मत जुटाई।

वो ऐसे ही बेयकीन लम्हात थे।

हिचकी? जिस क्रिकेटर को हिचकियाँ आ रही थीं, उसने पुछा। इस पर न उसका न किसी और का ध्यान गया कि उसकी हिचकियाँ बंद हो गयी थीं।

हिचकी थी ही नहीं।

अमाँ ये कैसा मज़ाक है। हँसी नहीं आ रही।

हँसी नहीं थी। नवाज़ भाई तो ज़ारो कतार रो रहे थे। बोले हिचकियाँ थीं ही नहीं। वो इसीलिए हिचकियाँ लेने लगीं कि प्रैक्टिस करें सही गिरने की।

गोली लगने पर? थोड़ा गुस्सा पूछने वाले के गले में था, जैसा होता है जब आप एक तरह समझ रहे हैं और आपकी समझ कालीन की तरह आपके नीचे से खिंच जाए, आपको मुँह के बल गिराती।

हाँ।

गोली लगी? कोई फुसफुसाया।

जिसको हिचकियाँ आयी थीं, उसकी अजीब सी आवाज़ आयी। हँसो मत। उसने कहा। मुझे ऐसा लग रहा है जैसे किसी सदी में किसी और को लगी गोली उस सदी में नहीं रह जाती। गोली बाद वालों को लगती रहती है और वो ढेर होते रहते हैं। अब तक कुछ काँप भी गया उसका स्वर।

स्टॉप इट। कप्तान ने डाँट लगायी। ये क्या मूड आपलोग पाल रहे हैं मैच के पहले।

उस मैच में हिचकी वाले ने 105 नॉट आउट पर अपना रिकॉर्ड कायम किया। 99 रन के बाद जब उसने पैविलियन से पार जाता छक्का मारा तो वो उछल कर शानदार कलाबाज़ी मारता पिच पर गिरा पर ऐसे कि गिरा नहीं, बस लेट गया है आसमान को उल्फ़त से देखता, उसकी तरफ़ अपना बल्ला दोस्ती में बढ़ाये।

सबकी भन भन सुननी है तो मच्छर बन जाओ, नम हो जाना है तो बदरा, सींग मारने हैं तो देश का सरदार, नाचना है तो हवा, रोना है तो दुम, नदी होना है तो माँ, चक्कर काटता बंदी जानवर तो बेटी और किस्सा रोक देना है तो यहाँ हो जाओ, क्योंकि किस्सा ख़त्म तो होता नहीं, रुक सकता है।

मगर किस्सा आगे बढ़ भी सकता है, रेत तितली चिड़िया बुढ़िया पुड़िया तिरिया इन पर कोई रोक नहीं। हाँ उनके लिए कुछ नहीं बाकी जिन्हें लिखित पर ही भरोसा है। क्योंकि यहाँ न मूर्ति, न शादी, न क़ैद, न वीज़े, इनमें से किसी के दस्तावेज़ नहीं। कुछ कभी थे ही नहीं लिखित, कुछ इंसानों की पापी आग में भस्म हो गए।

अगली सम्भावना ये हो सकती है कि इन दस्तावेज़-परस्तों में से कुछ दिमाग से कान में उतर आयें और सुनें आवाजें कहाँ कहाँ से आती हैं। बकर-कना से, कांव कांव से, सबके रब्ब से। पर इन दिमागी बदगुमान लोगों के संग नयी मुश्किल कि वो अफ़वाह और बात को एक कर देते हैं और देखे-कहे और कल्पित-गढ़े को अलग। असल कहाँ नकल है, उन्हें इसका शऊर नहीं। इतना ही नहीं इन्हें तो भाषा भी नहीं पता कि क्या होती है। ये हिन्दी बोलते हैं तो सिर्फ़ हिन्दी समझते हैं, दूसरी भाषाएँ इन्हें गलबल और कंकड़ बरसना लगती हैं। इनके सपने में नहीं कि ये नहीं जानते, पर और हैं जो जानते हैं, जो दर्ज न हो इनकी भाषा में, इनकी फ़ाइलों में। कि बोलियाँ पक्षियों कीड़ों हवा अँधेरों की भी हैं, उसकी तो बात ही इनकी सोच के परे। कि धरती पर हुआ चाँद पे कहा सुना जा रहा है, वो ये जानें, इन असम्भव उम्मीदों को तर्क करें। ये ही सलाहियत इनमें होती तो पृथ्वी का खात्मा नहीं हो रहा होता — यहाँ तो ये दंभ है कि फिलिपीन और उज़्बेगिस्तान में बाढ़ तूफ़ान तबाही मचेगी, जर्मनी अमरीका में थोड़े। ग़लती से एक दो फुकुशीमा जापान में हो जाएँगे तो एक तो आइन्दा होंगे नहीं, दूसरे, जापान कहता रहे अपने को पश्चिम का हिस्सा, है तो पूरब ही, और रहेगा, तो पूरब में तो होते ही हैं हादसे।

यानी इन जीवों को क्या अब तक की कहानी, क्या आगे की? मौका-ए-वारदात पे भी लौटा नहीं जा सकता क्योंकि वो दो औरतें तो बिल्ली की तरह कहीं से अन्दर फिसल आयीं, पर अब ख़ैबर में परिंदा भी सच ही पर नहीं मार सकता। तालिबान और अल-क़ायदा जैसे जीव वहाँ कब्ज़ा डाल चुके हैं। पूरा ख़ैबर पख्तूनवाला महा-विशाल चींटापर्वत हो गया है, जिसकी सुराखों में से जब न तब हथियार-लैस चींटे निकलते हैं और न आव न ताव बम और शूट-आउट में दुनिया की मलालाओं को उजाड़ देते हैं।

लुब्बे लुबाब ये कि जिन्होंने अब तक पढ़ने की ज़हमत नहीं उठानी चाही, वो आगे भी मत पढ़ें तो इसी में उनकी ख़ैर! पर जो रंगों रास्तों के रसिक हैं, उन्हें क्यों रुकना? संगीत के ये सुर कहाँ कहाँ जाते हैं, एक राग में। कितनी पीड़ा, कितना आनंद उसमें। दूसरा राग आ जुड़ता है। ऐसा झुमा देता है कि पहला भीनी स्मृति हो जाता है। सुरों की गूंज अनुगूंज हर सरहद पार करती है। सुर बदलते हैं, संगीत रहता है। मौत आती है, जीवन चलता है। कहानी बनती है, कहानी बदलती है, कहानी बहती है। आज़ाद, आरपार।

मगर आगे जिन्हें सुनना है उन्हें सायों पे भरोसा करना होगा। कि साये थे जो किसी ने देखे, किसी ने सुने। जो गोली लगी वो भी साये को।

इसे दोराहा कहते हैं। साये की राह या भकभक गाढ़ी आकृतियों की? पहली पे राज़ी तो आओ हमसफ़र, दूसरी तो ठप्प करो।

उस रात।

दो साये रात को क़ैद कंपाउंड के पास, खानसामे के चौदह साल के बेटे ने कहा उसने देखे। वो पेशाब करने में मशगूल था और उसे ठीक से तो क्या दीखता मगर एक खासा लम्बा तड़ंगा साया था, जिसका चेहरा नक़ाब में ग़ायब था, बस कुछ घबरायी आँखें दीख रही थीं। ये साया दूसरे साये को ग़ायब रखना चाहता था, जो किसी बच्ची का लग रहा था, जो बाहर लहरा आती और लड़के का कहना था कि जब वो मुड़ी और पास नवाज़ भाई के क्वार्टर की छत की बत्ती चेहरे पर पड़ी तो उसे पहचान नहीं पाया क्योंकि चेहरा झाईंयों के अन्दर था। वो खुद घबरा गया मगर पेशाब बीच में रोकना नामुमकिन था इसलिए इतना कुछ देख गया, एक का डर, दूसरे की झाँईं। और हाँ उसके हाथ में एक डंडी थी जो उसने हवा में घुमाई जैसे खेलने को और जुगनू उड़े जो तितलियों से लगे।

इस बच्चे ने और कुछ नहीं देखा, पर स्पेशल ड्यूटी अफ़सर की कोठी के बाहर, उनके घर के बरामदे में सोये पड़े सड़की कुत्ते ने दो साये देखे। अनुमान है ये वही दो साये रहे होंगे जो क़ैदखाने के पास थे, एक लम्बा, दूसरा उसके साये में गायब छोटा सा जो बार बार सामने लहरा जाता। कुत्ते ने सायों का सरकना सुना जो हाड़ मांस के पुतलों के सरकने से उसे अलग लगा और न चाह कर भी वो उठ गया, अपनी जिज्ञासा को कोसता। अरे वे तो बरामदे में आ खड़े हुए! कुत्ते ने जिज्ञासा और आलस के बीच भैंगी होती आँखें एक दो दफ़े झपकाईं कि तभी वे दरवाज़ा ठेल कर कोठी के अन्दर चले गए। कुत्ते को पता होता दरवाज़ा खुला रह गया है तो वो क्यों बरामदे में रात बिताता पर अब वो ख़ैबरी जाड़े में सिकुड़े अपने अंगों को ज़हमत नहीं दे सकता था। अपनी नस्ल के पहरेदारी गौरव का कुछ भूला भूला खयाल ज़रूर उठा और उसने लडख़ड़ा के खड़े होने की एक मरियल कोशिश भी की। पर खूंखार भौंक की जगह जब ठंड से ग्रस्त बेदम किंकियाहट उसने अपने गले में सुनी, तो बदनामी से बचने को वो गंजेड़ी की तरह फिसला और गहरी निद्रा में लौट गया।

आगे क्या हुआ, साये अँधेरे में घुलमिल गए कि क्या, पता चलना मुश्किल था। पर इतेफ़ाकों की अपनी कड़ी। एक था चूकर। वही जिसे कुछ लोग कहते हैं तीतर। जिस पल साये घर के उस कमरे में घुसे जिसकी खिड़की के छज्जे पर वो रात बिता रहा था, उसने एक आँख खोल दी। सपने से जाग कर कि किसी अनजानी आहट पर, वो नहीं कह सकता। वो इधर का नेशनल बर्ड, तो अपने को बड़ा तीसमारखां समझता था। मगर चतुर चटोरे अपने को तीतरमारखां साबित करने में लगे रहते। इस कारण उसने दिन में खुद को अदृश्य रखना

शुरू कर दिया और रातों में अपने सैर सपाटे पर निकल जाता। इस छज्जे पे उसके अच्छे तजुर्बे रहे थे तो यहाँ अक्सर पहुँच जाता। अँधेरे के इतमीनान में झपकी मार लेता। झपकियों के बीच एक आँख खोलकर छज्जे पर चढ़ आई झाड़ बेल में सरकते टिड्डों चींटों कीड़ों पर चोंच मार लेता और तृप्त अंगड़ाईयाँ लेता। उड़ने का बहुत शौक़ उसने कभी नहीं पाला।

रात बेहद अँधेरी थी। इतनी कि ख़ैबर का आसमान सितारों में खो खो गया हुआ। चूकर ने एक आँख से तारे निहारे, दूसरी से कीड़े तलाशे और रोज़ सी रात समझ सो गया होता अगर उसी पल छोटा साया बड़े के परदे से बाहर न लहरा गया होता। अरे ये तो छोटी सायी है, नेशनल बर्ड चौंक के चौकस हुआ। ज़नाना, पखतून ख़ैबर में, आम बात नहीं थी।

अब वो बाक़ायदा जाग कर देखने लगा। अली अनवर की बेगम को वो पहचानता था। वैसे भी वो अपने बच्चों के पास थीं, यहाँ नहीं। वैसे भी वो क्यों रात का साया बनी इन ख़तरनाक सड़कों पर निकलेंगी?

अरे ये, अचानक उसके चूकर दिमाग ने, जो छोटे साइज़ का था पर नागमणि की तरह लाइट मारता, चौंध फेंकी, ये तो क़ैदी ख़ातून हैं। पूरा ख़ैबर जानता था पड़ोसी दुश्मन मुल्क से आई, पकड़ी गयी दो ज़नाना मुजरिमों के बारे में। इस सूझ का झटका कुछ बिजली सा था और वो अपने चूकरमन की लम्बाई चौड़ाई से बाहर छिटका जिस करने पर वो सन्तुलन खोकर लुढ़क पड़ा और पूरा लुढ़क पड़ता अगर अपने को कस के वापिस सन्तुलित न करता। सो करने में मगर उसकी निकल गयी चीख।

हरकत का उसूल है कि वो कोई न कोई सिलसिला चला देती है। चीख अली अनवर ने सुन ली। जो अपने वालिद मियाँ, कोमा-ग्रस्त अनवर के पास बैठे थे। वो लपक कर खिड़की की साइड वाले दरवाज़े से बाहर आ गए और ऊपर देख गए जहाँ चूकर बैठा था। वो उड़े कि डटा रहे अभी सोच भी नहीं पाया कि एक कौवा, लाहौलबिलाक़ुव्वत, उसी की बगल में पर सँभली दूरी पे आ बैठा। अब चूकर देखे कौवा को कि आया है मेरे कीड़े चोरने और देखे अली को कि आज तक तो नहीं भगाया, आज क्या मौसम-ए-दिल होगा इनका पता नहीं, और अली देखें दोनों परिंदों को और कुछ क्यासमझेंक्यानासमझें वाला लुक देने लगे, और कौवा अलग अनिश्चित सा फुदकें मारे कि कौन दोस्त कौन दुश्मन कैसे जानूँ? यानी ये तीन तो आँख-मटक्का खेलने लगे पर अनिश्चय अनिश्चय के साथ कि ख़ैर कि बैर?

इसी सब इत्तेफ़ाकन उलझाव में, उड़ती फिरती बाद में उड़ी कि लम्बा साया रात के सितारों में ढक गया और छोटी सायी वहाँ बैठ गयी जहाँ अली अनवर बैठे थे और सबकी मिली भगत से ये हुआ, कि बस ऐसा हो गया जैसे अजीबोग़रीब हो जाता है, इस पर कोई एकमत नहीं है।

एक माँ एक लकवाग्रस्त के पास पहुँच गयी।

अनवर, चंदा। माँ बोली।

अनवर लेटे हुए थे बिना हिले डुले। उनकी बगल में एक मद्धम लौ का सुराखों वाला लैंप जल रहा था। उनकी आँखें बंद थीं। माँ उनके चेहरे को देख रही थी। फिर माँ ने भी आँखें बंद कर लीं।

माँ चुप रहीं। कितनी देर, ये परिंदों को नहीं पता चला। अगर उनका कहा सही है तो सदियों बाद मिल रही थीं तो क्या बोला जाता, ये उन्होंने अपने बच्चों कच्चों को सुनाया। इसलिए माँ चुपचाप रहीं। आँखें बंद। फिर वो गाने लगीं। धीमी आवाज़ जो कभी तेज़ हो जाती कभी टूट जाती कभी बेसुरी। जैसे बड़े दिनों से रियाज़ बंद हो। रुक कर वो हँसने लगीं। थोड़ा शरमाते हुए। फिर गाने लगीं। अबके गाती रहीं बिना रुके बिना हँसे।

काहे करत हो मान काहे पे इतना गुमान। बीच में पल भर आँख खोल के।

फिर मोरे प्रभु दीनदयाल...अरज करत इब्राहीम मेरे मौला...।

थक गयीं शायद या सोचने लगीं। आँखें बंद, माथे पर लकीरें गहराती।

अबके धीरे से आँखें खोलीं और अनवर की बंद आँखों से आँख मिलाने उनके चेहरे पे झुकीं। राग पूरियाधनाश्री धीमे से कहा, अपने से कि अनवर से कि दोनों से। लैंप की मद्धम लाल छटा में माँ के गाल लाली लिए। या बुढ़ायी साँस की नली पर असहज ज़ोर डालने से खून दौड़ गया।

और फिर छिड़ गयीं जा रे कागा जा रे मैं भेजूंगी संदेसवा जब से पिया परदेस गए सुख की नींद न आये।

अरे, वो बोलीं नहीं पर दिखीं अरे। क्योंकि गाते गाते उन्हें अपनी मूर्ति दिखी, अनवर के सिर के पीछे, बेडसाइड टेबल पर। फिर बोल पड़ीं अरे।

उसी भाव में कौवे की भी काँव निकल गयी। अब तक वो और तीतर एक दूसरे के प्रति बेपरवाह हो गए थे। इस अनुमान से कि दोनों कीड़ों मकोड़ों के प्रति बेपरवाह हैं, एक अभिसारिका को अँधेरों में निकल के अपने पुराने प्रेमी से मिलने आये देखने में ज़्यादा तल्लीन। अली अनवर पास बरामदे में आरामकुर्सी पर ऊँघ रहे हैं, उनको सिरे से भूलकर। पक्की गायकी, वो भी अति धीमी और बेसुरी, पक्षियों को क्यों लुभाती पर अपना नाम सुनना किसे नहीं लुभाता? कागा, कौवे की कांव निकल गयी! उसने कुछ गर्वीली नज़र तीतर पे डाली और उदार भाव मन में खिला। दोस्ती का पंख बढ़ाना चाहा। हम दो परिंदे। हमारी तुम्हारी भाषा भी एक है, बस तलफ़्फ़ुज़ थोड़ा अलग है, और हम दोनों उसे दूसरे नाम से पुकारते हैं, उसने गपशप की।

जैसे इन मुलाकातियों की हिन्दुस्तानी पाकिस्तानी, तीतर ने भी दोस्तानी हँसी हँसी।

शुश, कौवे ने ख़बरदार किया, प्रेमियों के मिलन में हम रोड़ा न बनें।

बेशक, तीतर ने कहा और दोनों पंख में पंख डाल अच्छे बच्चों की तरह चुप हो गए कि जिनकी कहानी है उन्हें कहने दो। हाँ ख़तरे का एहसास दोनों को हो गया था मगर प्रेम पर बात आ गयी तो क्या गोली क्या क़यामत, कुछ भी उसका रोमांस फीका नहीं कर सकता।

मूर्ति देखकर माँ ने अपने चेहरे से सटे लेटे अनवर के कान में कहा इस पत्थर में दिल और मेरे गूमड़ भाई में।

पंछी क्लासिकल मौसीकी से अविज्ञ मगर प्यार की भनक उनके तेज़ कानों में फ़ौरन पड़ गयी।

मेरे पत्थरदिल और मेरे गूमड़ भाई मुझे न सँभालते तो मैं तुमसे आज मिलने को बची न होती। फिर वो ज़रा मुस्करायी और हाथ हिला के, सिर मटका के, जैसे प्रेमलीला की अदा हो, गुनगुनाने लगी। फिर वोही, जा रे कागा जा रे मैं भेजूँगी संदेसवा जब से पिया परदेस गए सुख की नींद न आये।

कागा झूम ही उठा जबकि उसे सा और रे का कोई शऊर न था।

मैं सो गयी। अनवर। मैं सोती रही। खांसती रही। टीबी। खांसती रही सोती रही। गूमड़ भाई बचा के खो गया पत्थरदिल जिला के साथ रहा। तुम्हारी तरह मेरे होश बेहोश में। जब जागी तो पता चला दिशाओं ने अपना ठौर बदल लिया है।

वो फिर राग गाने लगीं। बड़े गुलाम अली खाँ। याद आया? हँसीं। हवेली मियाँ खान? मोची गेट की बैठकें?

गाने से उसके सुर ताल ठीक न हुए हों पर गला कुछ खुल गया। वो गाती रुकती झुकती याद दिलाती अनवर चुप रहते।

तकिया मिरासियाँ तो याद होगा? नहीं?

अनवर को चुप देखकर वो और वाचाल हुईं। वो गाने थे, याद करो। हर हफ़्ते हम जाते थे, आसिफ़जाह और नूरजहाँ की मज़ार पे। रावी पार। फिर बाग में निकल लेते। किसी कोने में। हम तुम। दूब चबाते। मेरी चूड़ियाँ। सब टूट जातीं। अनवर, वो झुकी लजाई मुस्करायी।

अनवर के गाल पर हाथ रखा। उनका सिर उसकी तरफ़ लुढ़क सा गया। हिलने से पलकें अधखुली सी हो गयीं। माँ ने हाथ हटा लिया। ऐसे झुकी कि कमर एकदम चपटा दी और टेढ़ी घुमा दी जैसे चिड़िया गर्दन घुमाती है। गर्दन भी वैसे ही घुमा दी। वो अनवर की आँखों में झाँकने में लगी थी।

अनवर, तुम...उसकी मुड़ी तुड़ी मुद्रा में उसके शब्द साफ़ नहीं थे। पक्षियों ने भी गर्दनें टेढ़ी कीं। मगर कागा तीतर की किसे पड़ी थी?

माँ कह रही थीं अनवर तुम नहीं आये। कैसे आते? मैं भी कैसे आती? फिर भी मैं डॉक्टर साहब के साथ अपनों को ढूँढ़ने रिफ्यूजी कैम्प जाती तो गल्प बनाती कि तुम छिपते छिपाते मुझे ढूँढ़ने आये होगे। मैं सोचती मैं तुम हूँ, तम्बुओं को देख रही हूँ। इनमें से किसमें है मेरी चंदा? तम्बुओं का शहर। चींटियों की तरह भरे शरणार्थी, हर रोज़ हज़ारों और। तुम लौट गए होगे कि इस भीड़ में नहीं मिलेगी चंदा मुझे, कहाँ शुरू करूँ? मुझे लगता मैं एक तम्बू पे अपनी चुन्नी फहरा दूँ और उसी में अपने को चुनवा दूँ तुम्हारे आने तक। पर हमारे साथ की तो चुन्नी भी नहीं थी। बस ये मूर्ति थी ठीक जैसी हमने साथ म्यूज़ियम में देखी थी। जिसके बाद मुर्गछोले खाए थे और पेट ख़राब किया था। याद है? याद करो।

किसी पल माँ का सर धीमे से अनवर के सीने से लग गया। वो हँसने लग पड़ी। वैसे तुम कैसे आ सकते थे मुझे ढूँढ़ने? कहाँ आते? हँसते हँसते उँगली अनवर के चेहरे पर घुमाने लगी जैसे पेंसिल हो जिससे वो चित्र बनाती हो। गाल में गड्ढा दबा दिया और होंठों को आकार देकर एक तरफ़ जो ज़रा दबाया कि होंठ सच में ढलक से आये और मुस्कान का

आभास देने लगे। कोई नहीं बचा। कहाँ लौटती मैं? माँ ने बच्चों की तरह उँगली लगभग आँख में गड़ाकर अनवर की पलकों को खोलने का उपक्रम किया। वो लौटने के दिन नहीं थे। हम जहाँ थे वहाँ के हो गए। वो हँसी।

वो हँसती भी जाती, गाती भी जाती, चेहरे को स्केच करती जाती, बोलती भी जाती और चुप भी हो जाती।

कितनी देर चुप, कितनी बोलती, इसको गिनने कोई वहाँ नहीं बैठा था। क्या क्या उसने अनवर को याद दिलाया उन दिनों के बारे में जो अलग थे, सादे थे, और उन दिनों के बारे में जो बदल थे और सादे और अलग से विलग और कौन दोस्त हुए कौन दुश्मन हो गए, कौन खो गए, ये सारा लेखाजोखा कोई नहीं उतार रहा था।

तमाम और बातों की तरह चंदा और अनवर की मिलन की रात कहीं दर्ज नहीं हुई, न सरकारी, न निजी किसी दस्तावेज़ में।

पर वो रात, चुपचाप पड़े ख़ैबर में, हीरे जड़े आसमान के तले, थी उन दोनों की ही रात।

माँ बैठ जाती फिर झुक आती। देर तक कोई पुराना खरखराता गला कोई राग छेड़ता रहा और दो जन अगल बगल रहे, एक बैठी, एक लेटा, बिलकुल पुराने ज़मानों में, हर हद सरहद के पार एक मोहब्बत में।

इसीलिए जब माँ को हँसने का दौरा पड़ा कि यार उन्होंने तुमको मुझको दो मुल्क बना दिया तो अनवर भी मुस्कराए।

अली अनवर बाहर बरामदे में बैठे कुछ उन्हीं चिड़ियों जैसे हो गए थे जो एक आँख से सोती हैं, दूसरी से जागी रहती हैं कि कहीं कोई बाज़ कोई हौवा कोई गोली कोई गोला? छज्जे पर दो मुल्कों के बाशिंदे, दोनों पंछी, दोस्ती में उनको देखके सतर्क हो लेते, आखिर आदमी, दुशाले में गायब, गुलेल फुलेल भीतर लुकाये बैठा हो, कौन कह सकता है? फिर हममें से एक बाहरी और दूसरे का गोश्त स्वादिष्ट तो वजह तो दोनों के पास थी डरने की। सजग रहने में भलाई सबको भली लगी।

तो सब अपनी अपनी फेर में, मगर वे दो ऐसी अपनी फेर में कि किसी से कोई मुकाबला नहीं। दो सादे दिलों का कभी कोई मुकाबला नहीं। सादापन सा क्षणभंगुर कोई एहसास नहीं। इसीलिए वही सदियों को जोड़ पाता है। वही दूरी को पाट देता है। वही खाई को लाँघ जाता है।

अब सब ठीक है, माँ बोलीं। हम बच गए। तुम ठीक रहे। जीवन सध गया।

माँ अनवर का हाथ हिलाती हुई। अनवर के होंठ छूती हुई। अनवर की पीछे को पलटी बिनपुतलियों सी आँखें माँ को देखती हुईं। उनके हल्के फैले होंठ माँ पर मुस्कान सी डालते। दो तृप्ताये चित्त। कि परिपूर्ण जीवन जी लिया और मिल गए।

ये ही वो रात थी जिसके भीनेपन ने सूरज में उसके साथ दो पल बैठने की इच्छा सुलगाई। वो हौले से उसके पास आ तो गया पर रात ने कलाई छुड़ाई कि देर हो गयी। उनकी इसी रूमानी कशमकश ने अली अनवर को उठा बिठलाया। कुछ सँभली खटपट करते उन्होंने अपने वालिद साहब के कमरे का दरवाज़ा खोला।

उनके वालिद का हाथ माँ के हाथ में था। तुम नहीं आये, माँ ने कहा, तुम्हे माफ़ किया। मैं नहीं आई, तुम मुझे माफ़ कर दो।

वो खड़ी हुई और अनवर का हाथ धीरे से उन्होंने अनवर के सीने पर रख दिया।

जो टुकड़ा अली अनवर ने देखा वो इसी हाथ का सीन था। हाथ पुराने, मगर पहले, मगर नए, प्यार ने गरमा दिया था और वो आराम से सीने पर था जहाँ वो कुछ बरसों से, स्ट्रोक के बाद, ठंडा, अकेला, पड़ा रहता। सीने में दिल था जो धड़क रहा था, और उसकी हरारत ने हाथ को उठाया जिससे वो सीधा खड़ा हो गया, अलविदा की मुद्रा में। अनवर का हाथ उठा था और उनके होंठों से हल्के से आया — माफ़ी।

उनके बेटे अली अनवर ने सुना माफ़ी।

ये रात कहीं दर्ज नहीं है।

लोग मानने को नहीं तैयार कि किस्से सच्चे होते हैं। अतिरंजनाएँ, अयथार्थ, मिथक, सब। सच नहीं तो वो किस्सा जो यथार्थ की थोथी समझ में सच माना जाता है।

छोटे बड़ों की मानने को नहीं तैयार। कि आप ही ने दुनिया नहीं बनायी है, बल्कि बिगाड़ी भी है और हम उसे अब बचाने में लगे हैं, बचा लेंगे। बड़े उनके बहसिये, कि बचा के हमने रखा था, प्रकृति, संस्कृति किसी का पलड़ा हल्का नहीं किया, तहस नहस तुम्हारी, लालच तुम्हारा, अमरीकी अदाएँ तुम्हारी, मशीनी तरक्कियों का भूत तुममें। छोटे बज़िद कि आप तो सीमित रहे, रीति रिवाज़, परम्परा के गुलाम, और जो आपसे कहा वो करते गए। बड़े भृकुटि दिखाएँ कि रोमांस हमने भी किये, कि कुदाई लंघाई हमने भी की। कि तुम नहीं समझोगे हमारे मरने के किस्से हमारे लहलह जीने के हैं।

न बड़े न छोटे ये कहते हैं कि बँटवारे हमने मिल के किये हैं और बँटवारे नहीं होने चाहिए।

फिर भी कुछ महान आत्माएँ हैं जो बड़े छोटे ढंगों में नहीं सोचते, बँटवारों में नहीं, और तेरा ज़माना मेरा ज़माना नहीं करते। पर उनकी सुनी नहीं जाती क्योंकि लोग उसकी सुनते हैं जो सामने दीखता है, बीच मंच पे, भड़काऊ लट्टू के नीचे। भूले बिसरे कोनों में पड़ों की किसे फ़ुर्सत? रायपुर में एक विनोद कुमार शुक्ल हैं जिनकी दीवार की खिड़की के बाहर जादू सच का था, कौन जानता है? या बिहार में नागार्जुन बड़ी सी किसानी दाढ़ी के पीछे से बोले चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद, कौवे ने खुजलाई पांखें कई दिनों के बाद, पर कौन जानता है? राजधानी में एक निर्मल वर्मा थे जिन्होंने हीरे से भाषा की कटिंग की, वो राजधानी वाले ही नहीं जानते। ग़लती से किसी ने उनकी धूप देखी तो ये कह ख़ारिज कर दी कि ये विलायत से आई है, सरबसर अनजान कि ये शिमला की गुनगुनी धूप है।

कभी साहित्य को साहित्य की तरह पढ़ें तो पता चले कि किस्से कहानियाँ और गाथाएँ दुनिया में अपने को घोल के नहीं चलते, उससे अपने को अलग करके चलते हैं। उन्हें दुनिया से न संक्रामिक न समकालिक न एकमेल न तालमेल न निर्विघ्न साथ बनाना है। अलग इतर स्वाभिमानी अभिमानी उनकी चाल साहित्यिक।

ये तो दुनिया है जो पीछा नहीं छोड़ती। दुनिया को साहित्य की सख्त ज़रूरत है क्योंकि वो उम्मीद और जीवन का द्योतक है। तो दुनिया आड़े तिरछे छिपे खुले रास्तों से साहित्य में घुलने चली आती है। दबे पाँव उसमें जज़्ब हो जाती है। उसकी चाल बेमिसाल जग-ठुकराई में अपनी निराशा को मिटाना चाहती है। उसकी कोशिश सार्थक हो जाती है जब मरती औरत का किस्सा उसके लहलह जीने का हो जाता है और ख़ैबर बेमेल बेमैल पहला प्यार निखारता है। दुनिया मचल के ख़ैबर की हिंसा और इन्तेकाम के बीच से पहाड़ियों से नगीने और आसमान से धूप बटोर लाती है। दुनिया को मिल जाती है तबाही के बीच उगती दूब हरी घास।

इसलिए बहुत दिनों तक दुनिया प्रेम-कहानी में चुपचाप चली आई और ख़ुशी के मारे चुप नहीं रह पायी।

उस रात जब सरहद पार की अभिसारिका सरहद पार के बलमा संग रैनमिलन को चली तो क्या हुआ? किस्से पर किस्से चले ठांय ठांय और नाचे मानो शादी ब्याह मना रहे हों। रोये कि प्रेमी रो रहे थे, गले मिले कि प्रेमियों का गलेमिलन हुआ, बँटवारों को कोसा कि प्रेमियों को माफ़ियाँ माँगनी पड़ीं, सॉरी दो मुल्क हो गए, वादे टूट गए, अलग घर बना लिए। दुनिया जहान में लोग पसीजे कि यार कैसी ये दूरियां?

और कैसी बेवकूफियाँ कि मोहब्बत करने वालों को मौत के घाट उतारा जाए।

कि सवेरा होने भी न पाया था और अली अनवर और अनवर के घर से दो साये फिर निकले और सड़क पर आये। मगर क्या किसी ने किसी को ख़बर कर दी कि बिनइजाज़त, बिनवीज़ा, साये सहर-सैर पे हैं? ऐसे में नौकरशाही के नौकर क्या करते? उँगली पहले से ट्रिगर पर थी, हाकिम की रूह ने हुक्म किया और वो दब गयी।

उसी वक्त साया चिल्लाया भागो और भागा। सायी न भागी। अस्सी की थी और उसने कूदने का अभ्यास तो कर रखा था, भागने का नहीं। गोली उसे पीछे से लगी मगर उसकी पीठ पलटवार में माहिर हो चुकी थी और मुँह के बल गिरने का सवाल नहीं था। जिस शानदार तरह से उसकी काया उछली, कुछ ने माना कि गोली के लगने के पहले ही उसने जानी परखी स्वेच्छित उछाल मारी और पहाड़ी से आगे को छलांग लगा दी।

सूरज ने उसी पल अपनी दिशा उसकी तरफ़ कर ली, जबकि, कुछ गवाहों का कहना है, वो पश्चिम था। उस सुबह उधर से सूर्य सलामी में सायी के आगे झुका। वो जगमगा उठी और बहुतों ने देखा उसे शाहीन सा उड़ते और फिर मल्लिका सी हवा में लेट जाते, जैसे आरामदेह शय्या पर, और उस सुकून की मुद्रा में उसने अपनी छड़ी झटकी तो वो चट चट चट बंद होती चली गयी और तितलियाँ निकलीं और चारों लोक में फैल गयीं और वो खुद नीचे अपनी धरती पर उतर गयी। फिर वो मिट्टी पर लेट गयी, आसमान के नीचे, अपनी मनचाही

जगह, जहाँ कोई नहीं पहुँच पाता उसके अंतिम पलों के जलाल को हिन्दुस्तान पाकिस्तान में बाँट देने।

दिल्ली का था पर पुरानी आदतें, जिन्हें अक्सर गंवरी भी कह दिया जाता है, जाते जाते जाती हैं। लम्बी जम्हाई लेते हुए उसने खुले मुँह के आगे दो उँगलियों से चुटकियाँ ऐसे बजाते हुए हाथ धीरे धीरे दूर किया कि लग सकता था, बुला फुसला कर जम्हाईयों को भीतर से निकाल रहा है। नेहरु लाइब्रेरी के पुराने चमड़े मढ़े चमकदार सोफ़े पर बैठा वो पुराने अख़बार पलट रहा था। जम्हाई के साथ ही वो हिला तो चमड़े — आखिर पुराना, मगर गंवारू वो नहीं — ने मानो चुटकियों की कॉपी करने को धीरे धीरे हवा छोड़ी फुस्स फुस्स फुस्स फुस्स। शोधकर्ता ने झेंपी नज़र इधर उधर दौड़ाई, ऐसी आवाजें फूहड़ लगती हैं, इस मामले में वो पुराना और गाँव का नहीं रहा। फिर वापस अख़बार में झाँकने लगा।

उन दिनों मेमोरी यानी स्मृति का बाज़ार गरम था। दुनिया की हर यूनिवर्सिटी, हर रिसर्च संस्था में, मेमोरी को लेकर बयानबाज़ी चल रही थी। जो बुद्धिजीवी सालाना एक किताब निकालते थे उन्हें इस विषय को लपकना ही था। लगे थे मुन्नाभाई मुन्नीबहन, इतना कि एशियाई और कुछेक अफ़्रीकी शिक्षा संस्थानों में भी स्मृति सेमिनार्स होने लगे थे और बेपनाह ग्रांट्स उसके नाम में प्रपोज़ल्स और प्रोजेक्ट्स को मिल रहे थे। नेहरु लाइब्रेरी का रिसर्चर भी लगा हुआ था, एक सीनियर टीम के साथ, जो सेक्युलर विचारधारा की थी और जैनियों और बौद्धों पर वैष्णवों के आक्रमण की स्मृतियाँ कुरेद रही थी, उन्हें हाल की दूसरी सांप्रदायिक स्मृतियों के बरक्स रखने। नेहरु लाइब्रेरी में पुराने अख़बार, पुरानी पत्रिकाओं के खज़ाने को टटोलने युवक पहुँच रहे थे।

तो यों हो रहा था उसका सोफ़े पर बैठना, जम्हाई लेना, हवा छोड़ना। अब कौन जाने स्मृतियों की ऊब में कि हवा छोड़ने की झेंप में उसकी आँखें भटकीं और पड़ गयीं पुराने अख़बार की एक कतरन पर। सनसनीखेज़ सी ख़बर कि ‘सीमा को लाँघते हुए — दिल्ली की अस्सीसाला नारी बिना वीज़ा के पैदल सीमापार पुराने प्रेमी की खोज में।’

यों ही शुरू हो गया सिलसिला इससे जुड़ी ख़बरें पढ़ने का। यों ही की फ़ितरत ही है यों ही शुरू हो जाने की। अब स्मृति शोध का इन कतरनों से न लेने का न देने का पर आँख को भा गया या लत लग गयी उधर घूम जाने की। जैसे आँख ने इस ख़बर को सूँघना सीख लिया हो।

बहुत ज़्यादा कतरनें वैसे थी ही कहाँ? दिलचस्पी के लिहाज़ से इससे कहीं रसीली घटनाएँ होती रहीं हर समय में। पर कुछ दिन कुछेक सुर्खियाँ

इस अस्सीसाला, जो भी वो रही हो, को मिल गयीं। ‘एक और गायब,

सीमापार’। ‘ख़ैबर पश्तून में बुरी फँसीं दो हिन्दुस्तानी महिलाएं’। और ये अंग्रेज़ी में — Additional Solicitor General submits that the Indian High Commision in Islamabad has written to the Pakistan Government, but the court could not issue any order in the matter and the court accepted this contention.

हाल हवाल ये हुए थे कि बूढ़ी माताजी के बड़े बेटे ने न्यायलय में अपील करी लेकिन एडीशनल सोलिसिटर जनरल ने सबमिट किया कि इंडियन हाई कमिशन इस्लामाबाद में पाक सरकार को लिख चुकी है मगर न्यायलय कोई ऑर्डर इशू नहीं कर सकता इस केस में। बड़े बेटे ने कहा भी कि जब दोनों सरकारें एक दूसरे के मुजरिमों को लेकर शोर पे शोर करती हैं तो मेरी माँ के लिए क्यों नहीं जिन्होंने जीवन में कभी कोई जुर्म नहीं किया? उसने प्रधानमंत्री को खुली चिट्ठी लिखी कि अब हम कहाँ जाएँ? मीडिया पर साक्षात्कार दिए। उसके मुँह और कलम से वही वही शब्द निकल रहे थे कि कोर्ट, सरकार, मीडिया, सबके दरवाज़े खटखटाए हैं, अब कौन सा दरवाज़ा खटखटायें? We don't know where to go now, उसने अंग्रेज़ी में कहा। पर हम हिम्मत नहीं हारेंगे। वो हमारी माँ हैं। हमारी लड़ाई चलती रहेगी, बड़े बेटे ने स्टेटमेंट दिया था।

और भी टाइटल्स मिलीं। ‘चन्द्रप्रभा देवी उर्फ़ चंदा के दावे’, एक जगह। और एक तो कि ‘चढ़ी जवानी दादी नू’।

कुछ रिपोर्टों में था कि बेटी माँ के संग गयी उस पार, माँ की बुढ़ापे की धुन पे पसीज कर। बेटी पत्रकारों आदि से बात करने में गुरेज़ करती थी, फिर भी उसने किसी से कहा था जिसने किसी पत्रिका तक बात पहुँचाई कि बेटी सो रही थी जब माँ को गायब कर दिया गया जो उसके मुताबिक अजीब बात थी चूँकि उसे घोर इनसौम्निया था। अगले दिन उसे पता चला कि किसी को कुछ नहीं पता। और उसे जबरन एक अफ़सर के साथ रवाना कर दिया गया और हवाई जहाज़ में बैठा दिया गया। माँ की हालत कुछ भूली कुछ याद करे सी हो गयी थी क़ैद के दिनों में, इसीलिए परिवार फ़िकरमंद था कि वो कहाँ होगी, कैसे निर्वाह करेगी, और पहले भी खो चुकी है।

गर्ल फ्रैंड आई तो उसे शोधकर्ता लाइब्रेरी कैंटीन में ब्रैड पकोड़ा खाते हुए कुछ टुकड़े बताने लगा।

हो तो सकता नहीं, वो बोली। पर पार्टीशन की बात है तो हो भी सकता है। और अपना चश्मा पहन के बताने लगी कि देखो ये हर्फ़ नहीं पढ़ पाती, नम्बर बदल गया है, चलो लेंस ले लूँ।

हो सकता है, मैं मानता हूँ, शोधकर्ता बोला। कोई रिसर्च करने निकले तो कहीं लिखा मिलेगा। सिविल मैरिज एॅक्ट तो मुझे मिल गया, पर किसने ऐसी शादियाँ कीं ये क्या पता?

भय्या जी ये तुम्हारा रिसर्च नहीं है।

कुछ कहो, भैया न कहो, रिसर्चर ने डाँटा। और गंभीर आवाज़ में जोड़ा कि यही मुश्किल है कि लिखित तत्वों के बिना सब बॉलीवुड हो जाता है।

बॉलीवुड के बिना गुज़ारा कहाँ? दूर दराज़ कोनों के परिंदे भी मन बहला लेते हैं बॉलीवुड की स्क्रिप्ट लिखकर। कोमा बँटवारा बंदूकें प्रेम व्रेम मौत मज़हब गोलियाँ रेत की तरह उड़ते, औरतें रात में वहाँ जहाँ आदमी नहीं निकलते, नमक मिर्च और धनिया मेथी राई अजवाइन कलौंजी हींग पुदीना अनारदाना, हर चीज़ का यहाँ बघार। चिरौंजी भी किसी ने डाली होगी। साये अँधेरे के, जिन्हें दो औरत कह सकते हैं, भाग रही थीं, मारी गयीं। पर ज़्यादातर ने कहा एक औरत थी जो इतनी छोटी हो गयी कि कहीं से भी निकल सकती थी, क़ैद क्या चीज़ थी, और पहुँच गयी बड़े साहब के सिरहाने अपना हिस्सा माँगने। बड़े साहब, यानी हमारे सरकार, खुद अली अनवर जनाब ने उसे हड़काया और वो भागी, लाखों की कीमत वाले, यहाँ खुदाई में मिले बुत को चुरा के। फिर क्या था, हमारे अफ़सर जी ने खुद गोली चलायी और बुत और बाप दोनों को उस औरत की बुरी निगाह और दबोच से बचा लिया और अपने घर को भी। मगर औरों ने कहा औरत पर हमारे यहाँ गोली नहीं चलायी जाती, कोई खूंखार जानवर समझकर गोली चली होगी, बल्कि रहा होगा जानवर ही, जिसे हमारे बहादुरों ने ठंडा कर दिया। कहीं पड़ा होगा पहाड़ियों में, ढुँढ़ाई चल रही है।

मगर कब तक कोई ढूंढ़ें? उकता जाने का ज़माना है, रोज़ नए ईजाद, पुराना फेंको। वोही किस्सों कहानियों का हश्र।

छोटी औरत बड़ी औरत की कहानी नेहरु लाइब्रेरी में कोई नहीं कहता।

मौत सबको आती है। परिंदों को भी। चूकर, जिसे ज़्यादातर लोग तीतर कहते हैं और खाने वाले बहुत चाव से पकवा के खाते हैं, मर गया। कौवे का दिल टूटा।

इनकी दोस्ती का किस्सा कोई नहीं कहता जबकि और पक्षियों की दोस्तियाँ दुनिया भर में मशहूर हैं। एक ही उदाहरण लें तो गरुण और तोते की दोस्ती का दें। ये कहानी सदियों पुरानी है और दुनिया में जो भी पढ़े लिखे हैं और इसलिए इन महान पुरानी संस्कृतियों से परिचित हैं, ज़रूर इस दोस्ती से वाक़िफ़ हैं और जो नहीं, जहाँ भी हों, ज़ाहिर है, जपट जाहिल हैं। इतनी पक्की दोस्ती दोनों में कि मौत के खयाल ने उन्हें विचलित कर दिया। तुम तो चिरायु हो पर मेरा क्या होगा, तोते ने जब कहा तो गरुड़ भी दुखी रहने लगा। तुम तो विष्णु के करीब हो, उनसे मन्नत माँग दो मेरे लिए। गरुड़ ने माँगी हे स्वामी, दे दो अमरत्व का दान मेरे प्यारे मित्र को। इसमें क्या, विष्णु स्नेहिल बोले। ब्रह्मा जी से कहता हूँ और गए उनके पास अपनी ख्वाहिश लेकर। हे विष्णु, ब्रह्मा जी बोले, मैं तो सृष्टिकर्ता हूँ, ये विभाग तो संहार का है, यानी महेश का। तो चलो वहाँ चलें साथ साथ। वहाँ महेश ने दिलासा दी कि काम हुआ समझो, अभी यम से कहता हूँ और बुलाया मृत्युदेवता को। वे आये और उन्होंने तीनों देवताओं की बात सुनी और हाथ जोड़ दिए और शीष झुका दिया। हे त्रिमूर्ति, मेरे दूत

अभी अभी ले आये उस तोते को। आपको मालूम नहीं कि मैंने ये सोच कि तोता तो गरुडज़ी का परम प्रिय मित्र है, पहले ही उसकी मौत असम्भवप्राय कर दी थी। वो ऐसे कि तोता-प्रस्थान उसी सूरत में होगा अगर कभी किसी कारणवश ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों एक संग हो जाएँ। जो हो गया है। मैं क्षमा चाहता हूँ। आदि।

पर वो कहानी यहाँ की नहीं। यहाँ तो तीतर और कौवे में गाढ़ी हो गयी क्योंकि हालात ने दोनों को एक अनोखी रात का साक्षी बनाया जो उन्होंने पंख में पंख लपेट के साथ साथ देखी और दोनों की आँख नम हो गयी।

बल्कि इसका भी विस्तार है। तीतर संयमित रहने वाला जीव था। दर्द उसके भीतर घुमड़ता, ऊपर वो मर्दों की तरह बहादुराना और सधा भाव रख लेता। पर जब उसके पंख में लिपटा कौवे का पंख भावविभोर हो थरथराने लगा तो उसे एक अजीब अनुभव हुआ। कि उसकी भी रुलाई फूट रही है। एक बार उसने पंख हटाने की कोशिश की मगर कौवे ने और कस के अपनी उसमें लपेट दी। दोनों रो दिए।

इससे दो बातें जुड़ती हैं। एक कि आँसू झटकाने वाला सीन हो तो सिसकी लेते सीने से मत चिपटो क्योंकि तुम भी रो पड़ोगे और दूसरी कि किसी भावनात्मक अनुभव को इत्तेफाकन भी किसी के संग अनुभव कर लिया तो दोस्ती का बीज पड़ जाता है। फिर आप हिन्दुस्तान के हों और दोस्त पाकिस्तान का, कोई आपके बीच दरार नहीं डाल सकता।

पर हिन्दुस्तान पाकिस्तान की दोस्तियों की किसे पड़ी? ज़माना तो होड़ और दुश्मनियों का डंका बजाने का हो चला। जब नफ़रत उठान पर हो तो प्रेम की बातें गिजगिजी और पिचपिची लगती हैं। ख़ैबर को लैला मजनू शीरीं फरहाद चंदा अनवर से कौन जोड़ता है? खूनियों से, कलैशनिकोव से, तालिबान, ड्रोन अटैक, बच्चों के स्कूल पे बमबारी, इन दहशतों में वो सुर्खियों में आता है। यों ही नहीं हुआ कि स्पेस से नीचे देखने पर और सरहदें दिखें न दिखें, हिन्दुस्तान पाकिस्तान की यों साफ़ नज़र आती है बत्तियों से पटी, कि एलियन सोच ले कि इस गृह पर इस जगह हमेशा जश्न का माहौल रहता है। उसे क्या पता कि अलगाव जताना कुछ लोगों के लिए जश्न बन गया है? जश्ने-दुश्मनी जोशे-दरार।

ठीक उसी तरह किसी को क्या पता कि अरसों बरसों तक जो ये दो पंछी पंख में पंख टाँके उड़ते थे, सियासी ज़बान में दो तरफ़ के थे। तीतर वहीं पठानों के बीच का बाशिंदा और कौवा फ़ालतू में अलग बने भारत का।

इतना तो इतना, किसी को ये भी नहीं पता था कि ये वही कौवा था जो अपनी जवानी के शुरुआती दिनों में हिंसक होने को मर्दानगी मानता था और बात बात पर लड़ने का ऐसा आदी था कि जब इश्क फ़रमाता तो वो भी लड़ने के लहजे में मज़ाक करके — आज मिलने नहीं आई तो निचोड़ दूँगा और मेरे अलावा किसी से चोंच लड़ाई तो चोंच यों नोच कर अपनी चोंच में चर्चिल के सिगार की तरह लटकाए घूमूँगा। यही था जिसने बड़े पर बड़े पत्थर या छोटी चट्टान लुढ़का के सर नारियल या तरबूज़ की तरह फोड़ देने का मंसूबा किया था। वो तो कौवी ने उद्दंडता पे उसे आगाह किया और उसमें दूसरों के लिए हमदर्दी जगायी। एक बार कौवावीय करुणा की रग उसमें छुल गयी कि फिर शान्त सुशान्त प्रशान्त हो चला और आते जाते बड़े की ख़ैरखबर लेने उनकी खिड़की पे सर मारता और अगर

सुबह सवेरा है तो शान्ति से खिड़की से झाँकता कि सोये हुए बड़े कोई हरकत करें। गर्दन उचकाता, कभी खुद उचकता, श्याम तन को इस कोण उस कोण तोड़ता कि दिन चढ़ रहा है बाबू अभी दुनिया भर के काम करने जाना है और जैसे ही उधर अंगड़ाई जम्हाई कुछ होती कि चोंच से शीशे को बेताब ठोंकता। उसकी ठक ठक पे बड़े हाथ बढ़ा के खिड़की से पर्दा हटा देते।

उसी पल सूरज रात का बेनूर परतों वाला उलझाऊ लिबास फेंक देता और अपने धुपैले साफ़ लबादे को फैला कर दोनों के संग बैठ जाता। बड़े और कौवा मुस्कराते जैसे हाय हल्लो। चाय, बड़े पुकारते। बिस्कुट कौवे

को पकड़ाते। प्यार में लालच छलकता। दु:ख में सुख आ बहता। कौवा खिड़की के शीशे पर पूरा शीष नचा नचा के थैंक यू दु:ख भूल हो खुश कांव कांव गाता।

किसी को नहीं मालूम कि बड़े बिस्कुट या रोटी के अलावा भी बहुत कुछ दिल से कौवे के आगे रख देते।

किसी को नहीं मालूम कि वो बहुत दिनों तक न आता तो बड़े इंतज़ार करने लगते। आ जाता तो कुछ ऐसे उनका जी जुड़ा जाता जैसे कि कौवा छज्जे पर कांव कांव कर रहा है माने कोई मेहमान आएगा जो और कोई नहीं, लौट आई अम्मा होंगी, और इस मान्यता में कौवे का आना शगुन मानते हों।

किसी को नहीं मालूम कि कौवे के लिए बड़े ने एक छोटे से ऐलमूनियम के तसले में पानी रख दिया जो वो खुद बदलते रहते कि तपता प्यासा आये तो उसे शीतलता मिले, चाहे पीकर या पंख फडफ़ड़ करते नहाकर।

किसी को नहीं मालूम कि उसे ठिठुरते देख उन्होंने एक जूतों के कार्डबोर्ड डब्बे में रुई और पुराने मलमल का गद्दा सिलवा के बिछा दिया जैसे कौवा न हो गुड़िया हो और बड़े न हों छोटे हों। किसी ने ये भी न देखा कि कभी कभी कौवा ओवरनाइट स्टे कर लेता था। ये शुरुआती जाड़ों के दिन थे जब अम्मा उस पार निकल गयी थीं।

किसी को नहीं मालूम कि बड़े जब लापता माँ की खोज में सारी व्यवस्था को उलटपुलट करने में लगे तो कौवा उनकी तड़प और बढ़ती बेबसी देखकर बड़ा हो गया और एक दिन ठान बैठा कि उनकी इस खोज में खुद शामिल होगा। उसने अपने घर लौटना बंद कर रखा था और अपने गद्दे पर खिड़की में उसके लिए साफ़ की गयी जगह में सोता था। या बड़े को हमदर्द ममतामयी नज़रों से करवटें बदलते देखता था।

किसी को यह तक ख़बर नहीं कि उसी ने सोचा कि अब ये मेरे किये ही होगा पर न वीज़ा जैसे फ़ितूरों का इल्म उसे था न बँटवारे का एहसास। उसका अपना अलग इतिहास था जिस पर वो बड़ा हुआ था। मगर दयाधर्मप्यार इन बातों से अलग पटरी पे चलते हैं। हाँ अपने पंखों पर कौवे ने पहले भी गर्व किया था और हो सकता है अभी भी उसे ये डींग आई कि बड़े शान्त बैठो, उड़ के मैं जाऊँगा, एक एक बात पता कर लाऊँगा।

किसी को क्या पता कि वो कांव कांव भाषा में बड़े से सांत्वना और हिम्मत दिलाने के ये शब्द बोला भी। खुद बड़े को नहीं पता। क्योंकि ये त्रासदी नहीं तो क्या कि इन्सान दूसरे

जीवों की भाषा भूल गए हैं। ये सब अहंकार का मसला है। इंसानों को अपने ज्ञान पर इतना भरोसा है कि उसमें वो फूल गए हैं, ज्ञान सीमित रह गया है।

पर पक्षी आदि ऐसे अहंकार — पंख पर गर्व करना सादा निर्दोष भाव है — से ग्रसित नहीं हैं और चारों तरफ़ देखते हैं, चारों ओर से सीखते हैं, हर वक्त सीखते हैं और इसीलिए बहुतों ने, खासकर दूर उड़ानों पे निकलने के दौरान, और ये ही कौवे ने भी किया, ये अभ्यास कर रखा है कि एक आँख और आधे चिड़ी दिमाग़ से सोते रहें, दूसरी आँख और बाकी आधे भेजे से जागते रहें। यानी आराम भी और शिक्षा भी। शिकारियों से बचाव भी और ज्ञान में बढ़त भी। सिद्धि प्राप्त योगियों से क्या कम ये, पर योगी इन्हें समझें तब तो।

किसी को नहीं पता कि वो कैसे उड़ चला। वाघा, राहत, लाहौर, कराची, सिन्धी रेगिस्तान, माँ बेटी का पीछा करते, इसकी सुनके उसकी देखके, और आखिरकार ख़ैबर पहुँच गया।

किसी को पता चला तो उसके ख़ैबर के दिनों के मित्र को पर उसके संग साक्षात्कार करके छापने में लगें तो फिर पीछे जाना पड़ेगा और मोटा मोटी वही कहानी, तीतरी ज़बान में सुननी पड़ेगी। वो भी दिलचस्प होगा। चलिए, फिर कभी।

ख़ैर ख़ैबर पहुँचा कौवा और रास्ते में वीज़ा, पार्टीशन, धर्मद्वेष, बहुत कुछ से वाक़िफ़ होता रहा। इन पठानों पे किसी का बस नहीं ये भी पता चला और ख़ुशी भी बहादुरी से व्यक्त करते हैं जो बन्दूक उठा के गोली दाग देने में है, ये देखा। कौवा है, इन्सान पर भरोसा करने की भूल जल्दी तो नहीं करेगा। उसका मांस उन्हें नहीं प्रिय ये भलीभांति जानता था, जिस बात पर उसे चैन भी मिलता पर थोड़ा कुंठित भी होता कि हम इसलिए सुरक्षित हैं कि हम बदबूदार और बेज़ायकेदार, पर खिलवाड़ में और चिढ़ के, क्योंकि जिसे देखो उससे चिढ़न इन्सान का दूसरा स्वभाव है, कहीं निर्मोही ने बन्दूक उसकी तरफ़ घुमा दी तो हो जाएगा तमाम, इसलिए ज़रा छिपता छुपता दिखायी पड़ता।

ऐसी कोई संगीन स्थिति हुई नहीं। हुजरों, किलों में झाँकता और कोई पठान उसकी तरफ़ आँख उठाता तो कौवे का एक अकलमन्द अन्दाज़ था — बिलकुल धीरे, बेपरवाह क़दमों से ज़रा और दूर होते जाना और आँखें फेरे रखना पर पर और कनखी चौकन्ने और दिल धड़क धड़क कि कोई अन्दाज़ न पाए, और पठान के पलक मारते ही कम से कम आवाज़ करते उड़ के अलग हो लेना।

एडवांटेज उसको दो थे — एक कि कौवा है, दूसरे कि उड़ता है। बंद दरवाज़े और ऊँची दीवारों के भीतर देखता चलता।

और जहाँ पहुँचना था, पहुँचना ही था, पहुँच गया। वहाँ चार बन्दूकधारी ख़ूनी गार्ड दो औरतों पे तैनात थे। मस्जिद की बुर्ज पे वो जा बैठता इस हसरत में कि चेहरे पास से देख ले और बड़े को खुशखबरी सुना पाए।

असल में उसने बड़े की माँ और बहन को उसी पेड़ से देखा था जिस
पर चढ़ के बड़े साड़ियों के स्वप्न में उलझ गए थे। तो एक तरह से नज़दीक
से उन्हें देखा ही कहाँ था? फिर क़ैद में लोग अजीब भी लगने लगते हैं। छोटी होती बूढ़ी औरत ढीले झब्बा में मिट्टी में कोहनियों तक सनी, बूढ़ी होती उसकी बेटी सर चुन्नी से ढके

और दहशत और पीड़ा की झुर्रियों से भरी, चहलकदमी करती।
फिर उस कौवे ने देखा कि ख़ूनी तो मेमने हैं और शायद दाढ़ी नकली हैं, और उसके पीछे शेव की ज़रूरत नहीं, बल्कि उनसे ज़्यादा शेव की ज़रूरत बेटी को है जिसकी काँटों सी मूँछें निकली हुई हैं। और जब पौधे सहराती बूढ़ी ने उसे उँगली दिखाई और हँसी तो उसे याद आया जब बड़े पेड़ से देख रहे थे वो बैल्कनी में गमलों में पौधों में ही डूबी थी और हूबहू ये ही बोली थी सोचना भी मतहि। पक्का, ये वोही है, पक्का, वो ज़रा और पास फुदका।
किसी को नहीं मालूम कि क्या माँ को कुछ अंदेशा हुआ कि ये कौवा जो आकर दीवार पे बैठ जाता है और अब नीचे उसके पास क्यारियों तक फुदकने लगता है, क्या इसका उनके बेटे बड़े से कोई ताल्लुक है? उन्होंने कहा मेरे पौधों को बिगाड़ने नोचने पंखुड़ी बीज खाने की जुर्रत की तो देख लूँगी और इस चेतावनी के बाद खूब खूब बातें कौवे से करने लगीं। जो सिर्फ़ कौवे ने सुनी तो उनका ब्यौरा देना नामुमकिन है। मगर कौवे को फड़कते देख सकते थे। ये तो वही हैं, वाक़ई वही हैं, बड़े को काश फ़ौरन बता पाता, कौवे के चेहरे पर, भानने वाले, खिली मुस्कान देख सकते थे।
कौवा ने जो कांव कांव की अम्मा समझीं, किसी को नहीं मालूम। मगर दोनों के अपनापे से एक बात खुली कि संपर्क और सम्प्रेषण कोई सीधे समझ लेने का कायल नहीं। कि आपस में डोर हो और स्नेह और अपनत्व तो साथ पौधों को निहारना, साथ हरे हरे होना, साथ चुप रहना, सब संवाद हैं। अब न माँ अकेली, न कौवा।
फिर भी ये सत्य तो था ही जिसका क्या तोड़ निकलना था, कि कौवा पक्षी नस्ल, उसे कोई मातृभाषा समझने में मुश्किल नहीं होनी थी, मगर इन्सान ने अपने बनाये इतिहास से अपनी नस्ल बिगाड़ ली थी और न मातृ, न पितृ, न मात्र भाषा उनकी पहुँच में। गैर-इंसानी हेराफेरी हर किस्म की ज़बान से अलगा देती है। अपने तईं उलझी मुलझी, नैतिक अनैतिक सब गुझामुझा, कुछ कैंकैं कर लेता है पर कौवे की काँकाँ उसके सर के ऊपर पहाड़ियों में खो जाती है। यानी इंसानों की बेकद्री का माँ जैसों को भुगताना देना पड़ता है।
फिर भी दोनों में बनी ठनी। कभी शान्त, कभी माँ की कैंकैं, कौवे की काँकाँ के बीच। माँ उसके लिए खाना रखती और उससे हजारों बातें करती जिनमें उसके पहले प्यार की सारी बातें भी थीं जिनमें नए इश्क की रंगीन सेक्सुअल बातें भी थीं, इतना माँ कौवे से खुल गयीं। और अपने बिछड़े बच्चों और उनके बच्चों की स्नेहिल यादें थीं। बल्कि जब वो बोलीं कि बड़े छोटे से ही औरताना थे, घर के कोनों से धूल झाड़ने के शौक़ीन और आलथी पालथी बैठ के कुछ नर्तकी की तरह एक हाथ दूसरी बांह की कोहनी के
नीचे बड़ी अदा से बिछा के मुझसे कहानी सुनते, तो कौवा उछला हाँ हाँ काँकाँ, ये मुद्रा मैंने देखी है। माँ ने उसके जोश को नान और गोश्त से जोड़ दिया और ज़रा सा और दे दिया पर कौवे ने बुरा नहीं माना। आलू लेगा, माँ ने पूछा, पर उसने जितनी बोटी चबानी थी ले ली और उधर से हट गया ताकि माँ समझ जाएँ।
समस्या ये हो गयी कि कौवा के जब पल्ले पड़ा कि बड़े के लिए जिन्हें ढूँढ़ निकाला था वे क़ैदी हैं तो उसे ये परेशानी हो गयी कि उन्हें छोड़ के जाए कैसे, उन्हें बचाए कैसे, और बड़े तक ख़बरी उड़ाए कैसे? उसे यहाँ तक पहुँचने में कितने तो दिन लग गए थे। जिसमें सीधी

उड़ान तो भर नहीं पाया था, यहाँ वहाँ सुनते बूझते उड़ा था, और हालाँकि अधिकतर उसने अपनी रफ़्तार 30 किमी प्रति घंटा से कम नहीं होने दी और सुबह अच्छा नाश्ता मिल गया तो 50 भी कर गया, पर उड़ते उड़ते सोना पहले दिन से आया नहीं तो नींद का वक्त अलग और लम्बे, टेढ़े मेढ़े रास्ते का अलग जुड़ा। शायद तेरह दिन लगे पहुँचने में। या सत्रह। तेईस?

अब लौटने में सीधा उड़े, सोते में भी उड़े तो भी दस दिन तो लग ही जाएँगे। एकदम सुपरकौवा हो तो भी हफ़्ता भर तो। उस बीच यहाँ क्या क़यामत ढा जाए? नहीं, बड़े से वो आँख न मिला पाएगा, अपने गद्दे पर सो नहीं पाएगा। और शीतल नहान में वो खुद ही चुल्लू भर में डूब जाएगा।

माँ ने जब पीठ पे किक मरवा के गिरना शुरू किया, तो पहले वो भी बुरी तरह चिन्तित हो गया। फिर वो भी हँसने लगा। फिर वो जान गया ये क्या शगूफ़ा है। क्योंकि नवाज़ भाई की माँ से राज़दारी उसने सुनी और माँ ने खुद भी उससे कह दिया कि अली अनवर मान गए हैं।

किसी को नहीं मालूम कि वो अब नॉन-उड़ान में भी आधा सोया आधा जागा रहने का अभ्यास कर रहा था और वहीं, बंद दरवाज़ा जो खुला था के ऊपर, दीवार से सटे आले में सोता था। कोई आता उसे पता चल जाता।

उस रात नवाज़ भाई साया बने आये थे। माँ सायी बनी पहले ही बाहर सहन में थी। दोनों साये बेआवाज़ दरवाज़ा वापिस उढ़का के सड़क पर निकल आये। गार्ड, बेटी, कोई नहीं जगा, पर इन दो को नहीं मालूम कि कौवा सायों का साया बना साथ हो लिया था और दो नहीं तीन जन ख़ैबर के कोहरे में बड़े साहब के बंगले की तरफ़ निकले।

कौवे को नहीं मालूम क्यों उसकी साँस गले को आई और वहीं थम गयी और आगे जो दृश्य खुलता गया उस दौरान वो रूई का फाया बनके गला भर गयी।

सामने लैंप का मद्धिम दीप हल्के से लरज़ जाता जैसे ख़ैबर की हवा से और रोमांटिक सी धुंध पास के चेहरों पर लरज़ जाती। एक प्रेमिका और एक प्रेमी। एक पत्नी और एक पति।

कोई गज़ब का दृश्य आप दोनों के सामने तहें खोले तो आप अजनबी होकर अज़ीज़ हो जाते हैं। आप के बीच शक, डर के बिम्ब ऐसे मिटते हैं जैसे चितचोर कृष्ण ने स्वयं बुहार बाहर किए हों और नयी नयी प्रीत में आप नज़दीक खिसक आते हैं और दोस्ती से सट जाते हैं। भले ही एक हो कौवा, दूसरा तीतर।

प्रेम राग की तानें ऐसी ही होती हैं। हवा को शुद्ध करती जाती हैं और जो आसपास है उसे।

तभी कहा गया है कि अच्छे दृश्य रचो और कला संगीत वातावरण में फैलाओ तो कितने वैमनस्य भुरभुराए चूने की माफ़िक झर जाएँगे। प्रीतिकर भावों की फुहारें बहेंगी।

प्रेमी की आँखें नम हुईं, प्रेमिका ने मिलन गीत गाये। उनकी कहानी नरमी से उन पर लैंप की नर्म लाली बन के फैली एक नर्म सुन्दर तान उठाती। अनवर और चंदा के प्रेम का नर्म सरंजाम जो बिलकुल दु:ख नहीं करता जैसा कि कोई अमर प्रेम कथा नहीं करती।

अद्वितीय दृश्य था। दोनों की आँखें नीम बंद और गाने के बोल सदियों पहले की निरी हदों को तोड़ते आते। कुछ बहुत बहुमूल्य था जो धीरे धीरे उन दोनों में फिर लौट रहा था। जो कुछ हुआ था, जो नहीं होना चाहिए था, और जो कुछ हुआ था जो उन बुरे वक़्तों के बावजूद अच्छा हुआ था, उसकी भीनी दर्दीली झंकार उन्हें घेरती गयी। आँखें हल्की सी खुलीं, स्मित हल्के से लोटी, हाथ हल्के से उठे। माफ़ी, हमने नहीं किया पर जो होता है हमसे होता है, माफ़ी। एक शब्द में सामूहिक इतिहास और एक निजी एहसास, सब समाया। ये ही तो था, ये ही है, ये ही तो प्यारे किस्सों का पागल बवंडर में ढह जाना। और ख़ैबर में गहराता धुंध और जाड़ा और उसकी नुकीली पहाड़ियों का तीखा दर्द। निरंतरता। ये आस, ये प्यास, उनका चुकना।

पक्षियों की आत्मा भीग गयी। तीतर ने रोना सीखा। जो दोस्ती जन्मी वो दोस्ती की मिसाल बन सकती थी।

दोनों ने साथ देखा था कि कैसे अली अनवर हड़बड़ा के घुसे और माँ को जल्दी निकलने को बोले और कैसे वो उठीं, निकलीं, कि गोली चली और कैसे शान से वो उड़ती नीचे गयीं। दोनों दिल से इंस्पायर हुए कि ऐसी ही मौत हमें चाहिए, गोली जिधर से भी आये।

चंदा अनवर की प्रेमकहानी से विभोर ये मित्र जोड़ा आकाश में उड़ानें लगाते हुए उन्हीं की बातें करता रहता। कौवे को तो बहुत पता था जो इंसानों को भी नहीं और उसने सब अपने यार को बताया। तब भी ऐसा होता था अरे तीतर हँस के कहता और वाक्य के अन्त तक आकर रो देता। वो ऐसा मुतास्सिर हुआ कि तय हुआ एक बार वो भी जाएगा सीमापार, उधर पहुँचे और छूटे लोगों को देखने और देखना, कौवे ने उसे प्रोत्साहित किया कि देखना उन सारों को जो आधे इधर आधे उधर हो जाते हैं, जिनकी सरहद भाप बनकर उड़ जाती है जब दोनों तरफ़ एक आसमान दिख जाता है।

पर यहाँ मात खा गयी दोस्ती। गरुड़ तोते को न बचा पाया और कौवा तीतर को। उतना लम्बा और ऊँचा उड़ने का वो आदी न था और उम्र भी छह के आसपास पहुँच गयी थी। तो समझिये कि जो दरार सीमा की चाँद से दिखती है उसे पार किया ही था कि कुछ फटा जैसे बन्दूक या दिल और परिंदा गिरा। कौवे ने उसे राह में ही लोक लिया और जैसा उनका क़रार था कि जो मरेगा उसे दूसरा ज़लील तरह से मुँह के बल न गिरने देगा, कौवे ने उसे सीधा रखा और चोंच में पकड़े हुए उसे उसके प्रिय पहाड़ी पर फिर लाया और वहाँ नीचे जहाँ उसके लिए आला सा दीख रहा था उस पर प्यार से उतार लिटाया।

जिधर से भी गोली आई हो तीतर और माँ शान से लेट गए।

न, हमने नहीं मारा, कौवा भी कहता, अली अनवर भी कहते। ज़्यादा अपने आप से, थोड़ा अपने नाते पोतियों से। जिन्हें इन कहानियों में ख़ास दिलचस्पी नहीं थी। उनके वक़्त तक तकनीकी तरक़्क़ी ऐसी हुई रक्खी थी कि हर चीज़ में रफ़्तार भर गयी थी। उड़ने के लिए भी अब तरह तरह के इन्तज़ाम थे जिनके कोनों पे लटक लो तो हवा ही उड़ा ले जाएगी। जैसे मेट्रो पे या हवाई जहाज़ हेलीकॉप्टर पे। कुछ कौवे तो कॉनकॉर्ड पे भी हो आये थे। और विडियो गेम जैसे गेमों ने ये कर दिया कि बंद कमरे में बैठे बैठे अन्तरिक्ष की सैर कर डालो, एलियंस, परजनों को बटन दबा कर तमाम कर दो और एक पल में बादलों के पार, अगले में समुन्दर की ताल। पहले जो हवा चेहरे पर महसूस होती खुद मशक़्क़त करने से, तेज़ भागो, उड़ो, हाँफो, तब, अब मशीन की मेहनत से आपको आराम से बैठाये रख के आपपर मज़े के लिए बरसती।

तो बच्चे सुन नहीं रहे होते पर अपराध-बोध जब सालता तो बुज़ुर्ग हो चले बड़े अब्बा उनको फिर भी सुनाते कि नहीं, सच, हमने नहीं मारा। कौवा अलग अपना माथा ठोंकता कि क्यों वो भूल गया सब उसकी तरह नहीं उड़ सकते थे और गोलियाँ तो उसने देख ही लीं थीं ख़ैबर में मासूम खिलौना हैं।

अली अनवर का ये तो कहना था ही कि गोली उन्होंने उस पर नहीं चलायी क्योंकि उन्हें पता था कि एक अफ़वाह यों भी उड़ी कि वे खुद न फँसें इस कारण जब ख़ैबर के जागों के जिगर खटके कि कोई चोरी करके और क़ैद छुड़ा के भाग रहा है, तो उनकी चोर से मिलीभगत सामने न आ जाए इस खुलासे से बचने वास्ते गोली चला दी। ऐसा वो करके भूल जाना चाहते थे इसलिए वो ये बात भूल गए थे। बल्कि अपने से वो बुदबुदाते रहते कि मैंने जब उधर गोली चल चुकी थी उसके बाद गोली चलायी, हवा में, ताकि ये लगे कि मुझे भी अभी ही पता चला कोई भाग रही है और मैं पीछा कर रहा हूँ। पर और तरहों से भी वो अपराध महसूस करने लगते। कि ख़तरों को जानते हुए उन्होंने मुलाक़ात क्यों करवाई? और बाहर चबूतरे पे उनकी आँख क्यों लग गयी वर्ना आध घंटा पहले ही उस खास मेहमान को वो वापिस क़ैद में पहुँचा देते और किसी को कानों कान ख़बर न होती। पर पौ फटने लगी थी और खबरियों की गश्त की आवाज़ आने लगी थी और सारा खेल रायते की तरह फैल गया।

तो दोनों बुज़ुर्गों का दिल ही दिल में ये सुबकना था कि उन्हें इन जोख़िमों में मरहूमों को डालना नहीं चाहिए था। बात इतनी गुलझी मुलझी थी कि कहें तो किससे? लोग ये नहीं जानते कि कहने वालों को कहने देना चाहिए, कह कर वो अपने अन्दर कोई गाँठ खोल रहे होते हैं और तब ही मुमकिन है कि कुछ साफ़ हो। लोग तो सुनने से पहले आँखें दिखाने लगते हैं, प्रतिवाद करने लगते हैं, नसीहत देने लगते हैं। तभी इन्होने अपने बच्चों के बच्चों को चुना जो मासूम थे और उनकी भी मासूमियत पे विश्वास करते थे।

कौवा कुछ दार्शनिक सवाल उठाता था कि माना तीतर की उम्र भी कम नहीं थी, न उसे मेरी तरह उड़ने का अभ्यास था, तो कह सकते हो कि उसके फेफड़ों को फटाने का दोष मेरी कुबुद्धि का था या बेवकूफी का या बालिग होकर भी बचपना करने का था, पर ये तो बताओ कि उम्र के आखिरी पड़ाव पे क्या इच्छायें मृत हो जानीं चाहिए? उस समय किसी को विश्व भ्रमण का ख़्वाब सवार हो, कोई ज़बान सीखने का शौक चर्राए, पाकविद्या या कोईविद्या में महारथ पाने का जज़्बा जागे, तो क्या ये कहना चाहिए कि अब इस हुनर से क्या मिलेगा तुम्हें? कि उसकी इस लालसा का मान करना चाहिए? भले ही इसमें उसकी साँस उखड़े और उखड़ ही जाए। सुख से सोयेगा कि नहीं? ये सोचते ही कौवे का दिल मसोस उठा कि हाँ, अगर बड़े तक पहुँच गए होते और उधर के बचे खुचे वन उपवन उसके दोस्त ने देख लिए होते और तब खलास होता तो आह-अफ़सोस नहीं निकलती। फिर वो अपने को तसल्ली देता कि ये मंशा तो मैं पूरी कर पाया कि मैंने उसे मुँह के बल नहीं गिरने दिया, एकदम शाहों की तरह वो उतरा और आसमान के नीचे शान से लम्बा लेटा। बिलकुल माँ जी की तरह जो गोली चली तो ऐसे...

यहाँ आने तक दोनों दद्दू जन अपने डैने फैलाते और उनके ये करने पर नाते पोते अचानक अपने खेल रोक के उनके पास घिर आते। विस्मय से फिर वो बाकी कहानी सुनते और उनमें से सबसे छोटों की बाँहें और पर अनायास खुलने लगते जैसे वो हेलीकॉप्टर बनना चाहते हों और ऊपर झटके से जाते हैं, उछल के फिर स्लो मोशन में उनकी काया नीचे को उड़ती है, शाही तरीके से और तृप्त मुस्कान के साथ, गर्व से आँखें ऊपर किये, आज़ादी से बांहों में आसमान भरे, पीछे, पीछे को, धीमी गति से उड़ते हुए, और धरती तक आते ही कोई अदृश्य सीमा लाँघते हुए, उसके पार लेट जाते हैं बच्चे।

बच्चे तो उठ जाते और अपने आज के खेलों में लौट जाते। कौवा और अली अकेले अपने ख्यालों में रह जाते। कौवा सोचता, जो भी है मैंने बड़े को बता तो दिया और वो शान्त तो दीखने लगे, बरसों के गुज़रने के साथ। जो बात सही थी। कौवे को देखकर बड़े वाक़ई खुश हो गए थे जैसे उन्हें अपने बुढ़ापे का सहारा मिल गया हो। एक बार तो सबकी आँख बचाकर उन्होंने उसकी गर्दन पर हल्के से सहला भी दिया। कांव कांव कौवे ने हैरान होकर कहा। बड़े स्नेह से बोले, थक गए? जैसे जानते हों बड़ी दूर से आ रहा है। प्लास्टिक के नए कप में उसके लिए पानी लाये। और कौवे ने उनके हाथ से पानी पिया। बात उम्र के संग बढ़ती रही और अब तो दोनों एक पुराने टैनिस बॉल से खेलते भी हैं। बड़े बॉल को इधर उधर लुढ़काते हैं और कौवा चोंच से। थकने पर वो रुक जाता है और कांव कांव करते, तरह तरह की किकों के बारे में बड़े को प्रवचन देता है। बस एक अरमान मेरा रह गया, कौवा चोंच फुला के कहता है। एक बार बस एक बार मैं उन्हें किक मारना चाहता था, पंख से तो नहीं, इस टांग से। पर सब ग़लत समझ लेते।

ये ही बात, अली अनवर कहते। सब ग़लत समझ लेते। एक बार बस एक बार मैं उसे छूना चाहता था। पर सब ग़लत समझ लेते। वो इस क़दर हकबकायी हुई थी कि ये सब क्या हो रहा है और कैसे वो सोती रही और उसे कुछ पता नहीं चला कि मेरा बेहद जी चाहा उसके कन्धे पर हाथ रख दूँ। पर सब ग़लत समझते। मैंने बिना नज़रें मिलाये उसे समझाया

और कहा आप सामान समेटिये और जब घंटे भर बाद वहाँ लौटा तो वो अकेली थी और वहशियों की तरह सारी क्यारियों को तहस नहस कर चुकी थी और फ़तेह की झूठी मुस्कान लिए नुचे पौधों के टुकड़े हवा में ऊँचे फेंक रही थी। क्यों, मुझे लगा मैं समझ रहा हूँ। उसकी दुनिया उजाड़ लगती है उसे। पर हाथ बढ़ा नहीं पाया। मैं ही उसे हवाई अड्डे ले गया कि सही सलामत उसके घर को रवाना कर दूँ। उसकी वो बियाबान आँखें जब वो हमेशा के लिए जाने को मुड़ी। कैसे मेरा हाथ कसमसाया कि आगे करके हल्के से उसके सर पर रख दूँ, पर नहीं कर पाया। अफ़सोस अफ़सोस।

अली अनवर उस माँ की उस बेटी को याद कर रहे थे।

OceanofPDF.com

उपसंहार

दरवाज़े को सदियों से चिकचिक सुनने की आदत थी। वो अविचलित रहता। जहाँ सदियों का अभ्यास था वहाँ ये दस बारह साल की क्या बिसात? अब बारह कि पन्द्रह सोलह, ये हिसाब लगाना ज़रूरी नहीं लगता। पर ये कि दरवाज़ा अपनी जगह अडिग था। जब चलना होगा, नए जामे में, नयी कीलें ठुंकवाने चल देगा, दीवारों को संग खींचते। अभी यहीं उसका ठौर था। पोस्ट रिटायरमेंट वाले फ़्लैट में।

दरवाज़ा खुला रहता पर उसको बंद करने की कोशिश हो रही थी। या ये कि दरवाज़ा बंद किया जाने लगा पर बड़े उसे खोल देते।

हाल में पास के फ़्लैटों में चोरी हुई थी। गेटेड सोसाइटी, जिनमें चारों तरफ़ कांटेदार बाउंड्री हो और गेट पर गार्ड हों जो आने वालों से रजिस्टर में एंट्री करवायें, और बाहर की गाड़ियाँ बाहर पार्क हों और और तो और सीसीटीवी कैमरे भी चारों कोने पर लगे हों जो गार्ड रूम में मॉनिटर पर झलकियाँ दें, यहाँ चोरी हुई तो कहाँ ख़ैर बची? एक नहीं, पांच घरों में। चेहरों पे नकाब थे तो कैमरे ने मदद नहीं की, हाथों में ग्लव्स थे तो फिंगरप्रिंट नहीं मिले और घरों में माल था तो घरों ने खुद ख़तरे बुलाये।

पत्नी और सुशीला दरवाज़ा बंद कर देते मगर बड़े की पूँछ टेढ़ी रही, वो खोल देते। जैसे दरवाज़े को क़ैद से छुड़ाने के लिए। चुपके से। पत्नी चोरियों का कहती तो बड़े कहते चोरियाँ उन घरों में हुईं जहाँ दरवाज़े बंद थे और उन पर ताले लगे थे। एक सज्ञन, जिनकी आदत थी, बाहर ताला लगा के पीछे के बाथरूम से अन्दर हो जाना कि कोई मेहमान ड्रिंक लेने न आ जाए, ताले की चपेट में आ गए। अकेले पी के सोते रहे, चोर ताले के निमंत्रण पर घुस आये, साफ़ कर गए। एक ही घर था जहाँ चोरों ने मात खायी। वो एक टीचर का। वहाँ किताबों की भरमार और फ़्रिज में न जाने किस सदी की सब्ज़ियाँ, जैसे आलू लौकी कुंदरू और कुछ सदियों पहले पके डिश और एक प्लेट में साबुत मूंग और काला चना अखुवा फुटाये पड़े थे। चोर के फ्रिज़ खोलते ही हरे कोहराये बादल उड़े और उनके पीछे हरा नीला पीला काला जंगल दिखा जिसमें लम्बी उलझी जड़ें और डगालें उगे चली जा रही थीं और तैयारी थी कि निकल के बाकी घर को भी डस लें। चोर सकपका के पीछे लपका और हैरत से अजूबा तकता रहा। साथी को बुलाया तो साथी फुसफुसाया अन्तरिक्ष में कोई मायावी दुनिया जैसे। पहले चोर ने भद्दी गाली निकाली, फिर कागज़ कलम, जिनका वहाँ खज़ाना था, उठाया और लिखा कि बंधू अपनी फटीचर नौकरी छोड़ो हमारे काम में शामिल हो जाओ। फ़्रिज पर लगे मैगनटों से दबा कर नोटिस बहुत नुमाइशी तरह से घर में चोर छोड़ गया।

तो बंद दरवाज़ों ने चोरी करवाई न कि खुले ने और बड़े को नया मक़सद मिल गया कि दूसरे बंद करें, वो बार बार दरवाज़े को रिहा करें। रात में उठ के जब ऐसा करने लगे तब पत्नी चढ़ बैठीं और सिड और उसकी पत्नी ने भी साथ दिया।

सब के कुछ अपने खास निजी तार जुड़ते हैं। उससे उनके जी जुड़ते हैं। घर के सदस्य अपने चक्करों में जीने में व्यस्त थे पर उनके अलावा भी रिश्ते बनते हैं जो उनसे भी ज़्यादा अज़ीज़ होते हैं। बाकी तो कौन जानता है कि एक छत के नीचे और उन्हीं दीवारों दरवाज़े के पीछे कितने लोग हैं जो एक दूसरे से नितान्त अलग रहते चले जा रहे हैं? अरे हर किसी को खुल्लम खुल्ला डाइवोर्स की ज़रूरत नहीं पड़ती। तो वे हैं ही पर यहाँ और सदस्य भी होते हैं, जैसे दरवाज़ा, खिड़की, कौवा, जो जीवन को गुनगुनी तपिश देते हैं और सत्तर पार हो जाएँ तो प्यारा मक़सद देते हैं।

बड़े की जिद्दम जिद्दा कि दरवाज़े की आज़ादी कायम रहेगी। और ऐसे करना जैसे बंद रहा तो चोरी डकैती होगी, विपदाएँ आयेंगी। उनका तो ये भी ढंग था कि सुशीला का पोता आता, कभी ए.सी. और कूलर साफ़ करने, छोटी मोटी बढ़ईगीरी करके घर की तमाम चीजें दुरुस्त करने, तो वो जानते थे वो इधर उधर सिड द्वारा छिटकाये छुट्टे पैसे और दस रुपये एक रुपये उठाएगा। वो कुछ न कहते पर उसूल की बात थी तो उसे बाहर भेजते। अचानक। ताकि अपना झोला न ले जा सके और उसके जाते ही उसमें से थैली निकाल, आधी लूट वापिस ले लेते। माने गरीब है, थोड़ा ले गया तो ले गया, पर चोरी है तो न ले जाने दो, दोनों बातों का मान सम्मान।

यानी जितना पत्नी बेटा नयी बहू खुले दरवाज़े के जानी दुश्मन, उतने वो उसके जिगरी। आजकल तो झाड़न लेकर उस पर कोई नया साफ़ करने का लिक्विड लगाकर, उसको रवा रवा चमकाते भी दिखते।

दरवाज़ा न हुआ हीरे जवाहरात जड़ा खज़ाना हो, सिड ने चिढ़ाया और मॉम ने ये कह कि खज़ाना अन्दर है, उसे लुटवा देंगे, झक झक झिक झिक की।

पर अभी झकझक दरवाज़ा खुला रहे कि बंद का नहीं था। अभी फ़ैमिली रीयूनियन चल रहा था जिसमें तीन साल बाद ऑस्ट्रेलियन बेटा और उसकी वहीं की बीवी भी शामिल थे।

बेटे तो आपस में ज़्यादा बोलते नहीं थे पर बीवियों ने ही बियर के घूंट लगाते हुए छेड़ दी थी कि मॉम डायबिटिक हैं, आर्थराइटिक हैं, पिछले दिनों में रात में उठी हैं तो गिर भी पड़ी हैं और ए.सी. में बाकी लोग सुन नहीं पाते, पति वाचाल जम्हाइयाँ लेते हैं या रात्रि भ्रमण करते हैं और बत्तियाँ जला देते हैं तो उनके संग सोना नहीं होता। अभी तक टच वुड खरोंच ही लगी मगर कभी कुछ गड़बड़ हो गया, उनकी हालत में फ्रैक्चर बहुत परेशानी का सबब हो जाएगा, आदि चिन्ताएँ व्यक्त की जा रही थीं। नाइट नर्स रखी जाए जो ध्यान दे कि गिरें नहीं और फ्रैक्चर न हो। सुशीला रात को नहीं आ सकती। फिरंगी ने माना कि इट इज़ अ वैरी गुड आइडिया। बट वैरी एक्सपेंसिव, सिड की बीवी ने कहा। वी कैन ऑल शेयर, फिरंगी ने कहा जिस पर सिड की पत्नी जिन्हें अपनी साफ़गोई पर नाज़ था बोलीं, सब कुछ तो हम करते हैं, एक चीज़ तुम लोग नहीं सँभाल सकते? उसके बाद रीयूनियन का मज़ा फीका पड़ता गया और कोई किसी को इशारा करता कि चुप रहो, कोई कहता बात बदलो, कोई कहता मंहगाई देखो और आखिर हिसाब दिया जाने लगा कि विदेश में रहने वालों को लोग सोने के अंडे देने वाली मुर्गी समझते हैं। कि वहाँ की कमाई ज़्यादा लगती है तो क्या खर्चे भी उसी तरह नहीं और यहाँ पूरा परिवार है, वहाँ बुढ़ापे में कौन हमें सँभालेगा, हमें

उसका भी सोचना होता है। हम जब आते हैं महँगे महँगे गिफ्ट्स लाते हैं और जब यहाँ जॉब थी तब का अपना खाता छोड़ गए थे विद गुड सेविंग्स कि इन टाइम ऑफ़ नीड यूज़ इट, उसे इधर उधर लगा के उड़ा दिया, वो इसी दिन के लिए था, अब और हम कहाँ से दें?

सब बराबर हिस्सा निकालें, आराम से हो जाएगा। वहाँ वाले ज़िद्दीयाये।

यहाँ वाले तुल गए कि हिस्सेदारी करनी है तो जो हम अकेले करते रहे हैं उसमें भी करो, तुमसे ग़लती से एक चीज़ कह दी तो बराबरी याद आ गयी?

अरे चुप अरे बस, कुछ कहने लगे। क्यों चुप क्यों बस, दूसरे करने लगे। ये भी फ़िकरे उड़े कि हमारी बुआ भी ऐसी ही हैं, जब लेना है तो परिवार की, जब देना है तो मॉडर्न और परिवार से अलग।

इस पर बड़े उठ लिए। या इस पर कि उनका जिगरी, कौवा, खिड़की पर दस्तक दे रहा था। उसे वो रोटी देने में लग गए और कुछ गपशप भी कर रहे थे कि तुम वोही हो कि उसके बेटे, तुम्हारी आँखें ज़्यादा चुलबुली और लालची हैं, उसकी भावुक पसीजी थीं, और यहाँ गर्दन के सलेटी के पास दाढ़ी हुआ करती थी। उसकी गर्दन के नीचे सहला भी दिया। कौवा बोला कि हमारे घरों में ऐसी टांयटांय कांय कांय नहीं होती, कांव कांव। फिर थककर मुँह खोले बड़े को ताकता है। कांव कांव बड़े नहीं समझे पर प्यार दोस्ताना किसी भाषा के मोहताज नहीं। मुझसे बात करना चाहते हो, बड़े स्नेह से कहते हैं, अरे पानी और गेंद लाओ। पुराने प्लास्टिक के कप में पानी उसकी तरफ़ करते हैं और वो उनके हाथ से पानी पीता है। नया टैनिस बॉल इधर उधर लुढ़काते हैं और कौवा वापिस मारता है।

दोनों बॉल बॉल खेलने लगे हैं झक झक से पीठ करके। मज़े की बात ये कि सारी झकझक उन्हें देखने उठ आती है और झकझक बंद करके ख़ुशी और तारीफ़ के बोल बोलने लग जाती है अरे देखो इनका अरे देखो कौवा कैसा खिलाड़ी अरे देखो बॉल कैसे चोंच से मारता है नहीं पंजे से नहीं चोंच से नहीं पंजे से पे झकझक करने लगती है।

धन्य हो परिवार, कभी बंद नहीं होता और कहीं टिकता नहीं, मैं खिड़की पर आ गया सोचता हुआ कि अच्छा किया जो मैं अकेले रहता हूँ।

हाँ, मैं। भड़कने की ज़रूरत नहीं, मैंने अपने को नहीं बुलाया। मुझे बुलाया गया है। पुरानी दोस्ती है और भले ही सिड और मैं साथ अब काम नहीं कर रहे, इस परिवार में आना जाना मेरा लगा है। मैंने ही काम की लाइन बदल दी। मेरा निकला पेट देखकर मुझे भी विश्वास नहीं होता मैं कभी चुस्त खिलाड़ी था। ख़ैर अपने चारों ओर देखता हूँ तो कितनी ही बातों पर यकीन नहीं होता, हर किसी की ज़िन्दगी में कितने अलग चेहरे, अलग ज़िन्दगियाँ हो सकती हैं। तो क्या ताज्जुब अगर टैनिस रैकेट पकड़ने वाला ऑर्गनिक खाद का विक्रेता हो जाए और हमारे प्लांट में जो महक आती है वो उस पुराने पसीने वाले इंसान के जीवन चरित्र से जोड़ना आप कर न पाएँ, न मैं। वो तो सच्ची कोई और था और उसकी एक गर्लफ्रेंड भी थी जो अर्जेन्टीना की थी और वो...

पर एकदम अलग कहानी हो चलेगी जबकि मेरी यहाँ एंट्री हर बार फॉल्स है। इस कहानी की घनी आबादियों में मेरा नम्बर अब तक न आया, अब कैसे ले आऊँ?

पर ये जो झकझक है उससे पीठ करने कौवा और अंकल को देखने इधर आ गया हूँ। खिड़की पे।

खिड़की खुली है। झकझक पास सरक आई है। बहस में टोका टोकी मुझे करने नहीं देते कि यू कीप क्वाइट, यू हैव नो आइडिया, तो मेरे सामने झकझक क्यों करते हो भाईलोगों? अरे डालो रेत अपनी झकझक पर।

मैं उन्हें अनसुना करता जाता हूँ। मेरी वहाँ कोई दरकार नहीं और मेरी वो कहानी नहीं। आ गया, पर मेरा क्या किरदार? मैं इस कहानी का नहीं।

कहानियों की क्या कमी, किसी में शायद हम भी ऐन बीच होंगे! आसमान में चंदा है, जिससे अजीब सी रौशनी फूट रही है। कितनी सुन्दर रात है। हवा चल रही है हौले हौले धीमी सीटी की तरह बजती। कैसी रात है चांदनी उजास के सायों से भरी। कहानियाँ घूमती हों कि किस पर अपना जाल फेंकें।

हसरत से खिड़की से छलांग लगाता हूँ। खिड़की न हुई, कैनवैस का वो वाला कोना हो गयी जहाँ अभी रंग भरने, दूसरे किस्से किरदारों के उठने, नए आकारों के सरोकार बाकी हैं।

OceanofPDF.com